॥ श्रीः ॥

चौखम्बा राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

७

संस्कृत साहित्य में
नीतिकथा का उद्भम एवं विकास

डॉ० प्रभाकर नारायण कवठेकर

एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी), पी-एच० डी०, साहित्याचार्य

प्राध्यापक तथा अध्यक्ष,

संस्कृत विभाग, शासकीय हमीदिया कॉलेज, भोपाल (म० प्र०)

चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी-१

१९६९
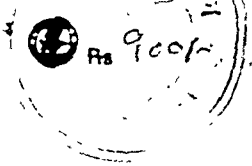
THE
CHOWKHAMBA RASHTRABHASHA SERIES
7
****

SAMSKṚTA SĀHITYA MEÑ

NITIKATHĀ KĀ UDGAMA EVAṀ VIKĀSA

(Origin and Development of Fables
in Sanskrit Literature)

By
Dr. PRABHĀKARA NĀRĀYAṆA KAVAṬHEKARA

M. A. (Sanskrit, Hindī), Ph. D., Sāhityācārya
Professor and Head of The Department of Sanskrit,
Govt. Hamīdiā College, Bhopal. (M. P.)

THE
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI-1 (India)
1969

अनुक्रमणी

coming under the catagory of fable or neetikatha. In the second chapter is examined the source of fable in primitive and civilised society, and in the following four chapters the evidence about the neetikatha in the Samhita literature, the Buddhist literature and the Mahabharata is extracted and marshalled with great acumen. Since the fable characters are mostly animals veneered with human passions, interests and common sense, the facts about animal symbols in the Vedic literature, e. g. horse, bull, eagle, frog, dog, etc. and also in the post–Vedic texts are thoroughly sifted to reconstruct the several incipient elements of fable in that early stage. Proof is adduced for the Indian origin of fable, which finds surprisingly concerted support from modern Indologists. The technique of emboxment (antah–katha or Katha–chakra) was also an Indian device.

The Theis is suffused with high merit, which is characterised by the discovery of new facts and also by a fresh approach towards their interpretation and altogether satisfactory in its literary presentation.
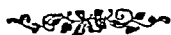
आमुख

कथा की जन्म कथा मानव की जन्म कथा है। कहानी के विकास से मानव-वंश की जीवनी ज्ञात होती है। आदि मानव ने किसी दिन आश्चर्यजनक घटना देखी या अनुभूत की, उसे उसने अपने साथी से बड़ी उत्कटता के साथ सुना दिया। उस कथन से जहाँ एक ओर उसे अपूर्व आनन्द का अनुभव हुआ वहाँ दूसरी ओर श्रोता के मन में उसे सुनने में बड़ा चाव उत्पन्न हुआ।

आख्यान की परम्परा भारतवर्ष में बहुत प्राचीन है। "आख्यान" मे मूल धातु "ख्या" है, जिसका अर्थ है कहना, निवेदन करना। इससे स्पष्ट है कि प्रारम्भ में कहानी मौखिक ही थी।

वैदिक युग में कई आख्यान कहे-सुने जाते थे। इस काल में दैवत-कथा का बड़ा महत्व था। यद्यपि दैवत-कथाएं साहित्य का अंग बन गई थीं, तथापि कई लोक-कथाएं उस युग में भी मौखिक रूप से प्रचलित थीं। आख्यानों की धारा जनवाणी में प्रवाहित थी जिसका निदर्शन है पुराणेतिहास का साहित्य। जन-साधारण की भाषाओं का उपयोग आर्यों, बौद्धों, जैनों एवं वैष्णवों ने परम्परा से प्राप्त कहानियों के लिए कर लिया है।

इस विशाल भारतीय कथा-भाण्डार में नीतिकथा (Fable) का बड़ा महत्व है। 'नीतिकथा' संज्ञा से हमारा अभिप्राय अंग्रेजी में प्रचलित 'फेबल्' से है। न केवल भारतवर्ष में ही, अपितु विदेश में भी भारतीय नीतिकथा कुतूहल एवं समादर का विषय रही है। भारतीय नीतिकथा की सब से अद्भुत विशेषता है उसकी विदेश-यात्रा। भारतवर्ष से उसका निर्गमन बुद्धपूर्व काल में ही हो चुका था। जातक-कथाओं के कई रूप तो आज भी युरोप में दिखाई देते हैं। पञ्चतन्त्र के अनुवाद के रूप में भी भारतीय नीतिकथा पश्चिम की ओर गई। भारतवर्ष की पश्चिम को यह एक देन थी।

भारतीय कथा-साहित्य की दो मुख्य धाराएं हैं :—

१. मनोरञ्जन-प्रधान कहानियाँ, एवं
२. शिक्षाप्रद कहानियाँ।

ये दोनों धाराएं भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य में विकसित हुई हैं। प्रथम धारा के अन्तर्गत बृहत्कथा से अनुप्राणित बृहत्कथा श्लोकसंग्रह, बृहत्कथा-मञ्जरी, कथा-सरित्सागर, वेतालपञ्च-विंशतिका, द्विंत्रिशत्सिंहासन-पुत्तलिका. वासवदत्ता, कादम्बरी, दशकुमारचरित आदि कई लोकप्रिय कथाग्रन्थों की सृष्टि संस्कृत में हुई है।

इसी धारा के साथ साथ दूसरी धारा भी प्रवाहित थी। ऋग्वेद में प्राचीन कथा के अंश प्राप्त होते हैं। आगे चलकर ब्राह्मण ग्रन्थों की आख्यायिकाएं, उपनिषद् के कथांश, जातक-कथाएं, तन्त्राख्यायिका, महाभारत की कथाएं, पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, तन्त्रोपाख्यान, तन्त्राख्यान आदि शिक्षाप्रद साहित्य का विकास दिखाई देता है।

पशुपची, प्राणी, पशु	Animals, beasts etc.
वन्य संस्कृति	Savage culture
कर्मकाण्ड	Ritual
आदिम मानव	Primitive man
समानरूप	Parallels
प्रति रूप	Variants
बीज	Seeds, germs
दास	Slave
दास प्रथा	Slavery
विनोद	Humour
उपहास	Satire
विशेषता	Characteristic
भारतमूलक सिद्धांत	Indianist theory
राजनैतिक एवं व्यावहारिक	Political and worldly
प्रज्ञा	Wisdom
असभ्य या वन्य लोग	Savage people
संप्रसारण	Diffusion
स्थानान्तरण	Transmigration
रूपान्तरग्रहण	Transformation
निर्गमन	Migration
तत्व	Element
कल्पनाबंध	Motif
प्रणाली	Device
शैली	Style
प्रतीक	Symbol.

शब्दों के संकेत-चिह्न

ऋ० सं०	ऋग्वेद संहिता
अ० वे०	अथर्ववेद
वा० सं०	वाजसनेयी संहिता
य० वे०	यजुर्वेद
मै० सं०	मैत्रायणी संहिता
तै० सं०	तैत्तिरीय संहिता
ऐ० ब्रा०	ऐतरेय ब्राह्मण
श० प० ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण
ताण्डय ब्रा०	ताण्डय महाब्राह्मण
मुंडक	मुण्डकोपनिषद्
छान्दोग्य०	छान्दोग्योपनिषद्
बृहदा०	बृहदारण्यकोपनिषद्
कठोप०	कठोपनिषद्
जै० ब्रा०	जैमिनी ब्राह्मण
सांखा० ब्रा०	सांखायन ब्राह्मण
ऐ० आ०	ऐतरेय आरण्यक
बृ० दे०	बृहद्देवता
म० भा०	महाभारत
व० पु०	वराहपुराण
अ० पु०	अग्निपुराण
वा० पु०	वायुपुराण
प० पु०	पद्मपुराण
शा० प०	शान्तिपर्व
रा० ध० प०	राजधर्मपर्व
नि० सा० प्रे०	निर्णय सागर प्रेस, बंबई
आ० सं० ग्रं०	आनंदाश्रम संस्कृत ग्रंथावली
ना० प्र० स०	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
ना० प्र० प०	नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी
हिं० सा० सं०	हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
भा० वि० भ०	भारतीय विद्या भवन, बंबई
भा० ज्ञा०	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

ABORI	Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona.
AUS	Āgamodaya Samity, Bombay.
AOS	Americal Oriental Series, New Haven.
Bibl. Ind.	Bibliotheca Indica.
BORI	Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona.
BSS	Bombay Sanskrit Series.
BVB	Bhārtiya Vidyā Bhavan, Bombay.
Cr. ed.	Critical Edition.
ed.	edition.
HOS	Harvard Oriental Series.
Intro.	Introduction.
JA	Journal Asiatique.
JAOS	Journal of the Americal Oriental Society.
JBORS	Journal of Bihar and Orissa Research Society, Patna.
JBU	Journal of Bombay University.
IHQ	Indian Historical Quarterly.
Mbh.	Mahābhārata.
PO	Poona Orientalist.
RPV	Religion and Philosophy of the Veda.
PTS	Pali Text Society.

(१) नीति-कथा क्या है ?

नीतिकथा[1] एक छोटी सी कहानी है। अंग्रेजी में इसे फेबल् (fable) कहा जाता है। संस्कृत साहित्य में नीतिकथाएँ काफी भरी पड़ी हैं। न केवल भारतवर्ष में ही, अपितु विदेशों में भी संस्कृत नीतिकथाएँ गईं और वहाँ वे लोकप्रिय बन गईं। संस्कृत साहित्य के दो ग्रंथ 'पंचतन्त्र' एवं 'हितोपदेश' से साहित्यप्रेमी जनता चिरपरिचित है। पशुपक्षियों की कहानी के द्वारा किसी नीतितत्व का प्रतिपादन नीतिकथा में किया जाता है। इस ग्रंथ में हमें नीतिकथा के उद्गम और विकास को देखना है। किन्तु उसके पूर्व हमें देखना है कि नीतिकथा क्या है? उसका स्वरूप क्या रहा है? उसे समझ लेने पर ही हम उसके उद्गम एवं विकास की चर्चा कर सकेंगे और वह समीचीन भी होगा।

---

१. Fable इस अंग्रेजी शब्द के लिए हम 'नीतिकथा' शब्द का प्रयोग यहाँ करने जा रहे हैं। यद्यपि fable की अपेक्षा 'नीतिकथा' एक व्यापक संज्ञा दिखाई देती है और नई भी; फिर भी 'नीतिकथा' इस संज्ञा से इस निबंध में fable शब्द से प्राप्त अर्थ का ही संकेत ले रहे हैं। आगे चलकर हम Fable की व्याख्या को समझ कर उसकी विशेषताओं की चर्चा करेंगे; उसके अनुसार fable के लिए यदि 'नीतिकथा' संज्ञा का उपयोग किया जायगा तो असंगत न होगा। सम्भव है जिसे हम अंग्रेजी में fable निरूपित नहीं कर सकते, ऐसी सीधी सादी कहानी से भी कोई नीतितत्व निकलता हो और शब्दार्थ के अनुसार कोई उसे 'नीतिकथा' कहने की शीघ्रता भी कर दे; इसलिए यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि, जिन शैली एवं अन्य धर्मों की सत्ता के कारण fable के द्वारा 'उद्बोधन' होता है, उनको ध्यान में रखकर ही हमने कल्पित नीतिप्रधान प्राणिकथाओं को 'नीतिकथा' संज्ञा प्रदान की है। उदाहरणार्थ, संस्कृत साहित्य के विख्यात 'पञ्चतन्त्र' नामक ग्रंथ की ओर हम संकेत करना चाहेंगे। 'पञ्चतन्त्र' प्राचीनतम भारतीय fables का संग्रह है, इस तथ्य को पश्चिम में भी जहाँ जहाँ fable की चर्चा की गई है वहाँ वहाँ स्पष्ट रूपेण मान्यता मिल चुकी है (देखिये: Fable', Encyclopaedia Britannica, Vol.9, 1954; p.21)। यह ग्रंथ नीतिशास्त्र के अनुसार लिखा गया है एवं उसमें लिखित प्राणि-कथाएँ नीतितत्व का प्रतिपादन या शिक्षा प्रदान करती हैं; इसीलिए उन्हें यदि 'नीतिकथा' कहा जाय तो समीचीन होगा।

कथा-साहित्य में नीतिकथा (fable) का स्वरूप कुछ स्वतंत्र ही है। विश्व के कथा-साहित्य में भी इन कथाओं का स्थान बहुत ऊँचा है। कहानी के कई प्रकार हो सकते हैं, उनमे नीतिकथा का स्वरूप भिन्न होने के कारण

'तन्त्र' शब्द का सामान्य अर्थ है शास्त्र (तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेनेति तन्त्रम्-काशिका)। पञ्चतन्त्र या तंत्राख्यायिक में 'तंत्र' शब्द है। डॉ० जे हर्टेल ने 'तन्त्र' का अर्थ राजनीति (politic) एवं 'नीति' लिया है (देखिये, Dr. Johannes Hertel's article: 'was bedeuten die Titel Tantrakhy-ayika and Pancatantra', WZKM; 20.81 ff.) 'नीति' के अर्थ को वे इस प्रकार स्पष्ट करते हैं—Proceeding sagaeously in life (Kluge Lebensfuhrung, Klugheit)। श्री हर्टेल के इस मत पर भी आक्षेप किये गये है। प्रो. स्पेयर, डा. विन्टरनिट्ज, थामस, श्री वेंकट सुब्बिय आदि विद्वानों को यह अर्थ सम्मत नहीं है (देखिये, IHQ. XIII, 4, Dec. 1937 'on the Titles of Panch. & Tantra. by A. Venkatasubbiah, P. 668)। शब्दकल्पद्रुम मे भी तंत्र का अर्थ 'नीति' नहीं दिया गया है। तंत्र का अर्थ नीति हो या न हो, किन्तु 'पंचतंत्र' मे उसे 'नीतिशास्त्र' ही कहा गया है। इस नीतिशास्त्र के सिद्धान्त के लिए जो कथाएँ दृष्टांत के रूप मे दी गई है, उन्हे 'नीतिकथा' ही कहना युक्तिसंगत होगा। हम देखते है कि इस प्रकार की विशेषता पंचतंत्र की कहानियों मे एवं अन्यत्र प्राप्त fables मे दिखाई देती है। इसीलिए 'नीतिकथा' शब्द की उपयोगिता सिद्ध हो जाती है। इस प्रकार यदि पंचतंत्र की कहानियाँ 'नीतिकथा' संज्ञा से निरूपित की जा सकती हैं तथा पश्चिम में भी fable संज्ञा के अन्तर्गत ही उनकी चर्चा की गई है, तो fable के लिए 'नीतिकथा' शब्द ही योग्य होगा।

गल्प, परोक्षकथा, प्रतीककथा, प्राणिकथा, दृष्टांतकथा, बोधकथा या अन्य कोई संज्ञा fable के लिये उपयुक्त नहीं हो सकती। गल्प से fiction की काल्पनिकता का बोध अवश्य होता है, किन्तु fairy tale (परीकथा) भी तो एक गल्प ही है। गल्प एक व्यापक संज्ञा हो बैठी है। परोक्ष या प्रतीक शब्द allegory के लिए भी प्रयुक्त हो सकते है एवं parable को तो 'दृष्टान्त-कथा' ही कहना पड़ेगा; तो fable के लिए इन संज्ञाओं का उपयोग करने से अतिव्याप्ति की आपत्ति को कैसे टाला जा सकता है? इससे स्पष्ट है कि, हमें fable के लिये 'नीतिकथा' शब्द को ही सर्वथा उपयुक्त समझना चाहिये।

Fable के समानार्थक शब्द Apologue को भी 'नीतिकथा' ही कहा जा सकता है।

उसकी परिभाषा, शैली, विधा एवं अन्य विशेषताएँ स्वतंत्र हैं। इसकी परिभाषा अपनी परिभाषा है, इसकी कहानी एक अपनी कहानी है। संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत 'पञ्चतन्त्र' एवं 'हितोपदेश' में नीतिकथाएँ कही गई हैं। उनकी विशेषताओं को देखते हुए अन्य संस्कृत कहानियों से नीतिकथा की विभिन्नता स्पष्ट हो जाती है। अत: नीतिकथा की पुरानी कहानी सुनने के पूर्व, यह आवश्यक हो जाता है कि हम नीतिकथा की व्याख्या करें; अन्यान्य विद्वानों द्वारा दी हुई परिभाषाओं की आलोचनात्मक चर्चा करें।

(अ) पश्चिम में Fable पर विचार

अँग्रेजी में नीतिकथा के लिए fable शब्द प्रचलित है। Fable की व्युत्पत्ति ग्रीक, लातिन, फ्रेंच एवं अँग्रेजी में मिलती है। लातिन मे fabula शब्द 'फारि' (fari) धातु से निकला हुआ है। फ्रेंच भाषा मे भी हमे fable शब्द मिलता है। लातिन के fabula का अर्थ है : कहानी, कल्पित कथा। मूल धातु 'फारि' (fari) का अर्थ है : कहना, बोलना[१]। Fable के पाँच अर्थ भी कोश में दिये गये हैं—१. वह कहानी जिसका कथानक यथार्थ न हो। मनगढ़न्त कहानी; २. कोई उपयोगी शिक्षा या पाठ देने के लिए रची हुई लघुकथा, नीतिकथा (A short story devised to convey some useful lesson, an apologue.); ३. किसी रूपक या कविता का कथानक या कहानी; ४. वार्ता; ५. सर्वसाधारण वार्ता का विषय[२]। इनमे से दूसरा अर्थ ही साहित्य के अन्दर fable से लिया जाता है। नीतिकथा कल्पित (fiction) है—इस विषय का संकेत apologue शब्द से जो कोशकार ने कर दिया है वह नितान्त अर्थपूर्ण है।

लातिन् मूल धातु fari तथा संस्कृत 'भाष्'—इन दोनों का अर्थ एक ही है और इस तथ्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि नीतिकथा का स्वरूप निवेदना-

---

१. Walter W. Skeat : Etymological Dictionary of the English Language, Oxford, 2nd Edition, 1883, p. 201 Fable, a Story, fiction. (F., –L.) M. E. fable, Chaucer, C. T. 17342.—F. fable.—Lat. fabula a narrative—Lat. fari, to speak. + Gk. nui, I say. + SKT. Bhash, to speak; bhan (Vedic), to resound.—BHA to speak, whence also E ban, q v. Der. fable, verb; also (from L. fabula) fabul-ous, Hen. VIII, 1. I. 36; fabul-ous-ly, fabul-ise, fabul-ist."

२. William Little, Shorter English Dictionary, Vol. I. Oxford. 'Fable', p 665

त्मक (narrative) है। अर्थात् fable यह एक आवश्यक रूप से 'निवेदन' या 'कथन' है। 'फैब्युला' शब्द का अर्थ भी 'निवेदन' ही है,[१] इसलिये हम निवेदनात्मक कहानी के अर्थ में fable शब्द का प्रयोग कर सकते है। फिर भी, इतने अर्थ से तो fable का संपूर्ण रूप हमारे सम्मुख नहीं आता, भले ही मूल धातु से उसमें निवेदनात्मक शैली का संकेत मिलता हो। वैसे तो निवेदनात्मक गद्य के कई प्रकार हो सकते है। अँग्रेजी में ही fiction, parable, allegory आदि है। इसी प्रकार Legend और Myth भी है। इन सब गद्य-विधाओं से fable विभिन्न एवं स्वतंत्र है। यह तथ्य हमें fable की परिभाषा समझ लेने पर ठीक ठीक ज्ञात हो सकेगा।

फिक्शन् (fiction)[२] का अर्थ कल्पित-कथा है। चाहे जो कथा हो, केवल वह कल्पित हो, मनगढ़ंत कहानी हो; यथार्थ घटना न हो, यही उसका अर्थ है। नीतिकथा (fable) भी एक कल्पित-कथा है। Fairy tale अर्थात् परीकथा को भी fiction के अन्तर्गत ही माना जा सकता है। वास्तव मे fiction यह एक व्यापक संज्ञा है। इसलिये केवल fiction शब्द से नीतिकथा का पूरा स्वरूप हमे ज्ञात नहीं हो पाता।

डॉ० जॉन्सन की परिभाषा

अंग्रेजो के विख्यात आलोचक डॉ० जॉन्सन् ने नीतिकथा की जो परिभाषा दी है वह इस प्रकार है[३]—'विशुद्ध नीतिकथा एक ऐसा निवेदन है कि जिसमें

१. Walter W. Skeat, Etymological Dictionary of the English Language, Oxford, 1883, p 201.

२. वही, पृ० २०७, २०८.

३. Dr. Samuel Johnson: 'Lives of the English Poets', Vol. II, Edited by G. Birkbeck Hill, Oxford, Gay, P. 283.

"A. Fable or Apologue, such as is now under consideration seems to be in its genuine state, of a narrative in which beings irrational, and sometimes inanimate, 'arbores loguuntur nontantum farae' (7), are for the purpose of moral instruction feigned to act and speak with human interests and passions. (8)"

(7) Phaedrus, Febulae, i, Prol;

(8) For 'the skill in making little fishes talk like little fishes' see Boswell's Johnson, ii. 231.

कुछ बुद्धिहीन प्राणी एवं कभी कभी अचेतन पदार्थ पात्रों के रूप में नीतितत्त्व की शिक्षा देने के हेतु आए हों और वे मानवीय हितों एवं भावों को ध्यान में रख कर चेष्टा तथा संभाषण करने में कल्पित किये गये हों'।

डॉ० जॉन्सन् की इस परिभाषा से नीतिकथा का स्वरूप बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है। इससे नीतिकथा के—

(१) पात्र, (२) हेतु एवं (३) कल्पनातत्त्व।

—ये तीन मूल तत्त्व (Elements) प्रकट हो जाते हैं। डॉ० जॉन्सन् के अनुसार नीतिकथा के,

१. पात्र—मानवेतर चेतन (प्राणी) तथा अचेतन पदार्थ हों;

२. हेतु—किसी नीति-तत्त्व का प्रतिपादन या पाठ देना हो; एवं

३ कल्पनातत्त्व—मानवीय तथ्यों एवं भावों को ध्यान में रखकर पात्र कल्पित किये गये हों, जिनमें मनुष्योचित सम्भाषण और चेष्टाओं की कल्पना हो।

१. पात्रविचार

डॉ० जॉन्सन् के अनुसार नीतिकथा के मानवेतर 'पात्र' दो प्रकार के देखे गये हैं: (अ) सजीव (प्राणी) तथा (ब) अचेतन पदार्थ। इनमें भी (अ) सजीव (प्राणियों) में—

(१) पशु—अर्थात् सिंह, शृगाल, हाथी आदि श्वापद,

(२) पक्षी—अर्थात् वायस, कपोत, गरुड, चटक इत्यादि; तथा

(३) इतर—अर्थात् सर्प, नकुल, शलभ, कीटक, पिपीलिका आदि हैं।

तथा—(ब) अचेतन पदार्थों में—

(१) प्राकृतिक पदार्थ या वस्तुएँ—अर्थात् नदी, सागर, वृक्ष, पर्वत, वनस्पति, फल इत्यादि प्रकृति से उत्पन्न;

(२) कृत्रिम पदार्थ—अर्थात् घर, बिजली का खंबा, रेल का लोह-पथ इत्यादि मानव निर्मित वस्तुएँ हैं।

इन सब चेतन एवं अचेतन सृष्टि की उपादेयता नीतिकथा में कहाँ तक सम्भव है इसकी चर्चा भी यहाँ अप्रासंगिक न होगी।

(अ) सजीव (प्राणी)

यह ठीक है कि मानवीय पात्रोंवाली कहानी fable या नीतिकथा के अन्तर्गत नहीं जा सकती। भले ही मानवीय पात्रोंवाली कहानी में किसी नीति-तत्त्व का प्रतिपादन भी किया गया हो। वह तो मानव जीवन की एक सीधी सादी कहानी है; और जान बूझकर यद्यपि उसके पात्र काल्पनिक ही रहे होंगे,

फिर भी ऐसी कहानी या किस्से का कथानक किसी मानव की तथ्यपूर्ण घटना या हकीकत ही हो सकती है। पात्र मानवीय होने के कारण ऐसी कहानी में मानवोचित मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म चरित्रचित्रण किया जा सकता है। कहानी में, जिसे पश्चिम में short story कहा जाता है, जो पात्र आते हैं, वे सीधे मानव-समाज से लिए जाते हैं। वह सत्यकथा है[1]। यद्यपि उनके नाम एवं स्थल काल्पनिक ही होते है, फिर भी वह कल्पना का क्षेत्र सीमित ही रहता है। नीतिकथा में जो पात्र आते है वे कल्पनाशक्ति से ही 'कल्पित' किये जाते हैं, क्योंकि वे मानवेतर प्राणी मानव जैसा व्यवहार करते दिखाई देते हैं[2]। वैदिक साहित्य से लेकर लौकिक संस्कृत साहित्य के अन्तिम समय तक जितनी मानव-पात्राधारित कथाएँ लिखी गई हैं, उनके पात्र मानवीय होने के कारण उनमे प्रत्यक्ष कथनप्रणाली (Direct method of naration) से ही काम लिया गया है। किन्तु नीतिकथाओं में लेखक का अप्रत्यक्ष कथनप्रणाली (indirect method of narration) से अपना नीतितत्त्व सूचित करना पड़ता है। वस्तुतः नीतिशास्त्र के आचार्य कोरे नीतिशास्त्र की शिक्षा को प्रभावशाल बनाने मे असमर्थ ही रहे होंगे। श्रोता या पाठकों पर सीधा उपदेश देने-मात्र से अभीष्ट प्रभाव नही पड़ता। अतएव उन्होने कहानीकार का चोला पहनकर उस नीति के उपदेश में दृष्टांतो का समावेश कर दिया। इस अप्रत्यक्ष प्रणाली से दोनों बातें बन गईं। किसी के वैयक्तिक जीवन पर प्रत्यक्ष रूप से हमला भी नहीं हुआ और अभिव्यक्ति के चमत्कार से उसमे आकर्षण भी आ गया।

ऐसी कहानी अन्य दृष्टान्त-कथाओं (Parables) से भिन्न ही थी, यद्यपि पशुपक्षियो के दृष्टांत रूप पात्र उसमे भी रहते आये हैं। दृष्टान्त-कथा में जो धर्मप्रचार की विशेषता रहा करती है, उससे सर्वथा मुक्त यह नीतिकथा मानवीय पात्रो से विरहित होकर ही मानव की दुष्प्रवृत्ति एवं कुवासना का अन्त करने के हेतु प्रभावशील हो सकी।

नीति-तत्त्व-विशारद जीवन की गहराई को ठीक सोच समझ लेता है। वह मानव द्वारा हीन समझे गये पशुपक्षियों की पटु कथाएँ सुना कर, उसे इन उपेक्षित प्राणियों से भी कुछ शिक्षा ग्रहण करने की चमत्कारपूर्ण अभ्यर्थना

---

१. हेमचंद्र द्वारा परिशिष्ट पर्व (३, १८६-२१२) में 'कल्पितकथा' इस शब्द का भी प्रयोग किया गया है, जिससे सत्यकथा से काल्पनिक कथा की भिन्नता स्पष्ट हो जाती है।

२. "beigned to act and speak with human interests and passions." (Dr. Johnson's definition 'Lives')

करता है और साथ ही बुद्धि तथा बल में प्राणिमात्र में उच्चतम होने का जो दम्भ मानव में है, उसको ठेस पहुँचाता है। यह कार्य कोई सरल नहीं है। नीतिकथा एक कहानी होने से वह रोचक अवश्य हो, और साथ साथ वह शिक्षा-प्रद भी हो। उसके पात्र तो मानवेतर होंगे किन्तु उसका लक्ष्य मानवीय जीवन ही है। कहानीकार को यही कौशल दिखाना है।

परीकथा (Fairy tale) में पात्र

परीकथा की पात्रयोजना में नीतिकथा का-सा कल्पनाक्षेत्र अपेक्षित अवश्य होता है। एवं जहाँ तक उनके मानवेतर होने का सम्बन्ध है, परीकथा के पात्र भी अधिकांश मानवेतर होते हैं। गंधर्व, विद्याधर, वैताल, पिशाच आदि योनि के लोगों का 'लोकातिगचरित' परीकथा में वर्णित होता है। मानव को काल्पनिक विश्व का दर्शन, जो उसे प्रतिदिन के जीवन में अप्राप्य है, कल्पना के ही द्वारा परीकथा मे प्राप्त हो सकता है और विद्याधर आदि पात्र भी मानवेतर ही है। फिर भी नीतिकथा के पात्र इनसे भिन्न ही है। इस भेद को समझने के लिये हमे परीकथा की पात्रसम्बन्धी विशेषताओं को भी देख लेना चाहिये।

परीकथा के पात्र

(१) मानवेतर होते हुए भी यथार्थ जीवन में उन्हें देखा नहीं जा सकता। न तो ऐसे पात्र हैं और न उनके क्रियाकलाप हो देखे गये हैं। कई पात्र तो उसमें अतिमानवीय कोटि के (Super human) होते हैं। संस्कृत साहित्य का सर्व प्राचीन कथासंग्रह गुणाढ्य द्वारा लिखित "बृहत्कथा" है, जो अभी तक अप्राप्य है। किन्तु उसी का रूपान्तर हमे बृहत्कथा-श्लोक-संग्रह[१], बृहत्कथा-मंजरी[२] तथा कथासरित्सागर[३] के रूप मे प्राप्त है। इसमें प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता एवं वत्सराज उदयन की कथा, तथा उनके पुत्र नरवाहनदत्त की अद्भुत यात्रा आदि का वर्णन है। यह पुराने से पुराना भारतीय परीकथा का रूप है। वास्तव में वासवदत्ता, उदयन आदि यद्यपि विद्याधर योनि के दिखाये गये है फिर भी संभव है, ये ऐतिहासिक व्यक्ति भी रहे हों।

१. Budhaswamin : Brihat-Katha Sangraha, Paris.

२. क्षेमेन्द्र-कृत 'बृहत्कथा-मञ्जरी', प० शिवदत्त तथा परब द्वारा सम्पादित, नि० सा० प्रेस, बम्बई; १९०१।

३. सोमदेव कृत "कथा-सरित्सागर" पं० दुर्गाप्रसाद तथा परब द्वारा सम्पादित, नि० सा० प्रेस, बम्बई, १८८९।

आवस्ति की जनकथा से लेकर ही गुणाढ्य ने यह विद्याधरकथा लिखी है[1]। किन्नर, विद्याधर आदि योनियाँ प्राचीन काल में हिमालयनिवासी जातियाँ रही हों तो आश्चर्य नहीं। फिर भी संस्कृत कथाकारों के अनुसार ये योनियाँ कल्पना द्वारा निर्मित हैं। किन्तु 'पंचतन्त्र' जैसे नीतिकथा ग्रंथ में जो काक, उलूक, सिंह, वृषभ आदि पात्र हैं, उनकी अपनी स्थिति या अस्तित्व मानव के लिये कल्पनाजन्य नहीं है। ये तो मानव के चिर सहचर ही रहे हैं। मानव के अरण्य-वास-काल से ही उसका इनसे घना परिचय हो गया है। अतएव यह कह सकते हैं कि जिन पात्रों को मानव के लिये काल्पनिक विश्व उत्पन्न करने के लिए परीकथा में रखा गया है उनका अस्तित्व भी इस धरातल पर नहीं है। वह केवल मस्तिष्क की उपज है।

(२) परीकथा के जो पात्र होते हैं, उनका मनोवैज्ञानिक गठन भोगवाद की पृष्ठभूमि पर हुआ है। नायक की नायिका किसी खलनायक के द्वारा अपहृत हो जाती है, नायक अपने पराक्रम से उसे छुड़ाता है। यह परीकथा का सार्वदेशीय एवं सार्वजनीन कल्पना-बंध (Motif) रहा है[2]। गुणाढ्य-रचित बृहत्कथा के जो संस्कृत संस्करण बृहत्कथा-मञ्जरी आदि प्राप्त हैं, उनसे ज्ञात होता है कि जब वत्सराज उदयन की पुत्रवधू मदनमञ्चुका (मञ्जुका ?) का अपहरण 'मानसवेग' नामक किसी व्यक्ति द्वारा होता है[3] तब उसका पति नरवाहनदत्त उसकी खोज में निकलता है। इसी पराक्रम की कथा में अन्य अमात्यपुत्रों की कहानियाँ मिलकर परीकथाओं की एक शृंखला ही बन जाती है। अन्त में नरवाहनदत्त को मदनमञ्जुका का लाभ हो जाता है। इस कार्य में ही अनेक रमणियों का लाभ नायक को होता रहता है।

नीतिकथा में जो पात्र आते हैं, उनका मनोवैज्ञानिक गठन किसी भोगेच्छा पर ही नहीं, अपितु मानवीय शाश्वत अनुभूतियों के आधार पर हुआ दिखाई देता है। चतुरता या स्वामिपरायणता, धोका-देही या विश्वासपात्रता, धूर्तता

---

१. Felix Lacote, Essay on Cunadhya and the Brihatkatha; English trans— by A M. Tabard, Bunglore; 1923.

२. Motif (कल्पना-बंध) एक कथाबीज होता है जो विश्व की कथाओं में सर्वत्र एकसा दिखाई देता है। कथाओं के इस कल्पनाबीज को देखकर ही लोक-साहित्य-शास्त्री कुछ निर्णय लेने में प्रवृत्त होते दिखाई देते हैं। देखिये Thompson : Motif Index of Folk-literature.

३. क्षेमेन्द्र द्वारा रचित-बृहत्कथा-मञ्जरी, नि० सा० प्रे० बम्बई, ८ वाँ लम्बक, पृ. २१४–२१५.

या मूर्खता आदि के प्रतिनिधि शृगाल या वृषभ, मार्जार या नकुल, वायस या गर्दभ आदि प्राणी हमारे शिक्षक बनकर ही कहानी में व्यवहार करते हैं। उनकी गलतियों से हमें सीख मिलती है एवं उनके अनुभव से हम लाभान्वित होते हैं। स्पष्ट है कि नीतिकथा के पात्र परीकथा के से एकांगी नहीं हैं। जीवन के अन्यान्य पक्ष उनके द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं। राजनीति में चतुरता, व्यवहार में कुशलता, सदाचार आदि बुद्धिगम्य पक्ष नीतिकथा के अन्तर्गत दिखाई देते हैं।

(३) परीकथा के नायक दैववाद से अत्यन्त प्रभावित होते हैं। नीतिकथा के प्राणी कार्यरत, उद्योगशील एव चतुर हैं, परीकथा के नायक कुशल हों या मूर्ख वीर हों या कायर; किन्तु उन्हें किसी न किसी आधिदैविक शक्ति से सहायता प्राप्त होती रहती है। अमात्य के पुत्र भी उनके सहायक हैं एवं कभी कभी पशुपक्षियों में से कोई इनको मदद दे ही देता है। मृगांकदत्त एवं उसके साथियों को वैतालों द्वारा सहायता प्राप्त होती है[१]। शुक ने भी राजा की सहायता की है[२]। नीतिकथा में अपने बुद्धिचातुर्य से पात्र संकटमुक्त होते हैं। वानर एवं मकर की कथा में नदी के मध्य में अपनी पीठ पर वानर को ले जाकर मकर ने उसे मारने की दुष्ट कामना बतला दी। उस पर वानर ने युक्ति से ही अपने आपको बचा लिया[३]।

(४) परीकथा के पात्रों का अवतरण पाठकों या श्रोताओं के मनोरञ्जन के लिए होता है। वासवदत्ता, मदनमञ्चुका, शशांकवर्ती, तथा नरवाहनदत्त आदि नायिका-नायक पाठक के मन में उत्सुकता आदि बढ़ाकर उनका मन-रञ्जन ही करते हैं। नीतिकथा में पात्र किसी नीतितत्व की शिक्षा या व्यवहार का पाठ देने के लिये ही कल्पित किये जाते हैं। जम्बुक एवं वायस का प्रधान कार्य अपने कार्यों के द्वारा एक ऐसे नीतितत्व या सार को व्यक्त करना है जो पाठकों के लिये उपादेय हो। रञ्जकता उनकी प्रमुख विशेषता नहीं।

(५) परीकथा में नायक-नायिका शृंगार के आलम्बन भी होते हैं। किन्तु नीतिकथा के प्राणी रस के आलम्बन होने की दृष्टि से प्रयुक्त नहीं होते। यदि शृंगार की अभिव्यक्ति उनके चरित्र से होने लगती तो वह

---

१. सोमदेव द्वारा रचित, 'कथा-सरित्सागर' एवं 'वैताल-पचविंशतिका, नि० सा० प्रेस बम्बई, १८८९, पृ० ४६५–५३५.

२. क्षमेन्द्र रचित 'बृहत्कथा-मञ्जरी' में वैताल-पञ्चविंशतिका के अन्तर्गत् वैताल ३ पृ० ३०२, (संस्करण १९०१) नि० सा० प्रे० बम्बई

३. लब्धप्रणाशम्, पं. तं., तं.४

श्रावस्ति की जनकथा से लेकर ही गुणाढ्य ने यह विद्याधरकथा लिखी है[१]। किन्नर, विद्याधर आदि योनियाँ प्राचीन काल में हिमालयनिवासी जातियाँ रही हों तो आश्चर्य नहीं। फिर भी संस्कृत कथाकारों के अनुसार ये योनियाँ कल्पना द्वारा निर्मित हैं। किन्तु 'पंचतन्त्र' जैसे नीतिकथा ग्रंथ में जो काक, उलूक, सिंह, वृषभ आदि पात्र हैं, उनकी अपनी स्थिति या अस्तित्व मानव के लिये कल्पनाजन्य नहीं है। ये तो मानव के चिर सहचर ही रहे हैं। मानव के अरण्य-वास-काल से ही उसका इनसे घना परिचय हो गया है। अतएव यह कह सकते हैं कि जिन पात्रों को मानव के लिये काल्पनिक विश्व उत्पन्न करने के लिए परीकथा ने रखा गया है उनका अस्तित्व भी इस धरातल पर नहीं है। वह केवल मस्तिष्क की उपज है।

(२) परीकथा के जो पात्र होते हैं, उनका मनोवैज्ञानिक गठन भोगवाद की पृष्ठभूमि पर हुआ है। नायक की नायिका किसी खलनायक के द्वारा अपहृत हो जाती है, नायक अपने पराक्रम से उसे छुड़ाता है। यह परीकथा का सार्वदेशीय एवं सार्वकालीन कल्पना-बंध (Motif) रहा है[२]। गुणाढ्य-रचित बृहत्कथा के जो संस्कृत संस्करण बृहत्कथा-मञ्जरी आदि प्राप्त हैं, उनसे ज्ञात होता है कि जब वत्सराज उदयन की पुत्रवधू मदनमञ्चुका (मञ्जुका ?) का अपहरण 'मानसवेग' नामक किसी व्यक्ति द्वारा होता है[३] तब उसका पति नरवाहनदत्त उसकी खोज में निकलता है। इसी पराक्रम की कथा में अन्य अमात्यपुत्रों की कहानियाँ मिलकर परीकथाओं की एक शृंखला ही बन जाती है। अन्त में नरवाहनदत्त को मदनमञ्जुका का लाभ हो जाता है। इस कार्य में ही अनेक रमणियों का लाभ नायक को होता रहता है।

नीतिकथा में जो पात्र आते हैं, उनका मनोवैज्ञानिक गठन किसी भोगेच्छा पर ही नहीं, अपितु मानवीय शाश्वत अनुभूतियों के आधार पर हुआ दिखाई देता है। चतुरता या स्वामिपरायणता, धोका-देही या विश्वासघातता, धूर्तता

---

१. Felix Lacote, Essay on Cunadhya and the Brihatkatha; English trans—by A M. Tabard, Bunglore; 1923.

२. Motif (कल्पना-बंध) एक कथाबीज होता है जो विश्व की कथाओं में सर्वत्र एकता दिखाई देता है। कथाओं के इस कल्पनाबीज को देखकर ही लोक-साहित्य-शास्त्री कुछ निर्णय लेने में प्रवृत्त होते दिखाई देते हैं। देखिये Thompson : Motif-Index of Folk-literature.

३. क्षेमेन्द्र द्वारा रचित-बृहत्कथा-मञ्जरी, नि० सा० प्रे० बम्बई, ८ वाँ लम्बक, पृ. २१४–२१५.

या मूर्खता आदि के प्रतिनिधि शृगाल या वृषभ, मार्जार या नकुल, वायस या गर्दभ आदि प्राणी हमारे शिक्षक बनकर ही कहानी में व्यवहार करते हैं। उनकी गलतियो से हमें सीख मिलती है एवं उनके अनुभव से हम लाभान्वित होते है। स्पष्ट है कि नीतिकथा के पात्र परीकथा के से एकांगी नहीं है। जीवन के अन्यान्य पक्ष उनके द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं। राजनीति में चतुरता, व्यवहार मे कुशलता, सदाचार आदि बुद्धिगम्य पक्ष नीतिकथा के अन्तर्गत दिखाई देते हैं।

(३) परीकथा के नायक दैववाद से अत्यन्त प्रभावित होते है। नीतिकथा के प्राणी कार्यरत, उद्योगशील एव चतुर है, परीकथा के नायक कुशल हों या मूर्ख वीर हों या कायर; किन्तु उन्हें किसी न किसी आधिदैविक शक्ति से सहायता प्राप्त होती रहती है। अमात्य के पुत्र भी उनके सहायक है एवं कभी कभी पशुपक्षियों मे से कोई इनको मदद दे ही देता है। मृगांकदत्त एवं उसके साथियो को वैतालों द्वारा सहायता प्राप्त होती है[1]। शुक ने भी राजा की सहायता की है[2]। नीतिकथा में अपने बुद्धिचातुर्य से पात्र संकटमुक्त होते है। वानर एवं मकर की कथा में नदी के मध्य मे अपनी पीठ पर वानर को ले जाकर मकर ने उसे मारने की दुष्ट कामना बतला दी। उस पर वानर ने युक्ति से ही अपने आपको बचा लिया[3]।

(४) परीकथा के पात्रों का अवतरण पाठकों या श्रोताओं के मनोरञ्जन के लिए होता है। वासवदत्ता, मदनमञ्चुका, शशांकवर्ती, तथा नरवाहनदत्त आदि नायिका-नायक पाठक के मन मे उत्सुकता आदि बढ़ाकर उनका मन-रञ्जन ही करते है। नीतिकथा मे पात्र किसी नीतितत्व की शिक्षा या व्यवहार का पाठ देने के लिये ही कल्पित किये जाते है। जम्बुक एवं वायस का प्रधान कार्य अपने कार्यो के द्वारा एक ऐसे नीतितत्व या सार को व्यक्त करना है जो पाठको के लिये उपादेय हो। रञ्जकता उनकी प्रमुख विशेषता नहीं।

(५) परीकथा मे नायक-नायिका शृंगार के आलम्बन भी होते है। किन्तु नीतिकथा के प्राणी रस के आलम्बन होने की दृष्टि से प्रयुक्त नहीं होते। यदि शृंगार की अभिव्यक्ति उनके चरित्र से होने लगती तो वह

---

१. सोमदेव द्वारा रचित, 'कथा-सरित्सागर' एवं 'वैताल-पचविंशतिका, नि० सा० प्रेस बम्बई, १८८६, पृ० ४६५–५३५.

२. क्षमेन्द्र रचित 'बृहत्कथा-मञ्जरी' मे वैताल-पञ्चविंशतिका के अन्तर्गत् वैताल ३ पृ० ३०२, (संस्करण १९०१) नि० सा० प्रे० बम्बई

३. लब्धप्रणाशम्, पं. तं., तं.४

'शृंगाराभास' ही निरूपित किया जाता[१]। हर्ष, विषाद, द्वेष, औत्सुक्य को तो ये क्षुद्र प्राणी भी प्रकट कर देते है, किन्तु उनके वे भाव 'ब्रह्मानन्द-सहोदर' रस की पदवी को प्राप्त नहीं होने पाते। उनका तो लक्ष्य ही मानव-जीवन के किसी छोटे से अंग को व्यक्त कर विरत हो जाना है।

इस प्रकार परीकथा से नीतिकथा की पात्रयोजना नितान्त भिन्न है, यद्यपि दोनो को व्यापक रूप से कल्पितकथा (fiction) भले ही कहा जा सकता हो।

बालकों के लिए भी नीतिकथाओ के पशु-पक्षी रूप पात्र प्रिय बन गये। सिंह, हाथी, भेड़िये, सियार आदि प्राणियों के मानव जैसे व्यवहार दिखानेवाली कहानियों मे स्वाभाविक रूप से बच्चो की रुचि अत्यधिक रहा करती है। इसी लिए उसमें रोचकता भी आ गई एवं शिक्षादायित्व भी।

इसीलिए डॉ० जॉन्सन ने अपनी परिभाषा मे पात्रो के विषय मे सर्व प्रथम संकेत किया है और वही हम अन्य कहानियो से उसकी विभिन्नता देख सकते है। उन्होने पात्रो के लिए being irrational कह कर ऐसे प्राणियो की ओर संकेत किया है जो बुद्धि का दम्भ नहीं रख सकते। इन प्राणियों का जीवन मनुष्यों का-सा उच्चतर नही है। प्रत्युत वे अपना बुद्धिहीनता के कारण क्षुद्र है, उनको नीतिकथा मे उपस्थित करने की बात कही गई है, और वह भी किसी नीतितत्व का प्रतिपादन करने के लिए। चतुरता, छल, कपट, दम्भ, दया, शूरता आदि गुण-दोष मानव मे हमेशा दिखाई देते है। उनके शुभाशुभ परिणाम भी समाज और व्यक्ति को उठाने पड़े है। मनुष्य के ये गुणदोष प्राणियों के द्वारा प्रकट किये जाने की बात कही गई है। यह कल्पना का कौशल है कि पशुपक्षियो से मानव के गुणदोष प्रकट हो। डॉ० जॉन्सन् ने अपनी परिभाषा मे जो सजीव प्राणियों की ओर संकेत किया वह समीचीन है। ये सजीव प्राणी है : (१) पशु (२) पक्षी और (३) कीटक।

(ब) अचेतन पदार्थ

अब हमे यह देखना होगा कि, क्या वास्तव मे अचेतन पदार्थ भी नीतिकथा के पात्र माने जा सकते है? अर्थात् इन पदार्थो मे (१) प्राकृतिक पदार्थ

---

१. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, श्री हरिदास सिद्धान्त वागीशद्वारा सम्पादित, कलकत्ता परिच्छेद ३, पृ० २१७: "तद्वदधमपात्रतिर्यगादिगते", "अनौचित्य प्रवृत्तत्वे आभासो रसभावयोः।" पृ० २१६; "तिर्यगादौ मनुष्येतर-प्राणिषु शृंगारे ह्यनौचित्यम्' इति टीकाकारः, पृ० २१७.

या वस्तुएँ—नदी, सागर, वृक्ष, पर्वत आदि प्रकृति से उत्पन्न तथा कृत्रिम पदार्थ—घर, बिजली का खम्बा, रेल का लौहपथ आदि आते हैं।

हमें यहाँ यह स्पष्ट कर लेना होगा कि, क्या संस्कृत-साहित्य के आदर्श नीतिकथा-संग्रह 'पञ्चतन्त्र' मे नदी, सागर जैसे पदार्थों को भी सक्रिय पात्रों के रूप में स्थान दिया गया है? वे पात्र 'सक्रिय' इसलिए होने चाहिये कि यद्यपि वर्णन के लिए 'उद्दीपन विभाव' के रूप में काव्य में प्रयुक्त स्रक्, चन्दन, उद्यान, ज्योत्स्नादि यत्र तत्र सर्वत्र आते हैं, वस्तुस्थिति-निर्देश के रूप मे तथा यथार्थ-वर्णन के समय में उनका चित्र प्रस्तुत किया जाता है; तथापि वे उन कहानियों में सक्रिय 'पात्र' के रूप में नहीं आते। प्राकृतिक वस्तुओं का उद्दीपन विभाव होना अलग बात है और आलम्बन विभाव होना अलग। यह स्पष्ट देखा गया है कि मानव पात्रोंवाली कहानी मे, जिसका कथानक (Plot) स्वाभाविक रूप से प्रवहमान है, एकाएक बीच में कोई वृक्ष, नदी या सागर सक्रिय, सचेतन होकर भाषण, श्रवण आदि चेष्टाएँ करने लग जायें तो अस्वाभाविक-सा लगता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि पञ्चतन्त्र की कहानियों मे मानवेतर क्षुद्र-प्राणियों की लीलाएँ अवश्य दिखाई देती है, किन्तु उच्च कोटि के प्राकृतिक पदार्थों को सक्रिय पात्रो के रूप में विष्णुशर्मा ने कोई स्थान नहीं दिया। पञ्चतन्त्र में 'धर्मबुद्धि-पापबुद्धि-कथा'[1] है, उसमे पाप बुद्धि एवं धर्मबुद्धि देशान्तर करते है एव धर्मबुद्धि के प्रभाव से प्रचुर धन कमाते है। किन्तु धर्मबुद्धि के साथ कपट कर उस धन को हड़पने की बुद्धि पापबुद्धि मे होती है। उसने एक प्रस्ताव रखा कि सारा धन घर ले जाने की अपेक्षा इसे वन मे ही गाड़ देंगे और थोड़ा-सा घर ले जावेंगे। धर्मबुद्धि ने मान्य कर लिया, तब उस प्रकार की व्यवस्था कर दोनों घर आये। दूसरे दिन पापबुद्धि ने अरण्य मे जाकर, भूमि खोदकर वह धन निकाल लिया एव पुनः भूमि पूर्ववत् कर दी। तीसरे दिन वह धन की आवश्यकता बताकर अरण्य में धन के लिए धर्मबुद्धि को ले गया और खोदने पर धन न मिलते ही धर्मबुद्धि को कोसने लगा, 'तू ही चोर है।' तब दोनो विवाद लेकर धर्माधिकारी के पास गये। तब पापबुद्धि ने वृक्ष देवता को साक्षी ठहराया। राजपुरुषों ने दूसरे दिन वहाँ जाने का निश्चय किया। पापबुद्धि ने घर आकर पिता को शमी के कोटर में पहले ही छुपकर बैठने को कहा, ताकि वह वृक्ष से पूछने पर पापबुद्धि के अनुकूल वृक्ष देवता के रूप में बोले। उसने वैसा ही किया। वृक्ष की आवाज

---

१. पञ्चतन्त्र, १ मित्र-भेद, कथा १९.

सुनते ही राजपुरुष आश्चर्य ही कर रहे थे कि धर्मबुद्धि ने उस शमी के वृक्ष में आग लगा दी, फलस्वरूप उस वंचक पिता की मृत्यु हुई एवं भेद खुल गया।

इस कथा से दो तथ्य स्पष्ट हो जाते हैं: एक तो यह कि, इसमें मानवेतर प्राणी पात्र नहीं हैं, अपितु वे मानव ही हैं। पंचतन्त्र में इस कथा को स्थान दिया गया है और फिर भी हमें इसमें मानवेतर पात्र नहीं दिखाई देते। दूसरी बात यह है कि 'शमी वृक्ष' का उपयोग इस कथा में किया गया है, किन्तु वह सक्रिय नहीं है। हमें यह भी नहीं भूलना है कि, डॉ० जॉन्सन् के मत से कभी कभी पात्र के रूप में प्राकृतिक या कृत्रिम अचेतन वस्तुएँ भी आ सकती हैं।

एक तो हम इस कहानी को Fable या नीतिकथा कैसे कह सकते हैं यदि इसके पात्र ही मानवेतर नहीं हैं? तो क्या, पात्रों के विषय में कोई खास नियम न दिखाकर केवल नीति की सूचना का प्रकाशन करने पर ही किसी कहानी को नीतिकथा मानना होगा? यदि हाँ, तो ऐसी अनेक कहानियाँ हो सकती हैं और उनमें यह अविशेष लक्षण अतिव्याप्त हो जावेगा। वास्तव में ऐसी कहानी को Fable तो कतई नहीं कहा जा सकता। पुराण की कई कथाओं से नीति का उपदेश दिया गया है, किन्तु उन्हें Legends (पुरातन कथाएँ) या Myths (दैवतकथाएँ) कहा जा सकता है, Fable (नीतिकथा) नहीं। मुख्य रूप से उसमे पात्र मानवेतर ही होते हैं।

पंचतन्त्र में जो मानवपात्राधारित कहानियाँ हैं, उनकी संख्या बहुत कम है। और जो आई है वे भी शृंखलात्मक प्रणाली से किसी पशु द्वारा कही हुई हैं[1]। विशुद्ध नीतिकथाओं के साथ इन कथाओं का भी जो ग्रन्थ हुआ है उसका एकमात्र कारण लेखक के समय की लोकप्रिय लोककथाओं (Fo'k tales) का प्रभाव है। यही कारण था कि लोककथाओं से प्रभावित लेखक-विष्णुशर्मा ने जब प्राणिकथाओं (Animal tales) को अपनाया तब उनके साथ लोकसमाज में प्रचलित मानवीय पात्राधारित लोककथाओं का भी संग्रह हो गया है। इसीलिए हम पापबुद्धि और धर्मबुद्धि की कथा को नीतिकता की अपेक्षा लोककथा का साहित्यिक रूप कहेंगे तो अधिक अच्छा होगा। लोककथा की विशेषताएँ अब स्पष्ट हो चुकी हैं और नीतिकथा में पात्र मानवेतर प्राणी होते हैं यह संकेत भी अब रूढ़ हो चुका है।

रही बात उपरोक्त कथा मे शमी वृक्ष की। यदि विष्णुशर्मा चाहते तो शमी वृक्ष के द्वारा भी साक्षी होने की बात विश्वास के साथ कही गई होती।

---

१. पंचतन्त्र में १, वृषभ सञ्जीवक द्वारा कथित 'दन्तिल-गोरम्भ-कथा' (३) तथा अन्य कथाएँ।

किन्तु वृक्ष का साक्षी होना यह राजपुरुषों के लिए आश्चर्य की बात कही गई है[१]।

जो कहानीकार क्षुद्र प्राणियों को अपनी नीतिकथाओं में स्थान दे सके उन्होंने इन प्राकृतिक पदार्थों का सक्रिय पात्रों के रूप मे उपयोग क्यों नहीं किया? वानर एवं मगर की कथा में नदी के मझधार मे वानर को मगर संकट की ओर ले जाता है। तब वानर को आगाह करने के लिए उस नदी मे चेतना अर्पित नहीं की गई;[२] कौआ और उल्लू की वैरकथा मे काकराज अपने सचिवों से उल्लू के प्रतिशोध के लिए सलाह पूछता है। तब उसके सचिव अपना अपना मत देते है किन्तु जिस पर वे रहते थे उस 'न्यग्रोध' वृक्ष ने उनकी चर्चा में हिस्सा नहीं लिया[3]।

संस्कृत नीतिकथा के लेखक प्रमुख रूप से सजीव पात्रों को ही लेना स्वीकार करते थे, अचेतन पदार्थों को नहीं। यद्यपि ऋग्वेद में उषा पर कविता मिलती है,[४] उसमें प्राकृतिक दृश्य की सुन्दरता अभिव्यक्त हो उठी है: वहाँ प्रकृति जीवित रूप मे उपस्थित हुई है। किन्तु प्रकृति का मानवीकरण (Personification) एक भिन्न वस्तु है और उसका पात्र बनकर किसी कहानी मे कार्य या व्यवहार करना भिन्न। सरिता एवं सागर का संवाद 'ध्वनिकथा' (Allegory) हो सकती है, किन्तु क्षुद्र प्राणियों की कहानी का स्वरूप लिए हुए नीतिकथा (fable) की कल्पना वहाँ न की जाय तो अच्छा।

इसीलिए डॉ० जॉन्सन् की परिभाषा मे 'कभी कभी अचेतन पदार्थ' भी पात्र हो सकने का जो उल्लेख है, वह चिन्त्य है। फिर भी यह बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि, डॉ० जॉन्सन् ने sometimes inanimates का जो उल्लेख किया है वह यूरोप मे fable के विषय में जो १९ वीं शताब्दी मे धारणा रही है उसी का अनुकरण मात्र दिखाई देता है। १८४२ में fables नामक कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ था[५]। उसमें उसके सम्पादक द्वारा भिन्न-भिन्न लेखकों की कहानियाँ संग्रहीत की गई है और उन सभी 'लघु' कथाओं को fable के अन्तर्गत् ही रखा गया है। इस संग्रह मे विख्यात ग्रीक नीतिकथाकार

१. पंचतन्त्र में मित्रभेद १, कथा १६ तस्मादस्माकमप्यत्र विषये महत्कौतूहलं वर्तते' आदि वाक्य।

२. वही, ४ लब्धप्रणाश के प्रारंभ में।

३. वही ३ काकोलूकीय के प्रारंभ में।

४. ऋ.सं. १.४८.१–१६.

५. Editor, G. Moir Bussey: Fables. London. 1842.

ईसप (Aesop) से लगाकर डोड्स्ले (Dodslay) तक की नीतिकथाएँ ले ली गई हैं। किसी कहानी के पात्र 'ईसप एवं गर्दभ' है तो किसी के 'दो बर्तन'। कहीं शृगाल, सिंह, हाथी आदि ठीक पंचतन्त्र को कहानी में परिचित पात्रों से भेंट हो जाती है। इन सब कहानियों को fables कहा गया है और उस समय वह ठीक भी था। जब कि यह संग्रह प्रकाशित हुआ था तब fable की कोई इतर भेद-दर्शिका व्याख्या या लक्षण लक्षित नहीं हो पाया था। इसी कारण संभवतः सम्पादक महोदय ने परिश्रम कर के fables की चर्चा करते समय उसकी तर्कपूर्ण व्याख्या करने का साहस न किया हो। उस समय की यह धारणा रही है कि जितनी जनप्रिय लघु-कथाएँ (popular tales) होंगी वे सब fables कही जा सकती हैं। किन्तु आज fables का स्पष्ट रूप सामने आ चुका है। उसके अनुसार कहा जा सकता है कि fable यद्यपि जन-कथा नहीं है, और वह जनप्रिय भी; फिर भी fable के अर्थ में ऐसी ही जन-प्रिय जनकथा ली जा सकेगी, जिसमें अधिकतर पात्र मानवेतर क्षुद्र प्राणी हों और कहीं मानवीय पात्र भी आये हों तो प्रमुख रूप से नहीं, अपितु गौण रूप से[१]।

जहाँ तक fable की व्याख्या से पात्रों का सम्बन्ध है, डा० जॉन्सन् की यह व्याख्या नीतिकथा के स्वरूप के निकट पहुँची है। फिर भी वह अपने आपमें पूर्ण नहीं है। प्राकृतिक या कृत्रिम वस्तुओं को पात्र बनाकर यदि कहानी लिखी गई हो तो क्या वह fable होगी? डा० जॉन्सन् के मत से तो वह भी fable ही होगी। यद्यपि ऐसी कहानियाँ पञ्चतन्त्र जैसे आदर्श नीतिकथा-ग्रन्थ में नहीं दिखाई देतीं। यदि प्राकृतिक या कृत्रिम पात्रोंवाली कहानी आज का लेखक किसी नीति का प्रतिपादन करने के लिये लिखता है तो आज का आलोचक उसे नीतिकथा ही मान लेगा। ऐसी स्थिति में उस पर ध्वनि-कथा (Allegory) एवं नीतिकथा (fable) के विभेद को स्पष्ट करने का उत्तरदायित्व रहेगा। इस उत्तरदायित्व का निर्वाह करना उसके लिए एक कठिन कार्य हो बैठेगा।

---

१. देखिये, "Fablea. These are stories in which an animal, tree or some other object speaks and acts like a human being." (Oxford Junior Encyclopaedia, Vol. I. "Mankind", Oxford, 1955 p. 167 किन्तु आगे चल कर वहीं पर चर्चा करते समय Animal की ही पुष्टि की गई है। यह द्रष्टव्य है कि मुख्य रूप से मानवेतर प्राणी ही पात्र के रूप में देखे गये हैं।

नीतिकथा, ध्वनिकथा एवं दृष्टान्तकथा

अलेगरी (Allegory) क्या है ? वास्तव में अंग्रेजी में यह एक व्यापक संज्ञा है । आश्चर्य की बात है कि कोशों में Allegory को जहाँ एक parable कहा है[१] वहाँ का अर्थ comparison, fable एवं allegory भी दिया गया है[२] । वास्तव में fable, parable, और allegory ये तीनों गद्य के भिन्न भिन्न अग है, भले ही आपाततः इनमें काफी साम्य दिखाई देता हो। संज्ञा कोश में एक को दूसरे का पर्याय देते समय parable एवं allegory के मूल भेद को भी ध्यान में नहीं रखा गया । व्यापक अर्थ में allegory के अन्तर्गत ऐसा साहित्य आ सकता है कि जिसमें व्यंग्यार्थ की सत्ता हो । Fable का स्वतंत्र रूप हमारे सामने स्पष्ट हो चुका है, भले ही कभी वह parable या allegory भी समझी गई हो । वास्तव में बाइबल् की कहानियाँ parable के अन्तर्गत आती हैं । ट्रेंच् ने यद्यपि parable एवं fable में कोई भेद परिलक्षित नहीं किया है, फिर भी नींदर (Neander) ने इन दोनों में जो सूक्ष्म विभेद दिखाया है वह द्रष्टव्य है । Fable या नीतिकथा में मानवीय मनोवेग तथा कृतियाँ पशुपक्षियों के द्वारा व्यक्त होती हैं, जब कि parable में उच्च जीवन को अभिव्यक्ति करने के लिए साधनरूप निम्न श्रेणी की सृष्टि काम आती है और उसमें उसके नियमों का उल्लंघन नहीं होता[3] । श्री सी० एच्० डाड् का कथन है कि, parable में संसार के साकार चित्र में सत्य को देखा जाता है, जबकि नीतिकथा (fable) में कल्पना के क्षेत्र में उसे परिकल्पित किया जाता है[४] । parable को हम 'दृष्टान्त-कथा' कह सकते हैं । दृष्टान्त-कथा (parable) वह कहानी है, जिसमें अपने धर्म के सिद्धान्त की परिपुष्टि के हेतु धर्मोपदेशक द्वारा किसी दृष्टान्त के रूप में कहानी कही गई हो और बाद में फिर से अपनी 'गाथा' या सिद्धान्त-वाक्य कह कर उपदेश दिया गया

---

१. Walter W. Skeat, Etymological Dictionary of the English Language; p. 16 "a kind of parable."

२. Ibid, p. 419.

३. Encyclopaedia Britannica, Vol. 9, 1954., p. 21. "In the fable human passions and actions are attributed to beasts; in the parable the lower creation is employed only to illustrate the higher life and never transgresses the laws of its kind...."

४. C. H. Dodd: Parable of the Kingdom.

हो। भगवान् बुद्ध की कुछ प्राणि-कथाओं को छोड़कर अन्य कहानियों को दृष्टान्त-कथाएँ समझना चाहिये। महात्मा ईसा की धर्मोपदेश देनेवाली बाइबल की कहानियाँ दृष्टान्त-कथाएँ हैं। क्योंकि इनका उद्देश्य धार्मिक प्रचार है।

नीतिकथा (fable) के अन्तर्गत् यूरोप के विख्यात मर्मज्ञ कहानीकार ईसप (Aesop) तथा पंचतन्त्र के रचयिता विष्णुशर्मा की कहानियाँ ली जा सकती हैं।

Allegory का कोशगत अर्थ है 'जिससे एक या अनेक अर्थ एक साथ निकलते हों तथा वे भी किसी प्रतीक (image) या कहानी के पर्दे में छिपे हों[1]। या अलेगरी में किसी प्रतिमा की आड़ में अन्य वस्तु का वर्णन होता है[2]। अर्थात् किसी आलंकारिक आविष्कार से दूसरे ही अर्थ की उपलब्धि होती है[3]।

इसी स्वरूप को भारतीय साहित्यशास्त्र की परिभाषा के अनुसार यों कहा जा सकता है कि आलम्बन रूप प्रतीक की आड़ में गर्भित अर्थ को व्यञ्जित करना ही allegory का कार्य है। इसे ही वाच्यार्थ के द्वारा व्यंग्यार्थ की अभिव्यक्ति कहा जाएगा। यही व्यंग्यार्थ स्पष्ट रूप से प्रस्तुत 'प्रतीक' की अपेक्षा अधिक सुन्दर एवं सहृदयानन्ददायी सिद्ध हुआ तो उसे 'ध्वनि' ही माना जायगा[4]।

Allegory में पात्र मानवेतर प्राकृतिक या कृत्रिम पदार्थ ही होंगे, किन्तु पशु-पक्षी जैसे प्राणी नहीं। 'अलेगरी' अचेतन पदार्थों की एक कहानी है। इसमें एक कथानक ऐसा होता है जो स्पष्ट रूप से ही कहा गया है। अर्थात् किसी पुष्प की कली का कथानक allegory में आ सकता है। इस स्पष्ट कथानक को हम 'वाच्य-कथानक' की संज्ञा संस्कृत के साहित्य-शास्त्र के अनुसार दे सकेंगे। क्योंकि, इसी 'वाच्य-कथानक' से एक और 'व्यंग्य कथानक' भी अवश्य निकलता है जो स्पष्ट रूप से कहा या लिखा नहीं होता। जैसे जैसे उस कलिका

---

१. S. H. Steanburg: Cassell's Encylopaedia of Literature, Vol. 1 Part I, London, 1953; p. 9.

२. "Allegory is a description of one thing under the image of another"

३. "A figurative representative of conveying a meaning other than and in addition to the literal"

४. मम्मट-रचित काव्यप्रकाश, टीका वामनाचार्य झलकीकर १९५०, उल्लास १, पृ० १९: 'इदमुत्तममतिशयिनि व्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः।'

की कहानी बढ़ती जाती है, हमारे हृदय में किसी कोमल किशोरी की कहानी ठीक उस कलिका की कहानी के साथ साथ प्रवेश कर देती है। वह स्वसंवेद्य भी रहती है। भारतीय साहित्य-शास्त्र के अनुसार इसे 'व्यंग्य-कथानक' ही कहना चाहिये। यदि लेखक सफलतापूर्वक लिख सके, तो 'वाच्य-कथानक' की अपेक्षा 'व्यंग्य-कथानक' में ही पाठक अधिक रुचि लेगा। वह लिखित कथा से निकली हुई किसी अलिखित, 'स्वसंवेद्य' तथा 'ह्लादैकमयी' कहानी का आस्वादन करेगा। इसीलिए allegory को 'ध्वनिकथा' कहा जा सकता है। क्योंकि, इसकी आत्मभूत वस्तु है 'ध्वनित कथानक'।[1]

अप्रस्तुतप्रशंसा, समासोक्ति, पर्याय या अतिशयोक्ति जैसे अलंकार को अंग्रेजी साहित्य के आलोचक allegory मान लेंगे तो कोई आश्चर्य नहीं। केवल व्यंग्यार्थ की सत्ता ही allegory शब्द के लिए पर्याप्त है। वाच्य एवं व्यंग्य के तर-तम-भाव की कोई शास्त्रीय व्यवस्था पश्चिम के आलोचना-शास्त्र में नहीं की गई। इसीलिये, यद्यपि 'समासोक्ति' जैसे अलंकार में विद्यमान व्यंग्य को हम 'गुणीभूत व्यंग्य' ही मानेंगे, 'ध्वनि' नहीं, फिर भी व्यंग्यार्थ होने के कारण ही उसे allegory मान लेना पश्चिम के आलोचकों के लिए एक सरल कार्य है। ऐसी स्थिति मे किसी नीतिकथा (fable) मे भी व्यंग्यार्थ की सत्ता दिखाई दे तो उसे भी allegory मान लेना उनके लिए असंगत नहीं है। हमारे यहाँ नीतिकथा को 'ध्वनि-काव्य' की उत्तमता प्रदान नहीं की जावेगी। नीति-वाक्य को खुले शब्दों में कह देने को जो प्रणाली विष्णुशर्मा आदि कहानीकारों की रही है, उससे तो 'ध्वनि' का सौन्दर्य वहाँ टिक नहीं पाता, और पश्चिम के आलोचक उसे एक allegory भले ही मान लें, फिर भी संस्कृत साहित्य-शास्त्र के अनुसार fable को 'ध्वनि-कथा' कभी नहीं माना जा सकता।

ध्वनिकथा (Allegory) से नीतिकथा (fable) की भिन्नता को स्पष्ट करने का प्रयास कोशकारों ने भी किया है।[2] व्यंजना-प्रणाली द्वारा मनुष्येतर प्राणियों के व्यवहार से 'नीति' का प्रतिपादन करने के लिए कहानी कही या

---

१. देखिए, ध्वनिकथा के अधिक विवरण के लिए मेरा प्रबंध 'ध्वनिकथा', सुलभा प्रकाशन, इन्दौर; १९५४.

२. S. H. Steanburg : Cassell's Encyclopaedia of Literature, Vol. 1, pt. I, p. 9 on 'Allegory' : "Some short allegorical tales teaching a moral, especially through the conduct of animals, are called fables."

लिखी गई हो तो उसे फेबल कहा जा सकता है। Fable में भी कथानक का द्वन्द्व होता है। विष्णुशर्मा की 'काकोलूकीयम्' कथा १ को ही लीजिए। काकराज और उलूकराज की यह कथा आरम्भ, मध्य एवं अन्त की अवस्थाओं को प्राप्त कर समाप्त हो जाती है। इधर पाठक के मन में कौआ और उल्लू जिस समाज या व्यक्तियों के प्रतीक (Symbols) हैं, उनका चित्र अंकित हो जाता है। इन पक्षियों की कहानी से भी मानवीय अर्थ की कहानी ली गई है। किन्तु यह मानवीय कहानी स्पष्ट शब्दों में प्रस्तुत नहीं की गई। पाठक प्राणि-कथा से अपनी कहानी ले लेता है। इसीलिए तो प्राणिकथा कही गई है। वास्तव में, विष्णुशर्मा को पशु-पक्षियों की लीलाओं का वर्णन मात्र अभीष्ट नहीं है। उन्हें तो उन लीलाओं से मानवीय व्यवहार को व्यञ्जित करना होता है। किन्तु नीतिकथालेखक यहीं तक नहीं रुकते। वे अपने नीति-तत्त्व को व्यञ्जित अवस्था में छोड़ना नहीं पसंद करते। वे अपनी व्यञ्जना को स्पष्ट करते हुए कहते हैं:—

'अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित्'

क्योंकि,

'मार्जारस्य हि दोषेण हतो गृध्रो जरद्गवः'

इस प्रणाली से कही हुई कथा में व्यंग्य-कथानक का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। नीति-वाक्य की व्यञ्जना भी नहीं रहने पाती। उसमें भी स्पष्टता आ जाती है। अतएव उसे 'ध्वनि' नहीं कहा जा सकता। कहानी के पहले और बाद में जहां कहानी के सार को स्पष्ट कर दिया जाता हो वहां वह नीतिकथा मात्र रह जाती है। पश्चिम के आलोचक भले ही उसे व्यापक अर्थ में allegoric tale कहें। किन्तु उसका प्रतिवाचक शब्द 'ध्वनिकथा' नहीं हो सकता। यदि प्राकृतिक या कृत्रिम जड़ पदार्थों की कहानी कही गई हो तो उसे ध्वनिकथा (allegory) ही कहा जावेगा। ऐसी कहानी में ध्वनि का हनन न होगा तभी उसे ध्वनि कथा कहा जा सकता है। इसी में रस-ध्वनि की चरम कोटि की अभिव्यक्ति हो सकती है। नीतिकथा में ध्वनि की उपेक्षा की गई होती है। वाच्य एवं व्यंग्य रूप दो कथानक होने पर भी वह नीतिकथा ही रह जाती है, ध्वनिकथा नहीं। यह ठीक है कि, नीतिकथा (fable) की अपेक्षा ध्वनिकथा (allegory) का साहित्यिक मूल्य अधिक है। क्योंकि, ध्वनिकथा में ध्वनिसौन्दर्य निहित है। प्राकृतिक वस्तुओं की कहानी के साथ-साथ पाठक के मन में मानवीय अर्थ की कहानी आपसे ही प्रवेश करती है। वहां स्पष्टीकरण की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। वह तो एक आस्वाद्य साहित्य है। सहृदय

अचेतन पदार्थों की कहानी से चेतन मनुष्य की कहानी को ले लेता है। उसमें कहानीकार 'व्यंग्य-कथानक' स्पष्ट नहीं करता। इसीलिए वह 'ध्वनिकथा' है। बालकों के लिए हितोपदेश देनेवाली नीतिकथा बालसाहित्य के अन्तर्गत आती है, उसका उद्देश्य उद्बोधन है।

नीतिकथा (fable) में नीति का प्रतिपादन स्पष्ट शब्दों में किया जाता है। किसी सिद्धान्त या नीति-तत्त्व का प्रतिपादन नीतिकथा का प्रधान उद्देश्य रहा करता है। अतः ध्वनि की उत्तमता इसमे नहीं होती। नीतिकथा का कला-पक्ष अपेक्षाकृत दुर्बल अवश्य है। सम्भवतः यही कारण था कि, संस्कृत साहित्य-शास्त्र के आचार्यों ने 'कथा' 'आख्यायिका' आदि के साथ-साथ 'नीतिकथा' को भी गद्य-काव्य के अन्तर्गत नहीं रखा। एक तो नीतिकथा का मूल उद्देश्य 'सहृदय-रसास्वादन' नही है। दूसरी बात यह है कि, नीतिकथा के पात्र क्षुद्र प्राणी होते है। उनकी लीलाओं मे पाठक अपनी बुद्धि से भले ही रुचि ले सकता है, किन्तु हृदय से वह उन लीलाओं में 'समरस' नहीं हो सकता। यह स्वाभाविक ही है कि, पशु-पक्षियों की संयोग-शृङ्गार-चेष्टाओं से व्यक्त भाव को 'रस' न कहकर 'रसाभास' निरूपित करने वाले साहित्य-शास्त्र के आचार्यों ने नीतिकथा को उच्च कोटि का ललित साहित्य नहीं माना।

डॉ० जॉन्सन की परिभाषा मे कभी-कभी फेबल् में अचेतन पदार्थ भी पात्र रहा करते हैं इस विषय का जो प्रावधान है, उसका तात्पर्य हम यही लेंगे कि, ऐसे पात्र प्रमुख रूप से आते है तो उस कहानी को 'अलेगरी' कहा जाय और गौण रूप से आने पर वह नीतिकथा फेबल् ही होगी। प्राचीन साहित्य में इस प्रकार की अचेतन पदार्थों वाली कहानी भले ही नीतिकथा का कार्य करती रही होगी, किन्तु आज नीतिकथा में प्रमुख रूप से पशुपक्षी के पात्र ही अपेक्षित हैं। क्योंकि, आज प्राकृतिक अचेतन पदार्थों वाली प्राचीन कहानी ने अपना विकास अलेगरी के रूप मे कर लिया है।

जो बात प्राकृतिक वस्तुओं की वही बात कृत्रिम जड पदार्थों की। सम्भव है, आधुनिक नीतिकथा मे इन अचेतन पदार्थों को भी उपस्थित कर दिया जावे। कृत्रिम पदार्थों को इस नई नीतिकथा को भी उसी कसौटी से नापना-तौलना चाहिये, जिससे प्राकृतिक पदार्थों वाली कहानी को नापा-तौला था। यहाँ भी ध्वनि-सत्ता हो तो उसे, चाहे नीति की व्यंजना हो या न हो, ध्वनिकथा (allegory) ही कहनी चाहिये; तथा यदि ध्वनि-सौन्दर्य की अपेक्षा नीति-प्रतिपादन ही उसका प्रमुख लक्ष्य होगा और आधुनिक विज्ञान-युग से प्रभावित लेखक ने मानव-निर्मित बिजली के खंभे या रेल के लोह पथ की 'नीति'

प्रतिपादन के लिए कहानी सुना दी तो वह नीति-कथा कही जा सकेगी, चाहे ऐसी कहानियां 'पंचतन्त्र' मे भले ही न मिलें। सत्य-व्यञ्जक, वस्तु-प्रधान, नीति-प्रतिपादक तथा 'गद्यकाव्य' की शैली से विहीन ऐसी कहानी 'नीतिकथा' ही होगी।

हम देख चुके हैं कि, पंचतंत्र में कहीं-कहीं पर मानव पात्राधारित कहानियाँ आ गई है।[1] वास्तव में उन दिनों की वे लोककथाएं (folk-tales) हैं। इनका पंचतन्त्र में उद्देश्य नीति-प्रतिपादन ही है। अतः उन्हें नैतिक कथाएं कहा जा सकता है। विशेष बात यह है कि ऐसी मनुष्य-कथाएं भी पंचतंत्र में प्राणियों के मुख से कहलवायी है। तब तो उनका स्वरूप विशुद्ध मनुष्य-कथा का नहीं रहने पाता। पंचतन्त्र में मानवीय पात्रोंवाली ये कहानियां अपने आप में स्वतन्त्र नहीं हैं, वे शृंखलामय अन्य नीतिकथाओं—प्राणि-कथाओं—की बीच की कड़ियों के रूप में विरल मात्रा मे ही मिलती हैं। उनका स्थान नीतिकथा की दृष्टि से अन्य कहानियों की अपेक्षा नगण्य-सा है। वह लोक-कथाओं (folk-tales) का प्रभाव है. जिससे पञ्चतन्त्र भी मुक्त नहीं है। इसीलिए उसमें प्राणि-कथाओं के साथ-साथ अन्य लोककथाओं का भी प्रवेश हो गया है।

अतएव, नीतिकथा या fable में मानवेतर पात्रों का होना एक आवश्यक नियम है। डॉ० जॉन्सन् की परिभाषा में केवल 'प्रामुख्य से' यह अंश जोड़ देना आवश्यक है। 'प्रामुख्य से पात्र मानवेतर हो' ऐसा कह देने पर, कुछ नीति-कथाओं में जो बहेलिये, किसान आदि मनुष्य भी प्राणियों के साथ पात्र बने हुए हैं, उनके रहते हुए भी कोई विपत्ति नहीं रह जावेगी।

इससे यही निष्कर्ष निकला कि, नीतिकथा में पात्र—

(१) अधिकांश में मानवेतर प्राणी होते हैं;

(२) अचेतन वस्तुएँ एवं मानवीय व्यक्ति भी रखे गये हों, तो भी उनका अस्तित्व नीति-प्रतिपादन के लिए ही होता है; तथा उनसे कोई भावाभि-व्यञ्जना की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

(३) पात्र भी इने-गिने ही हों। डॉ० जॉन्सन् ने इस तथ्य की ओर संकेत नहीं किया है। किन्तु यह आवश्यक है कि, किसी भी नीतिकथा के लिए पात्र-संख्या सीमित ही हो। इससे नीतिकथा को कृत्रिमता, बोझी-लापन एवं चमत्कृतिहीनता से बचाया जा सकता है, अन्यथा असंख्य

---

१. प० त०, २ हिरण्यक द्वारा कथित सोमिलवगुप्त धनोपभुक्त कथा एवं अन्य।

पशु-पक्षियों की कहानी से मानव-कथा की व्यञ्जना पाठक के मन में व्यक्त न हो पाएगी; दूसरा कारण यह है कि, ये पात्र भी प्रतिनिधि के रूप में ही तो आते हैं, उनकी संख्या भी सीमित हो तो उनके प्रतीकार्थ को समझने में विलम्ब नहीं होगा। बहुत से प्रतिनिधि एक ही कथा में आने लगेंगे तो जिस मानवीय जीवन-तथ्य की ओर उनका संकेत है, उसे समझने में पाठक को अड़चन ही होगी। इसीलिए नीतिकथा की विशुद्ध व्याख्या मे इसके पात्र इने-गिने हों इसका उल्लेख होना आवश्यक है।

८. हेतु या उद्देश्य का विचार

नीतिकथा एक सोद्देश्य कहानी है। उधर पश्चिम में इसमें उद्देश्य-तत्त्व की आवश्यकता का प्रतिपादन स्पष्टतया किया गया है। डॉ० जॉन्सन् ने भी अपनी परिभाषा में for the purpose of moral instruction कह कर नीतिकथा के नैतिक शिक्षा के उद्देश्य को स्पष्ट किया हैं। संस्कृत साहित्य का इतिहास प्रस्तुत करते समय fable के साथ Didactic यह विशेषण भी ए०बी०कीथ महाशय ने रख दिया है।[1] इस कहानी के इसी उद्देश्य की ओर ध्यान देकर इसे 'नीतिकथा' कहा गया है, उद्देश्य के अभाव में तो वह एक लोक-साहित्य की प्राणि-कथा (Animal tale) मात्र रह जाएगी। नीतिकथा का उत्थान यद्यपि लोक-साहित्य से हुआ है, तथापि एक नीति-तत्त्व या सुविचार का पाठ देने की विशेषता उसमें आ गई है। तबसे वह केवल प्राणिकथा (Animal tale) नहीं रही। वह अब नीतिकथा बन चुकी है। क्योंकि, उसे किसी नीति-तत्त्व का प्रतिपादन करना है। डॉ० एच्. आर. कर्णिक ने अपने निबंध में लोककथा में भी नीतितत्व पाये जाने की बात कही है।[2] इस विषय में यही कहा जा सकता है कि, प्राचीन से प्राचीन काल में आदि मानव की कहानियों में भले ही कुछ अच्छे विचार या सही रास्ता अपनाने की बात का संकेत मिलता हो, फिर भी नीतितत्व की शिक्षा देना यह लोक-कथा का कोई मूल उद्देश्य कभी नहीं था। उनका तो सर्वोपरि लक्ष्य मनोरंजन एवं समययापन ही था। मानव के मन की विकास-परम्परा में अच्छे विचार एवं भली बात कहने का ढंग अनायासेन एवं स्वाभाविक रूप से आ भी गया होगा, तथापि

---

१. A. B. Kieth, Classical Sanskrit Literature, 1923, chapter 8, P. 102.

२. Journal of the University of Bombay, Vol. 8. pt. 2, Sept. 1939, "Some Moral Tales in the Satapatha Brahmana," by H. R. Karnik; p. 71.

'लोककथा' सुनाने वालों पर किसी नीतितत्त्व की शिक्षा देने का दायित्व नहीं था। 'स्वान्तःसुखाय' ही उनका आविष्कार प्रमुख रूप से रहा है। कुतूहल ने लोककथा को जन्म दिया है। उसी की पूर्ति करना उनका प्रथम उद्देश्य रहा है। डॉ० कणिक का कथन है कि, कहानी के द्वारा नीतितत्त्व का प्रतिपादन करना यह कोई सभ्य राष्ट्र का ही आविष्कार या विरासत नहीं है; क्योंकि वन्य जातियों से लेकर एकत्रित की गई कहानियों मे भो विकसित नीतितत्त्व पाया जाता है।[१]

इस कथन में केवल यही तथ्य है कि, समाज उन्नत एवं सम्पन्न हो जाने पर ही नीति-तत्त्व का आविष्कार सभ्यो द्वारा होता है ऐसी बात नहीं। अति प्राचीन वन्य समाज में भी जीवन सदाचार से सम्पन्न करने की कामना स्वाभाविक रूप से रही है और इसी कामना का अंकन उस समाज की लोक-कथाओं (folk-tales) में हुआ है। लोक-कथा मे भले ही नीति तत्त्व (Moral) का दर्शन अनजाने ही प्रवेश कर गया हो, किन्तु नीति-कथा का-सा जान-बूझकर नीति-तत्त्व का प्रतिपादन उसमें नहीं हुआ। नीतिकथा अपने उद्देश्य के क्षेत्र में लोक-कथा से काफी आगे बढ़ चुकी थी। इसी तथ्य को देखकर ही संभवतः ए. बी. कीथ ने नीतिकथा पर विचार व्यक्त करते समय कहा है कि, 'कला-हीन कहानी में नीति तत्त्व या कोई उद्देश्य नहीं रहा, केवल वह सुख देने तथा समय-यापन के लिए प्रचलित रही थी। किन्तु उन दिनों में ही, नई धारा इस प्रकार चल पड़ी कि, उसने भारतीय तथा विदेश के साहित्य पर भी प्रभाव डाला, और वह भी गर्भित नीतितत्त्व का प्रतिपादन करने के उद्देश्य से। इस प्रणाली को 'जान बूझकर तथा स्पष्ट रूप से विकसित किया गया'। ये कथाएं 'निश्चित रूप से उपदेश देने के लिए' रची हुई होने से 'जन साहित्य' से हमें दूर ले जाती है तथा ब्राह्मण जाति का परिष्कृत बुद्धि-वैभव तथा कौशल प्रकट करती है।[२] इससे स्पष्ट है कि, नीतिकथा उसके

---

१. Ibid p. 83 "Further conveying a moral through tales, proverbs etc., is not the invention and the heritage of the civilized nation; for even tales collected among savages show this didactic element quite strongly developed."

२. A. B. Keith; Classical Sanskrit Literature, 1923, Chapter 8 p. 103 : "The artless tale must often in its conception have been devoid of moral or other purpose beyond the giving of pleasure and the passing of time. In the new

उद्देश्य-विचार की दृष्टि से प्राचीन लोक-साहित्य की प्राणि-कथाओं (Animal Tales) से भिन्न ही है। संसार में कहानियाँ कह कर अभीष्ट नीतितत्त्व का प्रतिपादन करने की प्रवृत्ति सर्वत्र दिखाई देती है। इसी उद्देश्य की पूर्ति मानवेतर पात्रों के व्यवहार-दर्शन से हो जाने पर वह 'नीतिकथा' के रूप में प्रचलित हो गई।

पात्रों की दृष्टि से 'परीकथा' और 'नीतिकथा' के अन्तर को स्पष्ट कर दिया गया है। यहां उद्देश्य की दृष्टि से भी उनका अन्तर स्पष्ट हो सकता है। उद्देश्य की दृष्टि से भी नीतिकथा परीकथा से भिन्न है। परीकथा में सर्वोपरि मनोरंजन की ही प्रमुखता रहती है। युरोपीय साहित्य में प्रसिद्ध परीकथा है (Cupid and Psyche) जिसका कल्पना-बन्ध (Motif) ठीक पुरूरवा-उर्वशी (ऋ० १०. ९५.१–१८) जैसी प्राचीन कथा का-सा है। युरोप की इस परीकथा का मूल उद्देश्य मनोरंजन ही रहा है। *बृहत्कथा-मञ्जरी, कथासरित्सागर या बृहत्कथाश्लोक-संग्रह* से स्पष्ट हो जाता है कि, गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' का चरम उद्देश्य मनोरंजन ही था। परीकथा या अद्भुतकथा का अत्यन्त प्राचीन रूप इस बृहत्कथा की कहानी में मिलता है।

युरोपीय या भारतीय परीकथाओं का उद्देश्य मनोरंजन ही रहा है, फिर भी इन कहानियों में नायक एक सज्जन पुरुष होता है और खलनायक एक दुष्ट व्यक्ति। दुष्ट व्यक्ति को कड़ी से कड़ी सजा मिल जाती है। अच्छाई की विजय एवं बुराई का पराभव इसमें भी होता है। यह एक आदर्शवाद है। फिर भी उसे नीति-कथा नहीं कहा जा सकता। बुरे के सामने अच्छों की जीत हो यह एक सर्वसाधारण इच्छा का प्रतीक मात्र है। इसे Poetic Justice ही कहा जा सकता है।[1] परीकथा किसी धर्म-ग्रंथ में निर्दिष्ट नीतितत्त्व या अर्थशास्त्र (राजनीतिशास्त्र) में व्यक्त किसी राजनैतिक चतुरता (Political Prudence) की परिपुष्टि के लिए नहीं कही

---

form, it has influenced so greatly Indian and Western literature, the didactic motive which is latent is deliberately and expressly developed, and stories grouped in connected series within a frame-work inorder definitely to give precepts, a creation which, of course, takes us away from folk literature, and reveals the intellectual subtlety and skill of the Brahmins." (अधोरेखन हमारा)।

१. Clousten, Popular Tales and Fiction, I, pp. 102–3.

जाती। इंग्लैंड में उन्नीसवीं शती में यह समझा जाता था कि परीकथा का उद्देश्य नीति-प्रतिपादन है। किन्तु वह भ्रान्त कल्पना ही थी। पश्चिम के आलोचक भी अब परीकथा को मनोरञ्जन के ही लिए मानते हैं। उसका चरम लक्ष्य है रञ्जकता और इसलिए किसी भी धार्मिक तत्त्व, सैद्धान्तिक मत-प्रणाली या दैवत-संप्रदाय के साथ उसका सम्बन्ध जोड़ना हास्यास्पद मात्र है।[१] भारतवर्ष में वृहत्कथा में विद्याधर-कथाएं मनोरञ्जन के उद्देश्य से ही लिखी गई थीं। वृहत्कथामंजरी, कथासरित्सागर आदि कथा-ग्रंथ इसके साक्षी हैं।

३. कल्पना-तत्त्व का विचार

डॉ० जॉन्सन् की परिभाषा से जो तीसरा तत्त्व स्पष्ट हुआ वह है नीतिकथा का कल्पना तत्त्व। पश्चिम में fable को कल्पित कथा कहा गया है।[२] वृषभ सञ्जीवक, सिंह पिंगलक तथा सिंह के मंत्रीद्वय शृगाल करटक एवं दमनक[३] की कहानी वास्तव में किसी समय किसी वन में अवश्य ही घटी होगी यह तो हम कह नहीं सकते। इस प्रकार की कथा को सुनते या पढ़ते ही ज्ञात होगा कि यह एक 'मनगढ़ंत' कहानी है। क्योंकि, लेखक की कल्पना के अनुसार ये सिंह और शृगाल आदि प्राणी अपने विलोल पुच्छ हिलाते हुए हमारे सामने उपस्थित हो जाते हैं। महत्त्व की बात यह है कि, वे मानववत् व्यवहार करते दिखाई देते हैं। सर्कस में पशु-निदेशक के इशारों पर नाचने वाले पशु नीतिकथा के प्रांगण में भी आकर कमाल के काम एवं करतब दिखाते हैं। अपरञ्च, नीतिकथा में तो वे अपने भिन्न-भिन्न चरित्रों का भी प्रकाशन करते रहते हैं। मानवीय हितों या भावों की अभिव्यक्ति करने के लिए ही वे 'कल्पित' किये गये हैं: (feigned to act and to speak with human interests and passions : Dr. Johnson's Lives II, p. 283 :) अतः कल्पना तत्त्व का नीतिकथा से बहुत निकट का सम्बन्ध है। पशु-पक्षियों की कहानी से मानवीय अर्थ की प्राप्ति यह कल्पना की देन है।

क्या यह कल्पना-तत्त्व परी-कथा (fairy-tale) या किसी अन्य मानुष-

---

१. Alexander Krappe : The Science of Folklore, pp. 1-41.

२. (अ) Skeat, Etymological Dictionary of the English language, Oxford p. 201.

(ब) W. A. Nailson, 'Prose Fiction', Harvard Classics, Edited by Charles Eliat; p. 201.

३. पंचतंत्र, तंत्र १ ला।

कथा में अपेक्षित नहीं होती ? कथा में कल्पना-तत्त्व को समझ लेने पर इसका उत्तर मिल जावेगा।

कहानीकार की एक कल्पना यह है : मानवीय पात्र भी कल्पना से निर्मित कर, प्रसंग भी कल्पना से ही रखे जाते हैं; फिर भी ऐसी कहानी जीवन का एक यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में सक्षम होती है।

दूसरी कल्पना वह है, जो जीवन में अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति, अदृष्ट पात्रों का दर्शन एवं व्यवहार, उनका अतिमानवीय तत्त्व, (Super-human element), स्वच्छन्दता का असंयत परिभ्रमण तथा यथार्थ एवं अयथार्थ दोनों प्रकार के प्रसंग प्रस्तुत करती है।

प्रत्यक्ष मानुष कहानी में पहली कल्पना अपना कार्य करती है। ब्राह्मण ग्रंथों तथा महाभारत आदि में मनुष्यों की जो बड़ी या छोटी कहानियाँ मिलती हैं, उनके पात्र कल्पना से निर्मित हों या वे इतिहास के खजाने से विरासत के रूप में प्राप्त हुए हों। एक बात अवश्य है कि, उनके द्वारा बरता हुआ व्यवहार एवं प्रसंग स्वाभाविक रहा है; तथा उनके इन संघर्षमय कहानियों में जो जीवन अभिव्यक्त हो उठा है, उसका रूप भी यथार्थ है। इसीलिए विश्वामित्र एवं वसिष्ठ की कथा,[1] शुनःशेप-कथा[2] अथवा भगवान् राम, श्रीकृष्ण एव अन्य पुराणकालीन अवतारी पुरुषों की जो मूल कहानियाँ हैं, उनकी आड़ में इसी स्वाभाविकी कल्पना का प्रभाव रहा है। यथार्थ जीवन को प्रस्तुत करने के कार्य में पात्रों एवं प्रसंगों का रूप भी स्वाभाविक ही प्राप्त होता गया, इसीलिए मानुष-कथा यथार्थ के निकट अधिक पहुँच सकी। आज की कहानी में इसी कल्पना का क्षेत्र प्रभावशील है।

दूसरी जो कल्पना है वह परीकथा (fairy tale) के लेखक की है। इस कल्पना से वह यथार्थ से अयथार्थ की ओर ही अधिकाधिक जाता है। परीकथा में पात्र कभी अतिमानवीय और कभी-कभी राक्षस आदि योनि के भी आ जाते हैं।[3] ये कभी तो हवा मे भी उड़ जाते हैं। फिर भी मनुष्य के समान उनके कार्य हर्ष-द्वेषादि भावों से प्रेरित होते हैं। इस विषय में वे मनुष्य से भिन्न नहीं हैं। मूलतः किसी अलौकिक पुरुष के पराक्रम एवं किंवदन्ती का वर्णन ही परीकथा है।[4] वह कल्पना की उपज है। अतः उसे fiction

---

१. ऋ० सं० ६. ६८, ६९।

२. वही, १. २४-३०।

३. बृहत्कथा में विद्याधर एव मानसवेग का द्वन्द्व।

४. V. S. Apte, The Sanskrit English Dictionary, p. 970 : "A work of fiction."

कहा जा सकता है। परीकथा मे अयथार्थ कल्पना का कौशल दिखाई देता है। इसी में अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति तथा तज्जन्य मनोरञ्जन का तत्व छिपा हुआ है। परीकथा इसी अयथार्थ कल्पना के कारण ही मनोरञ्जनप्रधान है।

नीतिकथा में कल्पना-तत्व

नीतिकथा मे कल्पना यथार्थ एवं अयथार्थ दोनों प्रकार की होती है। क्योंकि, उसका स्वरूप दो प्रकार का है। नीतिकथा के दो कथानक होते हैं। एक वाच्य-कथानक और दूसरा व्यंग्य कथानक। इनमें से 'वाच्य कथानक' मे कल्पना का रूप स्वाभाविक नहीं होता। व्याघ्र, सियार, बिल्ली, चूहे आदि पशु मनुष्य के समान विचार एवं कार्य कैसे कर सकते है यही प्रश्न पूछा जा सकता है। इसे अनुपपन्नता ही कहा जावेगा जिससे लक्षणा का सहारा ढूंढ़ा जाता है। इसी लक्षणा के बल पर हम इन पशुओं की लीलाओं की आड़ मे छिपे हुए मानवीय व्यवहार को जानने मे सक्षम हो पाते है। पशुओं के मानववत् व्यवहार को कल्पना असभ्य समाज के लिए प्राचीन समय में भले ही यथार्थ रही हो ; किन्तु सभ्य समाज तो उसे एक अयथार्थ कल्पना की सृष्टि ही मानेगा। पशु-पक्षियों की कहानी इसीलिए अयथार्थ कल्पना के कौशल की देन है।

किन्तु 'व्यंग्य-कथानक' की बात ऐसी नहीं है। इस अलिखित एवं अनिर्वाच्य कथानक से मानवीय जीवन की अभिव्यक्ति होती है। उसके पात्र एवं प्रसंग मनुष्य जीवन के दृश्य प्रकट करते है। वाच्यकथानक से यह व्यंग्य कथानक हम लेते है तब नीति-कथा से हमें जीवन मे अनुभूत दृश्यों का दर्शन हो जाता है। वह दर्शन यथार्थ होता है। सियार ने कपट से सिंह, व्याघ्र, भेड़िया तथा अन्य प्राणियों से अपने भक्ष्य की रक्षा कर ली तो हमे जीवन का वह पक्ष दिखाई देता है जिसमे एक धूर्त अपने अन्य साथियों को धोखा देकर अपने स्वार्थ की पूर्ति कर लेता है। यह दृश्य यथार्थ है। व्यंग्य कथानक की ही यह देन है।

इसीलिए कहा जा सकता है कि, नीतिकथा में कल्पना-तत्व उभयात्मक होता है। क्योंकि, उसका कथानक ही उभयात्मक है। वाच्य कथानक (पशु-पक्षियों की कथा) में अयथार्थ कल्पना और व्यंग्य कथानक में, जो मानवीय कहानी प्रस्तुत करती है, यथार्थ कल्पना का प्रभाव परिलक्षित होता है। मानुष कहानी में यह कथानकीय द्वन्द्व कहां ? परीकथाओं में भी वह नहीं पाया जाता। ध्वनिकथा (Allegory) में वह है। फिर भी उसका साहित्यिक स्तर नीतिकथा से कहीं ऊँचा है यह अवश्य मान लेना चाहिये। ध्वनिकथा (Allegory) की कल्पना कवि की कोमल व्यंग्यार्थ-साधना है। उत्तम काव्य की वह

अवस्था है। गद्य-काव्य का आनंद ध्वनिकथा से लिया जा सकता है। नीतिकथा हेतु-प्रधान कहानी-साहित्य है, स्पष्ट शब्दों के द्वारा गर्भित अर्थ को भी कह देने पर उपदेश की सिद्धि कर देना उसका लक्ष्य है। इस बीच, यदि कल्पना अपना जाल बिछाकर झूठे पात्र भी उपस्थित कर देती है तो कोई आपत्ति नहीं समझी जाती। इस प्रकार सारा बल उपदेश पर देने के कारण, उसे अभिधा के द्वारा स्पष्ट कर देने के उपरान्त कल्पना का क्षेत्र कृत्रिम तथा सीमित ही रहता है। 'व्यंग्य कथानक' में तो मानवीय भाव ठीक व्यक्त हो सके, नीतिकथालेखक उसे व्यंजित करने मे सफल हो सके इसीलिए जिस कल्पना के माध्यम की आवश्यकता होती है उसका स्वरूप कुछ मनोहर अवश्य है। पशुओं को मानववत् व्यवहार करते देख चमत्कार निर्माण होता है और उसे हम 'अन्योक्ति' जैसे अलंकार मे भी देख पाते है। इसी 'अन्योक्ति' भेद का कथानक-मिश्रित प्रयोग है नीतिकथा। कल्पना के इस उभयात्मक प्रभाव से नीतिकथा में जो चमत्कार आ गया है उसे हम अभिव्यंजना-प्रणाली की सफलता अवश्य मान लेंगे, फिर भी नीतिकथा में जो चमत्कार है वह अलंकारगत चमत्कार के निकट है। रस की चरमावस्था मे प्राप्त होने वाला काव्यानन्द नीतिकथा से नहीं मिल सकता। पशु व्यवहार से मानवीय अर्थ की चमत्कृति, काल्पनिक पशु-विश्व का चित्रण, कथा-कौशल, मार्मिक नीतिवाक्य आदि से नीतिकथा रोचक होती है। उसमें पुनः पुनः अनुसंधीयमान इत्यादि स्थायी भाव को पनपने का अवसर प्राप्त नहीं होता। अतः केवल कल्पना-क्षेत्र का चमत्कार ही नीतिकथा में रह जाता है, काव्यानन्द का अस्तित्व नहीं। इसीलिए नीतिकथा की अपेक्षा परीकथा या ध्वनिकथा को उच्च कोटि का आस्वाद्य साहित्य मानने से कोई असंगति न होगी। नीतिकथा में वस्तु-चमत्कार होता है। जीवन मे प्राप्त अनुभूतियों का दर्शन कल्पना के माध्यम से होने पर अधिक प्रभावशील हो जाता है।

मानुप कथा या कहानी मे कल्पनात्मक सत्य यथार्थवाद का रूप लिए हुए परिलक्षित होता है और नीतिकथा में प्रसंग एवं पात्र[1] सत्याभास से

---

१. Crabb : "The fable is allegorical, its actions are natural, but its agents imaginary. The tale is fictitious but not imaginary for both its agents and actions are drawn from the passing scenes of life—Tales are written mainly for amusement; fables for instruction."

—The New Dictionary of thoughts, by Tryon Edward, Standard Book Co., New York, 1955. p. 182.

पीड़ित अवश्य है; फिर भी उसका मूल तत्त्व (theme) एक जागतिक सत्य ही है। इस दृष्टि से उसमें यथार्थवाद देखा जा सकता है। उसके बाहर के चोले को देखने पर वह भले ही कृत्रिम कल्पना का आभास उत्पन्न कर दे, किन्तु वह सत्य एवं तथ्य को प्रकट कर देने वाली अवश्य है।

रस की सामग्री सिद्ध हो जाने पर परीकथा की कोटि भी उच्च हो सकती है। अद्‌भुत एवं शृङ्गार उसके रस हैं। नीतिकथा में तो रस की सिद्धि अपेक्षित नहीं है।

मनोरंजन का तत्त्व

डॉ० जॉन्सन् की परिभाषा मे पात्र, हेतु तथा कल्पना के तीन तत्त्व प्रकट हो रहे है। फिर भी इसमें एक और तत्त्व नहीं पाया जाता जो कि नीतिकथा के लिए आवश्यक है। वह तत्त्व है मनोरञ्जकता का। यह ठीक ही है कि, परीकथा की-सी केवल मनोरजकता नीतिकथा में अपेक्षित नहीं है, फिर भी शिक्षाप्रद होने के साथ-साथ यह आवश्यक है कि, नीतिकथा मनोरंजक भी हो। उसका प्रधान उद्देश्य मनोरञ्जन नहीं है। इसीलिए उद्देश्य-विचार में इसकी चर्चा हमने नहीं की किन्तु शिक्षाप्रद कथा में मनोरंजन का तत्त्व भी पाया जाता है। उसका ग्रहण डॉ० जॉन्सन् की व्याख्या में नहीं होने पाया। इस कमी की पूर्ति के लिए फ्रान्स के विख्यात नीतिकथाकार ला फान्टेन (La Fontaine, 1621-1695) द्वारा कविता में निर्दिष्ट नीतिकथा के स्वरूप की ओर ध्यान देना होगा। उनका कथन है कि, नीतिकथा जैसी बाहर से दिखाई देती है वैसी नहीं होती। हमारे नीति का पाठ देने वाले हैं चूहे और छोटे से हिरन। निरा उपदेश सुनने में हमें कोई रुचि नहीं होती, किन्तु बड़े चाव के साथ हम नीतिकथा की ओर आकृष्ट होते हैं, और इस प्रकार मनोरंजन के साथ-साथ हम कुछ सीख भी लेते हैं।[१]

यह स्पष्ट है कि, चाहे वह बाल हो या वृद्ध, नीतिकथा से पाठक का मनोरञ्जन अवश्य होता है। केवल नीति-पाठ करा देने पर नीतिशास्त्र में और नीति-

---

१. La Fontaine :

"Fables in sooth are not what they appear;
Our moralists are mice, and such small deer.
We yawn at sermons, but we gladly turn
To moral tales, and so amused we learn."

[अधोरेखन हमारा]

—Encyclopaedia Britannica, vol. 9, ed. 1954, p. 21.

कथा में भेद ही क्या रह गया ? कामन्दकीय नीतिशास्त्र की हर एक पंक्ति तो नीतिकथा नहीं कही जा सकती। जहां ऐसे नीतिवाक्य कहानी के रूप में कहे भी गए होंगे वहां कहानी की 'रोचकता' नामक विशेषता आ जाया करेगी। कहानी-कला का यह एक सर्वसाधारण तत्त्व हैं कि, कहानी रोचक हो, उसे वाचक पढ़े। रोचकता की हानि से कहानी की ही हानि होती है। अन्यथा वह एक शास्त्र हो बैठेगा। डॉ० जॉन्सन् ने अपनी परिभाषा में जहाँ नीतिपाठ देने की नीतिकथा की विशेषता का उल्लेख किया है, वहाँ उसके रोचक तत्त्व का भी उल्लेख किया जाना आवश्यक था। इसी 'रोचकता' के कारण ही तो पाठक पशु-पक्षियों की गतिविधियों में अन्त तक रुचि लेता है। पशु-पक्षियों की कहानी में यदि रोचकता ही न होगी तो उसे कौन पढ़ेगा ? यदि नीतिपाठ नीतिकथा से देना है तो यह प्रथम आवश्यक है कि वह रोचक हो। यह रोचकता या मनोरञ्जन का तत्त्व कल्पना-तत्त्व के अन्तर्गत नहीं लिया जा सकता। वह तो एक ऐसा स्वरूप-कथन है, जो नीतिकथा को कल्पना की उपज मान लेता है। फिर भी वह उपज रोचक और पाठकों के मन का रञ्जन भी करती है। अतः उसके इस स्वतंत्र तत्त्व का भी व्याख्या में शामिल करना जरूरी है। केवल कल्पना-तत्त्व मानवीय अर्थ को पशु-पक्षियों के व्यवहार से प्राप्त करा देने में समर्थ है। फिर भी पाठक को वह रुचिपूर्ण लगे इसलिए मनोरञ्जन के तत्त्व को उपेक्षा नहीं की जा सकती।

बालकों के लिए तो यह एक आकर्षण की वस्तु है कि, हाथी, सिंह, सियार आदि पशु मनुष्य का-सा व्यवहार करते दिखाई देते हैं। इन प्राणियों के साथ खेलने की जो उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है वह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। इन प्राणियों के साथ रोज के व्यवहार में खेलने या उनके साथ रहने की सुप्त अभिलाषा बालक के मन में रहा करती है। उसे वे खिलौने पाकर पूरी कर लेते हैं। पालतू जानवरों में बिल्ली, खरगोश, हिरन आदि जानवरों को पालने मे हमारी जो आसक्ति दिखाई देती है उसका कारण प्राचीन युग मे मानव के मन पर हुए पशु-सहवास का प्रभाव है। जानवरो की गतिविधियाँ प्रत्यक्ष में देखने को कम मिलती है। मनुष्य उन्हें साहित्य में देख लेता है। इसीलिए नीतिकथा में वर्णित पशु-पक्षियों की गतिविधि मे पाठक रुचि लेते हैं।

विचारशील प्रौढों के लिए तो अधिक रुचि का एक और कारण है। वह यह कि, हर्ष, द्वेष, राग, लोभ, वासना, छल, कपट, दम्भ आदि प्रकृति के

ये साधारण नियम न केवल मानव को ही, अपितु मानवेतर चर और अचर जगत् को भी नियंत्रित किये हुए हैं इस प्रकार का प्रत्यक्ष उन्हें होता है।[१]

जैसे कि ला फॉन्टेन् ने कहा है, क्षुद्र चूहे एवं हिरन आदि जन्तु किसी गंभीर नीतितत्त्व का प्रतिपादन या उपदेश देने का कार्य करें तो मनोरंजक दृश्य उपस्थित हो जाता है। आनंद भी मिलता है और शिक्षा भी। इसीलिए ला फॉन्टेन की व्याख्या से मनोरंजन के तत्त्व को लेकर डॉ० जॉन्सन् की व्याख्या को पूर्ण करना चाहिये।

अन्य कोशकारों ने भी नीतिकथा की चर्चा fable के अन्तर्गत की है : 'नीतिकथा उसे कहते हैं, जिसमें अमानवीय प्राणी या अचेतन पदार्थ मनुष्यवत् व्यवहार करते हैं'।[२] साहित्यिक नीतिकथा की यही विशेषता है कि, प्राणियों के चोले मे मानवीय चित्र उपस्थित हो जाता है। अन्य ज्ञानकोश भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं।[3] चराचर विश्व के परिवर्तन, मानवीय व्यवहार, नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक या राजकीय गतिविधियां नीतिकथा के विषय हैं। संस्कृत साहित्य में नीतिकथा का स्वरूप लौकिक (secular) रहा है। ऐहिक जीवन मे उपादेय तत्त्व उसमें निहित है। नीतिकथा नीतिशास्त्र का अच्छा प्रभावी माध्यम रहा है।

आज तो नीतिकथा (fable) का स्वरूप यही सिद्ध हो चुका है कि 'नीति' का पाठ सुन्दर आवरण मे रख कर देने वाली कहानी।[४]

---

१. "The satisfaction which we derive from fables does not lie wholly in the pleasure that we receive from the symbolical representation, but lies deeper—in the feeling that the order of nature is the same in the spiritual and the material worlds." (The New Popular Encyclopaedia, p.291.)

२. "Fable, a story in which non-human creatures or lifeless things behave like human beings"—(Cassell's Encyclopaedia of Literature, Vol. 1, pt. 1, Edited by S. H. Steinburg, London, 1953 में लेख Fable by J. J. Mac, pp. 216).

३. Chamber's Encyclopaedia, 'Fable.'

४. 'Fable, in literature; a term applied originally to every imaginative tale, but confined in modern use to short-stories, either in prose or verse which are meant to inculcate a moral lesson in a pleasant garb.' (The New Popular Encyclopaedia, p. 291).

इस सब चर्चा का निष्कर्ष यही है कि, मुख्य रूप से मानवेतर प्राणियों या कभी-कभी अचेतन पदार्थों की एक ऐसी इने-गिने पात्रों वाली कहानी हो कि जिससे मानव-जीवन पर चरितार्थ होने के लिए योग्य नीतितत्त्व, जीवन-विचार, राजनैतिक प्रज्ञा या सूझबूझ (Political wisdom or prudence) व्यक्त हो सके एवं वह पाठकों को रोचक लगे; तो उसे 'नीतिकथा' कहना चाहिये।

मारिया लीच द्वारा सम्पादित प्रसिद्ध लोक-साहित्य-कोश में भी इसी स्वरूप को स्पष्ट किया गया है।[१]

Fable के अतिरिक्त कहीं-कहीं प्राणिकथा (Beast-Tales) प्राणियों की नीति-कथा (Beast-apologue) या केवल नीतिकथा के अर्थ में (apologue) का भी प्रयोग होता है। जहाँ तक केवल प्राणि-कथा का संबंध है, उसे लोक-साहित्य के अन्तर्गत ही मान लेना समीचीन होगा। प्राणियों की कहानी तो हो किन्तु उसका कोई उद्देश्य न हो तो वह केवल तोता-मैना की कहानी मात्र रह जायेगी। उसे नीतिकथा नहीं कह सकेंगे।

प्रो. शरच्चन्द्र मित्र ने नीतिकथा के विषय मे विचार व्यक्त करते हुए नीतिकथा का स्वरूप कुछ इन शब्दों में प्रकट किया है: 'प्राणिकथा वह है जिसमें प्राणी पात्र होते हैं एवं मानववत् बोलते और कार्य करते हैं। नीतिकथा (apologue) उसे कहना चाहिये जिसमें जान-बूझकर रखा गया उद्देश्य एवं नीतिसार होता है, और इस प्रकार वह लोकोक्तियों के निकट का होता है।'[२]

मित्र जी ने जो Beast-tale को लक्षित किया है, उस पर से प्राणिकथा को नीतिकथा (fable) नही कह सकते। क्योंकि उनके ही कथनानुसार शिक्षा

---

१. "An animal tale with a moral; a short tale in which animals appear as characters, talking and acting like human beings, though as its purpose the pointing of a moral" (The Standard Dictionary of Folklore, Mythology and Legend, Vol. I A-1., Edited by Maria Leach, New York, 1949; pp. 361.)

१. "Beast tales are in which animals are actors who speak and act like human beings. On the other hand, apologue are stories with a conscious purpose and a moral, and are thus closely related to proverbs." (Prof. Sharat Chandra Mitra on an Ancient Indian Beast apologue and its Panjabi Parallel" Journal of the Bihar and Orissa Reasarch Society Patna, Sept.-Dec. 1929 Vol. 15, pt. 3 & 4, p. 618.)

देने का उद्देश्य प्राणि-कथा मे अपेक्षित नहीं है। उसे लोक-कथा (folk-tale) ही मान लिया जाएगा जो अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित रही थी। नीतिकथा अधिक परिष्कृत है, उसमें उद्देश्य की विशेषता भुलाई नहीं जा सकती। वास्तव में, fable और apologue एकार्थवाची शब्द के रूप में ही लिए जा सकते है। एक बात अवश्य है कि, मिश्र जी ने जो apologue का स्वरूप दिखाया है, उसमें उन्होने मानवेतर प्राणी पात्र होने का उल्लेख नहीं किया, जो कि नितान्त आवश्यक था। अन्यथा उसे हम fable के अर्थ में नहीं ले सकेंगे। उनके लेख के शीर्षक से ऐसा लगता है कि, वे apologue मात्र को एक व्यापक संज्ञा मानते हों और इसीलिए उन्होने 'Beast-apologue' कह कर fable के पूर्वरूप का संकेत कर दिया दिखाई देता है। यदि fable के अर्थ मे प्रयोग करना है तो Beast इस विशेषता को apologue के साथ लगाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। क्योंकि, पात्र सम्बन्धी यह विशेषता उस संज्ञा के अन्तर्गत ही अभिप्रेत है। यदि लोककथा-साहित्य के लिए यह शब्द जोड़ दिया गया हो, तो उसे animal tale ही कह दिया होता तो अच्छा होता। इसीलिए apologue या fable मात्र कह देने से हम ऐसी नीतिकथा को समझ सकते है जिसमें पात्र तो प्रमुख रूप से मानवेतर प्राणी हो और जिसका अपना कोई उद्देश्य याने नीति-पाठ का हेतु हो। आज भी fable पश्चिम में नीति का प्रतीक बन बैठी है।[१]

Legend तथा Myth :

नीतिकथा को हम Legend या Myth भी नहीं कह सकते। मूल लैटिन legenda का अर्थ है 'पढ़ने योग्य', प्रारम्भ में इससे निकले हुए legend का अर्थ था : किसी सन्त के जीवन से संबंधित कहानी।[२] वैदिक legends को हम प्राचीनतम कहानी के रूप में ले सकेंगे, जिसमें मानव पात्र होकर उनके भावों या अनुभूतियों का दर्शन होता हो। प्राकृतिक दृश्यों पर की हुई कल्पना को Myth के अन्दर देखा जा सकता है।[३] पुराण-कथाएँ भी नीति-पाठ या उपदेश

१. Harvard Classics, Prose Fiction; By W. A. Nailson, p. 221; "The fable, as the embodiment of moral wisdom.' etc.

२. Cassell's Encyclopaedia of Literature, ed. by S. H. Steinburg, Vol. I. pt. I, London, 1953; p. 339.

३. Dr. H. L. Hariyappa, Poona : Rgvedic Legends through the Ages, p. 130.

देने वाली होती है, फिर भी अतीत के नरपुंगवों की जीवनी और वह भी सन्तों की शिक्षामयी बानी मे, सरल एवं सीधी सादी भाषा में कही गई होती है। इसी प्रकार 'इतिहास' भी नीति-विषयक पाठ दार्शनिक विचारों के साथ साथ समाज को देता है[१]। Legend में इतिहास की परम्परा का निर्वाह किया जाता है। Myth में भी, मूल जो प्राकृतिक घटना होगी उसी का कल्पना के प्रभाव से मानवीकरण-प्रक्रिया के अनुसार एक ऐसा रूप हमारे सामने रखा जाता है कि, हम उस कथा के पात्रों, प्रसंगों एवं सिद्धान्तों में विश्वास करें। इस प्रकार मानव की जो शक्ति के प्रति श्रद्धा प्रकट करने की मूल प्रवृत्ति होती है, वह मिथ् में उभर आती है। इस दृष्टि से वह धर्म-प्रेरित कथा ही कही जाएगी[२]। कल्पना का तो वह क्षेत्र है ही। फिर भी Legends एवं Myths एक ऐसी विश्वास-योग्य सम्पत्ति जनसाधारण की हो बैठती है कि, कालान्तर से उसके मूल तथ्य का लोप होकर वह एक पुराण-कथा मात्र रह जाती है। देवतारोप (deification) भी मानवीकरण (Personification) के अनन्तर हो जाता है, फलतः धर्मशील मानव-मन के लिए यह पैतृक सम्पत्ति बड़ी पोपक सिद्ध होती है। हमारी वैदिक पुराण-कथाएं इसी प्रकार की है।

नीतिकथा इन कथाओं से भिन्न है। किम्वदन्ती इतिहास की ऐसी सहचरी है जो जन-मानस के विश्वास के परदे में रहकर भी अधिक जन-प्रिय रहा करती है। नीतिकथा एक कल्पित कथा है, उसके वाच्य-कथानक में किसी प्रकार की यथार्थता नहीं रहती। अतीत में कल्पना के कारण Myth में जो प्राकृतिक घटनाओं का मानवीकरण एवं देवतारोप हुआ था, उसका सारा बल सांकेतिक, विश्वास-ग्राह्य परम्परा की धारा में बह गया। अब वह कल्पना का क्षेत्र नहीं रह गया। उसमें तो अब ईश्वरीय कृतियों का ही दर्शन होता रहता है[3]। नीति-कथा में इस प्रकार के देवतारोप के लिए कोई स्थान नहीं है, और न वह धर्म-प्राण ही रही है। बौद्ध-युग में भले ही नीतिकथा जातक-कथाओं के रूप में धर्म-प्रचार का साधन रही हो, फिर भी धार्मिक नेताओं के हाथ में पड़कर ही वह धर्मोपदेश का साधन बनी। वास्तव में उसका मूल रूप लौकिक (secular) ही रहा है,

---

१. वही पृष्ठ १३६

२. इस विषय में अधिक विवरण देखिये : A. A. Macdonell's Vedic Mythology, Strassburg, 1897 का Introduction, pp. 1-8.

३. Chamber's Encyclopaedia, 1904. p. 710 :—

"A myth embodies in human form primitive man's conception of a non-human action."

जो पंचतंत्रादि ग्रंथों में सुरक्षित है। समय के प्रभाव से साहित्य में धर्म का प्रतिबिम्ब उतर पड़ा हो तो आश्चर्य की बात नहीं। लोक-साहित्य की जिन प्राणिकथाओं (animal-tales) को लेकर जीवनसम्बन्धी अनुभूतियों के आधार पर व्यावहारिक कल्याण के लिए बुद्धदेव ने जातक-कथाएं कह सुनाई, वे मूलतः लौकिक ही थीं। उनका मूल स्वरूप धर्म से आक्रान्त न था। नीतिकथा के पात्र तो कोई वीरगाथा के आलम्बन नहीं है, वे है मानवेतर प्राणी, जिनकी वीरता की नहीं, अपितु बुद्धि-चतुरता की ही लीला नीतिकथा मे सर्वत्र दिखाई देती है।

निष्कर्ष

पश्चिम मे इस प्रकार fable के स्वरूप की जो चर्चा की गई है उसे देखने पर यही स्पष्ट होता है कि, इस कहानी के पात्र प्रमुख रूप से मानवेतर प्राणी होते है और कभी कभी अचेतन वस्तुओं की भी लीला दिखाई देती हैं, किन्तु इस प्रकार की कहानी से 'नीति' (Moral) का अवश्य प्रतिपादन होता है! यूरोप मे हेसिअड (Hesiod) एवं ईसप (Aesop) के अतिरिक्त मेरी डी फ्रास, ला फान्टेन्, लेसिग, चॉसर, खिश्चन जेलर्ट, पिग्नोटी, खिलिल जिब्रान्, सालोगोव् आदि नीतिकथा के लेखक नीतिकथाओं को लिखकर एक बड़ी गौरवमयी परम्परा छोड़ गये है।

भारत में नीतिकथा की परिभाषा

पश्चिम की परिभाषाओं को हमने समझ लिया है और यह स्वाभाविक ही है कि fable की आधुनिक परिभाषा हमें अंग्रेजी से प्राप्त हो सकी और इसके अद्यतन स्वरूप को हम समझ सके। अब हमें यह देख लेना होगा कि, कहानी की कौन कौन सी परिभाषाएं संस्कृत और पालि-प्राकृत साहित्य में मानी गई है, कहानी-विषयक संज्ञाएं क्या क्या रही हैं, एवं उनका स्वरूप क्या रहा है। इनमे से कोई संज्ञा नीतिकथा (fable) के स्वरूप को व्यक्त कर पाती है या नहीं, संस्कृत में हम (fable) का लक्षण किस प्रकार निश्चित कर सकते है, आदि प्रश्न हमारे सामने है। इसलिए भारतीय साहित्य में नीतिकथा के परिभाषा-विषयक दृष्टिकोण को यहां उपस्थित करना आवश्यक है।

नीतिकथा की व्युत्पत्ति

कहना न होगा कि, "नीतिकथा' कोई वैदिक शब्द-प्रयोग नहीं है, अतः उसका ज्यों का त्यों 'निरुक्त' या उसकी कोई आर्य परिभाषा मिलना असम्भव है। फिर भी 'नीति' के विषय में हम कुछ चर्चा कर सकते हैं। संस्कृत में यह

शब्द प्राचीन काल से प्रयुक्त हुआ है। नीति में 'नी' धातु है और उससे 'क्तिन्' प्रत्यय लगाकर व्युत्पत्ति हो सकती है।

"नीतिः—(स्त्री०) नीयन्ते उन्नीयन्तेऽर्था अत्रानया वा।"[१]

इसी "नयन" या "उन्नयन" अर्थ का विस्तार आगे चलकर हुआ और "सदाचार, भद्र उपदेश, राजनीति, राजनैतिक चतुरता या शास्त्र, सदाचरण के लिए उपदेश" आदि अर्थ भी प्राप्त होने लगे। "नीति-कथा" के दो अर्थ भी द्रष्टव्य हैं; १ "नीति या राजनीति के शास्त्र पर आधारित कोई ग्रंथ" एवं २ "राजनैतिक अर्थशास्त्र पर की गई चर्चा"[२]। नय और अनय के भी अर्थ दृढमूल हो गये। आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता एवं दण्ड नीति इन चार विद्याओं में जो "दण्डनीति" है उसमें "नय" और "अनय" दोनों का ग्रहण होता है[3]। दण्डनीति का अर्थ भी राजनीति, नीतिशास्त्र, नीतिपद्धति आदि है[४]।

"पञ्चतन्त्र" के विख्यात अनुवादक श्री आर्थर डब्ल्यू. रायडर ने "नीति"

---

१. वाचस्पत्य, भाग ६ वाँ, पृ० ४१२६

२. Monier William's Sanskrit English Dictionary, Oxford, 1882, page 511 :—

i. Niti—"is, guiding, guidance, directing, direction, management, manner of conducting ones self, conduct, propriety; right or moral or prudent behaviour, prudent counsel, dolicy, political wisdom or science, political economy, state policy, statesmanship, the administration of the Government; moral philosophy, ethics, precepts for prudent and moral behaviour, prudence, or polity personified (cf. naya); leading or bringing to, obtaining, acquirement, acquisition, presenting, offering; relation, support;"

ii. Niti-Katha, and "any work on moral or political science, a discourse on political economy."

३. अग्निपुराण, अध्याय २३०, श्लोक ६ :

"आन्वीक्षिक्यार्थ-विज्ञानं धर्म्माधर्म्मौ त्रयीस्थितौ।
अर्थानर्थौ तु वार्तायां दण्डनीत्यां नयानयौ।" इति।

४. Monier William's Sanskrit English Dictionary, page 398 "Polity, Ethics, system of morals;......."

शब्द के लिए पश्चिम की किसी भाषा में प्रतिवाची शब्द दे सकने में असमर्थता प्रकट की है और नीति के स्वरूप की चर्चा की है, वह भी द्रष्टव्य है[1]।

"कथ्" धातु से "कथा" शब्द बना हुआ है। आज उसका अर्थ है "कहानी"। प्राचीन अर्थ नीतिविषयक चर्चा या नीतिशास्त्र के ग्रंथ के रूप में यद्यपि रहा है, फिर भी आज नीतिकथा का अर्थ है नीतिविषयक पाठ सिखाने वाली कहानी जिसमें अधिकतर पात्र मानवेतर क्षुद्र प्राणी होते हैं। पञ्चतन्त्र की कहानियों को "नीतिकथा" कहा जा सकता है।

१. प्राचीन भारतीय साहित्य में कथातत्व.

प्राचीन समय से ही भारत एक कथाप्रिय देश रहा है। ऋग्वेद जैसे सर्व-प्राचीन साहित्य में भी कहानी का पूर्वरूप प्राप्त होता है। वहीं से गीत-कथा की परम्परा भारत में चल पड़ी थी। वैदिक साहित्य से कथाविषयक अन्यान्य शब्द प्रचलित हुए। उन्हे देख लेने-पर भारतीय कथा का क्रमिक विकास भी ज्ञात होने में सहायता होगी।

---

१. 'पञ्चतन्त्र एक नीतिशास्त्र या नीति-ग्रन्थ है। नीति का अर्थ है जीवन में बुद्धिपूर्वक व्यवहार। पश्चिमी सभ्यता को इसके लिए कुछ लज्जित होना पड़ता है कि अंग्रेजी, फ्रैंच, लैटिन या ग्रीक इसकी किसी भाषा में नीति के लिए कोई ठीक पर्याय नहीं है।....सर्वप्रथम, नीति इस वाक्य को मानकर चलती है कि मनुष्य विचारपूर्वक अपने लिए सघुक्कड़ों का मार्ग छोड़कर सामाजिक जीवन का मार्ग चुनता है। दूसरे, नीति-प्रधान दृष्टिकोण इस प्रश्न का सराह-नीय उत्तर देता है कि मनुष्यों के बीच मे रहकर जीवन का अधिक रस किस प्रकार लिया जाय....नीतिप्रधान जीवन वह है जिसमें मनुष्य की समस्त शक्तियों और सम्भावनाओं का पूरा विकास हो, अर्थात् एक ऐसे जीवन की प्राप्ति जिसमें आत्मरक्षा, धनसमृद्धि, संकल्पमय कर्म, मित्रता और उत्तम विद्या, इन पांचों का इस प्रकार समन्वय किया जाय कि उससे आनन्द की उत्पत्ति हो। यह जीवन का सम्भ्रान्त आदर्श है जिसे पञ्चतन्त्र की चतुराई और बुद्धि से भरी हुई पशुपक्षियों की कहानियों के द्वारा अत्यन्त कलात्मक रूप मे रखा गया है।' (—अनुवाद डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल द्वारा लिखित 'आमुख' से उद्धृत, 'पञ्चतन्त्र' डॉ० मोतीचंद्र द्वारा सम्पादित)

—Arthur W. Ryder, The Panchtantra,
Jaico Publishing House, Bombay-Calcutta
'Translation Introduction' pp 3-9.

वैदिक साहित्य में "सूक्त" एवं "गाथा" शब्द अर्थपूर्ण है। वैदिक संहिताओं में गाथा आदि शब्द पाये जाते हैं[१]। इन शब्दों से भारतीय कथा-विषयक विकास का मार्ग स्पष्ट हो जाता है। नीतिकथा के विकसित रूप के अंदर "सूक्त" एवं "गाथा" के अंश आज भी अन्तर्लीन दिखाई देते हैं। उत्तर वैदिक काल में ब्राह्मण-ग्रंथों में हमें "आख्यान, आख्यायिका, अन्वाख्यान, अर्थवाद, तथा अन्यत्र आचिख्यासा, संलाप, पवित्राख्यान, इतिहास, पुराण, कथा आदि संज्ञाएं भी प्राप्त होती हैं। इन सब संज्ञाओं का उपयोग एवं प्रचलन देख लेने से संस्कृत में कथाविषयक धारणा क्या रही है एवं किस स्वरूप में वह गतिशील थी इसका परिचय हमें भली भाँति हो सकेगा।

(१) सूक्त

शौनक ने "सूक्त" की व्याख्या की है :

"सम्पूर्ण ऋषिवाक्यं तु सूक्तमित्यभिधीयते[२]।"

इस "ऋषिवाक्य" के अर्थ से ही सुभाषित एवं कहावत के लिए "सूक्ति" शब्द बनकर उपयोग में लाया जाने लगा। इससे वैदिक सूक्त का अर्थ संहिता की ऋचाओं का समूह रह गया और "सूक्ति" का अर्थ किसी महापुरुष के वचन के रूप में लिया जाने लगा। यह सूक्ति ही कई कहानियों की जननी है और proverb या लोकोक्ति का बहुत कुछ सम्बन्ध नीतिकथा, परी-कथा या भ्रान्त किंवदन्ती के साथ रहा करता है।

(२) गाथा

"गाथा" मूलतः वैदिक वस्तु नहीं है। वह एक अवैदिक तत्व रहा है[3]। वेदों ने जिस लोक सम्पत्ति को अपनाया उसमें ही "गाथा" एक प्रकार रहा होगा एवं वेदों में उसे स्थान मिल गया। इसी लिए उसकी कोई प्रामाणिक व्युत्पत्ति नहीं दी जा सकती। "गै" धातु से गाने के अर्थ में जो आर्य व्युत्पत्ति दी जाती है वह बहुत बाद की सिद्ध-साधना है। ऋग्वेद में "नाराशंसी" एक गाथा ही है। वह एक गीत-प्रबन्ध है। इससे ज्ञात होता है कि, "गाथा" शब्द का प्रयोग ऋग्वेद एवं अन्य संहिताओं में "गीत" या "पद्य" के अर्थ में ही किया

---

१. आथर्व, सं० २५-६; ऋ० सं० ८.३२.१ इ०

२. वृहद्देवता, Ed. by Macdonell, Part I, अध्याय १.१३.

३. Monier William's Sanskrit English Dictionary, Oxford, P. 287 (गातु) गाथा "a verse which is neither a Ric, nor Saman, nor Yajus, a religious verse, but not one belonging to the Vedas."

गया है[1]। फिर भी अथर्ववेद में "गाथा" (Stanzas) तथा "नाराशंसी" (Eulogistic Legends of heroes) अलग अलग पाये जाते है[2]। ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख है कि ऋक् ईश्वरीय होती है और गाथा मानवीय। ऐतरेय आरण्यक में गाथा का पद्य के अर्थ में ग्रहण हुआ है। वहां पद्य के तीन भेद किये गये है : ऋक्, गाथा और कुम्ब्या[3]। शतपथ ब्राह्मण में तो कहा है, गाथा भी ईश्वरीय एवं मानवीय दोनों प्रकार की होती है। संभव है, प्राचीन गाथा ईश्वरीय एवं इतर मानवीय प्रकार की समझी जाती हों। शौनक ने नाराशंसी को दानस्तुति कहा है[4]। वैदिक साहित्य में "यज्ञगाथा" शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है कि, यज्ञ में दाता की स्तुति गीत के रूप में हुआ करती थी।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में अन्न का मल याने "सुरा" तथा मंत्रादिक का मल याने "गाथा" इस अर्थ ने उल्लेख है। उदाहरण के लिए नाराशंसी का भी निर्देश है। भाष्यकार भास्करभट्ट ने भी इस प्रकरण में भाष्य किया है कि, गाथा "नरप्रधाना" अर्थात् मानवों के लिए कही गई होती है[5]।

मैत्रायणी संहिता (३.७.३) के उल्लेख के अनुसार गाथा विवाह के प्रसंग पर गाई जाती थी[6]। यह एक लौकिक प्रथा ही थी। वैदिक ऋषियों ने उसे अपने साहित्य में अंकित कर लिया। 'गाथिन्" या "गाथिन्", "गाथपति"[7] 'गातुविद्' आदि शब्द "गायक" के अर्थ में रूढ हुए है। विश्वामित्र को "गाथिन्" कहा है। "गातुविद्" शब्द से जान पड़ता है कि, गाथा को जानने वाले अनेक घराने वैदिक युग मे थे।

कथात्मक गाथा का एक उदाहरण है ऐतरेय ब्राह्मण में शुनःशेपाख्यान[8]। महाभारत के अनुवंशपर्व के एक उल्लेख से जान पड़ता है कि, राजवंश की

---

१. Macdonell and Kieth, Vedic Index of Names and subjects, I, p. 224, ऋ० सं० ८.३२.१, ८.९८.९, ६.६६.४, १०.८५.६। तै. स. ५,१,८,२,

२. अथर्ववेद १५, ६.४; vide Griffith's note on गाथा व नाराशंसी, Hymns of the Atharva Veda, vol. II, page 191.

३. ऐ. आ. २.३.६.

४. Brhaddevata, iii, 154

५. तै. ब्रा. १,३.३. १३-१४

६. Macdonell and Kieth, op. cit. p. 224.

७. ऋ. सं. १.४३.४.

८. ऐ. ब्रा. अध्याय ३३; खंड ३-६

गाथाएं सूत लोगों के पास रहा करती थीं। आगे चलकर पालि साहित्य में अनुष्टुभ् छन्द में एक या कहीं कहीं दो गाथाएं एकत्र मिलती हैं। गद्यात्मक कथा एवं अन्त में उसका साररूप या बोध-विषयक विवेचन दो पंक्तियों की गाथा में प्रस्तुत किया जाता था। जातक में इस प्रकार गाथा छोटी हो गई है। जैन प्राकृत साहित्य में भी गाथा विद्यमान है। फिर भी ब्राह्मण ग्रंथों की-सी बड़ी गाथाएं अनन्तर के साहित्य में नहीं पाई जातीं। ब्राह्मणों में गाथा शब्द का प्रयोग सर्वत्र हुआ है[1]।

गाथा जातकों का महत्वपूर्ण अंग है। "गाथा" जातक का पद्यभाग है एवं शेष अट्ठकथाएं है। केवल ये गाथाएं कहानी निर्माण कर सकने में अक्षम हैं। उनके ऊपर वर्तमान एवं अतीत की घटनाओं का ढाँचा चढ़ाया जाता है तभी कथावस्तु का निर्माण होता है[2]। मूल "जातक" गाथा में ही है। वे बुद्धवचन है, अट्ठकथा में गाथा भाग को "अभिसम्बुद्ध गाथा" कहा है। त्रिपिटक की गाथाएं गद्य-कथाओं की अपेक्षा प्राचीन है। फिर भी आगे चलकर "गाथा' के रूप में कोई स्वतंत्र काव्य-विधा नहीं रही। नीतिकथा के सारतत्व को व्यक्त कर देने के लिए ही उसका उपयोग प्राचीन तथा बाद के बौद्ध साहित्य में किया गया। सम्भवतः जैन-चूर्णी की वररुचिकथा मे जो "लोककव्व जनपद" का उल्लेख पाया जाता है, वह भी इसी गाथा का रूप रहा होगा।

इससे स्पष्ट हुआ कि, नीतिकथा का जिस "लोकोक्ति" या "आभाणक" से प्राचीन सम्बन्ध रहा है उसीका वैदिक रूप हम "सूक्त" में देख पाते हैं एवं जो गाथा तत्व वहीं प्रविष्ट हुआ दिखाई देता है, वह भी लोकरूढ़ परम्परा की ही देन थी।

(३) कथा

वैदिक संहिताओं में कहानी के सन्दर्भ अवश्य मिलते है, किन्तु वे स्पष्ट नहीं हैं। संहिताओं मे कथा शब्द का प्रयोग हुआ है[3]। किन्तु वह कहानी के अर्थ में नहीं, अपितु 'कथम्' के अर्थ में। ब्राह्मणादि ग्रन्थों में कथा या कहानी के अर्थ में इतिहास, पुराण, आख्यायिका, आख्यान, व्याख्यान, अन्वाख्यान, अनुव्याख्यान आदि संज्ञाओं का प्रयोग हुआ है। किन्तु ब्राह्मणों में "कथा" शब्द आख्यान-वाचक नहीं है[4]।

---

१. ऐ. ब्रा. ३.६, श. प. ब्रा. १३.५.४.२ इत्यादि।

२. भरतसिंह उपाध्याय, 'पालि साहित्य का इतिहास' (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग) , २००८, पृ० २७८

३. ऋ. सं. १.४१.७, १.५४.१, माध्य. सं. १७.१७. तै. सं. २,५,८,४ मै. सं. १.४.१२ काठक सं. १०,७ काण्व सं. १८,२,३

४. शांखा० ब्रा. २.७.१२; जै. ब्रा., खं. ६

प्राचीन समय मे कथा शब्द का अर्थ रहा है 'चर्चा'[१] । महाभारत में इतिहास के साथ साथ 'कथा' शब्द का प्रयोग भी पाया जाता है। महाभारत के पूर्व ऐतरेय आरण्यक मे 'कथा' का प्रयोग हुआ है, जिसे सायण ने 'लौकिकी-वार्ता' कहा है[२] । महाभारत काल मे और उसके वाद कथा शब्द जन-प्रिय हो बैठा और प्राचीन काल मे 'इतिहास' शब्द से प्राप्त अर्थ 'कथा' शब्द से लिया जाने लगा। 'इतिहास' का प्रयोग बाद मे कहानी के अर्थ में होना बंद हुआ। सम्भव है, उपनिषद् के बाद तथा महाभारत के पूर्व भी लोकवाणी मे 'कथा' शब्द का कहानी के अर्थ मे प्रचलन प्रारम्भ हुआ हो। ऐतरेय आरण्यक के 'कथा' शब्द से यह स्पष्ट हो जाता है। फिर भी निरुक्त, अनुक्रमणी, बृहद्देवता इत्यादि अन्य वेदानुसारी ग्रंथों मे कहानी के अर्थ मे 'कथा' शब्द नही मिलता[३] ।

बौद्ध साहित्य में 'कथा' शब्द का प्रयोग 'अर्थकथा' के रूप मे होने लग गया था। बुद्धघोप-रचित 'जातकट्ठकथा' (५ वी शती) आदि मे 'अट्ठकथा शब्द का प्रयोग हुआ है। तृतीय बौद्ध-सभा के अध्यक्ष तिस्स मोग्गलिपुत्त द्वारा रचित 'कथावत्थु' मे, तथा 'धातुकथा' नामक ग्रंथ मे भी कथा शब्द का प्रयोग हुआ है, जो प्राचीन है। फिर भी यहां यह ध्यान मे रखना चाहिये कि, अभिधम्म पिटक के उपर्युक्त ग्रंथों के शीर्षकों मे जो 'कथा' शब्द है, उसका अर्थ कहानी नहीं है, अपितु 'चर्चा' ही है। धातुकथा (Discourse on the Elements) तथा 'कथावत्थु' (subjects of Discourse)[४] मे कथा का वही अर्थ है जो ऐतरेय आरण्यक और महाभारत के पूर्व 'चर्चा' के अर्थ मे प्रयुक्त होता था। बौद्ध ग्रंथों मे भी प्रारंभ मे इसी अर्थ मे यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। किन्तु 'निदान-कथा' (The narrative of the Beginning)[५] एवं 'जातकट्ठकथा' (खि. ४५०) के समय मे 'कथा' शब्द पूर्णतया कहानी आख्यायिका के अर्थ मे रूढ हो चुका था। फिर भी जातकट्ठकथा मे कथा का

---

१. Monier William's Sanskrit-English Dictionary, Oxford, p. 199, Katha=Conversation, Kathakram = the commencement of conversation; एवं कथान्त, कथायोग, कथा-विरक्त, कथालाप कथा-प्रसंग के अर्थ भी द्रष्टव्य है।

२. ऐ० आ० ५.३.३: "कथां वदेत् नास्य रात्रौ०" ३०, "कथां न वदेत् लौकिकी वार्तां न कुर्यात् ।" इति सायणः ।

३. Sieg, Die Sagestaffe des Rgveda, p. 25.

४. Winternitz, Indian Literature, II pp. 168, 169, 170.

५. Ibid; p. 186.

अर्थ 'अर्थ का विवेचन' या 'व्याख्या' ही है, (Explanations of the meaning or commentaries [१]) । 'जातकट्ठवण्णना' में जिन पांच संभागों—पच्चुप्पण्णवत्थु, अतीतवत्थु, गाथाएं, व्याकरण और सम्बोधन में जातक का स्पष्टीकरण हुआ है, उनमें से 'पच्चुप्पण्णवत्थु' एवं 'अतीतवत्थु' का कथा-विषयक संकेत के लिए महत्व बहुत है। बुद्धदेव ने किस प्रसंग पर यह जातक कह सुनाया, इसकी चर्चा 'पच्चुपण्णवत्थु' (story of the present time) में आ जाती है और बुद्धदेव के पूर्वजन्म की कहानी 'अतीतवत्थु' (story of the Past) में कही गई है। अर्थात् यहाँ हम 'वस्तु' का अर्थ कथा ही ले सकते हैं। यद्यपि 'महावस्तु' के 'वस्तु' का अर्थ महत्वपूर्ण विषय (The great subjects) हैं, फिर भी इस 'विषय' में ही घटना या प्रसंग (event) का भी अर्थ प्राप्त हो जाता है[२] । इस प्रकार 'गाथा-जातक' की व्याख्या (वण्णना) करते समय वर्तमान एवं अतीत प्रसंग प्रस्तुत किये गये। 'पच्चुप्पण्णवत्थु' तथा 'अतीतवत्थु' संज्ञाएं भी कथा-विषयक परिभाषा के क्रमिक विकास को प्रस्तुत करने में सहायक हैं।

बुद्धघोष ने जातकट्ठकथा में प्रथम बार 'गुणकथा' शब्द का प्रयोग किया है।[3]

संभव है नीतिकथा के अर्थ में उस समय बौद्ध साहित्य के अंदर यह शब्द प्रयुक्त रहा होगा। इसके पूर्व इस अर्थ मे 'गुणकथा' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ। 'गुणकथा' का अर्थ जो होस् डेविड्स ने अनुवाद में 'अच्छाई' के रूप में लिया है[४], वास्तव में वह पूरे अर्थ को स्पष्ट करने में असमर्थ है।

---

१. Ibid; p. 184

२. Ibid; p. 239 (foot note 3).

३. "भन्ते तुम्हाकमेव गुणकथामाति सव्वं आरोचयिंसु।"

जातकट्ठकथा, पच्चुपण्णवत्थु, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५१, पृ० १०४

४. (i) Then the Master entered the hall........, asked them, what are you sitting here talking about, O mendicants ?" "Lord," said they, "concerning your excellences !" (Translation in Buddhists Birth Stories, vol. I, London 1880; by T. W. Rhys Davids; Jataka I, 307; II 2 London;

(ii) "Tale of Virtue" Pali English Dictionary, Ed. by T. W. Rhys Davids Pt. III. The PTS., London 1952 p. 81.

'गुणकथा' एक ऐसे अर्थ में प्रयुक्त हुआ शब्द है जो बुद्धदेव की उपदेश-कथाओं पर चरितार्थ होता था। इसी लिए शिष्यों ने बुद्धदेव के सम्मुख उसका उपयोग किया। यह कहना कठिन है कि, यह शब्द मूल जातक की टीका में था या नहीं। सम्भव है महिन्द के समय में सिंहल द्वीप में जातक के साथ पहुंचा हो एवं सिंहली भाषा में भाषान्तरित कर लिया गया हो। बाद में बुद्धघोष या किसी अज्ञात बौद्ध लेखक के द्वारा[१] ४५० ई० में पुनः पालि में रूपान्तरित करते समय ज्यों का त्यों रख दिया गया हो। अथवा यह जातकट्ठकथा-कार के समय में परम्परा से प्राप्त लोकवाणी में रूढ शब्द जातकट्ठकथा में प्रवेश कर गया हो। 'गुणकथा' के 'गुण' शब्द का यही अर्थ लिया जा सकता है कि, 'अतीत-वत्थु' में भगवान् बुद्ध की जिससे सर्वातिशयता रहेगी एवं उपदेश ग्रहण किया जा सकेगा, वह तत्व। कहानी के रूप में यह तत्व प्रकट हो जाने पर बुद्धदेव की इन दृष्टान्तकथाओं को 'गुणकथा' कहा जाना उचित ही था। आज के अर्थ में इस शब्द के अंदर दृष्टान्त-कथा (Parable) तथा नीतिकथा (fable) दोनों का अन्तर्भाव हो जाता है। केवल बुद्धदेव की 'उत्तमता' के विषय में बातचीत शिष्यों की अवश्य चल रही थी, फिर भी 'गुणकथा' का संकेत नीतिकथा की ओर ही था, जो पूछे जाने पर बुद्धदेव द्वारा 'निग्रोधमिग जातक' के रूप में कही गई। कहानी से निकले नीतिपूर्ण तथ्य का ही अर्थ 'गुण' शब्द से अभिप्रेत हो सकता है। इस अर्थ मे, बुद्धदेव की विगत जन्म-कथाओं से उपदेश या नीतितत्व प्राप्त हो जाने पर उसे बौद्ध सम्प्रदाय में 'गुणकथा' कहा जाता होगा तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

'गुणकथा' का एक दूसरा अर्थ भी प्रस्तुत करना आवश्यक है। 'कथा' शब्द का अर्थ कहानी या जातक न लेकर सामान्य विवेचन या चर्चा लिया जा सकता है। 'कथा' का चर्चा के अर्थ में प्रयोग प्राचीन बौद्ध ग्रंथों में हुआ करता था[२]। इस अर्थ को लेकर हम 'गुणकथा' का यह भी अर्थ ले सकेंगे कि, भगवान् बुद्ध

---

१. देखिये, यह मत कि, धम्मपद और जातकों की टीका बुद्धघोष ने नहीं की :

(अ) Buddhist Legends, 1921, Part I, By E. W. Burlingame; p. 59.

(आ) Rhys Davids, Buddhist Birth Stories, pp. XIII-XVI.

२. Pali-English Dictionary, Rhys Davids; pt. III, p. 12.—1 conversation, 2. speach, sermon, discourse, lecture, talk........(अंगुत्तर १.१३१), विनयपिटक १. २०३, १६०.

के चरित्र में जो गुण (virtues) परिलक्षित होते थे उनकी उनके शिष्यों द्वारा की गई चर्चा, या उनके द्वारा निर्दिष्ट गुण अर्थात् धर्मतत्व की चर्चा, विवेचन या वहस । इस अर्थ को हम ह्रीस् डेव्हिड्स के Buddhist Birth Stories में प्राप्त अनुवाद के निकट का मान सकते है । यदि यह अर्थ लिया जाता है तो यह भी मान लेना होगा कि, प्राचीन बौद्ध साहित्य में जो जातक गाथाएं एवं उनकी मूल टीका रही होगी, उसी में इस शब्द का भी प्रयोग हुआ होगा, जो अनन्तर सिहली से पुनः पालि में प्रवेश कर चुका एवं जातकट्ठकथा में पाया जाने लगा।

एक तीसरा अर्थ भी हो सकता है : गुणकथा को गौणकथानक के अर्थ में लिया जाना। किन्तु इस अर्थ की पुष्टि नहीं हो सकती। क्योंकि, जातक में बुद्धदेव की पूर्वजन्म-कथा को तो विशेष प्रधानता रही है। 'जातक' संज्ञा से ही यह स्पष्ट है।

गुणकथा के, प्रारंभ के जो दो अर्थ हम दिखा चुके हैं, उन पर समन्वयात्मक एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार किया जा सकता है। यह तथ्य स्पष्ट है कि बौद्ध धर्मग्रंथों का संकलन जब होने लगा था, उस समय "गुणकथा" का अर्थ बुद्धदेव के विषय में उनके "गुणों" की चर्चा मात्र था। किन्तु जैसे जैसे जातक-कथाओं में रुचि बढ़ने लगी एवं धर्म के प्रचार के लिए उनका उपयोग और भी होने लगा, वैसे वैसे बुद्ध द्वारा निर्दिष्ट धर्मतत्व का ही अर्थ गुण शब्द से लिया जाने लगा। आगे चलकर बौद्ध साहित्य के उत्तर-काल में "गुणकथा" का अभिप्राय "जातक" सम्बन्धी नीतिकथाओं एवं दृष्टान्त-कथाओं से लिया जाने लगा। इस प्रकार "गुणकथा" एक ऐसी बौद्ध संज्ञा है जो उपदेश देनेवाली जातककथाओं के लिए प्रयुक्त होती थी।

जैन महाराष्ट्री के कवि हरिभद्र ने अपनी "समराइच्चकहा" (Samaraicca Kaha) में "धर्मकथा" शब्द का प्रयोग किया है[१]। हरिभद्र निश्चित रूप से सिद्धर्षि से पूर्ववर्ती हैं, जिन्होने "समराइच्चकहा" से प्रभाव लेकर संस्कृत में "उपमिति-भव-प्रपञ्चा कथा" नामक प्रतीक-कथा लिखी (९०६ खिस्ताब्द)[२]। "धर्मकथा" से संकेत "समराइच्चकहा" में निवेदित उन कथाओं की ओर है जिनमें पात्र पाप के कारण अगले जन्मों में पशु या पक्षी हो गये हैं, और इनकी कुछ नीतिकथाएं श्रृंखला-प्रणाली से कही गई है। "धर्म" का वैदिक परम्परा से प्राप्त अर्थ यह है कि, ईश्वर एवं मानव सम्बन्ध को विशिष्ट आचार या विचार-

---

१. Dr. Winternitz, Indian Literature, Vol. II, p. 522.

२. Ibid; p. 526.

प्रणाली को अपनाकर स्थापित करने का प्रयास जिसके द्वारा होता है वह साधन। किन्तु यह अर्थ बौद्ध एवं जैन संप्रदाय के अनुसार नहीं लिया गया। इन संप्रदायों के लिए मानवीय कर्म एवं वासना को उदात्त रूप देना यही धर्म का अर्थ अभिप्रेत रहा है। जैन कहानी में पात्र प्रथम कर्मभ्रष्ट और वासना का शिकार हो जाता है, वही बाद में किसी साधु या महात्मा से उपदेश ग्रहण कर लेता है और सब सम्पत्ति तथा वैभव को छोड़ "जिन" हो जाता है। इस प्रकार की कहानी को "धर्मकथा" मान लिया हो तो स्वाभाविक है। इस धर्मकथा से शिक्षाप्रद आख्यान का अर्थ व्यक्त हो जाता है।

आज की विकसित नीतिकथा की सर्वप्राचीन कल्पना का बीज बौद्ध एवं जैन कवियों ने क्रमशः "गुणकथा" एवं "धर्मकथा" इन संज्ञाओं को रखकर बो दिया था। इस प्रकार की स्वतंत्र कथा का उल्लेख करने की प्रथम प्रवृत्ति बौद्ध एवं जैन कवियों में प्रादुर्भूत हुई। संस्कृत साहित्य में, बड़ी कहानियों और प्रबन्धात्मक साहित्य में उपांगभूत रहकर ही ब्राह्मणादि ग्रंथों एवं महाभारत, रामायणादि आर्ष महाकाव्यों में छोटी उपकथा, प्रधान "आधिकारिक" वस्तु को पुष्ट करती हुई "प्रासंगिक" कथावस्तु का काम करती थी[१]। किसी प्रबन्ध या तद्गत भाष्य की पुष्टि के लिए ही वैदिक कहानियां प्राप्त होती है। बुद्ध पूर्व काल में कहानी अपने आप में स्वतंत्र न थी।

बौद्ध साहित्य में छोटी छोटी लोककथाएं प्रवेश कर गई। क्योंकि, जनता में प्रचार के लिए छोटी सी कहानियां कहकर उनमें धर्मतत्व का प्रचार करना बौद्धों द्वारा जरूरी समझा गया। इसके फलस्वरूप स्वतंत्र छोटी कहानियों के युग का प्रारभ हुआ। नीतिकथा (Fable) उसी छोटी कहानी का एक रूप होने से उसे पनपने के लिए यही उचित समय था। इसीलिए सम्भवतः नीतिकथा की प्राचीन कल्पना को ध्यान में रखकर ही बौद्ध एवं जैन कवियों ने "गुणकथा" एवं "धर्मकथा" शब्द अपने ग्रंथों में प्रयुक्त किये थे। इससे जान पड़ता है कि, इन आचार्यों का ध्यान नीतिकथा की प्रमुख विशेषता की ओर अवश्य आकृष्ट हुआ था। यह भी सम्भव है कि, उन दिनों प्रचलित लोकवाणी में भी इन संज्ञाओं का प्रयोग नीतिकथा के अर्थ में होता होगा। हम सब देखते है कि, ब्राह्मण आदि वैदिक ग्रंथों में यद्यपि कहानी के "आख्यान" आदि रूप प्राप्त होते है फिर भी बौद्ध एवं जैन कवियों ने लौकिक कहानी की नीतिप्रतिपादन करने की विशेषता की ओर विशेष ध्यान दिया। नीतिकथा के पारिभाषिक विकास की दृष्टि से यह कोई कम महत्वपूर्ण घटना नहीं है।

---

१. धनञ्जय-रचित दशरूपक, प्र० १, का. १२, वहीं धनिक की वृत्ति।

गुणाढ्य की विख्यात 'वृहत्कथा' के शीर्षक में ही 'कथा' का उपयोग किया गया है। अद्‌भुतकथा, महाकथा और वृहत्कथा ये नये शब्द वृहत्कथानुप्राणित वृहत्कथा-मंजरी तथा कथासरित्सागर में प्राप्त होते हैं। महाभारत के उत्तर-कालीन साहित्य में 'कथा' का उपयोग कहानी के लिये होने लग गया था।

हेमचंद्र ने परिशिष्टपर्व में[1] 'कूटकथानक' एवं 'कल्पितकथा' जैसे शब्दों का प्रयोग किया है। 'कल्पितकथा' का इस प्रकार प्रथम बार उपयोग कर हेमचन्द्र ने सत्यकथा से उसकी भिन्नता दिखा दी है। यह कल्पितकथा के सामान्य अर्थ का ही वहन करती है। इसलिए नीतिकथा के पारिभाषिक विकास में इस संज्ञा का भी विशेष महत्व है।

(४) आख्यायिका

वैदिक साहित्य के प्रारम्भ काल में 'आख्यायिका' शब्द नहीं मिलता। मूल धातु 'ख्या' का वैदिक साहित्य में 'देखने' के अर्थ में प्रयोग हुआ है[2]। बाद मे 'आख्यायिका' का अर्थ हुआ : एक ऐसी प्राचीन कथा, जो परम्परा से प्राप्त हो। वैदिक साहित्य के उत्तरकाल में तैत्तिरीय-आरण्यक (१.६.३) में एक स्थान पर यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। फिर भी यह किस अर्थ में वहाँ रखा गया है यह स्पष्ट नहीं होता[3]। महाभारत एवं अनन्तर के साहित्य में आख्यायिका शब्द 'कथा' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। व्याकरण के ग्रंथों में भी आख्यायिका, आख्यान आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। पाणिनि के सूत्र 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' (४,३,८७) पर जो "लुबाख्यायिकाभ्यो वहुलम्" वार्तिक है, उसमें आख्यायिका एवं आख्यान में कुछ भेद दिखा दिया गया है। किन्तु यह भेद लक्षण न देकर केवल उदाहरणों से ही स्पष्ट किया है :—

"(वा०) अधिकृत्य कृते ग्रंथे लुबाख्यायिकाभ्यो वहुलम्।
भाष्यम्—अधिकृत्य कृते ग्रन्थे इत्यत्राख्यायिकाभ्यो वहुलं लुग् वक्तव्यः।
वासवदत्ता। सुमनोत्तरा। न च भवति भैमरथी[4]।"

और यह भाष्यवार्तिक—

"आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च लुग् वक्तव्यः। आख्यायिका।
वासवदत्तिकः। सौमनोत्तरिकः।"

---

१. परिशिष्ट पर्व ३, १८६–२१२।

२. Monier William's Sanskrit English Dictionary, Oxford, p. 277.

३. Macdonell and Kieth, Vedic Index, I. p. 52.

४. महाभाष्य, Kielhorn's edition, II, p. 313.

कैयट की "वासवदत्तिक" की व्याख्या भी द्रष्टव्य है : "वासवदत्तामधिकृत्य कृताख्यायिका। अधिकृत्य कृते ग्रन्थ इत्यत्रार्थे वृद्धाच्छः। तस्य लुब्राख्यायिकाभ्यो बहुलमिति लुप्। ततोऽनेन ठक्"। यह "ठक्" "तद्वेद" अर्थात् यह किसी विद्या (Lore) के लिए विद्यार्थी या उसमें प्रवीण व्यक्ति की ओर निर्देश हैं।

अभिप्राय यह है कि, यवक्रीत, प्रियंगु, ययाति आदि पुरुषों को कथाएं आख्यान हैं एवं वासवदत्ता, सुमनोत्तरा की कहानियां आख्यायिका के अन्तर्गत समझनी चाहिये। जिस वासवदत्ता का उल्लेख पतंजलि ने किया है वह है बृहत्कथा, जातक आदि ग्रंथों में प्राप्त लोकप्रिय कहानी। आगे चलकर भास, सुबंधु आदि संस्कृत कवियों पर भी इसका प्रभाव पड़ा है। "सुमनोत्तरा" वही है जो बौद्ध साहित्य में[१] पाई जाती है। इन उदाहरणों से हम यही भेद समझ सकते है कि, "आख्यानों" मे देवता, देवर्षि या राजर्षि की अति प्राचीन कथा और "आख्यायिका" में लोककथा के रूप मे परम्परा से प्राप्त लौकिक कथा या ऐतिहासिक किंवदन्ती होती है। आख्यायिका मे दिव्य व्यक्ति का चरित्र वर्णित नहीं होता। इस दृष्टि से नीतिकथा के लिए आख्यान से आख्यायिका कहीं अधिक निकट है। बाद में संस्कृत साहित्य शास्त्र में "आख्यायिका" संज्ञा का एक निश्चित पारिभाषिक अर्थ स्थिर हो चुका है।

(५) आख्यान

ऐतरेय ब्राह्मण में "शुन.शेपाख्यानम्" का उल्लेख है[२]। वहीं "आख्यानविद्" अर्थात् (सौपर्ण) आख्यान को जाननेवालों का भी उल्लेख है[3]। सौपर्णाख्यान को शतपथ ब्राह्मण मे 'व्याख्यान' भी कहा गया है[४]। आख्यान में ही "परिप्लव"

---

१. देखिये, राजगृह का श्रेष्ठी सुमन एवं तत्पत्नी उत्तरा की कथा :

अंगुत्तर Commentary (1. 240. II.), विमानवत्तु Commetary (p. 631 ff. Vinaya), Dhammapada Commentary, (III.3.2.) and विसुध्धमग्ग (pp. 380-1), अधिक विवरण के लिए—The Poona-Orientalist, vol. 7. April-Jan. 1942-43 "Sumanottara", by Vasudeva S. Agrawala, p. 197.

२. ऐ. ब्रा. आनंदाश्रम संस्कृत ग्रंथावलि, १६३१; (७.१८.१०) पृ. ८५८-८५६।

३. वही, ३.२५.१ पृ. ३५४-३५५।

४. शतपथ ब्रा. ३,६,७, ७; Macdonell & Kieth—Vedic Index, II, p. 52.

नामक एक अंग है, जिसका अर्थ है:—अश्वमेध-यज्ञ के अश्व का परिभ्रमण होता रहता है तब कही जाने वाली कहानियों की आवृत्ति या चक्र[1]। संहिता में आख्यान पद्यमय ही मिलते हैं। फिर भी गद्यभाग का लोप हो चुका होगा, इस प्रकार की कल्पना पश्चिम के हर्टेल, श्रोडर आदि विद्वानों ने की है।

"निदान" संज्ञा की भी महत्ता "आख्यान" के लिए निरुक्तकारों द्वारा दिखाई गई है। निरुक्त में निदान एवं नैदानिक शब्द आये हैं। इनका इतिहास के साथ घना सम्बन्ध है। निदान का अर्थ है निमित्तकारण या हेतु। किन्तु निरुक्त में इसका अर्थ कथाविषयक परिभाषा में विशेष रूप में स्थिर कर दिया गया है। इतिहास को षड्गुरुशिष्य ने निदानभूत कहा है। आख्यान का सम्बन्ध मन्त्र की अभिव्यक्ति के साथ जोड़ दिया गया है। निरुक्त में "आख्यान" का विवेचन "निदानप्रख्यापन" शब्द के प्रयोग द्वारा किया गया है[2]। स्पष्ट है कि मन्त्राभिव्यक्ति ही आख्यान या इतिहास का कारण है, हेतु है। निरुक्त के अनुसार बिना किसी आधार के, आख्यान या इतिहास को समर्थन प्राप्त नहीं हो सकता। परम्परा का कोई आधार उनके लिए आवश्यक है। जातकट्ठकथा-वण्णना में प्रस्तावना के रूप मे निदान कथाएं कही गई हैं। वहाँ भी, निदान का यही अर्थ है। गौतम को बुद्धता प्राप्त होने के लिए दस पारमिताएं कारण रही हैं, उन्हीं की कथाएं निदान कथा कही गईं। फिर भी निरुक्त को छोड़कर अन्यत्र कहीं पर भी "निदान" का कथा के सम्बन्ध में पारिभाषिक उपयोग नहीं हुआ है।

सीग महाशय का कथन है कि निदानकथा के रूप में नैदानिकों का पाठ-संग्रह रहा होगा। "निदानं ग्रन्थस्तद्विदो नैदानाः" यह महीधर का वचन भी प्रमाण में उन्होंने उपस्थित किया है[3]।

डॉ० वेबर के अनुसार व्याख्यान, आख्यान, कथा, आख्यायिका, इतिहास और पुराण आदि शीर्षक कात्यायन के समय में साहित्यिक ग्रन्थों के लिए प्रयुक्त होते थे।

(६) अन्वाख्यान-उपाख्यान

इस शब्द से ही स्पष्ट है कि, आख्यान का यह अनुसरण करता है। इसे

---

१. श. प. ब्रा. 13,4,3,2,15; Macdonell's translation of the word परिप्लव is 'Cyclic' (Vedic Index, 1, p. 52.).

२. निरुक्त ६, ६;

३. Sieg—Die Sagenstaffe Des Rgveda, pp. 28; Vedtc Index, P. 122; Indischen Studien, I., p. 147.

उपकथा कह सकेंगे। शतपथ ब्राह्मण में तीन स्थान पर यह शब्द प्रयुक्त हुआ है[१]। फिर भी, इतिहास एक शुद्ध कथा है एवं अन्वाख्यान गौण या पूर्ति करने वाला निवेदन[२]। बड़ी कहानी में जो गौण कथा कही जाती है, उसे उपाख्यान कहा जाता है।

"अनुव्याख्यान" शब्द भी बृहदारण्यकोपनिषद् में प्राप्त है। झीग महाशय अनुव्याख्यान एवं अन्वाख्यान को एकार्थवाचक मानते है[३]।

अर्थात् "आख्यान" शब्द ब्राह्मणों में प्रयुक्त है एवं अति प्राचीन है यह स्पष्ट है। अब हम यह देखेंगे कि, इस "आख्यान" का उत्तर वैदिक एवं अनन्तर के साहित्य में क्या स्वरूप रहा है।

(७) बृहद्देवता में निर्दिष्ट तीन संज्ञाएं

"आचिख्यासा" "संलाप" और "आख्यान" या "पवित्राख्यान" ये तीन पारिभाषिक संज्ञाएँ कथा के अर्थ में शौनक ने अपने बृहद्देवता ग्रंथ में निर्दिष्ट की है[४]। बृहद्देवता ग्रंथ निरुक्त एवं सर्वानुक्रमणिका के मध्यकाल में (ख्रि. पू. ४०० वर्ष) लिखा गया है। शौनक ने "आचिख्यासा" का उदाहरण "न मृत्युरासीत्"[५] दिया है।

"आचिख्यासा" का अर्थ है निवेदन या कथन[६]। उदाहरण में दी हुई कहानी है: "विश्व के प्रारंभ काल मे मृत्यु नहीं था। अमृतत्व अर्थात् जीवन भी नही था। तम ही सर्वत्र था, पानी था। वहाँ कोई तपस्या कर रहा था। उसे इच्छा हुई और मानस की प्रेरणा से रेत उत्पन्न हुआ। उसी से सृष्टि की उत्पत्ति हुई।" आचिख्यासा इस प्रकार की कहानी है।

"संलाप" का अर्थ है संवाद। "उपोप मे" (ऋग्वेद १, १२६,७) उसका उदाहरण है जिसे शौनक ने प्रस्तुत किया है। यह एक अत्यन्त प्राचीन कहानी

---

१. श. प. ब्रा. ६,५,२,२२,६,४. ६,६,४,८

२. Vedic Index, 1. p. 27 तथा Sieg, Sagestaffe des Rgveda p. 34.

३. Vide Macdonell & Kieth, op. cit. 1. p. 17.

४. Macdonell's edition Brhaddevata, Vol. 1. Text, Chapter 1, p. 4.

'आचिख्यासाथ संलापः पवित्राख्यानमेव च।"

५. ऋ. सं. १०. १२९. २; बृ. दे. १. ५८; निरुक्त ७. ३.

६. Macdonell : Brhaddevata II, p. 12.

का अवशेष रूप-कथोपकथन है। इसके पात्र हैं इंद्र, स्वनय भावयव्य और भावयव्य की पत्नी रोमपा। इनका संवाद इस कथा में है[१]।

"आख्यान" या "पवित्राख्यान" का भी उदाहरण शौनक ने दिया हुआ है "आख्यानं तु ह्ये जाये विलापः स्यान्नदस्य मा[२]"। विख्यात कथा "पुरुरवा और उर्वशी" इस कथा में कही गई है[3]। प्राचीन परम्परा से प्राप्त कहानी को आख्यान कहा है और विशेषतया उसमें जो पात्र हैं, उन्हें काल्पनिक नहीं माना जाता।

मेकडोनेल महाशय ने "आचिख्यासा" को narrative तथा "पवित्राख्यान" को (Purifying) narrative ये प्रातिवाची शब्द दिये हैं। संस्कृत में "आचिख्यासा" का वास्तविक अर्थ "कुछ कहने या व्यक्त करने की इच्छा या हेतु[४]" है। शौनक ने जिस ऋग्वेद की कथा का निर्देश किया है वह एक उत्पत्तिकथा ही है। किन्तु कहने की इच्छा मात्र रूप अर्थ शौनक को अभिप्रेत नहीं रहा। "आचिख्यासा" से "पुराण" का अर्थ लिया जा सकता है। क्योंकि पुराण का प्रयोग प्राचीन काल मे इसी प्रकार की उत्पत्ति-कथा के अर्थ में होता था। इस तथ्य की पुष्टि सायण के भाष्य से भी होती है[५]। आख्यान का रूप भी इतिहास से कोई भिन्न नहीं था। पुरुरवा और उर्वशी की कथा वेद-कालीन (और संभवतः वेद-पूर्व-कालीन) लोककथा ही थी। उसे आर्यों ने दैवतकथा (Myth) का रूप दे डाला है।

महाभारत में आख्यान को "साङ्गोपनिषदं वेदांश्चतुराख्यानपञ्चमान्" आदि वचन से इतिहास-पुराण के अन्तर्गत ही मान लिया गया है। महाभारत में आख्यान, कथा, इतिहास, पुराण, पुरावृत्त आदि शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। फिर भी, "इतिहासवेद" तथा "पुराणवेद" शब्द उसमें पाये जाते हैं किन्तु "आख्यानवेद" का कोई उल्लेख नहीं हैं। इसका कारण ययाति या यवक्रीत आदि फुटकल कहानियों का ही "आख्यान" शब्द से अभिप्राय महाभारत

---

१. वही, भाग १, पद्य ५२, पृ. ५.

२. वही, १.५३

३. ऋ. सं. १०. ९५. १.

४. Monier Williams' Sanskrit English Dictionary, Oxford; p. 115. निरुक्तम् दुर्गाचार्य-व्याख्या, नि० सा० प्रेस, १९३०, ७.३ पृ० ३३४ 'आचिख्यासा आख्यातुमिच्छा'।

५. ऐ० ब्रा० सायण-भाष्य का प्रारम्भ पृ० ४।

में रहा होगा। झीग महाशय का यही मत है जो समीचीन जान पड़ता है[१]। क्योंकि, महाभारत के अनन्तर ही वृहत्कथा के रूप में कहानियों का विशाल संकलन प्रस्तुत हुआ, और वह महाभारत एवं रामायण को समकोटि का ग्रंथ हो बैठा। किन्तु यहाँ स्पष्ट कर देना चाहिये कि, उन दिनों कथा या आख्यान का विषयभेद की दृष्टि से उपयोग नहीं हुआ करता था। आख्यान का अर्थ फुटकल कहानियाँ भले ही रहा हो, किन्तु वृहत्कथा की कहानियाँ "कथा" के अन्तर्गत रखी गई हैं, जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है।

(८) अर्थवाद

ब्राह्मण-साहित्य में मन्त्रों एवं यज्ञीय विधि की व्याख्या करते समय कुछ "कथाएं" कही गई है। उन्हें "अर्थवाद" संज्ञा प्राप्त है। ऐतरेय-ब्राह्मण के भाष्य का प्रारंभ करते समय सायणाचार्य ने अर्थवाद का स्वरूप स्पष्ट कर दिया है[२]। अर्थवाद याने "भूतार्थवाद", अर्थात् जो घटना हो चुकी है उसकी वार्ता। संस्कृत में आख्यायिका, इतिहास एवं अर्थवाद में तत्वशः कोई भेद नहीं है[३]। जिस प्रकार ब्राह्मण ग्रंथों में "विधि" और "अर्थवाद" की स्थिति साथ साथ पाई जाती है, ठीक उसी प्रकार "जातक" के साथ उसके स्पष्टीकरण (अर्थवाद) के लिए "अट्ठकथा" का उपन्यास होता है। जातकट्ठकथावण्णना में जो "अट्ठकथा" है वह संस्कृत अर्थवाद का ही रूपान्तर है। ये अट्ठकथाएँ जातक एवं अन्य कथाओं को कह कर गाथा का स्पष्टीकरण करती हैं, जैसे कि ब्राह्मण ग्रंथों में "अर्थवाद" के अन्तर्गत "इतिहास" एवं "आख्यान"[४] आते हैं। किन्तु संस्कृत में अर्थवाद का इतिहास के साथ सामञ्जस्य स्थापित हो गया वैसा वह अट्ठकथा का पालि में नहीं हुआ। पालि में "जातकों" का स्पष्टीकरण यही अर्थ अट्ठकथा को प्राप्त हुआ है।

नीतिकथा और अर्थवाद के स्वरूप को देख लेने पर यह कहा जा सकता है कि, जहाँ तक किसी विधि या सिद्धान्त के प्रतिपादन या स्पष्टीकरण के लिए कहानी कहने की प्रणाली का प्रश्न है, अर्थवाद एवं नीतिकथा एक ही है।

---

१. Sieg, Die Sagenstaffe des Rgveda.

२. ऐ. ब्रा. (आ. सं० ग्र०) १६३१, पृ० ३ :

'विरोधे गुणवादः स्यादनुवादोऽवधारिते।
भूतार्थवादस्तद्धानादर्थवादस्त्रिधा मतः॥ इति।

३. Steg, Dte Sagenstaffe des Regved. p. 19.

४. Winterntiz, Indian Literature, vol. II, p. 185 foot-note No. 1.

भिन्नता केवल तपसील की ही हो सकती है। वास्तव में वैदिक "अर्थवाद" ही तो आज की नीतिकथा का प्राचीन रूप है। विधि एवं देवताओं की कथाओं पर विश्वास न होने के कारण बौद्धों ने ब्राह्मणधर्म का तो परिहार किया, किन्तु अपने उपदेश में इस अर्थवाद-प्रणाली का ज्यों का त्यों ग्रहण उन्होंने कर लिया था। फिर भी यह कहने की स्थिति में हम अवश्य हैं कि, बौद्ध ग्रंथों में भी जातकादि कथाओं एवं जैनियों की चूर्णी अवचूर्णी कथाओं को सांप्रदायिक रूप आखिर मिल ही गया है। वस्तुतः धर्म के प्रचार से छुटकारा पाने का सौभाग्य इन कथाओं को बृहत्कथा एवं पंचतंत्र में ही मिल पाया। पंचतंत्र में अपने नीतिवचन की पुष्टि कहानी के द्वारा की गई है। यह प्रणाली अर्थवाद से भिन्न नहीं है। इस अर्थ में अर्थवाद नीतिकथा का पूर्व रूप है। इस संज्ञा से कहानी का सर्वाधिक प्राचीन निवेदन-कार्य (narration) व्यक्त होता है।

(९) इतिहास-पुराण

विचार एवं व्याख्या की दृष्टि से वैदिक संप्रदाय इस प्रकार के हैं:,

१. नैरुक्ता:

२. याज्ञिकाः

३. वैयाकरणः

४. ज्यौतिष्का:

५. भाषाविद:

६. सम्प्रदायविद:

७. अध्यात्मविद: तथा

८. ऐतिहासिकाः[१] (Legendarians)

इतिहास में केवल कथाओं का प्राचीन संग्रह अपेक्षित है।

प्राचीन काल में इतिहास-पुराण संज्ञाओं में कोई विशेष भेद परिलक्षित नहीं होता था। इनका अर्थ "प्राचीन कथा" ही हुआ करता था। सायणाचार्य ने अपने भाष्य में [२]लिखा है: —

"देवासुराः संयता आसन्नित्यादय इतिहासाः। इदं वा अग्रे नैव किंचनाऽऽसीन्न द्यौरासीदित्यादिकं जगतः प्रागवस्थानमुपक्रम्य सर्गप्रतिपादकं वाक्यजातं पुराणम्।"

स्पष्ट है कि, देवासुर-कथा को "इतिहास" एवं विश्व की उत्पत्ति की कथा

१. Hariyappa, Rgvedic Legends through the Ages; Poona, p. 133.

२. ऐतरेय ब्राह्मण, सायण-भाष्य, पृ० ४.

को "पुराण" कहा गया है। किन्तु सायण द्वारा प्रदर्शित यह भेद अत्यंत प्राचीन समय में नहीं दिखाई देता। "इति ह आस" (ऐसा यह था) इस व्युत्पत्ति से भूतार्थ-कथा को ही "इतिहास" कहा जाता था। वृहद्देवता में "इतिहासः पुरावृत्तं ऋषिभिः परिकीर्त्यते" यह इतिहास की व्याख्या शौनक ने की है[१]। महाभारत में इतिहास के अन्तर्गत प्राणिकथाओं को भी निर्दिष्ट कर दिया है[२]।

"इतिहास–पुराण" शब्द प्रथम अथर्ववेद[3] तथा ब्राह्मण ग्रंथों में पाया जाता है। इन ग्रंथों में Legends, Myths या आख्यायिका, आख्यान आदि के अर्थ में "इतिहास-पुराण" का प्रयोग हुआ है। बाद में महाभारत में "कथा" शब्द इतिहास के साथ भी आने लगा। इतिहास शब्द का प्रयोग आगे चलकर कम प्रमाण में हुआ। आख्यायिका, आख्यान आदि शब्द तो महाभारत में भी यत्रतत्र दिखाई देते हैं।

अथर्ववेद में "पुराण" का अभिप्राय "पुरानी कहानी" से ही है[४]। इससे स्पष्ट है कि, यह प्रकार अथर्ववेद के समय में भी प्राचीन रहा है। "पुराण" की धारा वैदिक युग में दैवत-कथा तथा उत्पत्तिकथाओं के रूप में अक्षुण्ण बहती हुई अष्टादश पुराणों एवं उपपुराणों के सागर में परिणत हुई है।

शतपथ ब्राह्मण में (१३,४,३,११,१३) "अन्वाख्यान" एवं "इतिहास" का भेद दिखाया गया है जो स्पष्ट नहीं है[५]। अपरञ्च, जैमिनीयोपनिषद् (१.५३), वृहदारण्यकोपनिषद् (१,४,१०; ४,१,६) तथा छान्दोग्योपनिषद् (७,१) में भी "इतिहास" शब्द प्रयुक्त है। शांखायन-श्रौतसूत्र में "इतिहासवेद" तथा गोपथ-ब्राह्मण में "पुराण" का उल्लेख है। शतपथब्राह्मण आदि ग्रंथों में इतिहास-पुराण शब्दों की एकत्र अवस्थिति इतनी अटल पाई गई है कि, इतिहास-पुराण नामक कोई किंवदन्ती, वीर-कथा, उत्पतिकथा और वंशकथा का संकलन रहा होगा इस प्रकार की सम्भावना भी ग्रीग महाशय द्वारा प्रकट की गई है[६]। फिर भी पतञ्जलि "इतिहास" एवं "पुराण" को अलग अलग

---

१. वृहद्देवता, ४.४६.

२. शान्तिपर्व, राजधर्मपर्व, अध्याय १११ तथा अन्य।

३. अथर्ववेद १५, ६.४.

४. वही ११, ७.२४. १५,६,४; vide Griffith, Hymns of the Atharva Veda, 1917, Vol. II. pp. 79 & 19 (foot note).

५. Macdonell and Keith, Vedic Index, I. p. 76.

६. Die Sagenstaffe des Rgveda, p. 25, p. 33.

मानते दिखाई देते हैं। निरुक्त में भी यास्क ने इस संभावित ग्रंथ का कहीं उल्लेख नहीं किया है। इससे झीग महाशय की संभावना की पुष्टि नहीं की जा सकती।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में तैत्तिरीय संहिता से उद्धरण देकर (३,१२,८,४७) इतिहास-पुराण की चर्चा की गई है, उसका भाष्य भट्टभास्कर द्वारा "इतिहास-पुराणानि च सर्पाणां देवजगतां यक्षादीनां च प्रतिपादका ग्रन्था:" इस वचन से किया गया है। इससे लगता है, प्राचीन समय में "इतिहास-पुराण" के अनेक ग्रंथ रहे होंगे।

सूत-परम्परा से ही इतिहास-पुराण की धारा प्रवाहित हुई थी। वैदिक ऋषियों के समकक्ष सूतवर्ग की भी अभिव्यक्ति इन आख्यानों के द्वारा हुई थी। डा. आर. एन. दान्डेकर का कथन है कि, संहिता काल में सूत-साहित्य ग्रन्थ-निबद्ध नहीं हो सका था[१]। फिर भी आख्यानों को जानने वालों के कई प्राचीन वर्ग रहे होंगे इस बात की पुष्टि ब्राह्मण ग्रंथों तथा पतञ्जलि के उल्लेख से हो सकती है। इन आख्यानविदों ने अपने ग्रन्थ बनाये होंगे एवं उनके परिभाषात्मक संकेत भी स्थिर हो सके होंगे ऐसा अनुमान हम कर सकते हैं।

निरुक्त में "इतिहास" शब्द का प्रयोग हुआ है[२]। पुराणकथाओं एवं दन्तकथाओं के माध्यम से ऋग्वेद का अर्थ लगाने वाले पण्डित "ऐतिहासिक" कहे जाते थे। दैवत-कथा (Myth) से अर्थ लगाने वाले अन्य पण्डित भी थे[३]।

"इतिहास-पुराण" को महाभारत में पंचमवेद मान लिया गया है। बौद्धों द्वारा भी इसे मान्यता मिल चुकी थी[४]। जैन सम्प्रदाय में भी, पुराण के लक्षण के[५] अनुसार आदि पुराण की रचना की गई थी। किन्तु बौद्धों ने पुराण शब्द का प्रयोग सर्वत्र नहीं किया एवं उसके पंच लक्षण को वे मानते नहीं थे।

---

१. The Mahabharata, Origin and Growth, University of Cylone, Revised, April, 1954, p. 76.

२. निरुक्त, ४.६. "तत्र ब्रह्मेतिहासमिश्रम्।
ऋङ्मिश्रं, गाथामिश्रं भवति॥"

३. Macdonell and Kieth, Vedic Index, I.

४. बुद्धघोष : सुमंगल विलासिनी टीका : "अथब्बणवेदं चतुत्थं कत्वा इति ह आस इति ह आसति ईतिसवचनं पटि संयुतो पुराण-कथा संखातो इतिहासो पंचमो," P. T. S., पृ० २४७.

५. पुराण का लक्षण :—"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम्॥" इति।

गौतम धर्मसूत्र में "पुराण" का अध्ययन करने के लिए कहा गया है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (खि. पू. ५०० वर्ष) में भविष्यपुराण का उल्लेख प्राप्त है[१]। धर्मशास्त्रकारों ने इतिहास एवं महाभारत की एकता को ही देखा। इतिहास के लिये महाभारत का उदाहरण दिया जाता है। आख्यान के लिए सौपर्ण, मैत्रावरुण आदि के उदाहरण स्मृतिकारों के टीकाकार देते हैं। आगे चलकर सायणाचार्य ने "ऐतिहासिकी कथा" का भी उल्लेख कर दिया है[२]। कथा-सरित्सागर में "इतिहास" शब्द का उल्लेख नहीं मिलता।

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में "इतिहास" के अन्तर्गत निम्न प्रकार के अंग रख दिये हैं :—

"पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः।"[३] इस वचन से पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र एवं अर्थशास्त्र को कौटिल्य ने इतिहास के अन्तर्गत मान लिया है। इस विषय का विवरण प्रस्तुत करते समय श्री हरियप्पा ने आख्यायिका के लिए अंग्रेजी में समानार्थी शब्द fable दिया है[४]। वास्तव में आख्यायिका से कौटिल्य का संकेत किसी कल्पित कथा की ओर नहीं दिखाई देता, अपितु कोई यथार्थ घटना के विषय में ही वहाँ आख्यायिका का विधान है जो कि परम्परा से कही सुनी कहानी के रूप में प्राप्त होती थी। वहाँ लीजण्ड शब्द का प्रयोग किया जाना चाहिये। यहाँ हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि, पतञ्जलि का भी आख्यायिका से 'वासवदत्ता', 'सुमनोत्तरा' आदि जनश्रुति पर आवृत, परम्परा से प्राप्त प्राचीन कथाओं से ही अभिप्राय था, न कि किसी नीतिकथा या फेबल से। यदि आख्यायिका के लिए केवल व्यापक संज्ञा का ग्रहण करना हो तो उसे एक narrative ही कहना समीचीन होगा, fable नहीं।

२. संस्कृत साहित्य-शास्त्र में गद्यकाव्य के भेद

संस्कृत, बौद्ध एवं जैन साहित्य में जो कहानी तत्व रहा है उसकी चर्चा विगत पृष्ठों पर की है। उससे केवल इतना ही स्पष्ट हो गया कि, प्राचीन भारतीय साहित्य में कथा, आख्यायिका, इतिहास, पुराण, आख्यान, अर्थवाद

---

१. Winternitz, History of Indian Literature, 1, p. 441.

२. Sieg, op. cit, pp. 29-30.

३. Op. cit, Edited by J. Jolly, Vol. 1, 1923, अधि. १ अध्याय ४, पृ० ६।

४. Hariyappa : Rgvedic Legends through the Ages, Poona, p. 131.

आदि संज्ञाएँ कथातत्व के लिए किस प्रकार उपयोग में लाई गई एवं उनका वहाँ क्या रूप रहा था। इस प्रकार के विशाल कथा-साहित्य को देखकर उसकी कोई साहित्यशास्त्रीय चर्चा करना अभीष्ट ही था। इस दृष्टि से साहित्य में अन्यान्य अंगों के लक्षण एवं उदाहरण देकर साहित्य-शास्त्रीय चर्चा प्रारम्भ हो गई थी। इस चर्चा में साहित्य-शास्त्र के ग्रंथों में कथाओं की कुछ परिभाषाएं भी दी गई हैं। नीतिकथा की भारतीय परिभाषा रही है या नहीं इसे देखने के पूर्व भारतीय साहित्य-शास्त्रकारों ने कहानी-विषयक जो परिभाषाएं दी हैं, हम उनपर विचार कर लेंगे।

जहाँ तक 'इतिहास' 'अर्थवाद' आदि कथा-विषयक प्राचीन संज्ञाओं का प्रश्न है, हम यह देख चुके हैं कि, इन संज्ञाओं का प्रचलन जातक एवं महाभारत के बाद "कथा" के अर्थ में समाप्त हो चुका था। इसलिये संस्कृत साहित्य-शास्त्र में कथा तथा आख्यायिका, इन दो संज्ञाओं की ही विशेष चर्चा की गई है। फिर भी यहां यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि, ध्वनि, अलंकार, रस, गुण, रीति आदि विभिन्न काव्य-धर्मों की मौलिक एवं सभेद चर्चा करने में सफल संस्कृत साहित्य-शास्त्रकार कथा-विषयक परिभाषाओं या संभेदों की चर्चा करते समय उतने सफल नहीं हो पाये। केवल "कथा" एवं "आख्यायिका" कहकर उनमें सारी कहानी-सृष्टि का अन्तर्भाव कर देने से न तो कथा-विषयक साहित्यशास्त्रीय चर्चा पूरी होती है और न उस कथा या आख्यायिका का स्वरूप ही स्पष्ट होता है।

इसका यही कारण हो सकता है कि, इन साहित्यशास्त्रकारों ने अपने सामने जो कहानियां रखीं वे सब लौकिक संस्कृत (Classtcal Sanskrit) साहित्य की ही थीं। जो कहानियां गद्यकाव्य में निहित थीं उन्हीं पर विचार किया गया। क्योंकि, गद्य में "काव्य" होता था। इस "काव्य" के कारण ही उसमें निहित कहानी को चर्चा का विषय उन्होंने बनाया। जिस गद्य में काव्यशास्त्र के अनुसार "काव्यत्व" हो, काव्य के अन्य शोभावर्धक धर्म हो, अर्थात् रस, अलंकार, रीति गुण आदि काव्यधर्म विद्यमान हो, ऐसे सहृदय के लिए आस्वाद्य "गद्यकाव्य" की ही चर्चा उन्होंने की है। इसी कारण उनका चर्चा-क्षेत्र संकुचित हो गया है। ऋग्वेद की दैवत-कथा "इतिहास" तथा वैदिक काल की किंवदन्ती, लोककथा, ब्राह्मण-कालीन अर्थवाद, महाभारतकालीन नीतिकथा; बौद्ध-कालीन जातक-कथा, जैनियों की चूर्णिका एवं धर्मकथा आदि कहानी के सभी अंग अनन्तर के साहित्य-शास्त्र के द्वारा उपेक्षित किये गये। क्योंकि, इन कथाओं में साहित्य के "ब्रह्मानंद-सहोदर रस" की चरमाभिव्यक्ति, या अलंकारों का शोभावर्धन या लालित्य उत्पन्न करने में सक्षम रीति न होने के कारण ही उन्हें गद्यका

नहीं कहा जा सकता था। इसीलिए उनको सामने रखकर कथा-विषयक मीमांसा नहीं की गई।

यह भी ध्यान में रखना अवश्य है कि, "कथा" या "आख्यायिका" के समान "नीतिकथा" या तत्सम कोई परिभाषा देकर नीतिकथा के स्वरूप को चर्चा साहित्यशास्त्रकारों ने नहीं की। नीतिकथा एक ऐसी कहानी समझी गई जिसमें रस-परिपोष के लिए अवसर कम, एवं हुआ भी तो "रसाभास" में ही परिणत हो जाता। रस तथा अन्य काव्यधर्म भी पंचतंत्र की नीतिकथाओं में विद्यमान नहीं है। पंचतंत्र को इसीलिए "नीतिशास्त्र" ही कहा है[1], नीतिकथा के रूप मे स्वतंत्र "गद्यकाव्य" नहीं।

इस प्रकार 'पंचतंत्र' की भूमिका में ही उसे नीतिशास्त्र मान लिया गया है, गद्यकाव्य नहीं, फिर साहित्य-शास्त्रकारों द्वारा नीतिकथा की उपेक्षा यदि की गई हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। संस्कृत साहित्य-शास्त्र में कहानी के स्वरूप की चर्चा अवश्य की गई है और उसे देख लेना असंगत न होगा।

आचार्य दण्डी ने अपने 'काव्यादर्श में गद्यकाव्य के "कथा" एवं "आख्यायिका" ये दो भेद निरूपित किये है। इसके पूर्व भामह ने आख्यायिका एवं कथा के भेद को अपने 'काव्यालंकार' के प्रथम परिच्छेद में स्पष्ट किया है। सम्भवतः दण्डीने भामह द्वारा निर्दिष्ट इस भेद को ही सामने रखकर काव्यादर्श में "कथा" एवं "आख्यायिका" के लक्षण लक्षित किये है, किन्तु वहीं उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि, इन दोनों में तत्वतः कोई भेद नहीं है। अग्निपुराण में भी कथा एवं आख्यायिका के साथ कथा की अन्य विधाएं निर्दिष्ट हुई हैं। किन्तु अग्निपुराण का साहित्यशास्त्रीय अंश दण्डी के अनन्तर का है[2]। अतः प्रथमतः दण्डी की गद्यकाव्य-विषयक व्याख्या को हम देखेंगे।

आचार्य दण्डी के अनुसार, गद्य के दो भेद है: आख्यायिका तथा कथा। फिर भी इन दोनों में भामहोक्त भेद दण्डी को सम्मत नहीं है। वे कहते हैं, कहानी कहनेवाला स्वयं नायक हो या और कोई; इससे खास कोई भेद नहीं होता। स्वयं नायक कहनेवाला हो एवं अध्यायों का नाम "उच्छ्वास" रहे यह आख्यायिका का लक्षण कभी कभी 'कथा' में भी दिखाई दे सकता है। प्रारम्भ

---

१. पञ्चतंत्र, कथामुख, "तन्त्रैः पञ्चभिरेतच्चकार सुमनोहरं शास्त्रम्।" (पद्य ३) तथा "ततः प्रभृत्येतत् पञ्चतन्त्रकं नाम नीतिशास्त्रं बालाऽवबोधनार्थं भूतले प्रवृत्तम्।" एवं पद्य १०।

२. M. M. P. V. Kane, Htstory ofSanskrit, Poetics, 1951 p. 7.

में पद्य आना दोनों के लिए सम्भव है। अतएव कथा एवं आख्यायिका एक ही जाति की दो संज्ञाएं मात्र हैं। आख्यान इत्यादि जो अन्य प्रकार हैं, वे सब इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। तात्पर्य, कथाओं में परस्पर कोई अन्तर परिलक्षित नहीं हो सकता[1]। यहाँ यह द्रष्टव्य है कि, बाणभट्ट-रचित "हर्षचरितम्" आख्यायिका होते हुए भी वह कथा नायक द्वारा नहीं कही गई, अपितु स्वयं कवि ही वर्णन करता है।

आचार्य वामन ने तीन गद्य-भेद प्रस्तुत किये हैं : १. वृत्तगन्धि २. चूर्णम् तथा ३. उत्कलिकाप्रायम्। पद्य के समान रचना करने से वृत्तगन्धि, सरल तथा ललित पदों की रचना चूर्ण और इसके विपरीत अर्थात् बड़े समास में अललित पदों की रचना उत्कलिकाप्राय है[2]। इससे स्पष्ट है कि, रीतिवादी वामन ने ये भेद रचना-तत्व के ही अनुसार किये हैं। उन्होंने गद्य में कथानक-तत्व की दृष्टि से कोई भेद परिलक्षित नहीं किया। सही अर्थ में इसे कहानी-तत्व की मीमांसा नहीं कहा जा सकता। यह केवल गद्य का रीति-दर्शन ही है।

---

१. आचार्य दण्डी, काव्यादर्श, प्रथम परिच्छेद (२३-२८) :—

अपादः पदसन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा।
इति तस्य प्रभेदौ द्वौ तयोराख्यायिका किल ॥ २३ ॥
नायकेनैव वाच्यान्या नायकेनेतरेण वा।
स्वगुणाविष्क्रिया दोषो नात्र भूतार्थशंसिनः ॥ २४ ॥
अपि त्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरणात्।
अन्यो वक्ता स्वयं वेति कीदृग्वा भेदकारणम् ॥ २५ ॥
वक्त्रं चापरवक्त्रं च सोच्छ्वासत्वंच भेदकम्।
चिह्नमाख्यायिकायाश्चेत् प्रसंगेन कथास्वपि ॥ २६ ॥
आर्यादिवत् प्रवेशः किं न वक्त्रापरवक्त्रयोः।
भेदश्च दृष्टो लम्भादिरुच्छ्वासो वास्तु किं ततः ॥ २७ ॥
तत् कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयांकिता।
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः ॥ २८ ॥

२. वामन, काव्यालङ्कार सूत्रम्, ३ :

गद्यं वृत्तगन्धि चूर्णमुत्कलिकाप्रायञ्च। २२
पद्यभागवत् वृत्तगन्धि। २३
अनाविद्धललितपदं चूर्णम्। २४
विपरीतमुत्कलिकाप्रायम्। २५

अग्निपुराण में गद्यकाव्य के पांच प्रकार माने गये हैं : १. आख्यायिका २. कथा, ३. खण्डकथा, ४. परिकथा और ५ कथानिका[१] ।

"आख्यायिका" में रचयिता के वंश का गद्य में वर्णन; कन्या-हरण, विरह, आपत्तियां ये उसके विषय; उच्छ्वास के रूप में अध्याय एवं वृत्त वक्त्र या अपरवक्त्र होते हैं[२] । इससे स्पष्ट है कि, आख्यायिका कोई पूर्णतया कल्पित कथा नहीं है। वह किसी नीति की शिक्षा-दीक्षा देने हेतु नहीं कही जाती। अतएव वह नीति-कथा नहीं है। कन्यापहरण आदि विषय परीकथा (fairy tale) के हैं, नीतिकथा के नहीं। बाणभट्ट का हर्षचरितम् एक आख्यायिका ही है। उसमें ऐतिहासिक तत्व ही श्रेष्ठ है। तो हम यह कह सकते हैं कि, "आख्यायिका" इतिहास एवं किंवदन्ती का मिलाजुला रूप है जो परम्परा से प्राप्त होता रहता है। आगे चलकर हर्षचरितम् का उदाहरण आख्यायिका के लिए लिया जाने लगा। फिर भी अग्निपुराण ने उसका कोई उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया।

"कथा" की व्याख्या कुछ अस्पष्ट सी है। जिसमें कवि स्ववंश की प्रशंसा करे, मुख्यार्थ की अभिव्यक्ति के लिए जहां कथान्तर आवश्यक हो, जिसमें "परिच्छेद" नहीं होता, या होगा तो क्वचित् "लम्बक" रहा करता हो; उसे "कथा" कहना चाहिये। कथा के गर्भ में "चौपदी" हो[3] ।

वास्तव में कथा के इस लक्षण में उसके उपजीव्य कथावस्तु की कोई स्पष्ट कल्पना नहीं दी गई। बाह्य रचना-विशेष से ही कोई स्वरूप स्पष्ट नहीं हो

---

१. आख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा तथा।
कथानिकेति मन्यन्ते गद्यकाव्यं च पंचधा ॥ १२ ॥

२. कर्तृवंशप्रशंसा स्याद्यत्र गद्येन विस्तरात्।
कन्याहरण-संग्राम-विप्रलम्भ-विपत्तयः ॥ १३ ॥
भवन्ति यत्र दीप्ताश्च रीतिवृत्तिप्रवृत्तयः।
उच्छ्वासैश्च परिच्छेदो यत्र सा चूर्णकोत्तरा ॥ १४ ॥
वक्त्रं चापरवक्त्रं वा यत्र साख्यायिका स्मृता।
श्लोकैः स्ववंशं संक्षेपात् कविर्यत्र प्रशंसति ॥ १५ ॥

—अग्निपुराणे अध्याय : ३३७

३. मुख्यस्यार्थावताराय भवेद् यत्र कथान्तरम्।
परिच्छेदो न यत्र स्याद् भवेद्वालम्बकैः क्वचित् ॥ १६ ॥
सा कथा नाम तद्गर्भे निबध्नीयाच्चतुष्पदीम्।"

—(वही)

पाता और न अन्य प्रकारों से वैलक्षण्य भी। सम्भवतः बृहत्कथा के संस्करण को सामने रखकर ही यह लक्षण किया गया होगा।

"खण्डकथा" तथा "परिकथा" में नायक अमात्य, सार्थक या द्विज होता है। दोनों में रस करुण, एवं चार प्रकार का विप्रलम्भ होता है। खण्डकथा "कथा" का अनुसरण करती है। परिकथा में "आख्यायिका" एवं "कथा" दोनों का प्रभाव परिलक्षित होता है[१]।

इस संमिश्रणप्रभाव के कारण "परिकथा" एवं "परीकथा" (fairy tale) में कुछ समानता अवश्य है। फिर भी, "परिकथा" के लक्षण में "अद्भुत" रस की कोई स्पष्ट कल्पना नहीं दी गई। परीकथा या fairy tale एक अद्भुत कथा ही है[२]। बंगला में स्व. रवींद्रनाथ टैगोर की प्रतीक-कथाओं को परीकथा कहा जाता है।

"कथानिका" का स्वरूप कुछ स्पष्ट है। इसमें करुण रस प्रमुख होकर अन्त में अद्भुत रस होता है। कथानक सुखकर होता है। फिर भी कथानिका उदात्त नहीं होती[3]। इससे स्पष्ट है कि, नीतिकथा से कथानिका भिन्न है।

विश्वनाथ ने गद्यकाव्य के दो भेद "कथा" एवं "आख्यायिका" किये हैं। किन्तु उनका अन्तर स्पष्ट करने का उन्होंने प्रयत्न नहीं किया। सर्वप्रथम उन्होंने कहा है कि, "गद्य में सरस वस्तु का निर्माण होने पर 'कथा' होती है। इसमें कहीं कहीं आर्या तो कहीं पर वक्त्रक या अपवक्त्रक रहते हैं, तथा प्रारंभ में पद्यों से नमस्कार तथा खल इत्यादि का वृत्तकीर्तन होता है। "आख्यायिका" में कथा के समान ही कविवंश-कीर्तन रहा करता है। कथांश के विभाग आश्वास कहलाते हैं। इसमें आर्यादि वृत्त रहते हैं। आश्वास के प्रारम्भ में आगामी वस्तु की सूचना भी रहती है। कथा का उदाहरण है कादम्बरी और

---

१. "भवेत् खण्डकथा याऽसौ कथा परिकथा तयोः ॥ १७ ॥
अमात्यं सार्थकं वापि द्विजं वा नायकं विदुः।
स्यात्तयोः करुणं विद्धि विप्रलम्भश्चतुर्विधः ॥ १८ ॥
समाप्यते तयोर्नाऽऽद्या सा कथामनुधावति।
कथाख्यायिकयोर्मिश्रप्रभावात् परिकथा स्मृता ॥ १९ ॥ (वही)

२. दण्डी, काव्यादर्श, परि० १.३८ : "भूतभाषामयीं प्राहुरद्भुतार्थां बृहत्कथाम्।"

३. अ० पु० ३३७ : "कथानकं सुखपरं गर्भे च करुणो रसः।
अद्भुतोऽन्ते सुक्लृप्तार्थो नोदात्ता सा कथानिका ॥२०॥"

आख्यायिका का हर्षचरित'। इससे स्पष्ट है कि, कादम्बरी को सामने रखकर "कथा" का तथा हर्षचरित को सामने रखकर "आख्यायिका" का लक्षण बनाया गया है। वास्तव में आख्यायिका एक इतिहास ही है, फिर भी वह गद्यकाव्य की शैली में प्रस्तुत है। प्रस्तुत काव्य के रसादि सर्व धर्म भी उसमें विद्यमान है। अतएव उसकी काव्यता को देखकर ही "आख्यायिका" नामक भेद को लक्षित किया गया। दोनों में अन्तर भी स्पष्ट नहीं होने पाया है। प्रत्युत आख्यायिका को "कथावत्" ही निरूपित किया है।

फिर भी "आख्यायिका कथावत् स्यात्" इतना कह देने से वस्तुतत्व की दृष्टि से "कथा" एवं "आख्यायिका" में कोई भेद नहीं रह पाता। कथा के समान ही आख्यायिका में भी "सरस वस्तु" निर्माण करने की आवश्यकता है।

साहित्य-शास्त्र में कहानी के इन प्रकारों में नीतिकथा को कहीं स्थान नहीं है। 'कथा', 'खण्डकथा' तथा 'कथानिका' ये तीन प्रकार "कल्पित-कथा" (fiction) के अन्तर्गत आ सकते है और 'परिकथा' का स्वरूप संमिश्र है। फिर भी, इनको हम नीति-कथा नहीं कह सकते। नीतिकथा के-से इनके भी पात्र काल्पनिक अवश्य होते हैं, किन्तु "कथा" में नर-किन्नर पात्र होते हैं, जैसे कादम्बरी में शूद्रकराजा तथा तारापीड, चन्द्रापीड, महाश्वेता, कादम्बरी आदि नर-किन्नर पात्र। अतिप्राचीन बृहत्कथा मे भी विद्याधर जाति के पात्र रहे है। कादम्बरी में तोते ने शूद्रक-सभा में मनुष्य-वाणी मे कहानी अवश्य सुनाई है, वह केवल कभी कभी मानवेतर प्राणियों से शापादि-जन्य स्थिति में कार्य करा लेने की जो परी-कथा (fairy tale) की प्रणाली रही है, उसी का प्रभाव है। इससे अद्भुत रस की परिपुष्टि हो जाती है। वह नीतिकथा की प्रणाली

---

१. विश्वनाथ कृत साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, कारिका ३१० :

"कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्।
क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद् वक्त्रापवक्त्रके।
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्तनम्॥" इति।

कारिका ३११ :—"आख्यायिका कथावत् स्यात् कवेर्वंशानुकीर्तनम्।
अस्यामन्यकवीनाञ्च वृत्तं पद्यं क्वचित् क्वचित्॥
कथांशानां व्यवच्छेद आश्वास इति कथ्यते।
आर्यावक्त्रापवक्त्राणां छन्दसां येन केनचित्॥
अन्यापदेशेनाश्वास-मुखे भाव्यर्थसूचनम्॥" इति।

नहीं है। कादम्बरी में नर-किन्नर कथा के विशेष प्रभाव के कारण शुक-कथा की घटना प्रभावहीन हो गई है।

सबसे बड़ी विशेषता नीति का पाठ देने की है जो नीतिकथा में प्रमुख है। किन्तु कहानी के उपरोक्त अंगों में यह विशेषता कहीं पर भी निर्दिष्ट नहीं है। वास्तव में जिस प्रकार संस्कृत साहित्यशास्त्र के आचार्यों के सम्मुख बृहत्कथा, कादम्बरी, हर्षचरित इत्यादि कथा-ग्रंथ थे, उसी प्रकार विष्णुशर्मा द्वारा रचित "पंचतंत्र" भी अवश्य था। फिर भी उन्होंने "गद्यकाव्य" के अन्तर्गत "पंचतंत्र" की कथाओं को परिलक्षित करने का प्रयास नहीं किया। इससे स्पष्ट है कि, "पंचतंत्र" गद्यकाव्य का नहीं, अपितु नीतिशास्त्र का एक ग्रंथ माना जाता था। विष्णुशर्मा ने भी उसे "शास्त्र" ही माना है[1]। अपने पंचतंत्र के अनुवाद में बेनफे मूलतः उसे नीतिशास्त्र ही मानते हैं और उसकी पुष्टि भी पश्चिम के विद्वानों ने की है[2]। काव्य और शास्त्र में बड़ा अन्तर होता है। इसी के फलस्वरूप ब्रह्मानन्द-सहोदर रस को काव्य की आत्मा मानने वाले आचार्यों ने यदि नीति-शास्त्र के नियमों के प्रतिपादन के लिए निवेदित इन कलाहीन, शिशुप्रिय प्राणिकथाओं में "काव्यत्व" नहीं देखा हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। चूंकि नीतिकथा में साहित्यशास्त्र-सम्मत "सरस वस्तु" निर्माण नहीं होती, उसे गद्यकाव्य का एक अंग माना नहीं गया। वास्तव में व्यापक अर्थ में पंचतंत्र की कहानियों में पाठकों को "सरस वस्तु" की प्राप्ति होती है। किन्तु वह सरसता विशुद्ध रसास्वादन की नहीं है। वह है बुद्धिगम्य आनंद जो वस्त्वर्थ के सौन्दर्य से प्राप्त होता है। महाभारत के गृध्रगोमायुसम्वाद[3] का उदाहरण देकर मम्मट ने काव्यप्रकाश में 'प्रबंधेऽप्यर्थशक्तिभूः' इस सूत्र (६० उल्लास ४) में प्रबंधगत अर्थ-शक्तिमूल ध्वनि माना है। किन्तु यह द्रष्टव्य है कि, रस रूप असंलक्ष्य-क्रमव्यंग्य-ध्वनि वहां नहीं है, अपितु संलक्ष्यक्रमध्वनि है[4]। 'ध्वनि'

---

१. पं० तं०, १ तंत्र, पद्य ३ :

"सकलार्थशास्त्रसारं जगति समालोक्य विष्णुशर्मेदम्।
तन्त्रैः पञ्चभिरेतच्चकार सुमनोहरं शास्त्रम् ॥ ३ ॥" इति।

२. Stanley Rice, Ancient Indian Fables and Stories, London, 1924; Preface p. 7.

३. म० भा० शान्तिपर्व, आपद्धर्मपर्व मे अध्याय १५३।

४. इससे स्पष्ट है कि, नीतिकथा के लिए उचित इस गृध्रगोमायु संवाद में ध्वनि की उत्तम कोटिता जो शास्त्रकार देख सके हैं, वे नीतिकथा में ध्वनि-सत्ता-सामान्यतया क्यों देख नहीं पाये एवं पंचतंत्र की कथाओं का मूल्यांकन उन्होंने क्यों नहीं किया यह एक विचारणीय प्रश्न है।

के समर्थ आचार्यों ने भी कथा एवं आख्यायिका में ध्वनि-सत्ता को दिखा कर 'नीतिकथा' में गुणीभूत व्यंग्य की सत्ता का निर्देश नहीं किया। इसी लिए कहानी के क्षेत्र में 'उत्तम' कथा एवं 'अधम' कथा की स्तरीय चर्चा नही हो सकी।

३. जैन साहित्य में नीतिकथा का तत्त्व

भारतवर्ष में प्राचीन नीतिकथाओं का संग्रह बौद्ध साहित्य में "जातक" के रूप में हुआ और महाभारत में भी प्राचीन नीतिकथाएं मिलती हैं। इनका प्रभाव जैन साहित्य पर भी अवश्य पड़ा है। जैन कथा-साहित्य में नीति-प्रतिपादक कथाओं को अवचूर्णी, अवचूर्ण, चूर्णी, चूर्ण, चूर्णक आदि संज्ञाएं दी गई हैं। अवचूर्णी का अर्थ है सारांश। किन्तु चूर्णी क्यों कहा गया होगा यह निश्चित नहीं कहा जा सकता। "जातक" संज्ञा के समान ही "चूर्णक" संज्ञा भी जैनसाहित्य में नीति-कथाओं के लिए प्रयुक्त होने लगी होगी। क्योंकि 'गुणकथा', 'धर्मकथा' आदि संज्ञाओं के समान ही चूर्णिका में भी संप्रदायगत यम-नियमों के प्रतिपादन का संकेत मिलता है। वामन आदि आचार्यों ने भी चूर्ण का उल्लेख किया है।

त्रिसमुत्थकथा

जैन साहित्य में प्रयुक्त संज्ञा "त्रिसमुत्थकथा" का नीतिकथा की परिभाषा-विषयक चर्चा के लिए विशेष महत्त्व है। इस "त्रिसमुत्थकथा" के अन्तर्गत नीतिकथा आ जाती है। बृहत्कल्पसूत्रभाष्य में "आख्यायिका", "आख्यान", "कथा" आदि के स्वरूप की चर्चा की गई है वहीं त्रिसमुत्थकथा का भी निर्देश है[१]। टीका में विवरण प्रस्तुत करते समय "आख्यायिका" के तरंगवती-मलयवती आदि उदाहरण दिये हैं। धूर्ताख्यान "आख्यानक" है, ध्रुवक छन्द में रचित गीतपद 'गीत' है, छलित काव्य का अर्थ शृङ्गार काव्य है। "कथा" वसुदेवचरित या चेटककथा जैसी होती है। 'त्रिसमुत्थकथा" का अर्थ है: धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों के विवेचन के लिए प्रयुक्त "संकीर्ण कथा"। नीतिकथा का स्वरूप इस संकीर्ण कथा से भिन्न नहीं होता। वह भी धर्म, अर्थ एवं काम के विवेचन के लिए प्रयुक्त होती है। उसका विषय भी इसी त्रिविध पुरुषार्थ का विवेचन है। नीतिकथा संकीर्ण ही हुआ करती है। छोटी छोटी स्वतंत्र कहानियों की यह नीति-परता बौद्ध-जैन साहित्य में ही अधिक पायी जाती है। किन्तु त्रिसमुत्थकथा का कोई उदाहरण निर्दिष्ट नहीं है। इससे यही कल्पना

---

१ "अक्खाइयाउ अक्खाणगाइँ गीयाइँ छलियकव्वाइँ।
कहयंता य कहाओ तिसमुत्था काहिया होंति ॥"

—बृहत्कल्पसूत्रभाष्य, २२, २५६४.

की जा सकती है कि, इस संज्ञा का ऐसी कहानी की ओर संकेत है जो धर्मार्थकाम की विवेचना के लिए कही गई हो।

४ संस्कृत नीतिकथा—ग्रंथों में नीतिकथा का स्वरूप.

पंचतंत्र :

विष्णुशर्मा ने अपने ग्रंथ के विषय में जो कुछ कहा है उसे ध्यान में रखकर भी हम नीतिकथा के स्वरूप का दर्शन कर सकेंगे। कथामुख में अमरशक्ति राजा ने अपने मूर्ख पुत्रों के विषय में चिन्ता व्यक्त की है। वह चिन्ता यह थी कि 'धर्मार्थकाम शास्त्र' का ज्ञान राजपुत्रों को शीघ्र प्राप्त नहीं हो सकता था। सुमति नामक सचिव ने सुझाव रखा कि, उक्त शास्त्र संक्षेप में ही इन्हें पढ़ाया जाय और उसने इस कार्य के लिए विष्णुशर्मा का नाम प्रस्तावित किया। विष्णुशर्मा ने छ: माह में नीतिशास्त्र में उन पुत्रों को निपुण करने की प्रतिज्ञा की। उस प्रतिज्ञा की पूर्ति राजपुत्रों को पंचतंत्र पढ़ाने से हो गई। इससे राजपुत्र भी व्युत्पन्न हो गये।

इससे यह स्पष्ट है कि, ज्ञान अनायासेन देने की योजना कहानियाँ कह कर ही सफल हुई। मनोरन्जन के साथ साथ ही ज्ञान की प्राप्ति पंचतंत्र का उद्देश्य रहा है। उन कथाओं को नीतिशास्त्र के प्रतिपादन के लिए कहा गया था और नीतिकथा की विशेषताएं उनमें प्राप्त होने का संकेत स्पष्ट मिल रहा है। पंचतंत्र के आधार पर यह कहा जा सकता है कि, नीतिकथा से ज्ञान और शिक्षा देना उसका अपना एक महत्वपूर्ण कार्य है। धर्म, अर्थ एवं काम उसके विषय है। इस अर्थ में लौकिक नीतिकथा शिक्षाप्रद कथा का एक मुख्य अंग है।

तन्त्रोपाख्यान :

दक्षिण भारत में एक और नीतिकथा का संग्रह "तंत्रोपाख्यान" नाम से प्रकाशित हुआ है[1]। उसमें लेखक[2] ने अपनी कहानियों के विषय में जो कुछ कहा है वह नीतिकथा की सर्वोत्तम संस्कृत परिभाषा कही जा सकती है। ग्रंथकार की प्रतिज्ञा है :—

ईश्वराणामिदं तन्त्रं प्रायेणौत्सुक्यमावहेत्।
यतस्तिरश्चां चरितैर्नीतिमार्गः प्रदर्श्यते ॥[3]

---

१. तन्त्रोपाख्यानम्, सम्पादक : के. साम्बसूवि शास्त्री, १९३८, त्रिवेंद्रम्।

२. इसके लेखक का नाम त्रिवेन्द्रम के संस्करण में अप्राप्य है।

३. देखिये तुलना के लिये La Fontaine की परिभाषा में यह अंश "Our Moralists are mice, and such small dear".... त्रिगत पृ. ३२

अर्थे भवेन्नयज्ञानमाख्यानश्रवणे सुखम्
ज्ञानार्थं च सुखार्थंच तन्त्रोपाख्यानमुच्यते ।।
दुर्ग्रहत्वान्महच्छास्त्रं श्रोतुरालस्यमावहेत् ।
इतिहासे कृतं शास्त्रमतो नीति-निबन्धनम् ।।
हिताहितप्राप्त्यवमर्शपेशला
कुतस्तिरश्चामियमीदृशी गतिः ।
कुतश्च वागित्यविचार्य केवलं
कवेरभिप्रायगतं निबोधत ।।[1] इति ।

इस पद्यावलि को पढ़ने पर निम्नलिखित तथ्य प्रकट होते हैं :--

(१) पशुओं की लीला से भी नीतिमार्ग का दर्शन होता है;
(२) व्यवहार-ज्ञान एवं साथ साथ सुख की प्राप्ति होती है;
(३) पाठकों की शास्त्रों में प्रवृत्ति कम होती है, किन्तु नीतिकथा में रूचि अधिक;
(४) पशुओं की मानववत् वाणी एवं व्यवहार; इससे कवि की कल्पना-शक्ति का द्योतन होता है; और
(५) कवि का चरम उद्देश्य उद्बोधन, शिक्षा या पाठ देना है ।

इन विशेषताओं को देखने पर हमें ला फॉन्टेन् की परिभाषा का ठीक स्मरण होता है, जिसमें नीतिकथा के स्वरूप का इसी प्रकार का वर्णन प्रस्तुत हुआ है ।

निष्कर्ष

इस प्रकार हमने देखा कि, पश्चिम के विद्वानों तथा संस्कृत, पालि एवं प्राकृत के आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट कहानी-तत्व एवं नीतिकथा का विचार किस दिशा में किया गया तथा उसकी परिभाषा किस रूप में निश्चित की गई । इस चर्चा से हम इस निर्णय पर पहुँच सकेंगे कि, नीतिकथा की परिभाषा भारत में तथा भारत के बाहर जो निरलक्षित हुई है, उसमें बौद्ध जातक कथाएं, ईसप की कहानियां, महाभारत की नीतिकथाएं, जैनियों की चूर्णिकथाएं, ला फॉन्टेन, मेरी डी फ्रांस, चासर, लेसिंग, खिश्चन जेलर्ट, गे, लिड्गेट, क्रायलोव, पिग्नोटी, सालीगोव्, खलिल जिब्रान; तथा आज के भारतीय कहानी साहित्य में स्व० रवीन्द्रनाथ टैगोर, खांडेकर, जैनेन्द्रजी (दो चिड़िया) आदि लेखकों की नीति का प्रतिपादन करने वाली प्राणिकथाएं समा सकतीं हैं ।

नीतिकथा का यह अनन्यसाधारण रूप है कि, वह शिक्षाप्रद भी है और

---

१. वही, पृ. १, श्लोक ३-६

साथ साथ रोचक भी। आचार्य मम्मट की "कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे" इस काव्य-प्रयोजन की पंक्ति में निर्दिष्ट तत्व नीतिकथा में भी अवश्य प्राप्त हैं। यद्यपि नीतिकथा "ह्लादेकमयी" नहीं है, और न उसमें "ब्रह्मानन्द सहोदर रस" की चरमाभिव्यक्ति ही हैं; फिर भी बालकों को प्राणियों की विचित्रता के कारण, युवकों को बुद्धितत्व की प्रगलभता के कारण, तथा वृद्धों को अन्तर्लीन नीतितत्व के कारण नीतिकथा एक साथ रोचक एवं शिक्षाप्रद लगे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

नीतिकथा के इसी स्वरूप को हम निम्नलिखित पद्यों में स्पष्ट करने का प्रयास कर रहे हैं:-

"मानवेतर-सत्वानां नर-तुल्य-विचेष्टितैः।
चेतनाहीन-वस्तूनामथवा भाषणादिभिः ॥ १ ॥
नीतितत्त्वस्य सिद्धयर्थमुपदेशप्रयोजना।
या कथ्यते प्राणिकथा ज्ञेया 'नीतिकथा' हि सा ॥ २ ॥
प्राणिनामितिवृत्तञ्च कल्पितं रुचिरं प्रियम्।
मानवीयप्रसंगानां प्राणिषु प्रतिविम्बनम् ॥ ३ ॥
स्वल्पकायापि दीर्घेण प्रभावेण निरन्तरा।
दोषाविष्कारकार्येऽपि मनोरञ्जनतत्परा ॥ ४ ॥
सत्यं ब्रूते प्रियं ब्रूते कथा यस्यां स्वचेष्टितैः।
आविष्कुर्वन्ति चातुर्यं व्याघ्र-जम्बुक-वायसाः ॥ ५ ॥
कदाचिन्नरपात्राणां सहितं पशुपक्षिभिः।
लौकिकं वस्तु सम्मिश्रमुपदेशाय कल्प्यते ॥ ६ ॥

—::—

२. नीतिकथा का उद्गम

(१)

नीतिकथा की उत्पत्ति

पिछले अध्याय में नीतिकथा की परिभाषा के सम्बन्ध में विवेचन कर लेने के पश्चात इस अध्याय में नीतिकथा के उद्गम सम्बन्धी तत्वों पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। नीतिकथा की उत्पत्ति कैसे हुई? संस्कृत साहित्य में नीतिकथा का प्रारंभ किन परिस्थितियों में हुआ आदि प्रश्न हमारे सामने हैं।

कहानी का इतिहास वहुत पुराना है। प्रारंभ में कहानी का रूप मौखिक रहा है। कहानी की उत्पत्ति मानव के विकास से सम्बन्धित है। क्योंकि, कहानी का इतिहास मानव के मन एवं मस्तिष्क की कहानी प्रस्तुत करता है। हर्ष, राग, क्रोध, विषाद, भय आदि मुख्यामुख्य भावों को व्यक्त करने के अनेक साधन आदिम मानव को प्राप्त थे। उसी समय इन भावों से प्रेरित होकर उसने अपने साथियों के समक्ष अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति की। उस अभिव्यक्ति में कुछ प्रसंगों का वृत्तकथन भी था। अरण्य में शिकार करते समय उसे कुछ अनुभव प्राप्त हुआ था। कई विस्मयकारी घटनाओं ने उसे प्रेरित किया, तब उन घटनाओं का वर्णन अपने साथियों में आकर मानव ने किया। उससे एक तथ्य और भी स्पष्ट हो गया था। उसे ज्ञात हुआ कि, उन प्रसंगों का वृत्त सुनने में साथी लोगों की वड़ी रुचि है। वड़े चाव से वे लोग कहने वाले के अनुभव की घटना सुनना चाहते हैं।

कभी कभी तो जव उसे अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति नहीं हुई तव अपनी वस्तु को कल्पना के क्षेत्र में देखने और प्राप्त करने की आदिम मानव को अभिलाषा हुई। इस कल्पनाजन्य उपलब्धि से उसे वड़ा आनंद हुआ।

उसकी अभिलाषा तीव्र होने लगी। इसी से उसने पुरानी अनुभूत कथाओं को अपनी अभिलाषा-पूर्ति का साधन भी वनाया। अपनी अभिलाषा के अनुसार उसमें कल्पना से नई वातें जोड़ दी गईं। पुरातन कथा (legend) की सामग्री इसी प्रकार जुटाई गई। मनुष्य के मन की यह रोचक उपज थी। असभ्य मानव समाज ने प्राचीन काल में ऐसी अनेक कहानियाँ कहीं। आज हम शिक्षित लोग उसे मनगढ़ंत कहानी कह देते हैं। उसे इतिहास न कहकर किंवदन्ती कहते हैं।

किन्तु वास्तव में पुरानी तथ्यपूर्ण घटना, निवेदक की अभिलाषा तथा प्राचीनता में शक्ति का आविष्य देखने की प्रवृत्ति आदि कई तत्वों (elements) का वह मिला जुला रूप है। कुछ प्रसंग तो उसने स्वप्नों में भी देखे। जगने पर उन्हें अपने साथियों से कहने की बड़ी उत्कण्ठा हुई। यह उत्कण्ठा बड़ी महत्व की थी, और सुननेवालों के कुतूहल एवं जिज्ञासा ने उसे और भी बढ़ा दिया।

अधिकतर अपनी प्रिय वस्तुओं के विषय में वह मानव चर्चा करता। सब से प्रिय वस्तु खाद्य पदार्थ रहा होगा। स्त्री उसे उस समय में अप्राप्य नहीं रही होगी। खाद्य पदार्थों में जानवर एवं पक्षी प्रमुख थे उनको मारकर खाने में ही उसका प्रारम्भिक पुरुषार्थ था। जब कभी एक ही वस्तु के लिए दो या अनेक व्यक्ति प्रयत्नशील रहा करते थे, तब संघर्ष अनिवार्य होता था। कहानी में इस संघर्ष (conflict) को विशेष महत्व है। "युद्धस्य कथा रम्या" इस न्याय से इस संघर्ष का प्रत्यक्ष अनुभव तो कष्टप्रद था, किन्तु विजेता ने अपने साथियों में आकर उस संघर्ष का जो वर्णन किया होगा, उसे बड़े चाव से सब लोग सुनते रहे होंगे। संघर्षभीरु पुरुषों को इन वृत्तान्तों को सुनने में बड़ा आनंद आता होगा। इस प्रकार दुर्बलों के द्वारा ही बलवान् लोगों की कहानी को वीर-कथा में परिणत किया गया है। ये लोग युद्ध-कथा-प्रेमी थे। आगे चल कर इनकी कहानियों ने वीरगाथा-साहित्य के रूप में अपना विकास कर लिया। इस प्रकार प्रारंभ में आदिम मानव ने अपने विस्मय, उत्साह, क्रोध वीरता आदि भावों को व्यक्त करने के लिए अनुभूत एवं काल्पनिक प्रसंगों को कह सुनाया। इससे लोक-साहित्य (folk-lore) की परम्परा का भी निर्माण हो गया।

लोककथा[1]

लोक-साहित्य में हमें प्राचीन युग के मानव-मन की क्रिया एवं प्राचीनतम संस्कृति तथा सभ्यता का रूप दिखाई देता है। सर जेम्स फ्रेज़र (Sir James Frazer) के अनुसार लोक-साहित्य में मानवीय मन के प्राचीन अवशेष (fossils of human mind) प्राप्त होते हैं[2]। परम्परा, कर्म और-विश्वास ये लोक-साहित्य के तीन मूलाधार हैं। हर राष्ट्र में परम्परा के प्रति एक स्वाभाविक आकर्षण होता है। मानव के कर्मों का अंकन लोक-साहित्य में हुआ करता है और आदिम मानव के विश्वासों (beliefs)

---

१. S. Thompson, The Folk Tale, (1946).

२. The Golden Bough, (1911-1915).

का तो विशेष महत्व है। उनके अनेक प्रकार के विश्वास रहे हैं। उनका एक विश्वास यह भी रहा है कि पशु एवं अचेतन पदार्थ मानव जैसा कार्य एवं भाषण कर सकते है[१]। बालक तो विश्वास करते ही है, किन्तु किसान भी यह विश्वास करते देखे गये है कि, कभी किसी समय में पशु भी बातचीत कर सकते थे। पुनर्जन्म पर भी लोगों का विश्वास रहा है। कादंबरी मे शूद्रक के दरबार में शुक की उपस्थिति का प्रसंग वर्णित है। कादंबरी के अध्ययन के आधार पर इस दिशा में पर्याप्त संकेत मिलता है कि इस जन्म का पशु भी किसी जन्म में मानव अथवा मानव भी किसी जन्म में पशु रहा था। इससे पशुओं के मानववत् व्यवहार की कल्पना भी परिपुष्ट हुई है और उसे लोक-साहित्य में स्थान मिल गया। प्राणियों द्वारा मनुष्य की सहायता की भी कल्पना कर ली गई। "गिज्झ जातक" में गिद्धों ने व्यापारी के आंगन में अलंकार छोड़ने की बात सोची। वह लोक-साहित्य की एक विशेषता ही है[२]। कहीं कहीं अर्ध-मानव एवं अर्ध-पशु (wer-wolf) की भी कल्पना कर ली गई है [३]।

लोक-साहित्य के विद्वान श्री अलेक्झांडर क्राप ने अपने ग्रंथ के प्रकरणों में जो लोक-साहित्य के अंग प्रकट किये है[४], उनमें प्राणिकथा एक है। उसका

---

१. Macculloch, The Childhood of Fiction, London, 1905, chapter II, P. 38:—

"...... and we are, therefore, once more driven to the conclusion that the animals of all folk-tales descend from an age when it was one of the common places of thought and belief that animals did and could talk, and were in effect, nothing but men and women in animal shape."

२. Jataka No. 164, Cowell's ed. Book II, p. 32.

३. Wenkataswami M. N., Folk stories of the Land of India, chapter IX, Werewolf, p. 242.

४. Alexander Krappe, The Science of Folk-lore, 1930.—

१. परीकथा या अद्‌भुत कथा,
२. नर्मकथा (Merry tale);
३. प्राणि-कथा (Animal tale);
४. स्थानीय कथा (Local legend);
५. परिभ्रमण-कथा (Migratory legend);
६. गद्य सागा (Saga);

नीतिकथा के लिए बड़ा ही महत्व है और संस्कृत साहित्य में नीतिकथा की उत्पत्ति को समझने के लिए इस प्राणि-कथा की स्थिति को देख लेना आवश्यक है। क्योंकि साहित्य में निहित कथा-साहित्य को लोक-साहित्य के अध्ययन में इसलिये महत्व दिया जाता है कि, विश्व के किसी अन्य सभ्य राष्ट्र के पूर्व ही प्राचीन समय से भारतीयों ने अद्भुत-कथा, कल्पित-कथा, प्राणिकथा या कहानी को मौलिक एवं चिरन्तन रूप देकर उन्हें ग्रन्थबद्ध कर रखा है[१]। और यह भी स्पष्ट है कि, 'सरल लोकप्रिय परम्परा से ही साहित्य के अंग अपना रूप धारण करते हैं"[२]। इसीलिए नीतिकथा की उत्पत्ति-विषयक मीमांसा में प्राणि-कथा का महत्व प्राप्त होता है।

प्राणि-कथा

आदिम मानव ने जो संस्कार ग्रहण किये, सभ्यता की दशा में उसने उनका सर्वथा परित्याग नहीं किया। उन संस्कारों का प्रतिफल अन्य किसी रूप में होना स्वाभाविक था। वन्य जीवन-काल में प्रकृति एवं पशु-पक्षी आदि प्राणियों से उसका बहुत ही निकट सम्बन्ध स्थापित हो चुका था।

---

७. कहावतें या सूक्तियाँ;
८ लोक-गीत;
९. वीर-गाथाएँ;
१०. मन्त्र, जारण-मारण, पहेली आदि;
११. लोक-भ्रम (Superstitions);
१२. वनस्पति-विद्या (Plant-lore);
१३. प्राणि-विद्या (Animal-lore);
१४. खनिज-विद्या (Mineral-lores), नक्षत्र विद्या (Star-lore) उत्पत्ति कथा;
१५. प्रथा एवं विधि;
१६. जादूगरी;
१७. लोक नृत्य एवं लोक-नाट्य।

१. Dr. Winternitz : Geschichte der Indischen Litteratur, Vol. III, p. 266.

२. Harvard Classics, Ed. by Charles W. Eliot, chapt. II, Popular Prose—Fiction, by Prof. F. N. Robinson, p. 222 : "....the highest products of literary art are derived from simple elements of popular tradition."

इस साहचर्य के कारण पशु या पक्षी के विषय की सभी जिज्ञासाएं उस समय उसने यथासम्भव पूरी कर लेने का प्रयास अवश्य किया होगा। इस साहचर्य की बड़ी लम्बी अवधि में उसने वनस्पति एवं प्राणियों को अपने जीवन का ही एक अंग मानना आरंभ कर दिया। किन्तु यह सब कुछ अनजाने ही हुआ। प्रकृति एवं प्राणियों के साथ आत्मीयता, उनसे भय, स्पर्धा आदि भाव उसके मन में उदित होते रहे। प्रकृति एवं प्राणी उसके जीवन के अंग बन गये थे।

सभ्यता को ग्रहण करते समय मानव में शनैः शनैः परिवर्तन तो होता गया, किन्तु उसके भाव बद्धमूल ही थे। प्राणियों के चिर-सहवास से एक प्राणि—प्रवणता के संस्कार का वहन इसने सदियों पहले कर रखा है। इस प्राणि-प्रवणता का यह अर्थ है कि, सदियों से मानव प्राणियों में भी अपने जीवन का प्रतिबिम्ब देखता रहा है। इसने देखा और सोचा कि, प्राणियों का भी अपना एक भाव-विश्व है, वे भी भय, कोध, ममता आदि भावों के ही पुतले हैं। यहां तक कि, जिस प्रकार मानव के स्वभाव भिन्न-भिन्न होते हैं उसी प्रकार इन प्राणियों में भी पाया गया। शिकार करते समय उन्होंने सियार को देखा और अनुभव किया कि यह प्राणी चतुर है। किस प्रकार शिकारी को धोखा देकर वह भाग निकलता है इसे हर समय देखा गया। अतः उसकी धारणा बन गई कि, सियार बड़ा ही चतुर जानवर है। कुत्ते को उसने अपने पास रख लिया। मालिक के सो जाने पर रात भर पहरा देने वाला कुत्ता, शिकार के समय अपने स्वामी के इशारे पर लक्ष्य की ओर लपकने वाला कुत्ता, कार्य सम्पन्न हो जाने पर पुनः उसके निकट आकर अपने कृत कार्य की जानकारी पूंछ हिलाते हुए देने वाला कुत्ता—ये सब एक ही जाति के भिन्न-भिन्न रूप हैं। ईमानदारी और स्वामि-भक्ति की होड़ में उसके बराबरी का कोई नहीं। आर्य जैसी सभ्य जाति के लोगों ने भी भक्ष्य एवं भक्षक प्राणियों के स्वभाव-विशेष पहचान लिये थे। चूहे, बिल्ली, हिरण आदि घरेलू प्राणियों की बहुत-सी विशेषताओं को उन्होंने समझा था। चूहों का स्वभाव था चोरी से अनाज खा जाना, इसलिए वैदिक 'मूष'[1] शब्द की व्युत्पत्ति भी यास्क ने 'मुष्' (स्तेये) धातु से चुराने वाले चूहों के अर्थ में दिखाई है[2]। इस व्युत्पत्ति से चूहों का स्वभाव-कार्य स्पष्ट रूप से समझ लिया गया था यह निर्विवाद है।

आज सभ्य हो जाने पर भी जानवरों के प्रति मानव का आकर्षण घटा नहीं है। वह उन्हें पालने में रुचि रखता है। यहां तक कि हस्ति-शिक्षा जैसे

---

१. ऋ. सं. १. १०५. ८

२. निरुक्त, ४. ५.

शास्त्र भी बने[१]। बालकों को तो उनमें बहुत ही रुचि है। क्योंकि बालक का मन तो मूलभावों एवं संस्कारों की क्रीडास्थली होता है। हमारा देश भी राष्ट्रीय उद्यान (National Park) को स्थापित करने में प्रयत्नशील है। वन्य पशुओं की रक्षा के लिए सरकारें सजग हैं। इन सब मे उपयोगवाद के साथ-साथ मानव का वह चिरसंस्कार भी है। प्राणि-प्रवणता की प्रवृत्ति असभ्य समाज में तो स्पष्ट परिलक्षित होती ही है, पर सभ्य समाज में उसके रूप दूसरे हो गये हैं। हम अपने जीवन को समृद्ध बनाये रखने तथा उसके पूरा करने के लिए प्राणियों के विषय मे भूतदया रखते हैं। जीवमात्र में एकता का आध्यात्मिक अनुभव तक करते हैं। ये सब हमारे चिर संस्कारों के ही नये रूप हैं। मानव एवं अन्य प्राणियों में एकता का अनुभव प्राचीनतम युग में भी रहा है, उसे अब आध्यात्मिक रूप मिल गया है। यह विचारों की उन्नति का ही फल है।

लोक-साहित्य के गोम्, लेंग्, क्राप् आदि पण्डित मानववंश-विज्ञान (Anthropology) का अध्ययन कर[२] इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि, प्राचीन प्रथा एवं कथा दोनों ही परम्परा से जीवित रहती है और उन्हीं के अवशेष दैवत-कथा अर्थात् मिथ् (Myth), प्राणिकथा आदि में सुरक्षित हैं। इसका आधार संस्कारों की सजीवशेषता का सिद्धान्त (Survival theory) भी है, जो कि अधिकतर लोक-साहित्य-शास्त्रियों द्वारा माना गया है।

प्राणि-प्रवणता का जो चिर संस्कार है, उससे उद्भूत कई प्रथाएं एवं कथाएं इन प्राणि-कथाओं में निहित है। मूलतः अनुभूतिमय तथ्य ही समय बीतने पर कल्पना-क्षेत्र में अन्य रूप धारण कर लेता है। पशुओं का मानववत् व्यवहार हो सकता है, और उनकी भी मानव की-सी कहानी हो सकती है, यह तथ्य उसी चिर संस्कार का प्रतिफलन है। मूल सत्य वस्तु काल्पनिक हो जाने पर भी यह संस्कार अपने आप को बनाये रखता ही है। अद्भुत-कथाओं में परियां होती हैं। वास्तव में वे प्राचीन काल मे नाटे कद की जातियां ही थी जो पर्वत प्रदेश पर रहती थीं[३]। संस्कृत साहित्य में वर्णित विद्याधर, किन्नर,

---

१. जातक, Cowell's Ed., Book II, No. 163; मल्लिनाथ, रघुवंश, सर्ग ६ पद्य २७

२. G. L. Gomme : Ethnology in Folk-lore, 1892;
Andrew Lang : Custom and Myth, 1884;
Alexander Haggerty Krappe : The Science of Folklore, 1930.

३. Gomme : Ethnology in Folklore, p. 63.

गन्धर्व आदि जातियां भी हिमालयवासी या कहीं अन्य देश की रही होंगी, जिनके सुखमय जीवन की कल्पना दूरवर्ती जन साधारण के द्वारा कर ली गई हो तो आश्चर्य नहीं।

मानव-वंश-विज्ञान (anthropology) के अनुसार प्राणि-कथा की उत्पत्ति का आधार जाति-विषयक (Ethnic) माना गया है। उनका एक सिद्धान्त टोटेमिज्म (totemism) का सिद्धान्त कहलाता है[१]। इस सिद्धान्त के अनुसार मानव-कुल एवं पशु की जातियों की उत्पत्ति किसी एकविध सामान्य प्राणी (common animal) से हुई थी। मानव एवं पशु में एकता का जो आदिम विश्वास रहा है वह अर्ध-मानव एवं अर्ध-पशु की कल्पना को व्यक्त करने में शेष रहा है। कोई जाति, जमात या वंश पशुओं एवं वनस्पतियों से उत्पन्न हुए हैं इस विश्वास के जीवित शेष रूप (Survivals) लोक-साहित्य में प्रकट होते हैं। इसके अनुसार ऋग्वेद में आये हुए "कश्यप" नामक ऋषि या कुल के नाम से कछुवे की सन्तान समझ लिया गया है। तथा "मत्स्याः" जाति विषयक नाम हैं, उसमें मत्स्य से उनकी उत्पत्ति मान लेने का प्राचीन विश्वास दिखाई देता है। यही बात शुनक, कौशिक आदि वैदिक नामों के विषय में भी कही गई है[२]।

किन्तु ऋग्वेद में ये नाम उस विश्वास के अवशेष के रूप में आये होंगे यह कल्पना एक दूर की सूझ है। जहां तक मानव एवं अन्य प्राणियों के सह-जीवन का सम्बन्ध है, उसे एक प्रागैतिहासिक तथ्य अवश्य मान लेंगे। इस संस्कार को मानव ने सदा के लिए अपने मन एवं मस्तिष्क में रक्खा होगा। मानव सदियों से प्रकृति की गोद मे पला था। जिन प्राणियों के साथ अपने वन्य जीवन का निर्वाह उसने किया, उनके संस्कारों को वह कभी भी भूल नहीं सकता था। इसलिए प्राचीन काल से जिस प्राणि-प्रवणता का प्रतिफलन हम प्राणिकथा तथा अन्य कथाओं में देख पाते है, उसमें तथ्य अवश्य है। किन्तु वैदिक ऋषियों के नाम देखकर उनमे भी टोटेमिज्म के सिद्धान्त को प्रतिपादित करना केवल कल्पना मात्र होगी।

ऋग्वेद में जो आर्यो का जीवन प्रतिविम्बित हुआ है, उससे तथा उनके विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति से यह स्पष्ट ही है कि, आर्यों मे यह प्राणि-प्रवणता कम पाई जाती है। आर्य काफी सभ्य अवस्था तक पहुँच चुके थे। वेदों से वन्य, असभ्य या वर्वर संस्कृति का परिचय नहीं प्राप्त होता[३]।

---

१. Andrew Lang, The Secrets of Totemism, 1905.

२. Macdonell, Vedic Mythology, p. 153.

३. V. S Ghate, Lectures on the Rgveda, Bombay, 1915.

अश्व, गाय, अजा आदि पशुओं के प्रति वे सजग अवश्य है, उन्हें ममता भी है; फिर भी उसका आधार उपयोगिता है, साहचर्य-प्रेम है। अर्थात् असभ्य जातियों में जितनी प्राणि-प्रवणता पाई जाती है उतनी वह वैदिक ऋषियों में नहीं पाई जाती। जहां तक टोटेमिज्म के सिद्धान्त का प्रश्न है, यह सम्भव है कि, सादृश्य के कारण उनके वंश के ये नाम पड़ गये हों। किसी प्राणी या वस्तु से किसी का समान गुण देखकर हम उसे उस प्राणी या वस्तु की संज्ञा दे देते हैं या "गौर्वाहीक:" जैसा अध्यारोप भी कर देते है। यह प्रवृत्ति मानव में है। सम्भव है, उस वंश में किसी का किसी प्राणी-विशेष के साथ निकट सम्बन्ध रहा हो। भारत में तो स्थान-विशेष के सम्बन्ध से भी कुल के नाम पड़ जाते हैं। जब कि कछुवे से कश्यप-कुल की उत्पत्ति होने का विश्वास किया गया होगा, तब इस कछुवे को "कछुवा" ही कहा जाता था या नहीं इस विषय में कौन निर्णय कर सकता है? उसे कछुवा कहने वाला भी कोई मानव ही रहा होगा यह निश्चित रूप से कहना असम्भव है। इससे वैदिक ऋषियों के वंशों के लिऐ टोटेमिज्म का सिद्धान्त चिन्त्य ही है।

होपकिन्स ऋग्वेद में टोटेमिज्म के पाये जाने के विषय में सन्देह प्रकट करते हैं[1]। डॉ॰ अलेक्झांडर क्राप भी इस सिद्धान्त में विश्वास नहीं करते। उनके अनुसार पुरातन-कथाओं (legends) का मूल खोजने के लिए टोटेमिज्म की कोई आवश्यकता नहीं है। कोई पुरुष वीर हो तो कहा जाता है कि, उसने सिंहिनी का दूध पिया है। इसका अर्थ यही हो सकता है कि, उस दूध का प्रभाव उसके शरीर तथा वीरोचित गुणों पर हुआ है[2]। हां, उन्होंने लोक-कथा के ऐतिहासिक महत्व को अवश्य स्वीकार कर लिया है। उन्होंने अन्यान्य

---

१. Hopkins, Proceedings of the American Oriental Society, 1894, p. CLIV.

२. Alexander Korappe, The Science of Folklore, 1930, p. 246-7 :-

"To explain the original root, 'totemism' is a rule not absolutely necessary........

There are a number of reasons why a hero should have been suckled by a she-wolf or a she-bear or a lioness. The most important of them is naturally the assumption that such milk cannot but have a certain influence upon his physical and warlike qualities."

कहानियों का अध्ययन कर कल्पना एवं विचारों में जो परिवर्तन होते गये, उनकी भी खोजबीन की है।

लोक-कथा में प्राप्त प्राणि-कथा का मूल मानव की प्राणि-प्रवणता ही है। प्राणि-प्रवणता का अर्थ है मनुष्य की वह स्वाभाविक प्रवृत्ति जो उसमें आदिम काल में प्राणि-सहवास के कारण दृढ़ हो चुकी थी। उसी का परिणाम यह था कि, मनुष्य पशु-पक्षियों के जीवन में अपने जीवन की समानता देखता रहा। उसे जानवरों के प्रति यह स्वाभाविक आकर्षण रहा है। इस प्राणि-प्रवणता की पुष्टि एवं वृद्धि प्रथाओं, विश्वासों एवं परम्परातत्व ने की है। इन समूचे तत्वों को जब कल्पना बंधों (motifs)[1] का चोला मिल गया तब लोक-कथा का जन्म हुआ। इन कथाओं में प्राणि-कथाएं इसी प्राणि-प्रवणता की देन हैं।

प्राणि-कथा का प्रचलन परम्परा से हो रहा था। उसका स्वरूप सार्वजनीन था। किसी जाति-विशेष या सम्प्रदाय-विशेष ने प्राणियों का सम्बन्ध किसी न किसी देवता के साथ लगा दिया[2]। किन्तु मूलतः विशुद्ध मनोरञ्जन ही उसका प्रधान उद्देश्य रहा है। कुछ प्राणि-कथाओं की समाप्ति पुरातन कथा या दैवत-कथा की-सी होती है। ऐसी कहानी समाप्त होते होते किसी पक्षी के पंखों के रंग का कारण या किन्हीं दो प्राणियों के जन्मजात वैर का कारण बताती हैं। ऐसी प्राणि-कथाओं पर दैवत कथा तथा पुरातन-कथा का ही प्रभाव पड़ा रहता है। प्राणियों की कथा मे इस प्रकार जो ऐसिहासिक आभास को दिखलाया गया है उसके मूल में लोक-विश्वास और प्राचीन वस्तु को प्रामाणिक मान लेने की लोक प्रवृत्ति ही स्पष्ट दिखाई देती है।

दैवतकथा[3] एवं पुरातन-कथा (Myths and Legends)

पवित्राख्यान या दैवतकथा (myth) की उत्पत्ति अति प्राचीन है। भारतीय नीतिकथा की उत्पत्ति को समझने के लिए इस पवित्राख्यान को भी

---

१. Stith Thompson, Motif-Index of Folk Literature Vol. I, Bloomington, 1955.

२. W. Crooke; The Popular Religion and Folk lore of Northern India, Vol. II, 1896, 'Animal worship' p. 201 258.

३. अंग्रेजी मे जिसे Myth कहते है उसे "दैवतकथा" या "पवित्राख्यान" कहा जा सकता है। इस प्रकार की कहानियों में प्राचीन वीरों एवं देवताओं का कथानक होता है। संस्कृत साहित्य के अंदर बृहद्देवता में आचार्य शौनक ने इस प्रकार की कथाओं के लिए 'पवित्राख्यान' शब्द का प्रयोग किया है

समझ लेना आवश्यक है। साहित्य में प्रवेश करने के पूर्व यह भी एक लोक-प्रिय कथा ही रही है। प्राचीन वीर पुरुषों के चरित्रों को परम्परा से पवित्रता प्राप्त होती गई। परम्परा से प्राप्त अतिमानुष व्यक्तियों की कथा धार्मिक भाव से प्रेरित होने पर उसे दैवतकथा कहा जाता है। वेदों में पुरूरवा एवं उर्वशी तथा अन्य अनेक पवित्राख्यान हैं। इन्द्र, वरुण आदि देवताओं की गौरवमयी कहानियां बहुत प्राचीन हैं। अतिमानवीय या आधिदैविक कृति का आदिमानव को मानवीय रूप में दर्शन होता है, उसी का प्रतीक दैवतकथा है[1]।

दैवतकथाओं की उत्पत्ति एवं विकास के सम्बन्ध में मेक्सम्युलर के विचार ये हैं : मानव का सर्व प्राचीन आविष्कार भाषा है। इस अवस्था के अनन्तर प्राकृतिक दृश्यों पर मानवीकरण किया गया। प्राकृतिक क्रीडा का अर्थ कथा के रूप में सुसंगत कर लिया गया। यह कला उसे प्राप्त होने पर दैवतकथा का प्रारम्भ हुआ। तीसरी अवस्था में मानव को सदाचार एवं धर्म के विचार उद्भूत हुए; तब नीति-सम्बन्धी सिद्धान्त (ethical principles) स्थिर होते गये। प्राकृतिक दृश्यों पर उनके सामर्थ्यविषय के कारण देवतारोप (deifiation) भी हो गया। प्राचीन प्राकृतिक आख्यान ने धर्म-कथा का रूप ले लिया। चतुर्थ एवं अन्तिम अवस्था में आधिदैविक एवं आध्यात्मिक शक्ति की अनुभूति लेकर भाषा एवं जीवन के विकास का आदर्श मानव ने अपनाया[2]। मानव-

---

(१. ३६) और उसका उदाहरण भी पुरूरवा एवं उर्वशी क्र. सं. १०. ९५. १-१८) का दिया है (बृ. दे. १. ५३)। अंग्रेजी में जिसे Sacred tale कहा जाता है उसका ही अर्थ प्राचीन संस्कृत शब्द "पवित्राख्यान" में व्यक्त हो जाता है। और इन सब कथाओं के आधार पर "मैथॉलॉजी" (दैवतकथा-शास्त्र) खड़ा है, अतः इन्हे "दैवतकथा शास्त्र" भी कहा जाए तो असंगत न होगा। लीजण्ड तो एक पुरातन काल की आख्यायिका ही है, अतः उसे "पुरातन कथा" कह देने से legend का अर्थ अभिप्रेत है।

१. Chamber's Encyclopaedia (1904), IV, Folklore, p. 710 :—

"A myth embodies in human form primitive man's conception of a non-human action."

२. Max Muller, Contributions to the Science of Mythology, Preface, p. 1; The Science of Mythology (1895) में भाषा विकृति से दैवत कथा की उत्पत्ति हुई है यह सिद्धान्तः

"Mythology is the pathology of language.", etc.

समाज की अति प्राचीन कथा के लिए यूरोप में सागा (Saga)[१], marchen, edda[२] आदि संज्ञाओं का व्यवहार होता रहा है। इनमें वीर-कथाएं भी सम्मिलित हैं। फिर भी, सागा आदि साहित्य लोक-कथा का मौखिक रूप ही है, जो वन्य समाज में प्रचलित था। मिथ् (myth) को साहित्य एवं सभ्य समाज की ही वस्तु समझनी चाहिये। मिथ् या पवित्राख्यान में धर्म के अंग को दूर नहीं किया जा सकता[3]। वह धर्म-कथा ही है। इनमें देवताओं तथा वीरों के चरित्र, उत्पत्ति, कार्य तथा प्रभाव वर्णित होते हैं। लेंग ने तो एक मानसिक अवस्था-विशेष मे दैवतकथा की उत्पत्ति मानी है, उसे उन्होंने 'पुराण-कथा से व्यक्त अवस्था' (mythopotic condition) कहा है[४]।

इससे स्पष्ट है कि, दैवतकथा एक धर्म-कथा है और लोगों में भी प्रचलित प्राणि-कथा से भिन्न है। प्राणि-कथा में भी मानवीकरण है। किन्तु जहां उन प्राणियों पर भी देवतारोप हो जाता है वहां वह प्राणिकथा नहीं रहती। नाग या सर्पों की कहानी लोक-कथा के रूप में रही है किन्तु जब नाग को देवता मान लिया गया तब शेष, वासुकि, तक्षक आदि व्यक्ति दैवतकथा साहित्य के अंग बन गये।

इस तथ्य से यह भली भाँति स्पष्ट है कि, प्राणि-कथा से ही नीतिकथा का रूप बना है, न कि मिथ् या दैवतकथा से। नीतिकथा मूलतः धर्मकथा नहीं है, वह लौकिक (Secular) ही रही है। दैवतकथा ने किसी सम्प्रदाय-विशेष को जन्म दिया है और उस सम्प्रदाय के अन्तर्गत जो मानव-समाज रहा है उनमें ही वे आख्यान श्रद्धा के प्रतीक बन गए। अति प्राचीन काल में पवित्राख्यान में जो धर्म का प्रारम्भिक प्रवेश हुआ था वह तो सार्वजनीन एवं सार्वदेशिक था। इसीलिए इन्डो-यूरोपीय दैवतकथाएं ग्रीस एवं भारत के प्राचीन साहित्य में समान रूप में सुरक्षित हैं। किन्तु यह स्थिति बाद में नहीं रही। दैवतकथा (myth) को अपने सम्प्रदाय का मुख्य अंग मानने वाले लोग कहानी को सीमित बना देते हैं। ब्राह्मणों की कथाओं में हम देख सकते हैं कि

---

१. नार्वे के स्नारी स्टर्लसन् का गद्य-साहित्य।

२. नार्स राजाओं की सागा। युरोप में "सागा" संज्ञा का अधिक प्रकार।

३. Dowson, A Classical Dictionary of Hindu Mythology and Religion, Geography, History and Literature, London, 1953 : "religion is bound up with mythology, and in many points the two are quite inseparable" (Preface, p. V.).

४. Andrew Lang, Myth, Ritual and Religion, I. pp. 4-5.

प्राचीन कथा (legend) किस प्रकार एक सम्प्रदाय की वस्तु हो वैठती है। मूल देवतकथाओं का धर्म किसी सम्प्रदाय-विशेष का हो जाने पर उनमें विद्यमान सार्वजनीन रूप तथा सार्वदेशिकता का लोप हो गया।

प्राणि-कथा ने जब कि साहित्य में नीतिकथा के रूप में प्रवेश किया तब उसका स्वरूप लौकिक (Secular) था। यह ठीक ही है कि, भगवान बुद्ध तथा अन्य बौद्ध आचार्यों ने अपने सम्प्रदाय की पुष्टि के लिए उनका उपयोग कर लिया तब उनका स्वरूप धार्मिक कथा का हो गया। फिर भी एक तथ्य इससे स्पष्ट होता है। वह यह कि उनका मूल रूप लौकिक होने के कारण ही बौद्धों ने उनका उपयोग अपने धर्म के प्रचार के लिए करना अधिक योग्य समझा। बौद्धों द्वारा अपनाये जाने के पूर्व भी लोक-भाषा में प्राणिकथा नीतिकथा बन चुकी थी और वह ऐहिक या भौतिक व्यवहार में उपयोगी शिक्षा देने का कार्य करती थी। उसी का उपयोग धर्म के सिद्धान्त के लिए कर लिया गया। बौद्धों द्वारा अपनाये जाने पर भी उसके बाद भी लौकिक रूप वैसा ही रहा। पंचतंत्र में हम उन लौकिक कथाओं का रूप देख सकते हैं।

स्पष्ट है कि, नीतिकथा मूलतः लौकिक रही है। वह विदेश में भी सदियों पहले भारत से ही गई और वहां जन-प्रिय हो गई। प्राणि-कथा के कारण ही उसमें यह लौकिक रूप मूलतः रहा है। प्राणि-कथा का मूलाधार है प्राणि-प्रवणता, जो मानव के चिर वन्य-संस्कार से उत्पन्न हुआ है। दैवत-कथा का मूल प्राकृतिक दृश्यों के प्रभाव में निहित है। अलौकिक शक्ति की कल्पना कर उनमें आदर्श की प्रतिष्ठा कर लेने से दैवत-कथा (myth) सभ्य समाज की प्रिय वस्तु हो बैठी।

भारतीय परीकथा या अद्‌भुत-कथा (Fairy-tale)[1]

दैवतकथा की उत्पत्ति प्राकृतिक दृश्यों तथा वीरों के चरित्रों से हुई है और परीकथा की उत्पत्ति पवित्राख्यान की सामग्री से। यह ठीक है कि, संस्कृत साहित्य में परीकथा के साथ साथ नीतिकथा का भी संग्रह हुआ है। बृहत्कथा को परीकथाओं के साथ पंचतंत्र की नीतिकथाओं का भी संग्रह बृहत्कथा-मञ्जरी[2]

---

१. अंग्रेजी में जिसे fairy tale कहते है, उन्हें हम अद्‌भुत-कथा या परी-कथा कह सकते है। अद्‌भुत-कथा कहते समय इस प्रकार की कथाओं में जो मुख्य अद्‌भुत रस होता है उसकी ओर ही संकेत होता है। और fairy का प्रतिवाची शब्द है परी, और परी की जो अतिमानुषता है वही अद्‌भुत का कारण है।

२. बृहत्कथा-मञ्जरी, सं. पं. शिवदत्त एवं का. प. परब नि.सा. प्रे. बम्बई, १९०१, में शक्ति यशोलम्बक पृ. ५६१-५५७.

तथा कथा-सरित्सागर[१] में किया गया है। यह तथ्य होते हुए भी, परीकथा या अद्भुत कथा की उत्पत्ति दैवतकथा की सामग्री से ही हुई है। परी-कथा में भी अतिमानुप पात्र आते हैं। उनमें अप्सराओं, विद्याधरों, किन्नरों और गन्धर्वों की लीलाएं दिखाई जाती हैं। दैवतकथा के पात्र भी अतिमानुप ही होते हैं। उनमें आधिदैविक वस्तु एवं वीरों पर अतिमानुष होने की जो श्रद्धा है वही धर्म-कथा की जड़ है। परी-कथा में यह धार्मिक तत्व नहीं रहता। क्योंकि, परी-कथा के नायक-नायिकादि पात्र अतिमानुप कोटि के रहने पर भी मानव के निकट ही होते हैं। वे इन्द्र, वरुण, पूपन् आदि वैदिक देवताओं में से नहीं हैं। क्योंकि देवताओं का कार्य-क्षेत्र दैवतकथा है: परीकथा में भी वीरता का परिचय दिया जाता है, किन्तु वह प्रागैतिहासिक वीरता के समान नहीं है, जो हमारी श्रद्धा का आधार हो। परीकथा की वीरता, पात्रों की अतिमानुपता और सुखमय जीवन आदि तत्व दैवतकथाओं से लिये गये हैं।

गुणाढ्य की वृहत्कथा के अनुसार सोमदेव द्वारा कथा-सरित्सागर में प्रारंभ से ही शिवजी एवं पार्वती का एक संवाद वर्णित है। पार्वती जी ने शिवजी से कहानी कहने को कहा, तब उन्होंने पार्वती की पूर्व-जन्म-कथा कही। उस पर झट से पार्वतीजी ने क्रोधित हो कर कहा:

"धूर्तस्त्वं न कथां हृद्यां कथयस्यर्थितोऽपि सन्।"

इसके उत्तर में शिवजी ने जो कुछ कहा है, उससे संस्कृत परीकथा की उत्पत्ति किस परिस्थिति में हुई होगी इसकी भली भांति कल्पना की जा सकती है। उन्होंने कहा:

"एकान्तसुखिनो देवा मनुष्या नित्यदुःखिताः।
दिव्यमानुपचेष्टा तु परभागे न हारिणी॥
विद्याधराणां चरितमतस्ते वर्णयाम्यहम्।"

अर्थात् केवल सुखी देवों या नित्य दुखी मनुष्यों की कहानी रोचक नहीं लगती। इसलिए विद्याधरों की कथा, जो कि अधिक रोचक होती है, कहता हूँ[२]।

इससे स्पष्ट है कि गुणाढ्य के समय में, वैदिक दैवतकथाओं में लोक-रुचि का ह्रास हो चला था। लोगों में प्रचलित सामान्य मानव-जीवन सम्बन्धी जो कहानियां थीं, उनमें भी कोई आकर्पण नहीं था। इसलिए देवों एवं

---

१. सोमदेव भट्ट कृत, कथासरित्सागर, सं. पं. दुर्गाप्रसाद एवं का०प०परब, नि०सा० प्रे० बम्बई, १८८९, में शक्तियशोलम्बक, पृ. ३५५-४०४,

२. क. स. सा., कथापीठ लम्ब के तरंग १, पद्य ४३-४८.

मनुष्यों के बीच एक कल्पना-निर्मित योनि की सृष्टि कर ली गई। सम्भव है, वे कोई दूरवर्ति जातियां रही होंगी जिनका जीवन मानव का होकर भी मानववत दुखमय प्रतीत नहीं होता था। यह योनि विद्याधरों, किन्नरों एवं गंधर्वो की थी। इनका जीवन सुख एवं दुःख दोनों से मिश्रित अवश्य रहा है, फिर भी मनुष्य के समान दुःखमय नहीं। गुणाढ्य ने इस प्रकार के पात्र चुनकर लोक-कथा को परीकथा का रूप दे डाला, तब इनमें से दैवतकथा में निहित देवतत्व धार्मिक भाव या विभूतिपूजा का परिहार कर दिया और मानव से दूर स्थित अलौकिक ऐसे विद्याधरों की कहानी कह सुनाई। कौशाम्बी के इर्द-गिर्द प्रदेश तथा अवन्ति प्रदेश में प्रचलित उदयन की लोक-कथा में एवं गुणाढ्य की कथा में अद्भुत तत्व का प्रवेश हो जाने से परीकथा की सृष्टि हो गई है।

परीकथा के इन विद्याधरों के साथ मानव पात्र भी आते रहते है और विद्याधर आदि अतिमानुष पात्र भी मानुष व्यवहार करते दिखाई देते हैं। उनकी अतिमानवीयता उनके सफल एवं सुखमय जीवन मे निहित है। मानव के-से वे दुखी नहीं हैं। मृत्युलोक से परे किसी जगत् के वे उड़ते पंछी हैं। एक कल्पनारम्य (romantic) विश्व में वे विचरण करते है। मानव को जो सुख प्रत्यक्ष में नहीं मिलता, उसे वह कल्पना मे प्राप्त कर लेता है। उसी का फल है कि, परीकथा के नायक-नायिकादि पात्र अद्भुत रस के आलम्बन होते हैं। इसीलिए मनोरञ्जन ही परीकथा का प्रमुख उद्देश्य है और अद्भुत यह प्रधान रस।

संस्कृत परीकथा बृहत्कथा के अनुसार लिखे गये बृहत्कथाश्लोक-संग्रह[१] बृहत्कथा-मञ्जरी और कथासरित्सागर मे पाई जाती है। परीकथा में कथावस्तु के ये अंग होते हैं: नायिका का किसी खल-नायक के द्वारा अपहरण, नायक के द्वारा नायिका की खोज, उसकी वीरता के कार्य, मित्रों, देवताओं तथा पशु-पक्षियों का भी साहाय्य और अन्त में अद्भुत लीला एवं भाग्य की प्रबलता से नायिका की प्राप्ति। परी-कथा सुखान्त ही होती है।

ये कल्पना-बन्ध (motifs) तथा अन्य विशेषताएं दैवतकथा से ही प्राप्त हैं। अतिमानुष वातावरण, आधिदैविक कृपा एवं हर कार्य में सफलता ये तत्व वहां से परीकथा में आये हैं। देवत्ववाद का प्राभव मात्र ग्रहण न करने से परीकथा लौकिक ही रही। उसका मूलाधार भी लोक-साहित्य ही था जैसे कि नीतिकथा का रहा है। वत्सराज उदयन की कहानी इसी प्रकार की थी। लोगों में उसका चरित्र प्रिय था। उदयन की कथा लौकिक ही थी। वह एक जन साधारण की कथा थी।

---

१. बुद्धस्वामिन्, बृहत्कथाश्लोक-संग्रह, (Text Sanskrit, Paris)

आधार एक होते हुए भी नीतिकथा परीकथा से भिन्न ही है। हम यह देख चुके हैं कि परीकथा के पात्र मानव से उच्च कोटि के हैं, वे अधिक सुखी हैं। उनके लिए भोग के सभी उपकरण बिना कष्ट से सिद्ध होते रहते हैं। सभी प्रकार की सहायता भी उन्हें प्राप्त है और मनोरंजन परीकथा का प्रधान उद्देश्य है। नीतिकथा के पात्र मानवेतर पशु-पक्षी रूप प्राणी हैं जो मानव से हीन ही समझे गये हैं। सुख और दुःख से उनका जीवन भरा है। उनमें भावों की अपेक्षा बुद्धिपक्ष ही अधिक प्रबल होता है। भाव भी प्रतीकात्मक ढंग से व्यक्त हुए होते हैं। मनोरंजन कोई प्रमुख उद्देश्य नहीं है। प्रत्युत सर्वोपरि नीति की शिक्षा या पाठ देने का दायित्व नीतिकथा पर है। पशु एवं पक्षी परीकथा में आते अवश्य हैं, किन्तु उनका स्वरूप वहाँ गौण ही रहता है। वे नायक-नायिका की सहायता के लिए वहाँ आते हैं और नीतिकथा के प्राणी स्वयं नायक हैं, पात्र हैं। परीकथा में ह्लादैकमयी अभिव्यक्ति के कारण कला-पक्ष प्रबल है और नीतिकथा में शिक्षा-दायित्व के कारण वह एक उपादेय साहित्य की ही कोटि में आती है। इससे स्पष्ट है कि, अलौकिक पात्र एवं कलात्मकता आदि विशेषताओं के कारण परीकथा दैवतकथा के निकट है। दैवतकथात्मक साहित्य से काव्य, रूपक, चम्पू आदि ललित निबन्धन का विकास हुआ है। इसीलिए इनसे नीतिकथा विभिन्न दिखाई देती है। प्राणिकथा का मूल प्राणि-प्रवणता में होने से नीतिकथा में प्रवेश करते समय वह हीन पात्रों को भी साथ ले आई। उनसे मानववत् कार्य करा लिया गया तब चमत्कार निर्माण हुआ। मानव-जीवन के प्रतीक बने पशु पक्षी भी सुख एवं दुख के भागी बन गये हैं। प्राणि-कथा की मानवीय अर्थ वहन करने की इस क्षमता ने ही नीतिकथा को जन्म दिया है।

नीति-कथा को भी दैवतकथा से कुछ उपलब्धि अवश्य हुई है। नीति या सदाचार के विचार उसे दैवतकथा से ही प्राप्त हुए। लोक-वाणी में प्रचलित प्राणि-कथा में भी प्राचीन वन्य समाज की सदिच्छाएं एवं भद्र विचार अवश्य व्यक्त हुए होंगे। किन्तु उन्हें सार्वजनीन रूप दैवतकथा-परम्परा से ही प्राप्त हुआ। इस प्रकार दैवतकथा-साहित्य के प्रभाव से किसी धर्म-विशेष या सीमित सम्प्रदाय में न फँसकर जीवन मात्र के जो आदर्श थे उन्हें नीतिकथा ने अपना लिया। क्योंकि, प्रतिदिन के व्यवहार में उनकी आवश्यकता थी। आदर्शों, नीतिवाक्यों एवं अनुभूत तथ्यों के उपदेश के लिए प्राणिकथाओं के माध्यम का ही स्वीकार किया गया। प्राणिकथाओं में रोचकता होने के कारण उनके उपदेश जन साधारण एवं बालकों के लिए अधिक हृदयंगम हुए। नीतिकथा की लोकप्रियता का यही आधार रहा है।

ऐसी परिस्थिति हर युग में आती है कि, किसी उपदेशक द्वारा समाज को अच्छे मार्ग पर ले जाने की आवश्यकता पड़े। मानव-समाज का एक वर्ग अपने साथ रहने वाले जनसाधारण को शिक्षित एवं नीति-सम्पन्न बनाना चाहता है। ऐसी स्थिति में वह ऐसे माध्यम खोज लेता है जो जनसाधारण में प्रिय हो, उनके लिए अपरिचित एवं अनाकलनीय न हो। लोक-कथा का माध्यम ही उसे लोकप्रिय एवं स्पष्टता के लिए योग्य प्रतीत होता है। वह लोक में प्रचलित नीतिवचनों या लोकोक्तियों को भी लेता है। समाज की प्राणिकथा के चोले में अपना उपदेश उनके सामने रख देता है। नैतिक मूल्य को प्रतिष्ठित करने के के लिए जिस प्रणाली को उसने अपनाया था वह जन साधारण में प्रभावशील हो चुकी थी। इसलिए रोचकता के तत्व (elements) को उसने आवश्यक समझ कर कथाओं की अप्रत्यक्ष प्रणाली से उपदेश को अधिक प्रभविष्णु बनाया। हर राष्ट्र में इस प्रणाली का उपदेश किया गया है। ईसा मसीह ने दृष्टांत या दृष्टांत-कथाएं (Parables) कहकर अपने विचार जनसाधारण के सामने रखे जो बाइबल में सुरक्षित हैं। उससे पूर्व भगवान बुद्ध ने भी ई० पू० ५ वीं शताब्दि में उस समय के ब्राह्मण धर्म से शोपित एवं पीडित भारतीय समाज को राह दिखाने के लिए जो उपदेश दिया वह भी लौकिक कथाओं के माध्यम से ही। कहानी का उपयोग बाइबल एवं जातकों के पूर्व भी होता रहा है। लोककथा बहुत कुछ मौखिक रहती है। किसी उद्देश्य को मन में रखकर दृष्तांत या कहानी कहकर उसका निष्कर्ष नीति-विचारों के रूप में प्रकट करना यह एक प्राचीन प्रणाली कही जा सकती है।

प्रवक्ताओं की इस प्रवृत्ति से उपदेश का रूखापन निकल गया। कहानी की सुन्दरता का उसमे प्रवेश हुआ। श्रोता बढ़ गये। क्या शिक्षित, क्या अशिक्षित, बूढ़े, युवा और बालक भी उसे सुनने के लिए उत्कण्ठित हुए। कहानी हरेक को प्रिय होती है। बचपन से कहानी सुनने का शौक मानव में होता ही है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को पहचान कर नैतिक, धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक विचारकों एवं नेताओं ने उसे अपना लिया। उस कहानी को अपने मन्तव्यों एवं अनुभवों से प्राप्त सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए कह सुनाया। उन लोक-कथाओं मे प्राणि-कथाएँ कम न थीं। इन प्राणि-कथाओं में वह नीति प्रविष्ट हो गई जिसके कारण नीतिकथा ने अपना रूप धारण कर लिया।

विचारकों की बुद्धिमता इसमें थी कि, उन्होंने अपने उपदेश के माध्यम के लिए लोक-कथा एवं लोक-भाषा को ही चुना। कुछ नीति-वचन तो लोक-परम्परा से उन्हें प्राप्त हुए जिनकी मार्मिकता जीवन मे अनुभव लेने पर ज्ञात हुई। कुछ

नीतिवृन उनको अपने निजी अनुभव से भी प्राप्त हुए होंगे। इन सबको सरल भाषा-शैली में व्यक्त करने वाले नीति-वचन इतने लोकप्रिय बन गये कि, वे लोकोक्ति के रूप में प्रचलित हो गये। इस प्रकार परस्पर वृद्धि हुई।

प्रारम्भ मे दैवतकथा का आधार भी लोककथा रहा है। किन्तु विचारकों ने जब उनका उपयोग अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिए कर लिया तब वह धर्मकथा हो गई और बाद मे तो सम्प्रदाय-विशेष की वस्तु भी। फिर भी, उसे भी जनसाधारण की चिरप्रवृत्ति, विश्वास एवं परम्पराप्रियता की मानसिक पृष्ठभूमि मिल ही जाती है।

प्राणिकथा से नीतिकथा का विकास :

प्रारम्भ मे लोक-व्यवहार में प्राणियों के भी दृष्टान्त दिये जाते थे। किन्तु लोगों ने अनुभव किया कि, सत्वशील पुरुष के दृष्टान्त का प्रभाव जनसाधारण पर अधिक पड़ता है। प्राचीन समय का कोई पुरुषविशेष ही वह रहा होगा जो परम्परा से श्रद्धेय बन बैठा हो। किन्तु किसी साहित्य या सम्प्रदाय विशेष मे ही जिनकी पूजा होती थी ऐसे देवताओं एवं वीरों के दृष्टान्त भी प्रभाव-हीन होते देखे गये है। क्योंकि, उस साहित्य से अनभिज्ञ तथा सम्प्रदाय से बाहर रहे जन-समाज के लिए उन दृष्टान्तों के प्रति कोई स्वाभाविक आकर्षण नहीं रहा। सीधी परम्परा से प्राप्त वस्तुओं एवं व्यक्तियों के प्रति ही उनका आकर्षण था। किन्तु प्राणियों के दृष्टान्त सुनाते ही हरेक के लिए वे सुगम एवं ग्राह्य हुए। प्राणी भी मानववत् व्यवहार कर सकते हैं, कभी किसी समय मे प्राणियो एवं मानव मे इस दृष्टि से कोई अन्तर न था आदि विश्वास अशिक्षित जन-साधारण मे रहा था। तब ऐसे प्राणि-दृष्टान्त भी प्रभावशील हुए। ये दृष्टान्त सर्व लोगों पर समान रूप से प्रभावशील होते देखे गये। उसका कारण प्राणियों के इन दृष्टान्तों मे निहित धर्मातीतत्व या लौकिकता का तत्व (Secularism) है। अर्थात् हर समाज या हर देश के किसी भी धर्म के व्यक्ति के लिए ये प्राणि-दृष्टान्त पराये ज्ञात नहीं हुए। इसके साथ-साथ आबालवृद्धों में ये दृष्टान्त प्रिय हो बैठे। इस प्रकार प्राणियों के दृष्टान्त या उनकी कहानी कहने से विचारकों एवं उपदेशकों को बहुत सफलता मिली। तभी लोक-वाणी मे प्रचलित प्राणि-कथा 'नीतिकथा' बन गई।

इस तथ्य को अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि, आज हम जिस प्रकार दैवत-कथा, अद्भुत-कथा, दृष्टान्त-कथा, पुरातन-कथा, नीतिकथा आदि कहानी के भिन्न-भिन्न अंगों में भेद पा सकते है, उस प्रकार का विभेद उपदेशकों एवं विचारकों के मन में कहानी को अपनाते समय नहीं रहा। प्रारम्भ में तो सभी दृष्टान्त या

दृष्टान्त-कथाएँ (parables) थीं। कभी वीरों का दृष्टान्त उपदेशकों ने दिया, तो कभी प्राकृतिक वस्तुओं या प्राणियों का। उन्हे जहाँ अपने प्रतिपाद्य के लिए सर्वथा मार्मिक दृष्टान्त मिल गये वहाँ से उन्होंने उन्हें ले लिया और कह सुनाया। वह अनन्तर की घटना है कि, देवों के दृष्टान्त श्रद्धामूलक वन गये। वीरों के उदाहरण पुराणेतिहास की सामग्री वन वैठे और प्राकृतिक वस्तुओं के दृष्टान्त आगे चलकर उनकी कहानी के कलात्मक रूप में सामने आये जो ध्वनिकथा (allegory) के अन्तर्गत पाये जाते हैं। प्राणियों के दृष्टान्तों या कहानी का उपयोग होते ही वे नीतिकथा (fable) के रूप में वदल गये। प्राचीन समय में सभी का कार्य एक ही था, रूप मात्र भिन्न थे। आगे चलकर इनके उद्देश्य ही वदल गये। इसके अनुसार कोई धार्मिक ग्रंथ के अंग वन वैठे, कोई कलात्मक साहित्य के तो कोई उपदेशात्मक साहित्य के अंग के रूप में स्थिर हो गये। तभी इनमें विभेद पहचाने जाने लगे।

धर्म का अंग वन कर जो कहानी अपना कार्य करती रही उसमें श्रद्धा, अलौकिक जीवन, पारमार्थिक कल्याण तथा आदर्शवाद पर ही वल था। किन्तु ऐहिक जीवन में उपादेय युक्ति-प्रयुक्ति, चतुरता, नीति-निपुणता एवं भौतिक गतिविधियों में सफलता नीतिकथा के अंग वन गये। वौद्धों द्वारा अपनाये जाने पर भी प्राणिकथा जातकों के पूर्व और पश्चात् काल में लौकिक ही रही। पंचतंत्र का प्राचीनतम रूप लौकिक था ही। इसका कारण यह था कि, वह जन-साधारण की सम्पत्ति (Common property) हो चुकी थी। उसकी धारा निरन्तर प्रवाहित थी। नीति के प्रवेश से प्राणिकथा लोगों में अप्रिय न हो सकी यह विशेष महत्व का तथ्य नीतिकथा के विकास में ध्यान में रखने योग्य है। न केवल अशिक्षित समाज में ही, अपितु शिक्षित समाज में भी उसके प्रति आदर वढ़ गया। वौद्ध धर्म के जातकों में समाविष्ट हो जाने से उसे 'धर्मकथा' का रूप अवश्य मिला, किन्तु वही उसका एक मात्र मुख्य रूप नहीं था। जन-साधारण ने परम्परा से उसका निर्वाह किया और वह नीतिकथा लौकिक कथा के रूप में ही प्रचलित रही। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण पंचतन्त्र ग्रंथ है। पंचतन्त्र-साहित्य की परम्परा वहुत वड़ी है। इस साहित्य के रूप में प्राचीन लौकिक नीतिकथा ने अपना मौलिक रूप यथावत् रखा। नीतिशास्त्र के आचार्यों ने उसका उपयोग किया। वास्तव में वर्मा के लोक-साहित्य में जिसे 'लोक-नीति' कहा जाता है वही नीतिकथा का विषय रहा है[१]।

---

१. J. Gray, Burmese Proverbs and Maxims, London, 1860. Introduction pp. IX-X and pp. 1-36.

गड़रियों एवं शिकारियों के द्वारा उत्पत्ति

पश्चिम की नीति-कथाओं के एक सम्पादक श्री बुसी महाशय ने नीतिकथा (fable) की उत्पत्ति की चर्चा करते समय अपना मत व्यक्त किया है कि नीति-कथा की उत्पत्ति बहुत प्राचीन समय में हुई। 'पश्चिम की नीतिकथा लगभग तीन हजार वर्षों से ज्ञात है। उससे अनुमान है कि, इससे पहले भी उनका उपयोग होता रहा होगा'। इसका पुराना नमूना है जोथम् की दृष्टान्तकथा (The Parable of Jotham)[१] तथा 'पेड़ एवं कंटक-वृक्ष' (The Trees and the Bramble)। इन दृष्टान्त-कथाओं या नीति-कथाओं का (श्री बुसी ने दोनों को समान वाचक माना है)[२] जिस प्रयोजन से उपयोग किया गया, उसे समझना कठिन नहीं है। 'एक सराहनीय लेखक इस विषय में कहते हैं कि, ये कहानियाँ ऐसे लोगों से निकली हैं जिनमें कुछ शिकारी या गड़रिये, अधिकांश में गड़रिये ही थे; उनको कुछ पशुओं के आपस के व्यवहार का निरीक्षण करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ करता था। उनमें से कुछ तथ्य तो मानव का मानव के प्रति जैसा व्यवहार होता है वैसा होने से उन (गड़रियों) पर अवश्य प्रभाव कर गये होंगे और जब इस प्रकार के व्यवहार अपने साथियों में उन्हें दृष्टिगोचर हो जाते थे, तब यह स्वाभाविक था कि, शिक्षा देने या उनमें गर्भित निर्भर्त्सना को व्यक्त करने के लिए वे उन उदाहरणों को प्रस्तुत करें। इसके अतिरिक्त, एक सीमित समाज में, यह निर्भर्त्सना या चेतावनी को व्यक्त करने की सम्भवतः एक मात्र प्रणाली थी जिसका उपयोग बिना किसी कटुता से हो सकता था। सभी लोगों में, एवं युग-युग में चिन्तनशील व्यक्ति हुए। उनको यह स्पष्ट हो चुका था कि, यही एक ऐसी प्रणाली है जो सत्य को अनजाने ही मन में प्रविष्ट कराएगी और किसी को विप्रिय लगने का अवसर न देकर मनुष्यों को अच्छे मार्ग पर ले जाएगी। इस विषय में, नीतिकथा स्पष्ट रूप से अधिक व्यक्त तथा सरल आश्रय था। मनुष्य की इर्द गिर्द वस्तुओं, उनके परिचित प्राणियों ने शिक्षा के पाठ, चेतावनी या वाक्प्रहार निकलने लग गये[३]।

---

१. Bible-Judges, IX. 7-15.

२. 'for the words are synonimous' ('Fables' by Bussey), वास्तव में आज दृष्टान्त-कथा (parable) एवं नीतिकथा (fable) में अन्तर स्पष्ट लक्षित हो चुका है।

३. Editor G. Moir Bussey : 'Fables', Introduction p. VI :—

"They appear", says an admirable writer on the subject "to have arisen among a people, who as hunters or shepherds,

इस मत में एक तथ्य अवश्य है। वह यह कि, मानव ने पशु-पक्षियों के आपस में व्यवहार और मानव के आचरण में उसकी समानता देख ली। अपने साथियों में वे समान रूप के प्रसंग-विशेष पर प्राणियों के उदाहरण प्रस्तुत करते थे। चिन्तकों एवं विचारकों ने इसी प्रणाली को अपनाया और नीतिकथा का रूप हमारे सम्मुख आया। इस तथ्य का विवेचन ऊपर हो चुका है।

किन्तु शिकारियों अथवा गड़रियों (hunters and shepherds) के द्वारा ही पहले पहल इस प्रकार के दृष्टान्त दिये जाते होंगे या उनसे पहले वन्य संस्कृति में पलने वाले मानव ने उन दृष्टान्तों को अपनाया होगा? यद्यपि यह निश्चित रूप से कहना कठिन है, तथापि अनुमान से तो ऐसा लगता है कि, यदि गो-चारण (pastoral) संस्कृति से पूर्व वन्य-संस्कृति रही है, तो गड़रियों के पूर्व ही मानव उपजीविका के लिए वन्य प्राणियों का शिकार करते समय उनके दृष्टान्त आपस में दिया करते होंगे।

शिकारियों की गतिविधि गड़रियों से अधिक प्राचीन है। वन्य समाज की आर्थिक उन्नति से वह सम्बद्ध है। पशु उनके उपजीविका के साधन थे। शिकारियों को ऐसे कई प्राणियों के स्वभाव-विशेष ज्ञात हो गये थे। शेर और चीते में स्वभा-

---

most probably the latter had ample opportunities of observing the conduct of men to men; and when such conduct among their companions happened to come under their notice, they would naturally quote the illustration, for the sake of the instruction of reproof it conveyed. Besides, in a limited society, this method of conveying warning or reproof was perhaps the only one which could by applied without offence. It must soon have been clear to those reflective minds which have existed among all people, and in all ages, that it was desirable to adopt some form of instruction which might insinuate the truth, and beguile men into goodness, without giving just cause of offence to any. In this case, the apologue was evidently the most obvious and simple recourse; extracting from the common objects by which men were-surrounded, from the animals which were familiar to them, lessons of instruction, warning and reproof."

वतः कुछ अन्तर भी देखा गया, शेर खुलकर हमला करता है और चीता छिपकर। अर्थात् जीवन में आह्वान देकर आक्रमण करने वाले वीर को सिंह या व्याघ्र की संज्ञा दी जाती है। शिकारी को भुलावा देकर भाग जाने वाले सियार चतुर एवं धूर्त लोगों का प्रतिनिधि या प्रतीक बन गया।

किन्तु ये दृष्टान्त भी प्राणि-कथा तक ही सीमित थे। साहित्य में आज जो नीतिकथा दिखाई देती है उसकी उत्पत्ति शिकारियों एवं गड़रियों के द्वारा नहीं हुई थी। देहाती या नगर-निवासी शिकारी, जिनमे राजा तथा सचिव आदि मृगया-विहारी लोग भी आ जाते है, प्राणियों के दृष्टान्त देते रहे होंगे; फिर भी उसके पूर्व ही वन्य समाज द्वारा प्राणियों के दृष्टान्त दिये जाते थे। आज भी वन्य मानव समाज जहाँ-जहाँ है वहाँ ऐसे दृष्टान्त प्रचलित है। आखेट क्षत्रियों का धर्म था। भारत में राजाओं के साथ उनके चाटुकार भी मृगया-विहार को जाया करते थे। पशु-जीवन को उन्होंने देखा ही होगा। पशुओं में श्रेष्ठ सिंह होता है यह देखकर राजा को सर्व मनुष्यों मे श्रेष्ठ दिखाने के लिए सिंह का उपमान उनके उपयोग में आ गया होगा तो क्या आश्चर्य? उन प्राणियों को कथा भी कल्पित कर वे नागर जीवन मे कहते-सुनते होंगे। शिकारियो एवं गड़रियो ने भी इन प्राणि-दृष्टान्तों की वृद्धि की है।

सब प्राणिकथाओं का रूप मौखिक ही था। प्राणिकथा को शिक्षकों, चिन्तकों एवं उपदेश ने जब अपनाया तभी वह नीतिकथा हो बैठी। चिंतकों के दृष्टान्त भी कुछ समय तक मौखिक रूप मे ही प्रचलित रहे थे। और तभी उन्होने अपना नीति-कथा का रूप धारण कर लिया। इसी प्राचीन मौखिक नीतिकथा का अवशेष लोकोक्तियों मे रह जाता है, जो आज भी केवल कहावत के रूप मे स्थित है। ईसप की नीति-कथाएं पहले मौखिक रूप में ही यूरोप मे प्रचलित थी, बाद मे उसका ईसा के पश्चात संकलन हुआ[१]। भारत में भी जातकों एवं महाभारत मे स्थिर होने के पूर्व नीतिकथा आख्यानकारों के मुख से ही कही जाती थीं।

गड़रियों एवं शिकारियों के दृष्टान्तों में कोई नीति-सम्बन्धी शिक्षा का पाठ देने का उद्देश्य नहीं था। यह तो अनन्तर की उपलब्धि है कि, बिना किसी को दुखाये, इन दृष्टान्तों से ताना कसा जा सकता है, गुमराह समाज या व्यक्ति को अच्छे रास्ते पर लाया जा सकता है। क्योंकि, नीतिकथा मे निहित व्यंग्य को

---

१. ईसा पूर्व ३ शती के प्रारंभ मे ग्रीक कवि बेब्रियस (Babrius) के पद्य मे जो नीतिकथाएँ प्राप्त होती है उनमे और ईसप की बाद मे प्रकाशित कथाओं मे साम्य है।

समझने या व्यक्त करने योग्य वुद्धि का स्तर वन्य शिकारियों का नहीं था। यह तो बाद में प्राणियों की आड़ में मानवीय अर्थ तथा निर्भर्त्सना, वाक्प्रहार या दोषाविष्कार को समझने की पात्रता मानव में आई।

यह ठीक है कि, गड़रियों एवं शिकारियों ने अपनी आप-बीती कहानियाँ कहीं होंगी। मनुष्य साहस-कथा सुनने में स्वाभाविक रूप से उत्सुक होता है, इसलिए उनके हिंस्र पशु के साथ हुई छीना-झपटी या शिकार के रोमांचकारी वृत्तान्त बड़े चाव से सुन लिये गये। इस प्रकार प्राणिकथा की वृद्धि हो हुई फिर भी गड़रियों एवं शिकारियों के पूर्व ही वन्य-समाज में प्राणि-दृष्टान्त चल पड़े थे, यही मानना चाहिये।

साहित्यकारों द्वारा उत्पत्ति :

नीतिकथा की उत्पत्ति साहित्यकारों द्वारा की हुई मान लें तो वह युक्ति-संगत न होगा। पिछली चर्चा से यह स्पष्ट है कि, नीतिकथा की उत्पत्ति एका-एक नहीं हुई। अपितु लोक-साहित्य में प्रचलित प्राणिकथा एवं नीति-वचनों के के एकीकरण से ही नीति-कथा की उत्पत्ति हुई है। ईसप की कहानियों तथा महाभारत, जातक तथा पंचतन्त्र की नीतिकथाओं के मूल रचयिता कौन थे इसका निर्णय करना सरल नहीं है। क्योंकि, इन सब नीतिकथाओं का मूल लोक-साहित्य में है। और लोक-साहित्य किसी एक व्यक्ति का नहीं, अपितु समूचे समाज के द्वारा प्रवर्तित होता है।

भगवान् बुद्ध, महर्षि व्यास या विष्णुशर्मा ये भारतीय नीति-कथाकार अवश्य हैं। युरोप में जो नीतिकथाओं का प्राचीन संग्रह प्राप्त है वह ईसप (Aesop) के नाम से विख्यात है। किन्तु इनकी नीतिकथाओं का रूप पहले ही लोक-वाणी में वन चुका था। इसका कारण यह है कि, इन सभी की नीति-कथाओं मे वहुत समानता पाई जाती है। जातकों में पाये जाने वाले कई स्थल महाभारत में प्रतिविम्बित हुए हैं[१]। ईसप की कथाएँ युरोप में प्रचलित हैं, फिर भी उसकी कई कथाओं में जातकों एवं पंचतत्र की कथाएँ मिलेंगी[२]। प्रागैतिहासिक काल के लोक-साहित्य मे प्रचलित कथाओं को ही इन

---

१. Vienna Oriental Journal, Vienna, 1906, Vol. XX-N Ro. 4. R. Otto Franke : "Jataka-Mahabharata-Parallelen," p. 317.

२. For Aesop's fable The Calf and the Ox, see, Jataka (Cowell's Edition) No. 286, 477; Panchatantra, (Benfey's Edition) Intro, pp. 228, 229. etc.

साहित्यकारों ने अपनाया है यह स्पष्ट है। सम्भवतः राजनीति के आचार्यों ने भी अपने सिद्धान्तों का पाठ देने के लिए कुछ प्राणि-कथाओं की कल्पना कर ली हो। फिर भी उनके सामने आदर्श नीतिकथाएँ पहले ही से लोक-वाणी में प्रचलित थीं जिनका समाज पर खासा प्रभाव था। उनके इसी प्रभाव को देख-कर धार्मिक नेताओं एवं साहित्यकारों ने उन्हें अपनाया। यूरोप में ईसप के नाम पर प्रचलित लोक-कथाओं को ही संकलित करके प्रकाशित किया गया है। ईसप की इन कथाओं से तथा पंचतन्त्र के अनुवाद के कारण प्रभावित होकर फ्रांस में मेरी डी फ्रांस, ला फॉन्टेन्, लेसिंग आदि ने नीतिकथाएँ लिखी, अंग्रेजी मे चॉसर, डॉड्स्ले आदि ने, एवं क्रिश्चन जेलर्ट आदि अन्य यूरोपीय साहित्य-कारों ने नीतिकथाएँ लिखी है। किन्तु इन साहित्यिकों से सदियों पहले ही नीति-कथा की नींव यूरोप में लोक-साहित्य के क्षेत्र मे पक्की हो चुकी थी। भारत में भाष्यकाल मे ही नीतिकथा का साहित्यिक जन्म हो चुका था।

इससे यही स्पष्ट है कि, प्राणियों के दृष्टान्तों एवं प्राणि-कथाओं में नीति-शिक्षा का प्रवेश हो जाने से जो नीतिकथा को रूप प्राप्त हुआ था वह लोक-वाणी मे लोक-नेताओ के द्वारा दिया गया था। साहित्यकारों ने उनका ही संकलन अपनी शैली मे किया और उसे स्थिरता प्रदान की। आगे चलकर तो उनके आधार पर मौलिक कथाओं की सृष्टि होने लगी।

लोकोक्ति (Proverb) :

प्राणिकथाओं मे नीतिवाक्य या सिद्धान्त-सार को संगति लगा देने से नीतिकथा पूर्ण होती है। यह कार्य चिन्तकों, उपदेशको तथा साहित्यकारों का था। इन लोगो के नीति-वचन भी लोक-प्रिय लोकोक्तियाँ ही थीं। अग्नि-पुराण मे आभाणक को 'लोकोक्ति' कहा है[१]। जो सभी लोगो के अनुभव की वस्तु है उसे ही कोई प्रतिभावान् इने-गिने शब्दों मे बड़ी मार्मिकता के साथ व्यक्त कर देता है[२]। प्राचीन दार्शनिक विचारों के अवशेष जो होते है, उनमें से जो मन्तव्य अपनी स्वल्पता एवं शुद्धता के कारण टिक पाते है उन्हे लोकोक्ति (Proverb) कहते है[३]। हमारी विकसित नीतिकथा का यह एक महत्वपूर्ण

---

१. अग्नि-पुराण, अध्याय २४०.२२ 'आभाणकोक्तिर्लोकोक्तिः'।

२. 'Wisdom of many and the wit of one' यह युरोप में प्रसिद्ध वाक्य है।

३. Long-L., Oriental Proverbs and their uses, London, p. 2. "Proverbs are remarks which on account of their shortness and correctness have been saved out of the wreck and ruins of ancient philosophy."

अंश है। क्योंकि लोकोक्ति में नीति-विचारों का सार-तत्व निहित होता है। उनका आधार अनुभूति ही होती है[१]। नीतिकथा के उद्गम को समझने के लिए इस लोकोक्ति को भी समझ लेना आवश्यक है।

वास्तव में लोकोक्ति लोक-साहित्य का ही एक अंग है। प्राचीन काल में जब चिन्तन-धारा का सूत्रपात हुआ तब जीवन को सुचारु रूप से व्यतीत करने की कामना भी मूलरूपेण अवश्य रही है। इस कामना को लेकर विचारकों ने जो कुछ अनुभव किया उसको अपने शब्दों में व्यक्त भी किया। देश-कालादि के कारण इनमें कुछ परिवर्तन होने पर भी परम्परा से वे बने रहे और कहीं कोई नये जोड़ भी दिये जाने लगे। सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि, इन नीति-वचनों या लोकोक्तियों का रूप सार्वजनीन, सार्वकालिक तथा सार्वदेशिक था। इसीलिए मानव के हर तबके में उनका स्वागत हुआ। मूलतया उनका लौकिक (Secular) होना नीतिकथा के लिए बड़ा ही पोषक तत्व (Element) सिद्ध हुआ। प्रारम्भ मे तो वे लोक-वाणी में ही थे। पुरातन भद्र विचारो के सिमटे हुए वे सूत्र ही थे। चिन्तकों ने उनकी सत्यता को पहचान कर अपने उपदेश में उनका उपयोग कर लिया। ऐसे वाक्यों को स्पष्ट करने के लिए दृष्टान्तों का उपयोग हुआ और प्राणियों की कहानी कह कर भी इस प्रकार की लोकोक्ति की पुष्टि की गई। ये ही लोकोक्तियाँ नीति-कथा का सार-वाक्य बन बैठों।

किन्तु प्रत्येक लोकोक्ति किसी जनसाधारण द्वारा नहीं बनाई गई। वह तो जीवन की गहराई देखकर किसी तत्ववेत्ता के प्रवचन मे स्वभावतः उत्स्फूर्त हुई है। इस प्रकार कुछ लोकोक्तियाँ तो किसी प्रतिभावान् चिन्तक के सहज उद्गार हो होते हैं, जिनकी रक्षा समाज करता है और कुछ लोकोक्तियाँ प्राचीन कहानो के अंश होती है। उस कथा का लोप होता है या प्रचलन कम पड़ जाता हैं किन्तु उसके ये अंश मात्र बचे रहते हैं।

एक दूसरी विशेषता यह है कि, लोकोक्ति में ऐहिक जीवन में उपादेय चतुरता तथा सूझ-बूझ व्यक्त होती है। ये मार्मिक वचन सार्वत्रिक सत्य को व्यक्त करते हुए प्रतिदिन के जीवन में मार्गदर्शक भी बनते है। अपनी यह

---

१. J. Christian, Behar Proverbs, London, 1891, p. VIII Intro. "Proverbs, however quaintly expressed, contain the essence of some moral truth or practical lesson; they are drawn from real life, and are generally the fruit of philosophy grafted on the stem of experience."

विशेषता वह नीतिकथा में समर्पित करती है। इस प्रकार का विषय 'लोक-नीति' ही कहा जा सकता है। वर्मा में तो मणिपुरी पण्णों के प्रभाव से संस्कृत का वर्मी भाषा में रूपान्तर 'लोक-नीति' के अन्तर्गत मिलता है[१]।

लोकोक्तियों से प्राचीन लोगों की सामाजिक स्थिति, पुरानी प्रथाओं, इतिहास तथा मानव-वंश-शास्त्र का ज्ञान भी प्राप्त किया जा सकता है[२]।

कई लोकोक्तियों में उपहास (Satire) एवं व्यंग्य भी रहता है जो नीति-कथा में रोचकता उत्पन्न करता है। कहानी में चतुर पात्रों की प्रवञ्चना या छल से भरी वाणी में प्रयुक्त होने से भी लोकोक्ति के कुछ स्थल उपहास-गर्भ हो जाते है।

भारत मे लोकोक्ति की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। सुभाषित, सूक्ति, आभाणक, नीति-वचन, कहावत आदि रूप लोकोक्ति के ही है। इनका मूलाधार वेदों मे भी पाया जाता है[3]। युरोप में ईसा ने दृष्टान्त-प्रणाली का उपयोग किया है[४]। उनमें भी कहावतें आती है। कहावतें लोगों द्वारा सुरक्षित रहती है।

जिस प्रकार प्राणिकथा में धर्मातीत लौकिक तत्व होने से उसकी सार्वजनीन, सार्वत्रिक, एवं सार्वकालिक स्थिति होती है उसी प्रकार लोकोक्ति में भी ये सभी विशेषताएँ विद्यमान होती है। प्राणि-कथा एवं लोकोक्ति के सामञ्जस्य से ही नीतिकथा की उत्पत्ति हुई है। उन दोनों अंशों की समान विशेषताएं नीतिकथा में उतर पड़ी है। इन्हीं विशेषताओं के कारण ही किसी केन्द्र-विशेष में उत्पत्ति होने पर भी, नीतिकथा का संप्रसारण (diffusion) कई देशों में होता रहता

---

१. J. Gray, Burmese Proverbs, London, 1886, 1-31.

२. J Long, Eastern Proverbs and Emblems, London, 1881, Preface, p. VII.

३. ऋ. सं. १. १२. ६. आदि।

४. "Without a parable spake he not to the people"

लोकोक्ति को धर्म के नेताओं ने भी उपयोग मे लिया, इस विषय में प्राणि-कथा से उसकी तुलना हो सकती है। प्राणिकथा एवं लोकोक्ति दोनों लोकसाहित्य के अंग थे, उनको समन्वित कर देने से उपदेशकों के लिए नीतिकथा का माध्यम प्राप्त हो सका। अर्थात् ये धार्मिक नेता लोक-जीवन से ही संबंधित थे, केवल चंद पंडितों की मंडली में श्रेष्ठ नहीं थे। इनके द्वारा धार्मिक क्रान्ति लोगों में हो सकी। धर्म का अंग बनने के उपरांत भी सत्य के कारण वह जन-मानस मे सम्प्रदाय-विहीन अवस्था में भी रही।

है। इस प्रकार से किसी एक देश में उत्पन्न कोई नीतिकथा विश्व की सम्पत्ति बन जाती है।

भारतीय दृष्टिकोण :

प्राणिकथा की उत्पत्ति के विषय में एक और विचार यहां प्रस्तुत किया जा सकता है। जानवरों की गतिविधि एवं मन की बातें जानने वाले लोग भारत में हो गये हैं। अन्य देशों में भी इस प्रकार के लोग रहे हैं। पशु-पक्षियों की भाषा तक ये लोग जानते थे : सम्भव है, इन्हीं लोगों ने प्राणियों की कहानियां कहना प्रारंभ कर दिया हो। पशु-पक्षियों की भाषा एवं व्यवहार ज्ञात हो जाने पर पशु-पक्षियों एवं मनुष्य का अंतर नष्ट हो जाता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य के जीवन-सम्बन्धी तत्व पशु-पक्षियों में भी देखे गये हैं। यह मन की बात जान लेने की प्रथा भारत में प्राचीन काल से रही है। जातक में एक कहानी है कि, बोधिसत्व ने घोड़े के मन की बात जान ली थी। घोड़ा पानी नहीं पी रहा था। क्योंकि वहां दूसरा कोई घोड़ा पानी पी चुका था। बोधिसत्व ने उस घोड़े को दूसरी जगह पर पानी पिलाने को भेजा, तब उसने पानी पिया। पशुओं की यह मनकी बात जान लेने के कारण बोधिसत्व की राजा ने प्रशंसा की है[1]।

पशु-पक्षियों एवं मनुष्यों का अंतर हमारे अज्ञान के कारण ही रहा है। सम्भव है, जिस दिन यह अज्ञान का परदा हट जाएगा उस दिन हमें पशु-पक्षियों की चतुरता, प्रज्ञा, बुद्धि, श्रेष्ठता, अनुशासन-प्रियता, सभ्यता आदि कई बातों का रहस्य ज्ञात हो जाएगा। योनिज प्राणी की अपनी सीमा है। इसीलिए सन्देह है कि, यह अज्ञान का परदा हटकर हमें जीव मात्र का एकमेव नियम का साक्षात्कार हो। यह विभेद या अज्ञान का परदा दो स्थितियों में हटना सम्भव है: एक तो ब्रह्मतत्व के ज्ञान के कारण सिद्ध योगी के लिए परदा हट जायगा। क्यों कि, यह योगी 'समदर्शी पण्डित' कहा जाता है। इसीलिए क्या चूहा और क्या बिल्ली, क्या राजा और क्या प्रजा, क्या गरीब और क्या अमीर—ये सभी भेद उस योगी के लिए कुछ अर्थ नहीं रखते। बुद्ध धर्म में भी पशु-पक्षी एवं मनुष्य में भेद नहीं देखा गया। यह एक मानसिक अवस्था है। उसमे पहुँचकर मनमें ये सारे भेद नहीं रहने पाते। सम्भव है, ऐसी अवस्था में आकर उन्नत एवं सभ्य विचारों वाले लोगों ने प्राणिकथा को जन्म दिया हो।

---

१ जातक (२५); जातक (३४) में बोधिसत्व मत्स्य की भाषा जानते हैं ।; जातक (२१६); जातक (३८६) में तो राजा ने गधे एवं भेड़ की भाषा को सुन कर उनके अभिप्राय को जान लिया था।

दूसरे लोग वे हैं जो पशु-पक्षियों के मन की बात जान लेते हैं। इन्हें भी जानवरों की भाषा एवं व्यवहार से कई गुणों का साक्षात्कार हो चुका हो तो क्या आश्चर्य ? चींटियों को ही लीजिए। उनमें मनुष्य से बढ़कर अधिक अनुशासनप्रियता, दूरदर्शिता एवं क्रियाशीलता देखी गई है। उनके अपने नियम होते हैं, उनका अपना विधान होता है। इन चींटियों की सामाजिक, राजनीतिक और भौतिक हलचल का अनुमान हमें सूक्ष्म निरीक्षण कर लेने पर भी हो सकता है। आज के मानव-वंश-विज्ञान (Anthropology) के पण्डित भी मानने लग गये हैं कि चींटियों में भी एक काफी उन्नत एवं सभ्य (civilized) जाति है जिसकी बराबरी मनुष्य तक नहीं कर सकता। चींटियों के विषय में हमारा ज्ञान पूर्ण न होने के कारण ही सम्भवतः हम इस तथ्य में विश्वास भी न करें। किन्तु एक तथ्य अवश्य है कि, पशु-पक्षियों का अपना एक विश्व है और वे भी प्रकृति के सर्वसाधारण नियमों से आबद्ध हैं जो मनुष्य पर भी लागू है।

पशुओं में भाव-पक्ष परिलक्षित होता ही है और बुद्धिपक्ष का अस्तित्व भी उनमें होता है यह मानना पड़ेगा। प्रश्न इतना ही हो सकता है कि, इन सब प्राणियों में मनुष्य अधिक बुद्धिशाली है। क्योंकि वह भौतिक उन्नति जिस प्रकार कर लेता है उस प्रकार अन्य प्राणियों में नहीं दिखाई देती।

यह एक स्वतंत्र विषय है कि, मानव के इस बुद्धिपक्ष की प्रबलता ने उसे कहाँ तक सुखी किया है ? मनुष्य इसी बुद्धिपक्ष की प्रबलता के कारण प्रकृति से दूर हटता चला गया है। जानवरों ने अपनी भौतिक उन्नति नहीं की इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि वे अपनी जीवन-यात्रा में असफल रहे हैं।

जानवरों को हम बुद्धि-विहीन समझते आ रहे हैं। वास्तव में यह कहा जा सकता है कि, जानवरों के जीवन में उपादेय बुद्धितत्व उनके पास निहित है। उनके जीवन के लिए जितना बुद्धिबल पर्याप्त था उतना उन्हें प्राप्त है यह सबसे बड़ी सफलता या प्रकृति की देन समझिये। मनुष्य अपने बुद्धिबल का दम्भ अवश्य कर सकता है, किन्तु चींटियों की दूरदर्शिता को देखकर वह लज्जित होगा।

पशु-पक्षियों के बुद्धिबल का परिणाम उन्हें ही लाभदायक सिद्ध होता हो तो हमें ज्ञान कहाँ ? क्योंकि मनुष्य की भौतिक उपलब्धियों से पशु-पक्षी बहुत कम लाभान्वित हुए हैं। जिस प्रकार हम पशु-पक्षियों से निर्मित की हुई वस्तुओं का उपयोग कर लेते हैं उतना ही लाभ उन्हें मनुष्य द्वारा निर्मित वस्तुओं से होता है। मनुष्य ने विज्ञान के चमत्कार अवश्य दिखा दिये हैं।

किन्तु लकड़ी में सुन्दर घर करके रहने वाले भौंरे की कला को देखिये, या मधुमक्खियों के छत्ते को निहारिये, तब ज्ञात होगा कि, बिना बुद्धि के यह सब कैसे सम्भव है।

इसीलिए योगियों एवं पशु-पक्षियों की भाषा जानने वालों को पशु-पक्षियों की गतिविधि मनुष्यवत् दिखाई दी होगी। इसी आधार पर प्राणियों के मनुष्यवत् व्यवहार दिखाने की प्रवृत्ति हुई। इस दृष्टि से देखने पर कह सकते हैं कि, पशु-पक्षियों एवं मनुष्यों की यह समानता देखकर ही पशु-पक्षियों की कथा, संवाद, उक्तियाँ कहने सुनने की प्रथा चल पड़ी है।

इस विचार की पुष्टि हम पश्चिम के विकासवाद का सहारा लेकर नहीं कर सकेंगे। मनुष्य असभ्य अवस्था का परित्याग कर उसका विकास करता जा रहा है आदि विचारों से हम काफी परिचित हो गये हैं। भारतीय विचार यह रहा है कि, मनुष्य प्रारम्भ से ही विकसित रहा है और कलियुग तक उसका पतन होता जाता है, फिर भी पुनः सत्ययुग का निर्माण करने को उसमें क्षमता है। भारतीयों का विश्वास जीवन के 'चक्रनेमिक्रम' में है।

विशुद्ध भारतीय दृष्टिकोण से कहा जा सकता है कि, सत्ययुग में प्राणिमात्र के अन्तर्जगत को जानने वाले महात्माओं ने पशु-पक्षियों एवं मनुष्यों में मूलतः कोई भेद नहीं माना होगा। सत्ययुग पूर्ण विश्वास का प्रतीक है। उसमे मनुष्य की उन्नति सभी दिशाओं में हो चुकी थी।

किन्तु मानव-वंश-विज्ञान एवं आज के अनुभव के अनुसार कई मानव-जातियाँ असभ्य स्थिति में पाई जाती है। उनके विषय में क्या कहा जा सकता है? आज की खोजबीन के आधार पर विशुद्ध भारतीय दृष्टिकोण तर्कहीन ज्ञात होगा। किन्तु विकासवाद में मनुष्य के विकास की कल्पना किस प्रकार की है? वह बाहरी आवरण तो नहीं है? असभ्य समाज ने सभ्यता धारण की है। इसका अर्थ है, अपने विज्ञान-बल से मनुष्य ने अपनी भौतिक सम्पत्ति बढ़ा ली है। प्राचीनतम असभ्य समाज को इसी आधार पर हम असभ्य मान लेते हैं। किन्तु केवल बाहरी वेषभूषा एवं आवास आदि की प्रगति मनुष्य की मानसिक प्रगति का द्योतन नहीं करती। आज भी हम क्रोध, मोह, भय, विषाद आदि भावों से आहत है जो हमे असभ्य दशा मे घेरे हुए थे। अनाचार की मात्रा कम हुई हो तो वह भी नहीं।

वैदिक ऋषि वल्कलों को पहनते थे, इसीलिए क्या वे असभ्य थे? पुराणों में तो हमें मानव के सुवर्णयुग की साख मिलती है। केवल बाहरी आवरण पर से हम किसी समाज को असभ्य (Savage) नहीं कह सकते। आदिम मानव-

समाज का मन भी असभ्य होगा इसे सिद्ध नहीं किया जा सकता। इसीलिए भारतीय दृष्टिकोण को अपनाने पर यह नहीं कहा जा सकता कि, प्राणिकथा की उत्पत्ति असभ्य समाज द्वारा प्राणि-प्रवणता के कारण हुई है। इस प्रवृत्ति को प्राणि-प्रवणता की अपेक्षा पशु-मानव एकता की भावना ही कही जा सकती है जो प्राचीन काल के मानव समाज मे रही थी।

यह तो मानव-वंश-विज्ञान के पण्डित भी मान लेते है कि असभ्य समाज में मनुष्य एवं पशुओं में भेद नहीं देखा जाता था। हम पूछ सकते है कि, क्या पशु-मनुष्यों में एकता को देखने वाले समाज को असभ्य कहा जा सकता है? जीव मात्र को एक सूत्र-बन्धन से आवद्ध मानने वाला समाज यदि असभ्य था तो आज चराचर में एक चैतन्य तत्व को मानने वाले ब्रह्मवादी दार्शनिक को क्या कहा जाय? घट घट में राम देखने वाले सन्तो में हम कदापि असभ्य अंश नहीं देख सकते।

इस भारतीय दृष्टिकोण से निष्कर्ष यही निकलता है कि, प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने वाले प्राचीन सभ्य समाज ने प्रकृति की गोद मे पले पशु-पक्षी एवं मनुष्यों में अन्तर नहीं देखा। उसी समाज में योगी, पशु-पक्षियों की भाषा जानने वाले एवं प्राणि-मात्र पर प्रेम करने वाले लोग उत्पन्न हुए। इन्होंने पशु-पक्षियों की मनुष्यवत् घटना को निहारा और उसका कथन मनुष्य के सामने किया। दार्शनिकों, नेताओं एवं आचार्यो ने लोक-कथा में प्रचलित इन कथाओं का उपयोग अपने मत की सिद्धि के लिए कर लिया।

यद्यपि यह भारतीय दृष्टिकोण पश्चिमी विकासवाद के आधार पर नहीं खड़ा किया जा सकता, फिर भी मानसिक विकास के तथ्य को भुलाया नहीं जा सकता। जहाँ तक प्राणिकथा की उत्पत्ति का प्रश्न है, यही कहा जा सकता है कि, प्राचीन समय मे भी मानव एवं पशुओं में एकता का भाव अवश्य रहा है, चाहे वह असभ्यता के कारण रहा हो या सभ्य विचारों के कारण। किन्तु यह तथ्य तो मान्य हो सकता है कि, पशु-पक्षी एवं मनुष्य के सम्बन्ध काफी प्राचीन समय से रहे आये है, उनमें सहवास-जन्य संस्कार है, आज भी सभ्य कहा जाने वाला समाज पालतू पशुओं पर प्रेम करता है, शिकारी जंगल मे जाकर पशुओं का शिकार करने मे रुचि लेते है, वन्य पशुओं की सुरक्षा करने में सरकारें सजग है। इससे स्पष्ट है कि, प्राचीनतम संस्कार नये रूप धारण कर हमारे सामने आये है। इन्हीं संस्कारों ने प्राणिकथा को जन्म दिया है। इसी प्राणिकथा में मानव के नीति-विचार और उनकी शिक्षा दी जाने लगी तब

नीतिकथा की उत्पत्ति हुई है। प्राणि-सम्बन्धी नीतिकथा इस अर्थ में मानव के मन एवं मस्तिष्क की कहानी है।

नीतिकथा की उत्पत्ति कहाँ हुई ?

नीतिकथा किस प्रकार उत्पन्न हुई इसे देख लेने पर यह नीतिकथा किस देश में उत्पन्न हुई इस पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। संस्कृत नीतिकथा का मूल कहाँ मिलता है इसे भी देखना है। किन्तु इसके पहले हमें नीतिकथा की उत्पत्ति भारतवर्ष में या अन्यत्र कहाँ हुई इसे देखना चाहिये, अर्थात् किस देश में प्राचीन समय में नीतिकथा ने जन्म लिया और अपना प्रभाव स्थापित किया जिसके फलस्वरूप वह आज विश्व-साहित्य का एक प्रमुख अंग बन बैठी है ? युरोप में सर्वाधिक प्राचीन नीतिकथा का संकलन ईसप की कहानियों के संग्रह में मिलता है। भारतवर्ष में जातक, पंचतन्त्र एवं महाभारत में प्राचीन नीतिकथाएँ मिलती हैं। इन सभी नीतिकथाओं का मूल कहाँ उत्पन्न हुआ, उसका विस्तार या सम्प्रसारण (diffusion) भी कैसे हुआ आदि प्रश्न विचारणीय है।

भारतमूलक सिद्धान्त (Indianist Theory) :

(१) थिओडोर बेनफे (Theodor Benfey)[1] ने सन् १८५९ में पंचतन्त्र का जर्मन भाषा में अनुवाद किया। इसकी विस्तृत भूमिका में श्री बेनफे ने यह सिद्धान्त व्यक्त किया है कि, यूरोप में प्राप्त कथाओं का मूल भारतीय कथाओं में ही है। बुद्ध-समय में जातकों का युरोप में प्रवेश हुआ और तभी से युरोप में लौकिक एवं परम्परागत कथाएँ होने लगीं। ऐतिहासिक काल में ही यह सम्प्रसारण (diffusion) हुआ। अनुवाद के द्वारा और भी यह साहित्य भारत से युरोप में पहुँच गया। ईसप की अनेक कथाओं पर पंचतन्त्र का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। यह कथाहरण अखण्ड पर्यटक, व्यापारी ज्यू लोग, स्पेन के मूर लोग, पूर्वीय देशों से सम्बन्धित ग्रीक लोग और बाद में क्रूसेडर्स ने किया।

(२) डॉ० गास्टर (Dr. Gaster[2]) ने इस पूर्वीय उत्पत्तिवाद की पुष्टि की। स्लाव्होनिक धर्म-कथाओं का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उन्होंने व्यक्त किया है कि, इन कथाओं का उद्गम पूर्व में ही हुआ। बिझांटियम ग्रीक लोगों के द्वारा

१, Theodor Benfey, Das Pantschatantra, I and II Liepzig, 1859.

२. Dr. Gaster, Ilechester Lectures on Graco-Slavonic Literature.

यह कथा साहित्य पूर्व से पश्चिम में लाया गया। उनका कथन है कि, युरोप में १०वीं शती के पूर्व कोई मौलिक कथा-साहित्य की रचना नहीं हुई थी। उन्होंने भारतीय दैवतकथाओं का युरोपीय दैवतकथाओं के साथ साम्य भी दिखा दिया है।

(३) मेक्स म्युलर (Max Muller) ने तो इस भारतमूलक सिद्धान्त का प्रबल समर्थन किया है। न केवल नीतिकथाएं ही, अपितु जातकों की अन्य गुण-कथाओं का भी प्रभाव युरोप में पड़ा है इस तथ्य को उन्होंने स्पष्ट किया। बौद्ध जातकों की कुछ कहानियाँ पुराने तथा नये टेस्टामेंट में प्राप्त होती है। बरलाम एवं जोसफ (Bariaam and Josaphat) की कथा बौद्ध ग्रंथ ललितविस्तर में वर्णित बुद्धजीवनी से ली गई है। जोसफ स्वयं बुद्धदेव है। जोज बुदसफ 'बोधिसत्व' का ही अपभ्रंश है। बोधिसत्व बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति को कहा जाता है। जोसफ के रूप मे अनजाने ही ईसाइयों ने बुद्धदेव को ईसाई सन्त मान लिया है। ग्रीक लेखक ने भी इसकी भारतीयता को मान लिया है[१]। यहाँ तक कि, शेक्सपीयर के मर्चेन्ट आफ वेनिस तथा अन्यत्र भी भारतीय कथा का प्रभाव परिलक्षित होता है[२]।

नीतिकथा के विषय में तो वे दृढतापूर्वक कहते है :

"पहले पहले तो ईसप तथा फाएड्रस की नीतिकथाओं की पूर्वीय उत्पति के विषय में मुझे कुछ सन्देह था, किन्तु इस विषय को पूर्णतया पूर्वग्रहदोष से विहीन बुद्धि से समझ लेने पर मेरी धारणा तो अधिकाधिक यही हो रही है कि, भारत ही वह भूमि है जिसने उन नीतिकथाओं को मूलरूपेण जन्म दिया, और उनके मुख्य पात्र एवं पूरी पृष्ठभूमि पश्चिम की अपेक्षा पूर्व की ही है। हमें ग्रीस मे नीतिकथा की उत्पत्ति के विषय में कोई पता नहीं चलता। केवल हमें यही कहा गया है कि, ईसप नामक किसी बाहरी व्यक्ति पर ही बहुत सी नीतिकथाओं का दायित्व है[३]।"

---

१. Max Muller, Last Essays, vol. XVII, pp. 276-277.

२. Max Muller, Last Essays XVII, p. 277; Chips from a German Workshop, IV, London, 1875; On the Migration of Fables.

३. Last Essay, p. 272; "I was formerly more doubtful as to the Eastern origin of the fables of Aesopus and Phaedrus; but following up the subject with a perfectly unprejudiced mind, I have become more and more inclined

मॅक्स म्युलर महाशय ने यही मन्तव्य अन्यत्र भी प्रकट किया है कि, अलेक्झांडर के भारत पर आक्रमण होने के पूर्व ही ग्रीस में भारतवर्ष से नीति-कथाएं गई थीं।

ईसप (Aesop) ईसा के ६०० वर्ष पूर्व के माने जाते हैं[१]। उनकी कुछ नीतिकथाएं तो जातक तथा पंचतंत्र की कथाओं का ही युरोपीय रूप मात्र है।

(३) एमान्युएल कास्किन् (Emmanuel cosquin) ने १८७६-८१ के काल मे 'रोमानिया' (Romania) नामक पत्रिका में लोक-साहित्य पर बहुत लेख लिखे। कथाओं का उनका शास्त्रीय विवेचन सराहनीय था। इन्होंने भी भारतमूलक सिद्धान्त की पुष्टि की। इन्होने भारत से पश्चिम की ओर कथाओं का यह निर्गमन जिप्सी लोगों के द्वारा हुआ माना है। ईजिप्त में प्राप्त लोककथाओं की समानता पूर्व एवं पश्चिम की कथाओं में देखकर कासकिन् ने यह मत व्यक्त किया कि, हिंदू कहानियाँ पहले अनार्य लोगों से ली गईं और बाद में वे पश्चिम में पहुँचीं[२]।

(४) प्रो० ऱ्हीस डेविड्स ने भी जातकों का अनुवाद प्रस्तुत करते समय भूमिका में अपना स्पष्ट मत प्रकट किया है कि, जातकों से ही युरोप की कथाएं ली गई है[3]। जातकों को उन्होंने सर्वाधिक प्राचीन लोक-साहित्य का संकलन माना है। कावेल ने भी यही तथ्य प्रकट किया है[२]।

प्रो. ऱ्हीस डेविडस का कथन है कि, (१) अलेक्झांडर के भारत पर

---

to admit that India was the soil that produced them originally, and that the principle characters in these fables, and the whole surroundings, are Eastern rather than Western. We know very little about the origin of fables in Greece. The only things we are told is, that a stranger, Aesopus by name, was held responsible for the most of them."

१. Encyclopaedia Britannica, Vol. 9, 1954 (Aesop).

२. Emmanuel Cosquin's Contes Populaires de Lorraine, 2 vols, Paris.

३. T. W. Rhys Davids, Buddhist Birth Stories, Vol. I, Intro. p. III. "Now in many instances that the western stories were borrowed from the Buddhist ones."

४. The Jataka, Edited by E. B. Cowell, Vol. I. Preface p. XI.

आक्रमण होने के पूर्व ही ईसप का उल्लेख ग्रीक तथा अन्य लेखकों ने किया है। इस ईसप की कुछ कहानियों में बौद्ध जातक कथाएं प्राप्त होती हैं। इससे स्पष्ट है कि, अलेक्झांडर के समय में ग्रीक लोग भारत में नीतिकथाओं को लाये होंगे यह मत ग्राह्य नहीं हो सकता। इसके पूर्व ही बौद्ध नीतिकथाएं ग्रीस में पहुँच चुकी थीं।

(२) अलेक्झांडर के आक्रमण के अनन्तर भी कुछ बौद्ध आख्यान ग्रीस में प्रचलित हो चुके थे, जो बेब्रिअस तथा फाएड्रस (Babrius and Phaedrus) की कविता में प्रकट हुए थे।

(३) बेब्रिअस एवं प्रथम क्रूसेड के बीच के समय में भारत से कथा ग्रीस गई थी या नहीं यह कहना कठिन है। इसके अनन्तर ग्रीक, हिब्रू तथा लेटिन भाषाओं में पर्शियन ग्रंथ के अरब अनुवाद का अनुवाद हुआ जिसमें बौद्ध आख्यान थे। इनके रूपान्तर अन्य युरोपीय भाषाओं में हुए।

(४) ८ वीं शती में सेंट जोन् आफ डमास्कस द्वारा ग्रीक में लिखे गये 'बरलाम तथा जोसफत' (Barlaam and Josaphat) का अनुवाद ११ वीं या १२ वीं शती में लेटिन में हुआ। पश्चिम युरोप में इसका बहुत प्रचार हुआ।

(५) क्रूसेड के समय में तथा स्पेन मे अरब अधिकार हुआ तब युरोप मे कुछ बौद्ध कहानियां गई।

(६) चंगीझखान के हूणों ने अन्य बौद्ध कहानियों को पूर्व युरोप में प्रचलित कर दिया।

(७) इन सब मार्गों से प्राप्त नीतिकथाएं युरोप में मध्ययुग में लोकप्रिय बन गई। उपदेशात्मक साहित्य का अंग बन कर ये कथाएं युरोप के विशाल पुनरुत्थान मे बहुत ही सहायक सिद्ध हुईं। कभी कभी ईसाई धर्म के चोले मे ये बुद्ध की कथाएं लोक-वाणी में प्रचलित रहीं। ईसप के नाम से ये प्रसिद्ध कहानियां संकलित की गई[१]।

(८) श्री डब्ल्यू. नार्मन् ब्राऊन ने भी अमेरिकन निग्रो जाति की कुछ नीतिकथाओं मे भारतीय कथांश देखे हैं[२]। भारत का अफ्रिका से पुराना व्यवसायसम्बन्ध रहा है। अत्यन्त प्राचीन काल मे व्यापारियों के द्वारा ही भारतीय कथाएं अफ्रिका मे गई, फलस्वरूप वहाँ से वे निग्रो जाति के साथ

---

१. T. W. Rhys Davids, Buddhist Birth Stories, London, 1880, p. XLVIII.

२. W. Norman Brown, Asia, Aug. 1920 p. 702, "Hindu Stories in American Negro Folklore."

अमेरिका में भी पहुंचीं। अंकल् रेमस (Uncle Remus) की कहानियों में ६० कहानियां भारतीय हैं। एक कहानी वह है जिसमें एक बालक के लिए दो स्त्रियों में झगड़ा होता है[1]। इस विवाद में न्यायमूर्ति द्वारा व्यवस्था की जाती है कि, जो स्त्री बालक को अपनी ओर खींच सकेगी उसी का वह बालक होगा। इस प्रकार यदि दोनों तरफ से बालक की खींचतान हुई तो अनर्थ होगा यह स्पष्ट था। न्यायमूर्ति के शब्द सुनते ही सच्ची मां उसे छोड़ने के लिए तैयार हो जाती है, ताकि बालक जीवित रहे। किन्तु दूसरी स्त्री तो इस व्यवस्था को अमल में लाने के लिए तत्पर ही थी। न्यायमूर्ति पहली स्त्री को उस बालक की माता मानकर उसे बालक को सौंप देते हैं। यह नीति-विषयक कहानी 'महोसधजातक'[1] में कही गई है जो हिब्रू साहित्य एवं अफ्रिका में भी अपनाई गई। इसी का रूप The Book of Kings की 'सालोमन का न्याय' (Soloman's Judgment) कथा में मिलता है। प्रो० र्‍हीस डेविड्स के अनुसार बेविलोन में जब ज्यू लोग रहे थे तभी इस कहानी को उन्होंने कहा सुना होगा[3]। डॉ. डेनिस ने भी इसका चीनी रूप सामने रखा है[3]।

इसके अतिरिक्त कोषों में एवं अन्यत्र भी जहां कहीं नीतिकथा (fable) के प्राचीन रूप के विषय में लिखा जाता है वहां उसे पूर्व की पश्चिम को देन ही माना है[४]।

यद्यपि एन्साक्लोपीडिया ब्रिटानिका के नये संस्करण के अनुसार ग्रीक नीतिकथाओं को भारतीय नीति-कथाओं से प्राचीन माना है[५], तथापि यह मत चिन्त्य ही है। क्योंकि, अति प्राचीन काल में बौद्ध जातक ग्रीस तक पहुंच गये थे इस तथ्य का खण्डन वहां नहीं किया गया है।

---

१. T. W. Rhys Davids, op. cit. p. XIV (Intro).

२. वही p. XLIV.

३. Dr. Dennys, 'Folk-lore of China'; Rhys Davids, op. cit. p. XLV.

४. Encyclopaedia Britannica, Vol. 9, 13th ed., 1926, p. 114 : "The East, the land of Myths and legends, is the natural home of the fable........"

५. Encyclopaedia Britannica, Vol. 9, Ed. of 1954; p. 21 "In the form in which we have them the greek fables are the older : there is a fable of true type in Hesiod."

हेसिअड (Hesiod) :

सर्वप्राचीन ग्रीक शिक्षाप्रद कविता के जनक हेसिअड (Hesiod) माने जाते हैं। उनके नाम पर 'वर्क्स एण्ड डेज्' (Works and Days) नामक ग्रंथ प्रसिद्ध है उनकी एक कथा 'हॉक् एन्ड नाइटिंगेल' (Hawk and Nightingale) ग्रीक साहित्य में प्राचीनतम नीतिकथा मानी जाती है। इनका समय लगभग ई० पू० ८ वीं शती का माना जाता है। यदि हेसिअड के नाम पर प्रसिद्ध उपरोक्त नीतिकथा तथा उनके काल को प्रामाणिक समझ लिया जाता है, तो ग्रीक नीतिकथा की प्राचीनता को चुनौती देना कठिन है। निःसंकोच हमें ग्रीक साहित्य मे भी नीतिकथा की उत्पत्ति स्वतंत्र रूप मे हुई यही मान लेना होगा।

फिर भी हेसिअड का काल-निर्णय ज्योतिष के तथा अन्य आधार पर किया गया है[१], और ईसा के पूर्व ८ वीं शती के विषय मे स्वयं कोपकार निश्चित रूप से नहीं कह पाये हैं[२]। 'हॉक एन्ड नाइटिंगेल' यह प्राणिकथा मात्र ही रही होगी या नीतिकथा यह कहना भी कठिन है। आज का उसका रूप केवल जैसा मान भी लिया गया हो, फिर भी हेसिअड के समय मे वह लोककथा की ही अवस्था मे रही होगी और अनन्तर उसमे नीति-शिक्षा का प्रवेश हुआ होगा यह विचार प्रस्तुत किया ही जा सकता है। इस प्रकार ग्रीक नीतिकथा की प्राचीनता फिर भी सन्देह मे पड़ जाती है। अलीनचित्त जातक (१५६ मे वर्णित हाथियों के स्वभाव का साम्य हेसिअड में भी पाया जाता है[३]। इससे तो उस सन्देह की और भी पुष्टि हो जाती है। हेसिअड अधिकतर दैवतोत्पत्ति-कथा (Theogny) की ओर झुके हैं। किन्तु आर्यों की वैदिक कथाओं का वह कृत्रिम अनुकरण मात्र है, यह मत मैक्स म्युलर ने प्रकट किया है[४]।

---

१. Van Lennep : Works and Days, 1847.

२. Encyclopaedia Britannica, 1954, 'Hesiod', "Probably 8th cent. B. C."

३. देखिए, कावेल द्वारा सम्पादित 'जातक', १९५७ संस्करण, २, जातक नं० १५६, पृ० १५ का पदचिह्न।

४. "The Veda is the real Theogony of the Aryan races, while that of Hesiod is a distorted caricature of the original image" Max Muller's quotation, Vide J. Dowson, "A Classical Dictionary of Hindu Mythology" Intro. p. X

नीतिकथाओं के भारत-मूलक सिद्धान्त को रखते समय बेनफे, ह्रीस डेविड्स, मैक्स म्युलर, कास्किन् आदि विद्वानों ने हेसिअड़ की इस एकमात्र कहानी को ओर ध्यान नहीं दिया है। उन्होंने ईसप की ही चर्चा की है। सम्भव है, हेसिअड को वे नीतिकथाकार की अपेक्षा कहीं शिक्षाप्रद ग्रीक कविता के रचयिता मात्र मानना पसंद करते थे।

इधर भारतीय साहित्य का कालानुक्रम भी तो अभी स्थिर नहीं हो पाया है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणों की कथाओं का काल निश्चित रूप से आठवीं शती से कहीं अधिक प्राचीन मानना पड़ेगा।

वास्तव में तो अलेक्झांडर, ईसप तथा हेसिअड से भी पहले लगभग ईसा के १५०० वर्ष पूर्व भारतवर्ष का पश्चिम से सम्बन्ध प्रस्थापित हो चुका था। ईजिप्तवासियों एवं फोनीशियन् (Phonicians) का रक्त समुद्र तथा अरब-समुद्र के मार्ग से भारत से पुराना व्यापार चला करता था। महाभारत में उल्लेख है कि, राजसूय यज्ञ के समय महाराज युधिष्ठिर को विदेश से अनेक वस्तुओं की भेंट आई थी। समुद्र से की हुई यात्रा का भी उल्लेख प्राप्त है। ऋग्वेद में लिखा है कि राजा भुज्यु समुद्र में डूब रहे थे, किन्तु अश्विनीकुमारों ने उन्हें बचाया।[1]

ईसा के ७२० वर्ष पूर्व असीरिया के शालमनेसर को बेक्ट्रिया से ऊंट एवं भारतवर्ष से हाथी प्राप्त हुए थे। नेबुचदनेझर तृतीय (Nebuchadnezzar III) के प्रासाद में (An Birs Nimrud) भारतीय देवदारु वृक्ष का एक खंड रखा था जो आज ब्रिटिश संग्रहालय में विद्यमान है। क्टेशिअस (Ctesias) एक ग्रीक डाक्टर थे (५०० बी. सी.), उन्होंने भारत पर प्रथमतः स्वतंत्र

---

१. ऋ० सं० १. ११६. ३-५. ११७; १४-१५; ११९. ४; १. ११२. ६; ६. ६२. ६-७; १०. ४०. ७; ६५. १२; १४३. ५. देखिये :

"अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां प्रोलहः समुद्रमव्यथिर्जगन्वान् ।
निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन मनोजवसा वृषणा स्वस्ति ॥ (१.११७.१५)

"हे आश्विनौ, पिता ने किसी काम के लिए तौग्र्य (तुग्र के पुत्र = भुज्यु) को भेजा तब वह समुद्र में गिर पड़ा। तब उसने धैर्य से आपकी प्रार्थना की। उस समय हे वीर्यवान्, अपने उत्तम अश्वों से युक्त तथा शीघ्रगामी रथ में लेकर उसे सकुशल बाहर निकाला।" विशेष—क्या उस समय आज जैसे वायुयान रहे होंगे ? संभव है रथ को उड़ाकर ले जाने की विधि उस समय ज्ञात रही हो ?

पुस्तक लिखी है। उन्होंने एक वनस्पति, मक्खी, बंदर तथा तोते का वर्णन किया है जो भारत के थे[१]।

जातकों में 'बावेरु जातक'[२] नामक एक नीतिकथा है। उसे तो इस सम्बन्ध से बड़ा ही महत्व दिया जाना चाहिये। इस कथा में बुद्धदेव ने कहा है कि, 'बावेरु' नामक राज्य मे व्यापारी साथ में कौवा ले गये। तब वहाँ कोई पक्षी न होने के कारण लोगों ने उसे व्यापारियों से बड़ी कीमत देकर खरीद लिया। उसे सोने के पीजड़े मे रखकर यथेष्ट खाद्य पदार्थ भी दिये। दूसरी बार जब वे व्यापारी अपने साथ एक सुन्दर मयूर ले गये तब वहाँ के लोग उसे माँगने लगे, उन्होंने कहा, 'तुम्हारे देश में दूसरा होगा उसे लेना'। इस पर पहले से भी बड़ी कीमत लेकर व्यापारियों ने उसे दे दिया। तब उसे सोने के पींजड़े में रखकर कीमती भोजन देने लगे और बेचारे कौवे की ओर किसी का ध्यान नहीं रहा। अन्त में वह उड़कर कूड़े कचरे के टीले पर जा बैठा।

इस जातक मे जो 'बावेरु' राज्य है वह उस समय का बाबीलोन (Babylon) ही है। कहानी मे कहा गया है कि, व्यापारी दूसरा पक्षी अपने देश मे प्राप्त कर सकता है। क्योंकि मोर जैसे पक्षी बाबीलोन मे नहीं थे। भारतवर्ष के व्यापारी बाबीलोन जाकर मोर, चावल तथा चन्दन बेचा करते थे। यह जातक ईसा के लगभग ५०० वर्ष पूर्व कहा गया है उसका मूलाधार जो लोकवाणी में प्रचलित लोक-कथा है वह तो उससे भी प्राचीन है[३]।

इधर इस प्रकार भारत का पश्चिम पर प्रभाव हम देखते हैं और उधर हेसिअड की 'हॉक एन्ड नाइटिंगेल' कहानी है। इस विषय में हम यही कह हैं कि, हेसिअड प्राचीन ग्रीक शिक्षाप्रद कविता के रचयिता रहे हैं। उनकी उपरोक्त कहानी ने प्राणिकथा के साहित्य में प्रवेश करने की स्थिति दिखाई देती है। प्राचीन ग्रीक प्राणिकथा को नीतिकथा में परिवर्तित होने के लिए

---

१. J. W. Mc Crindle, Ancient India as described by Megasthenes and Arrian, p. ८. भारत का विदेश से प्राचीन संबंध इस विषय के लिए देखिए :—

G. Bannerjee, India as known to the Ancient World; Vincent Smith, The Early History of India; R. C. Dutta, A History of Civilization in Ancient India.

२. जातक ३३९।

३. Padmini Sengupta, Every day life in Ancient India, 1950, Chapter VIII, pp. 97-99.

हेसिअड की यह कहानी विशेष उपयुक्त नहीं रही होगी। क्योंकि, एकाध कहानी से वह प्रयास क्षीण ही समझा जाएगा। भारतवर्ष में बुद्धदेव ने ५०० जातक कथाएं कही हैं। उनमें कई तो पूर्णरूपेण नीतिकथाएं ही है। जातकों का स्तर देखते हुए लगता है कि, बुद्धदेव के भी पहले ही से समाज में उन्हें नीतिकथा का विशाल मात्रा मे रूप मिल चुका था। पंचतंत्र साहित्य का प्राचीनतम रूप भारत मे था ही। भारतवर्ष मे वैदिक साहित्य मे नीतिकथा के पूर्व रूप मिलते है तथा ब्राह्मण कालीन मनु और मत्स्य की कथा तो हेसिअड से भी प्राचीन है। इसलिए हेसिअड को प्राचीन ग्रीक प्राणिकथा का संग्राहक मान लिया जाए तो हमे कोई आपत्ति नहीं है। ईसप को ही प्राचीन ग्रीक नीतिकथाकार माना गया है वह इसलिए कि, ग्रीक नीतिकथा का पूर्ण रूप ईसप की कहानियों में ही प्राप्त होता है। अतः हेसिअड के नाम पर प्रचलित 'हॉक एन्ड नाइटिंगेल' कहानी के आधार पर ग्रीक नीतिकथा विश्व मे सबसे प्राचीन है यह कहना समीचीन न होगा। प्राणिकथा की तो उत्पत्ति हम सर्वत्र समान रूप से मानते ही है। सवाल केवल इतना ही है कि, इस प्राणिकथा ने किस देश मे प्रथम नीतिकथा का परिष्कृत रूप धारण कर लिया और अन्यत्र अपना प्रभाव उत्पन्न किया था ? क्या ईसप के आधार पर ग्रीक नीतिकथा के विषय मे यह कहा जा सकता है ?

ईसप (Aesop)

बेनफे आदि विद्वानों ने ईसप की कहानियों पर बौद्ध जातकों के प्रभाव को स्पष्ट किया है।

ईसप की लगभग २३ कहानियाँ तो निश्चित रूप से भारतीय हैं, जिनमें सिंह की खाल ओढ़कर घूमने वाले गधे की विख्यात कहानी भी है[1]। ईसप का

---

१. ईसप की कथा :

(१) Ass in the Lion's Skin, देखिये : सहचम्म जातक (कावेल, नं० १८९, भाग २, १९५७ संस्करण) पृ० ७६; Fausboll, Five Jatakas; pp. 14 and 39; Rhys Davids, Buddhist Birth Stories, I, p. v; पंचतंत्र, ४. ७ एवं (हितोपदेश), कथासरित्सागर ६२-१९-२३, James Aesop's Fables, London, 1852, p. 111, La Fontaine, Book V. No. 21; Babrius (Lewis Vol. II). p. 43; etc. प्लेटो की एक कहावत से लगता है कि, इस कथा से वे भी परिचित थे : Kratyl, p. 411.

(२) The Calf and the Ox का साम्य देखिये, जातक नं० २८६

समय ईसा के पूर्व ६२० से ५६० तक का माना गया है। भगवान बुद्ध ने अपनी वाणी में अपने पूर्व जन्म की घटनाओं के रूप में जातक कह सुनाये थे। बुद्ध-देव का कार्य-काल ४८५-५३५ ई० पूर्व तक माना गया है[१]। तो फिर ईसप भगवान् बुद्ध से भी प्राचीन थे? यदि होंगे तो बुद्धदेव की जातककथाओं से वे किस प्रकार से प्रभावित हो गये? ईसप समकालीन भी होते तो भी ग्रीस जैसे दूरवर्ती देश में थे ओर भगवान बुद्ध के प्रचार का कार्य उनके अनन्तर ही हुआ। विदेशों में जातक-कथाएँ जो गईं वे धर्म के प्रचारकों के द्वारा ही। ऐसा प्रचारकार्य अशोक के समय में ही हुआ था। अतः ई० पू० ६वीं शती में वर्तमान

एवं ४७७ (Cowell's Edition); Benfey, Panchatantra, Pref. pp. 228, 229; T. W. Rhys Davids, Buddhist Birth Stories, I, Jataka No. 30 Foot-note, p. 277.

(३) The Fox and the Crow, देखिये, जातक नंबर २९४, २९५.

(४) Goose with the Golden Eggs, देखिए जातक नं० ३२, Rhys Davids, Birth Stories, I, 294, "The Epithet 'Golden', ...gave rise to the fable of the Goose with the Golden Eggs (Footnote) Benfey's Panc-Tantra, I, P. 280; Hahn's Sage-wiss. Studien, P. 69; Herodotus, VI, 129.

(5) Monkey and Cats, देखिए : जातक २०१ (गङ्गेय्य जा० क कल्पना वन्ध)।

(6) Wolf and Crane, देखिए Jataka No. 308, Cowell's ed. 1957, IV, p. 17.

(7) Wolf and Lamb, देखिए Jataka No. 426 Book VIII Cowell, 1957, दीपिजातक। डा० लीबरेक्ट (Dr. Leiberect) ने अपने Orient and Occident, (Vol. I, p. 341) में मर्लिन की पुरानी कथा से कथा-सरित्सागर की योगानन्द कथा (Tawney, K. S. S. Chapt. V, p. 24.) की तुलना की है। बेनफे ने इस लेख पर लिखते समय इस कथा के समान रूप कौन्टेस डो औलनाय (Countess De Aulnoy No. 36, of the Pentamerone of Basile, Straparota, IV. 1) तथा शुक-सप्तति की कथा में दिखाया है। इन कथाओं में मृत मत्स्य भी किसी के पाप को हँसता है।

१. Dr. Winternitz, History of Indian Literature, II, p. 2.

ईसप पर भारतीय बौद्ध कथाओं का प्रभाव था या ग्रीक नीतिकथाओं का बौद्ध-कथाओं पर यह एक विचारणीय प्रश्न है।

त्रिपिटक के खुद्दक निकाय में जातकों का संग्रह किया गया है। वह संग्रह बुद्धदेव के समय में नहीं हुआ। बौद्ध परम्परा के अनुसार बुद्धदेव के महानिर्वाण के कुछ हफ्ते बीतने पर ही प्रथम बौद्ध सम्मेलन हुआ, जिसमें बुद्ध-वाणी का संकलन बौद्धों द्वारा किया गया[१]। किन्तु डा० विन्टरनित्ज ने इस विषय में सन्देह प्रकट करते हुए द्वितीय बौद्ध-सम्मेलन में ही त्रिपिटक ग्रंथ का संकलन हुआ माना है[२]। उसमें भी नीतिकथाओं के संकलन के विषय में तो वे स्पष्ट कहते हैं कि, कुछ गाथाएँ वैदिक युग तक जाती हैं, किन्तु जातकट्ठवण्णना में जो संकलन है वह कोई 'प्राचीनतम' भारतीय नीतिकथाओं, परी-कथाओं तथा कहानियों का संग्रह नहीं हो सकता जैसा कि प्रायः समझा जाता है[३]।

यह सब मान लेने पर भी जातकों की प्राचीनता के विषय में सन्देह प्रकट नहीं किया जाना चाहिये। 'जातकट्ठवण्णना' अनन्तरकालीन भाष्य अवश्य है, किन्तु मौखिक रूप में गाथाओं के साथ बुद्धदेव ने अपने पूर्व जन्म की कथाएँ भी कही थीं। शिष्यों में बैठकर 'गुणकथा' सुनाकर अपने सिद्धान्त की पुष्टि करने की प्रणाली (device) भारत में कोई नई नहीं थी। बुद्धदेव के पहले ही भाष्यकाल में ब्राह्मणों में इस प्रणाली का उपयोग किया हुआ दिखाई देता है। ऐतरेय और शतपथब्राह्मण में तो ऐसे अनेक आख्यान हैं जो अपने सिद्धान्त की पुष्टि के लिए कहे गये है। अतः बुद्धदेव ने अपने धार्मिक विचारों एवं अनुभवों की पुष्टि के लिए गुणकथाएँ कही होंगी तो आश्चर्य की बात नहीं।

दूसरा तथ्य यह है कि, जातकों में कुछ गाथाएँ न केवल बुद्धदेव के समय की हैं, अपितु बुद्ध से पूर्व की भी हैं, अर्थात् वैदिक काल की भी गाथा जातकों में आ चुकी है[४]। गाथा लोक-साहित्य का एक अंग होने से समय-समय पर

---

१. विनय पिटक, चुल्लवग्ग, १०।

२. Dr. Winternitz, op. cit. II, p. 5.

३. Dr. Winternitz, History of Indian Literature, II, p. 123 : "... but the collection as we find it in the Jatakatthavannana, cannot as such, be the 'earliest" collection of Indian fables, fairy tales and narratives, as has been often-affirmed."

४. जातक नं० २७७ तथा ४८७ की गाथाएँ, डा० विन्टरनित्ज, वही पृ० १२३ पदचिह्न १; Luders, Festschrift Windisch, p. 228.

धार्मिक तथा सामाजिक नेताओं द्वारा उनका उपयोग अपने उपदेश के लिए किया जाता रहा है। इसी तथ्य के अनुसार पुरानी से पुरानी गाथा भी जातकों मे पाई जाती हैं।

सम्भव है, पद्यरूप गाथाएँ रह गई और गद्यरूप कथाएँ लुप्त हो गई हों। इससे स्पष्ट है कि, बुद्धदेव के समय के पूर्व ही नीतिकथा का रूप बहुत कुछ स्पष्ट हो गया था जिसे जातकट्ठवण्णना मे 'गुणकथा' कहा गया है[1]।

तीसरा तथ्य यह है कि, बौद्ध या जैन कथा-साहित्य में अलेक्झांडर द्वारा किये गये आक्रमण का कोई उल्लेख या संकेत नहीं प्राप्त होता। इससे भी स्पष्ट है कि, जातकों का संकलन भी ३२५ ख्रि० पू० काल से हो कहीं पहले हो चुका था। जैनकथा-साहित्य भी बौद्ध-कथा-साहित्य मे नीतिकथा उत्पन्न हो चुकी थी। इन प्राचीन जातकों की बहुत सी नीतिकथाएँ ईसप के कथा-संग्रह में मिलती हैं इसलिए यह भी देख लेना होगा कि, यह ईसप कौन थे ? कहाँ के थे ?

ईसप का काल और जन्मभूमि :

यह प्रश्न उपस्थित करने का कारण यह है कि, पश्चिम के विद्वान् ईसप नामक प्राचीन ग्रीक नीतिकथाकार कौन थे, ग्रीस के थे या कहीं से वहां आये थे इस विषय मे निश्चित रूप से नहीं कह सके है। ह्रीस डेविड्स ने तो यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि, जिन्हे हम ईसप की कहानियां कहते है, वास्तव मे वे उसकी नहीं है, अपितु भारतीय कथाएं है। कुछ लोग ईसप के अस्तित्व के विषय में भी सन्देह करते थे, किन्तु ईसप अवश्य थे यह ग्रीक साहित्य मे उनके विषय में जो प्राचीन उल्लेख प्राप्त है उससे स्पष्ट है।

विख्यात ग्रीक चिन्तक प्लेटो (Plato-428-348 B. C.) ने उल्लेख किया है कि, सुकरात (Socretes) ने वन्दिवास में ईसप की कथाओं का पद्य मे रूपान्तर किया[2]। अरिस्तू (Aristotle 384-322 B.C.) तथा लूशियन (Lucian) ने भी उसकी कथा के विषय में जानकारी प्रकट की है[3]। अरिस्टोफेनस (Aristophanes, 155-180 B. C.) ने चार बार उसकी कथा का उल्लेख किया है[4]। प्लुटार्च (Plutarch) ने कहा है कि, ईसप

---

१. जातकट्ठवण्णना, भारतीय ज्ञान-पीठ, काशी, १९५१, निग्रोधमिग-जातक, पृ० १०४।

२. Phaedo, p. 61; Bentley, The Dissertation on the Fables of Aesop, p. 136.

३. Arist. de part. anim. III. 2; Lucian Nigr. 32.

४. Vespae, 566, 1259, 1401 etc.; Aves, 651 and others.

पहले गुलाम था। इस के अतिरिक्त हेरोडोटस (Herodotus 484-425 B. C.), डायोजीनस लाएर्टिअस[1] आदि के उल्लेख भी हैं। इससे अनुमान है कि, ईसप ईसा के पूर्व ५ वीं शती में ग्रीस का कथाकार रहा है।

किन्तु ईसप का कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। विश्व में जो 'ईसप की फेबल्स' विख्यात हैं, वह उसके नाम पर युरोप में प्रचलित नीतिकथाओं का संकलन मात्र है।

फालेरम के डेमेट्रिअस (Demetrius of phalerum, 345-283 B. C.) ने १० पुस्तकों का एक संकलन किया था, किन्तु वह नहीं मिलता। इसके बाद किसी अज्ञात व्यक्ति ने पद्य में नीतिकथाओं का संग्रह किया। इसका केवल उल्लेख ही मिलता है।

बेब्रिअस (300 A. D. Babrius) ने नीतिकथाओं को पद्य में संकलित किया। फाएड्रस (Phaedrus 400 A. D.) ने उन्हीं का अनुसरण कर ४२ नीतिकथाओं को जनता के सामने रखा[2]। इग्नाटिअस डायाकोनस (Ignatius Diaconus-9th Cent. A. D.) ने ५३ नीतिकथाओं का संकलन किया जिनमें पूर्वीय अर्थात् मूलतः भारतीय कथाओं का भी संग्रह उन्होंने किया। चौदहवीं शताब्दी में प्लेन्युडस (Planudus) ने ईसप के नाम पर जितनी नीतिकथाएं प्रचलित थीं उनका संकलन एवं सम्पादन कर उसे "ईसप की फेबल्स" इस संज्ञा से प्रस्तुत किया। इसी संकलन से युरोप में अन्य "ईसप्स फेबल्स" प्रकाशित हुई है। प्लेन्युडस के संकलन में बेब्रिअस को कुछ पद्यमय कथाओं का रूप मिलता है।

पश्चिम में ईसप की नीतिकथाओं का इतिहास इसी आधार पर प्रस्तुत किया गया है[3]। इससे एक तथ्य स्पष्ट है कि, ईसप के नाम पर युरोप में प्रचलित नीतिकथाओं का जो संकलन १४ वीं शती में प्लान्युडस ने किया वही ईसप की विख्यात कथाओं का आधार हैं। साथ-साथ यह भी ध्यान में रखना होगा कि, प्लान्युडस के पूर्व डायाकोनस ने ९ वीं शती मे ही भारतीय कथाओं का भी

---

१. Rhys Davids, Birth Stories, I, p. XXXII, Footnote No. 4.

२. A. Oesterley, Romulus, Die Nachahmungen des Phaedrus und die aesopischen Febeln im Mittelalter, (1870)

३. C. Halm, Aesopi Fabulae (1889); E. Chambry, Esope Fables (1927); A Housath, Corpus Fabularum Aesopicarum (1940); B. E. Perry's edition Aesopica (1952).

संकलन प्राचीन कथाओं के साथ कर डाला था। इससे यह तो स्पष्ट हुआ है कि ईसप की सभी कथाएं उसकी मौलिक रचना नहीं है।

वस्तुतः बेब्रिअस, फाएड्रस तथा प्लान्यूडस के समय के पूर्व ही यूरोप में बौद्ध जातक-कथाएं पहुंच चुकी थीं इस तथ्य को प्रो. र्‍हीस डेविड्स ने स्पष्ट कर दिया है[1]। इन्हीं महाशय ने भी ईसप के अस्तित्व के विषय में व्यक्त की गई शंका का उल्लेख किया है और मान लिया है कि, अरब लोग ईसप को अबीसीनिया का मानते थे, और यूरोप में जो प्रथम बार नीतिकथाएं आई थीं वे भारत या अबीसीनिया से ही[2]। उनका यहां तक कहना है कि, ग्रीक लोगों के भौगोलिक अज्ञान के कारण ईसप को इथियोपियन समझ लिया गया होगा, वास्तव में वह पूर्व का ही रहा होगा[3]। काले रंग के आदमी को ग्रीक लोग अबीसीनिया का समझते होंगे तो आश्चर्य नहीं।

ग्रीक लेखकों के उल्लेख देखते हुए ईसप का अस्तित्व तो मान ही लेना चाहिये। किन्तु वह मूलतया ग्रीक ही था यह नहीं कह सकते। साधारणतया उसे ग्रीक नीतिकथाकार के रूप में विश्व पहचानता है। किन्तु उसका अर्थ यहीं तक सीमित है कि, वह ग्रीस तक गया और वहां रहा। ग्रीस में उसने अपनी अद्भुत नीतिकथा से ग्रीक लोगों को आकृष्ट किया और मर्मग्राही साहित्य को प्रकट किया। वह गुलाम था यह प्लूटार्क का उल्लेख प्रामाणिक है।

डा. हेमचन्द्र जोशी ने ईसप के भारतीय होने की सम्भावना मात्र प्रकट की है[4]। किन्तु पहले ही से विख्यात विद्वान मैक्स म्यूलर ने ईसप किस प्रकार भारतीय रहा होगा इसकी कारण-सहित मीमांसा की है।

उनका कथन है कि ईसप के विषय में हेरोडोटस (Herodotus, 485-425 B.c) को जानकारी है, किन्तु वह ग्रीक लेखक के रूप में नहीं। उसे फ्रिजिया से आया हुआ फ्रिजियन (Phrysian) समझा जाता था। लिडिया (Lydia) के राजा का वह मित्र था। इससे स्पष्ट है कि, वह पूर्व का ही था, ग्रीस का नहीं। प्रो. वेकर (Prof. Welcker) ने उसके

१. Buddhist Birth Stories, I, Intro., pp. xxxii-xxxv.; Benfey, Panch Tantra, Leipzig, 1859; Max Muller, "On the Migration of Fables", Contemporary Review, July, 1870; Last Essays, 1901, xvii, p. 270.

२. वही पेज १५

३. G. Moir Bussey, 'Fables', 1845, Intro. p. ix.

४. नया समाज, जून १९५५, पृ. ४०७ "पंचतंत्र की दिग्विजय"।

'ईसापस्' (Aesopus) नाम की चर्चा की और उसका 'काले रंग का आदमी'...... (Swarthy) यह अर्थ निर्दिष्ट किया है[१]। 'इथियोपिया' से आये हुए व्यक्ति को ग्रीस में इथोपस् (Ethiopus) कहा जाता था। और 'इथोपस्' से हो 'ईसपस्' यह रूप बनकर प्रचलित हुआ। इस नाम के aitho इस अंश का अर्थ है to burn अर्थात् ग्रीस में वह काले चेहरे का आदमी ग्रीक लोगों से भिन्न ही था। ईसप कुरूप था। स्टोबेअस (Stobaeus) के कथानानुसार उसका चेहरा उग्र था, प्लेन्युडस ने उसे कुरूप ही कहा है। फिलास्ट्रेटस (Philostratus) ने चित्र मे आलिखित ईसप को 'कुछ मनोहर, कुछ रूखे' (Partly pleasant, partly grave) चेहरे का निरूपित किया है। संभव है, काले चेहरे के भारतीय गुलाम को ग्रीस में Aithopos कहा जाता होगा। ईसप भारतीय गुलाम ही रहा होगा[२]।

हमें भी लगता है, ग्रीस के लोगों की भारत के विषय मे जानकारी बहुत ही क्षीण रही होगी। इसीलिए ईसप को इथिओपिया का आदमी समझ लिया गया। होमर को भारतवर्ष के टिन (tin) एवं हाथियों की जानकारी थी ऐसा दिखाई देता है। किन्तु भारत की भौगोलिक स्थिति से ग्रीक परिचित न थे। उनकी दृष्टि से तो विश्व के अन्त तक पहुंचा हुआ इथियोपिया का पूर्व में विस्तार भारत तक रहा है[3]। मूलतया भारतीय गुलाम होते हुए भी ईसप ग्रीस में व्यापारियों के साथ इथिओपिया से गया होगा, क्योंकि इथिओपिया एवं अरब-पशिया आदि देशों में प्राचीन-काल से आपस में सम्बन्ध रहे है। प्राचीन भारत का व्यापार स्थल तथा सिन्धु-मार्ग से इन देशों के साथ चलता था। यह सम्बन्ध ईसा को कई-शताब्दी पूर्व में रहा है। यह बहुत कुछ सम्भव है कि, ईसप एक भारतीय गुलाम था और व्यापारियों के साथ ईजिप्त, पशिया, इथिओपिया आदि देशों से होता हुआ ग्रीस तक पहुंच गया था। हेरोडोटस

---

१. Professor Welcker, Nineteenth Century, May, 1893.

२. Max Muller, Last Essays, 1901 : "Indian Fables and Esoteric Buddhism" (Rhein. Mus., V . P. 36 ; Seq); Last Essays, 1901, Vol. xvii" Coincidences", p. 272.

३. They (Greeks) probably thought it was an eastern extension of Ethiopia stretching away to the end of the world. Even Alexander first took the Indus for the Nile "Padmini Sengupta, Everyday life in Ancient India, Chapter viii," "Greek & Chinese Visitors", p 98;

(Herodotus, 485-425 B. C.) उसे जानते हैं, किन्तु ग्रीक कथाकार के रूप में नहीं। हेरोडोटस का वास ईजिप्त में रहा है। ईसप को यदि वे ग्रीक के रूप में नहीं जानते, तो इससे यही स्पष्ट होता है कि, हेरोडोटस के अनुसार भी ईसप का सम्बन्ध ईजिप्त से अधिक रहा था। भारत से ईजिप्त में ईसप व्यापार के कारण व्यापारियों के साथ गया होगा। वहां उसकी लोक-वाणी में प्रचलित कहानी ही हेरोडोटस ने सुनी होगी। इसीलिए उसकी जानकारी में उसके ग्रीक होने का उल्लेख नहीं है।

ग्रीस में पहुँचने पर वहीं ईसप रहा होगा यह संभव है। वहां उसकी व्यावहारिक चतुरता, धर्म-देश-काल के बन्धन से अतीत नीति-कथाएं एवं मर्मग्राही नीतिवचन सुनकर ग्रीक लोग प्रभावित हुए थे। चूँकि उनके लिए इस प्रकार की निवेदन-प्रणाली (device of narration) एकदम नई थी, ईसप की कहानियां लोक-प्रिय हो बैठीं। क्योंकि, केवल मनोरंजन के लिए ही प्राणिकथा के उपयोग से वे पूर्व परिचित थे, किन्तु प्राणियों से मानव की-सी कहानी और मानवीय जीवन-सम्बन्धी नीति की शिक्षा व्यक्त होने लगे यह उनके लिए एक नया माध्यम था जो मार्मिक भी था। उसका आधार था सत्य, जो देशकालादि के बन्धन से परे था। अतः शीघ्र ही ऐसी रोचक, मार्मिक किन्तु शिक्षाप्रद कहानियां लोकप्रिय हो गई और ईसप ग्रीस के जनमानस में बैठ गये।

इस तथ्य का स्वीकार कर लेने पर ईसप की फेबल्स तथा जातकों की कथाओं में साम्य क्यों पाया जाता है इसका रहस्य स्पष्ट हो जाता है। इन दोनों का आधार भारतीय लोक-कथा होने से भारत-मूलक सिद्धान्त की पुष्टि ही हो जाती है।

ईसप तथा अन्य लोगों के द्वारा भारत से पर्शिया, एवं लिडिया से अलेक्झांड्रिया अथवा किसी ऐसे व्यापार-केंद्र में भारतीय नीतिकथा पहुंच चुकी थी जहां से युनान एवं अथेन्स के ग्रीक लोगों का भी व्यापार चला करता था[१]। उस समय नगिया एवं इथिओपिया (अबीसीनिया) ऐसे व्यापार-केन्द्र रह चुके थे जहां पूर्व से भारत तथा पश्चिम से ग्रीस तथा नीचे से अफ्रिका के

---

१. Max Muller, Last Essays, Vol. xvii, p. 272. "From India, by way of Persia and Lydia, Burnt faced Aesopus may well have carried these fables to Allexandria, or to some equally accessible mart that was open to the Greeks of Ionia and Athens."

वाणिज्य व्यवसायी आया जाया करते थे। पर्शिया से भारत का प्राचीन व्यापार-सम्बन्ध रहा है। तभी भारतीय परी-कथाओं तथा नीतिकथाओं को उन्होंने अपनाया था। ग्रीस ने पर्शिया से यह भारतीय कथा-साहित्य लिया। अनन्तर रोमन लोगों ने ग्रीकों से ये कहानियां लीं और युरोप में उनसे सम्बन्धित अन्यान्य जातियों में वे पहुंच गईं। इस प्रकार भारत से पश्चिमी एशिया में नीतिकथा बहुत पूर्व पहुँच चुकी थी और बाद में ग्रीस तक। इससे भारतीय नीतिकथा की प्राचीनता की स्पष्ट कल्पना आ जाती है।

एक और भी अवसर भारतीय नीतिकथा को युरोप में जाने का मिल गया। अरबों का पर्शिया से अधिक सम्बन्ध रहा है और उनका भारत तथा चीन से भी। भारत से अरबों ने लोककथाएं एवं नीतिकथाएं लीं। वे उन्हें जेरुसलेम की कैथोलिक धर्मयात्रा तथा क्रूसेडर्स के युद्ध के समय युरोप में अपने साथ ले गये। अरबों ने स्पेन पर अधिकार किया तब भी उनके साथ कुछ भारतीय कथाएं वहां पहुंच गई थीं [1]।

एक समय वह आया कि जब भारत में पंचतंत्र की लोकप्रियता बहुत बढ़ चुकी थीं। उस समय भारतीय नीतिकथा ने पुनः विदेश में दिग्विजय की यात्रा की। भारतीय नीतिकथाओं का अनुवाद ईरान के बादशाह नौशेरवां ने पहलवी मे करवाया। इस संग्रह का नाम 'पंचतंत्र' नहीं था। क्योंकि, उक्त संग्रह में १३ अध्याय थे। जर्मन पण्डित बेनफे का कथन है कि, इसका नाम 'राजकुमारों का (नीति दर्पण)' रहा होगा। हो सकता है कोई 'करटक और दमनक' यही नाम रहा हो। क्योंकि, सीरिया की भाषा मे जो अनुवाद ई० ५७० में हुआ उसका नाम 'कलिलग व दमनग' रखा गया था। पहलवी से यह सर्व-प्रथम अनुवाद था। अनन्तर अरबी में ७५० ईस्वी में 'कलीलह व दिमनह' के नाम से अनुवाद हुआ। पंचतंत्र के और भी अनुवाद फारसी, फ्रेंच आदि भाषाओं मे बहुत हुए [2]। बिडपाई की फेबल्स युरोप में प्रसिद्ध है। अर्थात् ९ वीं शती मे डायाकोनस तथा १४ वीं शती में प्लेन्युडस ने भारतीय नीतिकथाओं के साथ ही ईसप के नाम पर प्रचलित नीतिकथाओं का संकलन किया। उनमें कुछ तो अतिप्राचीन काल में युरोप मे पहुंच गई थीं और वहां

---

१. Bussey, 'Fables', 1845, Intro. p. vii.

२ यहां केवल इतना ही दिखा देना है कि, डायाकोनस (९ वीं शती) तथा प्लेन्युडस (१४ वीं शती) द्वारा ईसप के नाम पर नीतिकथाओं का संकलन किये जाने के पूर्व ही, पंचतंत्र की नीतिकथाएं युरोप में पहुंच गई थीं और जन-मानस की वस्तु बन बैठी थीं।

को जन-सम्पति बन बैठी थीं, जो ईसप के नाम से प्रचलित थीं और दूसरी वे थीं जो 'बिडपाई की फेबल्स' के नाम से विख्यात होकर युरोप में सर्वत्र प्रचलित हो बैठी थीं। अर्थात् उनका भी संग्रह "पूर्वीय नीतिकथा" के रूप में हो गया।

इसी ईसप के समय में जो प्राचीन भारत की लोककथाएं पश्चिम में गई थीं उनका और बाद में पंचतंत्र के अनुवाद के पश्चात् अन्य भारतीय नीतिकथाओं का संग्रह युरोप में हुआ। इन प्राचीन एवं नई नीतिकथाओं का संकलन प्रथम बार ९ वीं शती में डायाकोनस ने ही किया। उस समय बिडपाई की फेबल्स भी युरोप में बहुत लोकप्रिय हो बैठी थीं। युरोप में इन कथाओं का पूर्वीय होना तो माना गया है। किन्तु प्राचीन समय से ईसप के नाम से जो कहानियाँ प्रचलित थी उनकी उत्पति के विषय में कोई जानकारी न होने से उन्हें पूर्वीय नहीं समझा गया। वास्तव में वे भी प्राचीन समय में भारत से गई नीतिकथाएं ही थीं।

भारतीय नीतिकथा का ग्रीस तथा अन्य देशों में किस प्रकार प्रवेश एवं प्रचलन हुआ इस विषय में पश्चिम के कई पण्डित लिख चुके है[१]।

ईसप यदि भारतीय व्यक्ति थे तो वे कौन थे? ईसप नाम की व्युत्पति हम देख चुके हैं। उनका वह नाम तो ग्रीस पहुंचने तक पड़ गया था। गुलाम होने के कारण उनके नाम में मालिक के अनुसार परिवर्तन हो गया था। ईसप आर्य जाति के नहीं जान पड़ते। क्योंकि ईसप गुलाम थे। भारत में वैदिक काल में दस्युओं का ही गुलाम होना स्वाभाविक था। आर्यों के मुख पर कुरूपता का सिक्का नहीं लगा था। वे सुन्दर एवं ऊंचे पूरे थे। ईसप काले रंग के थे। सम्भव है, ईसप के रूप में मोहेंजोदडो की सभ्यता की वह युरोप को देन रही हो। वैदिक साहित्य में अनार्यों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति व्यक्त होती है। उससे स्पष्ट है कि, अनार्यों को ही गुलाम होना पडता था। नवागत आर्यों की त्रिवर्ण-व्यवस्था के कारण अनार्यों की पराजय होने के उपरांत उनके लिये शूद्र वृत्ति ही बची रही। आर्यों का प्रभाव बढ़ते रहने पर पूर्वकालीन व्यापार के कारण जो दास-प्रथा चल रही थी, उसे और भी बल प्राप्त हुआ होगा।

---

१. Loiseleur Deslongchamps in his 'Essai sur les Fables. Indiennes, et sur leur introd. en Europe,' Paris, 1838; Weber, Indische Studien, iii, 337; Adoy, Wagener, 'Essai sur les rapports entre les apologues de l' Ind et de Greece', 1853; Otto Keller, Uber die Geschichte der Griechischen Fabeln,' 1862.

ऋग्वेद काल में ही विदेशी व्यापारी अपने व्यवसाय के लिए भारत आया करते थे। ऋग्वेद में पणियों को कंजूस कहा है[१]। सायण ने उन्हें यास्क के अनुसार वणिक और व्यवहारी (ऋ. सं. १. ३३. ३) "पणिः मा भूः व्यवहारी मा भूयाः" (सायण) कहा है और एक स्थल पर तो 'लुब्धक' भी कहा है[२]। इस स्वभाव विशेष से कहा जा सकता है कि ऋग्वेद के पणि 'फिनीशियन्' लोग रहे होंगे। क्योंकि, यास्क ने 'पणि' का अर्थ 'वणिक्' लिया है[३]। फिनीशिया के ज्यू लोग सूद-व्यवहार के लिए विश्व में विख्यात हैं। इन ज्यू लोगों के साथ ही भारत से कुछ अनार्य दास बनकर फिनीशिया, ईजिप्त, अरब, आदि देशों में जाते रहे होंगे। इस प्रथा के अन्तर्गत अनार्य जाति का व्यक्ति ईसप भी भारत से बाहर गया होगा। आर्यों ने भी अपने जित अनार्य पणि जैसे विदेशी (रसापारनिवासिनः—बृ. दे.)[४] लोगों को बेच दिये हों तो आश्चर्य नहीं। इसी परम्परा में ई० पू० ६०० शती में ईसप गुलाम के रूप में ग्रीस तक गये होंगे।

इससे एक और भी तथ्य स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है। वह यह कि, बुद्धदेव के पूर्व ही, अनार्यो में जो स्वाभाविक रूप से उत्पन्न प्राणिकथाएं प्रचलित थीं उनमें नीति-चतुरता, युक्ति-प्रयुक्ति तथा सत्य-वचन आकर सम्मिलित हो गये होंगे। जातकों तथा महाभारत में इन्हें स्थिर रूप प्राप्त होने के पूर्व ही लोकवाणी मे भारत की प्राणिकथाएँ 'नीतिकथा' बन चुकी थीं। इनके संग्राहक एवं संवर्द्धक अन्यान्य जातियों के लोग थे। उनमें आर्य एवं अनार्य दोनों थे। भारत में ऋग्वेद जैसा उच्च कोटि का साहित्य मौखिक रूप में सदियों तक प्रचलित रहा है। उसे देखते हुए, लोक-वाणी में ही नीतिकथा प्रचलित हो बैठी होगी यह कहा जा सकता है। बुद्धकाल के पूर्व ब्राह्मण काल में उसे साहित्यिक रूप प्राप्त हुआ। जातक में वह स्थिर हो गई। इस प्रकार आर्य एवं अनार्य के संघर्ष के समय तथा उसके पश्चात्, किन्तु बुद्धदेव के पूर्व ही; भारतीय नीतिकथा लोकवाणी में बन गई थी और इसे ही भारत के आदिवासी सुपुत्र ईसप विदेश ले गये होंगे।

बेनफे के पहले, युरोप की नीतिकथाओं का संकलन प्रस्तुत करने वाले

---

१. ऋ. सं. ४. ५१. ३.

२. ऋ. सं. १. १२४. १०, सायण—"पणय इव लुब्धका अबुध्यमाना०" इ०।

३. निरुक्त. २. १७. "पणिर्वणिग्भवति"।

४. बृ. दे. "असुराः पणयो नाम रसापारनिवासिनः।" ८. २४.

बुसी आदि पण्डितों ने भूमिका में जहां भारतीय कथाओं से ग्रीक कथाओं को ही प्राचीनतम माना है[१], वहां उन्होने अपने सामने 'पंचतंत्र' को ही रखकर यह मत प्रकट किया था। आज का पंचतंत्र तो प्राचीन भारतीय नीतिकथा का ही संकलन है। यदि जातकों पर उन पण्डितों की दृष्टि जाती तो वे भी भारत की नीतिकथा की प्राचीनता को सिद्ध करने का अधिक प्रयत्न करते। सर विलियम जोन्स ने तो अपने 'थर्ड डिस्कोर्स आव् हिंदूज' नामक ग्रंथ मे युरोप मे नीतिकथा का आगमन पूर्व से ही माना है[२]।

इस प्रकार वेकर, मेक्स म्युलर आदि विद्वानों के मत जानकर तो यह कहा जा सकता है कि, ई० पू० की ६ठी शती के पूर्व ही भारतीय नीतिकथा ग्रीस तक पहुंच चुकी थी। उन्हीं का संकलन अलेक्झांड्रिया में बेब्रिअस ने किया और उसी को लेटिन कवि फाएड्रस ने लोकप्रिय रूप दे डाला। वही संसार में छा गया[3]। इस प्रकार नीतिकथा भारत की पश्चिम को देन है।

भारतमूलक सिद्धान्त पर आक्षेप

भारत-मूलक सिद्धान्त को सिद्ध करने का प्रयास बेनफे, प्रो. ह्रीस डेविड्स, मॅक्स म्युलर, कास्किन्, डा. गास्टर आदि पण्डितों ने किया। किन्तु जब से लोक-साहित्य एवं मानव-वंश-विज्ञान (Anthropology) में विश्व के पण्डित खोज करने लगे तब से उन्हे यह भारत-मूलक सिद्धान्त निर्मूल दिखाई देने लगा।

उनका कथन है कि, जातक की कथाओं के जो समान रूप यूरोप में प्राप्त होते है वे संख्या मे बहुत कम है। यदि सभी यूरोपीय कहानियां भारतीय होतीं तो भारतीय कथाओं मे उनके प्रतिरूप (variants) क्यों नहीं मिलते ?

कुछ कहानियां भारत से युरोप गई होंगी यह वे लोग मान लेते हैं, किन्तु साथ-साथ उनका कहना है कि, कुछ कहानियां तो भारत में यूरोप से भी आई होंगी। इस प्रकार का आदान-प्रदान प्राचीन काल में चला करता था।

दूसरा तथ्य यह है कि, मानव मात्र में प्राणि-प्रवणता एवं लोक-विश्वास (belief), परम्परा (tradition) तथा घटनाओं (incidents) को धारण करने की स्वाभाविकी प्रवृत्ति पाई जाती है[४]। ये कथा मात्र के ही बीज

---

१. G. Moir Bussey, Fables, 1842, Intro. p. VIII.

२. Vide, Sir William Johns, The Third Discourse of Hindoos; Bussey op. cit. p. IX.

३. Vide Aesop's editions of Blackie, Townshed, Samuel Croxall Jame's Aesop's Fables, London, Murrey, 1882.

४. Macculloch, The Childhood of Fiction, Lond[illegible],

हैं और सर्वत्र पाये जाते हैं। ये वे सार्वजनीन एवं विश्वव्यापक तत्व हैं जिनसे सर्वत्र असभ्य मानव-समाज में प्राणि-कथाएं या प्रसंग-कथाएं (anecdotes) निर्माण होती है। इस प्रकार की प्राणिकथा की परम्परा किसी एक ही देश से प्रारंभ नहीं हुई। अर्थात् जिस प्रकार भारत में प्रागैतिहासिक काल में प्राणिकथाएं प्रारंभिक अवस्था में असभ्य जातियों के व्यवहार में उत्पन्न हुईं, उसी प्रकार उस काल में ही यूरोप में भी प्राणिकथाएं लोकवाणी में स्वतंत्रतया उत्पन्न हुई थीं।

पंचतंत्र के अनुवादक श्री बेनफे के मत का खण्डन करते समय कहा गया है कि, जातक-कथाएं भारत से यूरोप में ऐतिहासिक काल, याने बुद्ध-काल में ही गईं। फिर भी इसके पूर्व ही लोकवाणी में युरोप में वैसी कहानियां अवश्य प्रचलित रही होंगी। बरलाम एवं जोसफत आदि की कहानी का मूल यद्यपि भारत में रहा था, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि, सभी युरोपीय कथाएं भारत से आई थीं। जिस प्रकार भारत में लोककथा को साहित्यिक रूप मिल चुका था, इस प्रक र ऐसी कहानियों को भी युरोप में पहले ही से साहित्यिक रूप मिल चुका होगा[१]। मूलतः लोक-कथा के बीज सर्वत्र समान ही होते हैं।

कॉस्किन (Cosquin) ने अपने कथा-संग्रह में युरोपीय कथाओं का मूल आधार भारत की कहानियों को माना है। उसका भी खण्डन लोक-साहित्य के पंडितों ने किया है : कॉस्किन् के प्रथम संग्रह-ग्रंथ की केवल ६ ही कथाओं में भारतीय समान रूप (parallels) दिखाई देते हैं। पुनर्जन्म की कल्पना भारतीय कही गई है। उसके आधार पर भी भारत-मूलकता का सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। क्योंकि, पुनर्जन्म-कल्पना ऐनोस (Ainos), आस्ट्रेलियन, निग्रो एवं पोलीनेशियन लोगों मे भी पाई जाती है। ये सर्व मूल तत्व है जो सर्वत्र पाये जाते हैं।

इन मूलतत्वों का अस्तित्व सर्वत्र समान रूप से मानते हुए भी कोई यदि कहे कि, इनका उपयोग लोककथा के रूप में करने का प्रयास प्रथमतः भारत में ही हुआ, तो ऐसे समान कथानकों एवं प्रसंगों की संख्या बहुत कम है। इसीलिए कॉस्किन् को अडचन पड़ी और समान रूपों की इस कमी को दूर करने के लिए उन्हे यह भी सिद्धान्त मान लेना पड़ा कि, हिंदुओं को कथाएं पहले अनार्यों से ही ली गईं और अनन्तर पश्चिम को ओर गईं। किन्तु वास्तव में, कहानी का आविष्कार किसी एक केन्द्र में नहीं हुआ, अपितु उसके अनेक

1905, Chapter XVII, p. 452; "Folk-tale incidents are directly connected with man's early ideas, beliefs and customs."

१. वही पृ० ४५३.

केन्द्र थे। संप्रसारण (diffusion) भी ऐतिहासिक काल में ही होता रहा है। सम्भव है कि, समान मूलरूप (incidents) स्वतंत्र रूप से अन्यान्य स्थल में भी उत्पन्न हुए होंगे[1]।

श्री वेनफे के मत का खण्डन मानववंश-विज्ञान के पण्डित अलेक्झांडर क्राप महाशय ने भी किया है। उनका कथन है कि, विश्व की कहानियों का मूल स्थान कोई एक देश नहीं है। उनके मत से भारत एवं विदेश में प्राचीन व्यापार सम्बन्ध रहा है। इस कारण कहानियों का आदान-प्रदान हुआ। वे वरलाम एवं जोसफत की कथा का मूल बौद्ध आख्यान में मान लेते है[2], फिर भी मूल लोककथा को वे सर्वत्र उत्पत्ति ही मानते है। इसलिये भारत से ही ये कथाएं युरोप मे गईं, उसके पूर्व वहां वे नहीं थीं यह नहीं कहा जा सकता।

क्राप् ने कहा है कि, अनेक भारतीय कल्पना-बंध (motifs) चीन एवं जापान मे भी पहुंच गये, उसका कारण धार्मिक आन्दोलन (Religious movement) ही है। बौद्ध प्रचारकों ने बुद्धदेव की कथाओं के माध्यम से चीन एवं जापान में प्रचार किया। भारतीय कथा उन्हीं के साथ वहां गई। किन्तु यह मानते हुए भी कहानियों के प्रसार या संप्रसारण के विषय में उनका मत है कि, हर वक्त धार्मिक आन्दोलन या प्रचार ही ऐसे संप्रसारण का कारण नहीं माना जा सकता, अपितु और भी गहरा कारण उन कथाओं के अभिसरण के लिए हो सकता है[3]।

---

१. Ibid., p. 454 : "There never has been any one centre for story invention, but that there were many centres........" and "This does not, however, exclude the possibility that stories with similar incidents, even similar sequence of incidents, may not have been invented independently in different quarters."

२. Alexander Krappe, The Science of Folklore, (1930), p. 114.

३. वही "It is neither advisable nor admissible always to associate the diffusion of tales with some religious movement or propaganda. Some other more deep-lying reason must be sought to account for the phenamenon of the circulation of tales.";

संप्रसारण के कारण देखिए : Mr. Hindes Groome's theory of

डॉ. विन्टरनित्ज भी भारतीय नीतिकथाओं का निर्गमन (migration) मानते हैं, भले ही बेनफे के सिद्धान्त से वे सहमत न हों। उन्होंने तो विदेश में प्रचलित ऐसी दो या तीन कहानियों के उदाहरण प्रस्तुत किये जो मूलतः भारतीय हैं। किन्तु उनका स्थानान्तरण या रूपान्तरण इस प्रकार विदेश के साहित्य में हो गया कि, उनका मूल पहचानना असंभव हो गया[१]।

डॉ० एस्० एन्० दासगुप्ता भी भारत-मूलक सिद्धान्त पर विश्वास नहीं रखते दिखाई देते हैं। उन्होंने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में मत व्यक्त किया है। बेनफे का यह कहना है कि, कहानियां भारत से युरोप को गईं और नीतिकथा ग्रीस से भारत में आईं, कोई महत्व नहीं रखता यही उन्होंने पदचिह्न देकर स्पष्ट किया है। क्योकि, आज के लोक-साहित्य के विद्वान् कहानी या नीतिकथा का उत्पत्ति-केन्द्र किसी एक देश को नहीं मानते[२]।

वास्तव में बेनफे के समय में ईसप की प्राचीनता को देखकर ही ग्रीस को नीतिकथा को उत्पत्ति का केन्द्र मान लिया गया था, किन्तु बाद में वेकर, मेक्स म्युलर आदि की खोज से ईसप की कथाओं के विषय मे बहुत कुछ जानकारी सामने आ गई। यह स्पष्ट हुआ कि, ग्रीस नीतिकथा का उत्पत्ति-केन्द्र नहीं था। पंचतंत्र के पूर्व ही जातकों की भारत मे स्थिति दृढ थी। फिर भी लोक-साहित्य-शास्त्र के अनुसार किसी एक ही केन्द्र में उत्पत्ति नहीं मानी गई है।

रूथ बेनेडिक्ट ने, जो कि आधुनिक महिला विदुषी है, भी कॉस्किन् के मत का खण्डन करने का प्रयास किया है और कहा है, यद्यपि प्राणिकथा एवं अदभुत-कथा के प्राचीन रूप भारतीय साहित्य में प्राप्त होते हैं, फिर भी भारत से दूर स्थित एस्किमो के लोगों की कहानियां सुनकर कई कथानक समान दिखाई देते है। सरांश यह है कि अलिखित साहित्य अपना अस्तित्व सर्वत्र

---

diffusion by Gipsies, vide : National Review, July, 1866; In Gypsy Tents, p. 169 : 'diffusion, due to mingling of peoples from early times, trade routs, slaves and prisoners marrying women of another stock according to lore of exogamy, the drifting of castaways to unknown storcs"; See Count Goblet d' Alviella, 'The Migration of Symbols.'

१. Geschichte, III, pp. 305-307.

२. Dr. S. N. Dasgupta, History of Sanskrit Literature, Vol. I, p. 66, Footnote No. 3.

प्राचीन काल से अखण्ड बनाये रखता है[१]। स्पष्ट है कि प्राणिकथा भी परम्परा से सर्वत्र प्रचलित है और प्राणिकथा से ही नीतिकथा का विकास हुआ है[२]।

कई कल्पनाएं एक ही समय में अनेक स्थलों पर प्रकट होती है[3]। अतः यह स्वाभाविक ही है कि, अन्यान्य देश में समान कल्पना की कहानियां प्रचलित थीं। अंड्रयू लेंग ने आकस्मिक रूपों (coincidents) पर आधारिक मत का खण्डन किया है[४]। मानव-वंश-विज्ञान के आधार पर कथा के भारतमूलक उत्पत्तिवाद को लोक-साहित्य के कोशकारों ने भी अमान्य कर दिया है[५]।

जब से पुराने मिसरी पेपिरा के लेखों मे कथाओं के सन्दर्भ खोज निकाले गये, उनमे यूरोपीय एवं भारतीय कथाओं का बहुत ही साम्य दिखाई दिया है। ये लेख लगभग ई० पू० १४०० के माने गये है। स्वर्ग एवं प्रलय की कल्पना इजिप्त से ही भारत आई थी, यहा तक निष्कर्ष निकाला जाने लगा। यह भी धारणा व्यक्त हो सकती है कि, भारत-यूरोपीय कथाओं के अवशेष इन लेखों में अंकित हो गये है।

किन्तु जहां तक बौद्ध कथाओं का प्रश्न है, भारत की आर्य-पूर्व जातियों की लोककथाओं का ही अंश उनमें अधिक है। बुद्धदेव ने आर्यो के ब्राह्मण-धर्म के विरोध मे जब विद्रोह किया तब उन्हे आर्यो द्वारा रक्षित एवं संवर्द्धित दैवतकथाओं (Myths) को भी त्यागना पड़ा। इस प्रकार प्राचीन भारत-युरोपीय दैवतकथा के अंश बौद्ध जातकों में अधिक नहीं आ सके। अतः मिसरी पेपिरा के लेखों से भी प्राचीन विशुद्ध भारतीय, लोक-वाणी मे प्रचलित प्राणि-

---

१. Encyclopaedia of Social Sciencses, 1950, III, p. 290.

२. Maria Leach's edition, The Standard Dictionary of Folk-lore, mythology and legend, Vol. I, 'Fable' p. 361.

३. Chamber's Encyclopaedia, IV, 'Folk lore', p. 713; A. Brown, Cassell's Encyclopaedia of Literature, Vol. I, pt. I, p. 224.

४. Andrew Lang, Myth, Ritual and Religion, II, p. 317.

५. Funk and Wagnell's Standard Dictionary of Folk lore I, p. 518;

लोक साहित्य के विवेचन के लिए अन्य संदर्भ : Farrer, Primitive manners and customs, 1879; Lang, Custom and Myth; Hartland, Frazer, The Golden Bough; etc.

कथा की धारा जातकों की तह में प्रवाहित है, उसका महत्व कम नहीं होता। प्रत्युत, ऐसी भारत-यूरोपीय दैवतकथा-परम्परा से सर्वथा मुक्त लौकिक कथा होने के कारण नीतिकथा की अपनी उत्पत्ति स्वतन्त्र ही है। इसीलिए दैवत-कथाओं, परीकथाओं, ध्वनिकथाओं एवं दृष्टान्त-कथाओं से वह कुछ भिन्न ही दिखाई देती हैं। क्योंकि, मूलतया असभ्य मानव-समाज द्वारा सभ्य मानव को दी हुई वह एक भेंट है। भारत का प्राचीन व्यापार संबंध इसका मुख्य कारण है।

संप्रसारण-वादी (diffusionists) यह मानते हैं कि, भौगोलिक सीमा तथा वंश-संस्कृति पर आधारित कुछ तथ्य होते है। कहानियों में समानता होकर वे भिन्न-भिन्न प्रदेश में यदि प्राप्त होती हों, तो उसका कारण संप्रसारण (diffusion) ही है। जितनी उलझन कहानी में अधिक उतना उसका अधिक संप्रसारण हुआ माना जाता है। मूल कहानी तो सरल होती है। यह स्पष्ट है कि, सर्वत्र लोककथा का आविर्भाव होता है, और जो उनमे आपस मे साम्य दिखाई देता है वह भी सम्प्रसारण के कारण।

मानव-वंश-विज्ञान के क्षेत्र मे डा. फ्रेंझ बोआस का कार्य महत्वपूर्ण है। उन्होंने प्राचीन मानव के मन का एक मनोवैज्ञानिक रूप सामने रखा जिससे कहानियों के मूल रूप किस प्रकार उत्पन्न हुए होंगे इसकी स्पष्ट कल्पना हो सकी। दूर दूर रहने वाली जातियों की कहानियों में साम्य देखा गया है[१]। श्री बोआस के अनुसार इसका कारण संस्कृति-विकास की समानरूपता (Parallelism of Culture-Development)[२] है। डा० फ्रेझर ने अथक परिश्रम से 'गोल्डन बाऊ' नाम की विश्व-कथा-संहिता प्रस्तुत की है। उससे प्राचीन प्रथा एवं कथा की कल्पना हमें हो जाती है[3]।

मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय के लोगों ने लोककथा की उत्पत्ति रूपकात्मक मानी है। उन्हें प्रकृति के व्यापार तथा दृश्य शारीरिक व्यवहार के प्रतीक (Symbols) दिखाई देते है। ये दृश्य यौन वासना के प्रतीक हैं। सर्पकथा से यौन व्यवहार का दर्शन उन्हें होता है। विख्यात दार्शनिक फ्रायड द्वारा प्रणीत इडीपस

---

१. Journal of the Bihar and Orissa Reasearch Society, Sept. '26 Vol. XIV pt. III, p. 422 :—Prof. S. C. Mitra's article "Dogbride in Santali and Lepcha folk-lore."

२. Dr. Franz Boas, The Mind of Primitive Man, New York, 1922, p. 181.

३. Sir James Frazer, Golden Bough, Vol. 1-12. (1911-1915).

काम्प्लेक्स (Aedipus Complex) के सिद्धान्त तथा इलेक्ट्रा काम्प्लेक्स (Electra Complex) के उप-सिद्धान्त को सम्मुख रखकर ही प्राचीन कहानियों की जांच पड़ताल इस संप्रदाय ने की है। परी-कथा भी वासना-पूर्ति का प्रतीक है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण (Psycho-analyais) के आधार पर इन लोगों ने वन्य समाज से लेकर सुसंस्कृत मानव की स्थिति तक के मानवमन का विकास प्रस्तुत किया है।

नीतिकथा में जो पात्र अधिकतर प्राणी होते हैं उनका मूल प्राणिप्रवणता तथा अन्य विश्वासों में होता है, इस मत को पुष्टि डार्विन के अनुसार विकासवाद की पृष्ठभूमि पर भी की जा सकती है। क्योंकि, नीतिकथा की जड़ प्राचीन असभ्य मानव-समाज में निहित है। उस समाज का आदिम मानव पशुता को छोड़कर मानव के रूप में विकास कर रहा था, उसमें पशु-प्रवणता का आ जाना स्वाभाविक था। प्राणिकथा का मूल उसी संस्कार मे विकासवाद की दृष्टि से भी सिद्ध है।

समन्वय

वास्तव मे हमारा दृष्टिकोण इस प्रश्न को ओर समन्वयात्मक दृष्टि से देखने का है। कथा एवं नीतिकथा की उत्पत्ति कहां हुई इस विषय में भारत-मूलक सिद्धान्त एवं उसपर किये गये आक्षेपों से हम अवगत हो गए हैं।

प्रो. बेनफे, मेक्स म्यूलर आदि विद्वानों ने यह सप्रमाण सिद्ध कर दिया है कि, युरोप मे ईसप के नाम पर प्रसिद्ध कई नीतिकथाओं का मूल आधार जातको मे निहित है।

उधर लोक-साहित्य के विद्वान् भी विकासवाद, मानव-वंश-विज्ञान तथा आदिम मानव-सम्बन्धी मनोविज्ञान के आधार पर सिद्ध कर चुके है कि, लोककथा का कोई एक ही उत्पत्ति-केन्द्र नहीं हो सकता। लोककथा के तत्व (incidents) सर्वत्र मानव मात्र मे दिखाई देते है, अतः नीतिकथा को भी उत्पत्ति भारत मे प्रथम हुई यह नहीं कहा जा सकता।

तो क्या, इन दोनों में विरोध है? यदि है तो हम इसका परिहार समन्वय के आधार पर करना चाहेंगे।

यह हमे मान लेना होगा कि, कल्पना, विश्वास तथा प्रथाएं यत्र-तत्र सर्वत्र समान रूप से विद्यमान होती है। मूल लोककथा की उत्पत्ति का कोई एकमात्र केन्द्र नही हो सकता। जहां मानव समाज की ये मूल प्रवृत्तियां क्रियाशील रही है वही उनका उद्गम भी स्वभावतः हो गया था। लोक-कथा की उत्पत्ति भारत मे ही प्रथम हुई यह हम नही मान सकते।

किन्तु बेनफे, मेक्स म्युलर आदि पण्डितों का यह सिद्धान्त नहीं है कि लोककथा का जन्म प्रथम भारत में ही हुआ था । प्रश्न नीतिकथा की उत्पत्ति का है । जहां तक साहित्यिक नीतिकथा की उत्पत्ति का प्रश्न है उसका प्रथम आविष्कार भारत में हुआ है । इसका खण्डन नहीं हो पाया है । भले ही लोककथा या प्राणि-कथा एवं अन्य लोक-स्वभाव सर्वत्र स्वतंत्र रूप से विकसित हुए हों, फिर भी उस सामग्री का साहित्यिक नीतिकथा के लिए प्रथम वार उपयोग भारत में ही हुआ है । ब्राह्मण, जातक, तंत्राख्यायिकां, महाभारत की नीतिकथाएं इसकी प्रमाणभूत हैं । प्राणिकथा की नीतिकथा भारतवर्ष में ही प्रथम हुई ।

प्राणिकथा के जो मूलाधार प्राणि-प्रवणता, प्रथा, विश्वास, परम्परा, कल्पना आदि हैं, उनके सर्वत्र पाये जाने से प्राणिकथा की उत्पत्ति सर्वत्र स्वतंत्र रूप से हुई है यह लोक-साहित्य-शास्त्र का सिद्धान्त मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये ।

यूरोप में बौद्ध नीति-कथा के जाने के पूर्व प्राणि कथाएं विद्यमान थीं। हेसिअड (Hesiod) की 'हॉक् एन्ड नाइटिंगेल' उसी का प्राचीन रूप है । क्योंकि, वहां भी चिर शाश्वत मानव के संस्कारों की अभिव्यक्ति होना स्वाभाविक है । विश्व मे ऐसी अनेक प्राणिकथाएं विद्यमान है जिनके पशु या पक्षी भारतीय नहीं है । किन्तु इस विषय में हमें जरा सावधानी से ही खोजबीन करनी पड़ेगी, हमे देखना होगा कि, कौन-सी कहानी कहां की है ? हमारे भारतीय सिंह को खाल ग्रीस के गधे ने ओढ़ ली है[१] । किन्तु ऐसी कहानियां प्रायः भारतीय नीतिकथाओं के प्रभाव से ही लिखी गई है । क्या ग्रीस मे सिंह प्राणी उस समय में रहा है ? यदि नहीं, तो सिंह की खाल ग्रीस के गधे को कैसे मिल गई ? ईसा के पूर्व ४थी शती में एशिया माइनर में डरायस के सिक्कों पर शेर के शिकार का चित्र है । उससे ज्ञात होता है कि, भारत, कंदाहार, एशिया माइनर के देशों में ये प्राणी थे । किन्तु ईसप की कथाओं तथा प्लेटो की कहावत में सिंह का उल्लेख जातकों के ही प्रभाव को प्रकट कर रहा है । पंचतंत्र के चतुर शृगाल ने मलाया के जंगलों में प्रचलित नीतिकथाओं में उसी प्रदेश के प्रिय पशु-विशेष 'माऊस डीअर' (Mouse-Deer) का रूप धारण कर लिया है[२] । ये परिवर्तन

---

१. सीह-चम्म-जातक नं० १८९, पंचतंत्र, ४.७, Jame's Aesop's Fables, London, 1852, p. 111.

२. W. Skeat, Fables and Folk-tales, Cambridge, 1901 : "The Tiger and the Shadow", p. 28 ; पंचतंत्र १.८, सिंह-शशक-कथा ।

कहानी सुनने वाले लोगों के देश, काल, एवं स्थिति के अनुसार होते हैं। उन्हें वहा का रूप इसलिये मिलता है कि, वह वहां की सम्पत्ति हो बैठती है। फिर भी मूलतः कल्पना-बंध, मर्म तथा नीति का पाठ वैसा ही रहता है।

इसीलिए बंदर, हाथी आदि भारत मे पाये जाने वाले प्राणियों की कथा हो तो उसे भारतीय कहना चाहिये और भेड़िये एवं भेड़ों की कथा हो तो ग्रीस या सीरिया की समझनी चाहिये, इस प्रकार हम निश्चय से नहीं कह सकते। क्योंकि, जातक (४२६) मे[१] चीता मेमने को किसी भी बहाने से मारना चाहता है, यह कहानी बोधिसत्व ने कही है। यही कथा ईसप की 'भेड़िया एवं मेमना' (Wolf and Lamb) कहानी मे मिलती है। किन्तु भारतीय चीते ने वहा भेड़िये का रूप धारण कर लिया है। वह इसलिए नहीं कि, भेड़िया भारत मे नही था। भेड़िये का तो उल्लेख ऋग्वेद मे भी आया है[२]।

युरोप मे किस प्रकार ईसप के नाम पर प्रचलित नीतिकथाओं का संग्रह ईसा के अनन्तर होने लगा और ३री शती से उन्हे साहित्य मे स्थिरता प्राप्त होने लगी, यह हमने देखा है। स्वयं ईसप के विषय में पश्चिम के ही विद्वान निश्चित रूप से नही कह पाये है कि, वह मूलतः ग्रीस का ही था। हम यह सम्भावना प्रकट कर चुके ही है कि, भारत मे बुद्धदेव के पूर्व ही जब नीतिकथा का रूप लोकवाणी मे स्थिर हो गया था, तभी अनार्य ईसप गुलाम के रूप मे ग्रीस तक पहुंचा होगा। निश्चित रूप से वह मूलतया ग्रीस का नही था, पूर्व के देश से आया हुआ था यही हमें ज्ञात होता है। आश्चर्य यह भी है कि, ईसप की नीतिकथाओं का संकलनकर्त्ता फाएड्रस भी गुलाम था एवं उसका ईसा की ४थी शती का समय भी अनिश्चित ही है।

इधर भारत में सम्राट अशोक के समय मे तो भारतीय नीतिकथा को इतनी जन-प्रियता एवं स्थिरता प्राप्त हो चुकी थी कि, भरहुत की छतों पर भी ई. पू. ३ शती में ही उनको अंकित किया गया था[३]। इससे पूर्व बौद्ध परम्परा के अनुसार बुद्ध-वाणी का संकलन बुद्धदेव के निर्वाण के कुछ दिनों बाद ही किया गया[४]। इस संकलन के पूर्व ही भगवान् बुद्ध ने नीतिकथाओं का उपयोग कर

---

१. Cowell, 1957, Book VIII, p. 285.

२. ऋ. सं. ६.५१.१४.

३. Vide, Cunningham's Stupa of Bharhut.

४. विनय पिटक, चुल्लवग्ग ११.; किन्तु डॉ. विन्टरनिट्ज़ (History of Indian Lit. II) तथा ओल्डेनबर्ग ने (Vinaya Pitaka, Intro., P. XXV, ZDMG, 52, 625 ; मे) प्रथम धर्म सभा में सुत्तपिटक एवं

लिया था। तब समाज में पहले ही से शिक्षाप्रद आख्यान विद्यमान थे। ऋग्वेद में आख्यान-तत्व तथा नीतिकथा के बीज हम पाते हैं। ब्राह्मण ग्रंथों में दृष्टान्त-कथाओं का रूप भी नीतिकथा का पूर्व रूप ही है। अनार्यों की प्राणिकथा में ये बीज एवं पूर्व रूप सम्मिलित हुए तब समाज मे वह नीतिकथा बन गई थी। उसी का उपयोग बुद्धदेव ने अपने धर्म का प्रचार करने के लिए किया।

इतने प्राचीन काल में, विश्व में भारत के अतिरिक्त प्राणिकथा ने अपना असभ्य चोला छोड़कर नीतिकथा के रूप में सभ्य एवं भद्र साहित्य की अभिवृद्धि कहीं अन्यत्र नहीं की। ऐसी प्राचीन नीतिकथा का रूप ग्रीस मे भी नहीं मिलता। ग्रीक साहित्य मे बुद्धदेव के समय के पूर्व भी नीति-साहित्य या शिक्षाप्रद साहित्य रहा होगा, फिर भी प्राणिकथा का उन्नयन सबसे पहले भारत में ही नीतिकथा के रूप में हो गया था।

अब रहा सवाल शिक्षाप्रद साहित्य का। तो इस विषय में भी ऋग्वेद तथा ब्राह्मणो के आख्यान-साहित्य की प्राचीनता को देखते हुए ग्रीस के नैतिक-साहित्य का प्रश्न ही नहीं उठता।

भारत-मूलक सिद्धान्त के आक्षेपों को देखते हुए यह हमें निःसंकोच मान लेना चाहिये कि, युरोप में भी बहुत प्राचीन काल में प्राणि-कथाएं रही थीं। यदि बौद्ध आख्यानों से प्राचीन ओल्ड टेस्टामेन्ट की कुछ दृष्टान्त-कथाओं की प्राचीनता दिखाई जाती है तो ब्राह्मणों की दृष्टान्त-कथाओं को सम्मुख रखकर ही उसका उत्तर दिया जा सकता है। ईसा ने जो दृष्टान्त कहे है उनसे ये—ब्राह्मणों की दृष्टान्त-कथाएं कहीं अधिक प्राचीन हैं। उनमे जो परिपक्वता आई है उससे स्पष्ट है कि, भाष्यकाल से भी दृष्टान्त-कथाओं का समय प्राचीन है। ब्राह्मण काल में मनु एवं मत्स्य की कथा यहां उल्लेखनीय है।[1]

ब्राह्मण ग्रंथों में लौकिक कथा का रूप भी प्रकट हो चुका है। इस प्रकार की ऐहिक या भौतिक विषय की कहानी प्राचीन काल मे युरोप में भी लोक-कथा से उद्भूत हुई होगी तो आश्चर्य की बात नहीं। क्योंकि, ऐहिक-जीवन-सम्बन्धी कहानियां कहने-सुनने की प्रवृत्ति असभ्य समाज मे भी पाई जाती है। उसकी उत्पत्ति सर्वत्र स्वतंत्र रूप से हो सकी है।

किन्तु नीति-कथा का प्रारम्भिक रूप ब्राह्मणों की दृष्टान्त-कथा के भीतर

विनयपिटक के संकलन को प्रामाणिक नहीं माना है किन्तु बौद्ध परम्परा से यह तो सिद्ध ही है कि बुद्ध-वाणी में जातक पूर्ण रूप से प्रकट हो चुके थे।

१. शतपथ ब्राह्मण, अ. ८ ब्राह्मण, १-६.

हमें दिखाई देता है यह कोई कम महत्वपूर्ण तथ्य नहीं है। अपने सिद्धान्त या मत की पुष्टि के लिए कहानी का इतना प्रगल्भ एवं प्राचीन उपयोग सब से पहले भारत मे ही हुआ।

इसीलिए बाइबल के दृष्टान्तों को फेब़ल् की अपेक्षा पेरेबल ही कहना अधिक समीचीन होगा। इस व्यवस्था से स्पष्ट है कि, दृष्टान्त-कथाओं में भी भारत आगे ही रहा है। जहां फेवल्स की चर्चा पश्चिम में होती है वहां बाइबल की कुछ दृष्टान्त-कथाओं का भी प्राचीन रूप दिखाने के लिए उल्लेख होता है। पूर्व की प्राचीन नीतिकथा का रूप पंचतंत्र या जातकों मे ही उन्हे दिखाई देता है। वास्तव मे, 'फेवल' की व्यापक रूप से ही चर्चा करने का अवसर आता है तो हमे पश्चिम के विद्वानों का ध्यान ब्राह्मणों मे आई उन दृष्टान्त-कथाओं की ओर भी आकृष्ट करना होगा जिनमे व्यावहारिक चतुरता, राजनीति-विषयक सूझबूझ तथा 'लोक-नीति' की शिक्षा भी समाहित है[१]। हम स्वयं इन दृष्टान्त-कथाओं को नीतिकथा (fable) न मानते हुए संस्कृत नीतिकथा का पूर्व रूप मानते हैं। शतपथ में मनु एवं मत्स्य की कथा के रूप में नीतिकथा ने प्रवेश कर लिया था। फिर भी हमारी दृष्टि से भारतीय नीतिकथा ने अपना पूर्ण रूप उपनिषत्-काल मे प्रकट किया था। छान्दोग्योपनिषत् में उसका रूप बहुत कुछ प्रकट हो चुका था[२]।

बुसी महाशय ने ठीक ही कहा है कि, भारतीय साहित्य का ऐतिहासिक अनुक्रम (Chronology) ठीक ज्ञात न होने से पश्चिम के लोग उसे प्राथमिकता देने में हिचकिचाते है[3]। बुसी महाशय के सम्मुख यदि ब्राह्मण-कथाएं भी होतीं तो वे इस चर्चा को एक वाक्य मे ही समाप्त कर देते इसमें सन्देह नहीं।

---

१. देखिये, आगे इसी प्रबंध के अध्याय ४ में। जैसे शत० ब्राह्मण० मे १.७.३. १-८ इत्यादि आख्यायिकाएं।

२. छान्दोग्योपनिषत्, अ. ४, खं. ५, ७, ८. इसकी विशेष चर्चा चौथे अध्याय मे की जाएगी।

३. G. Moir Bussey, Fables, Intro p. VIII :—

"It is supposed, however, that they have no apologue so ancient as those contained in the Bible; though, as they have Fables coeval with the earliest wrightings in their language, it is probable that want of an accurate chronology only which renders us unwilling to concede to them the precedence."

लौकिक नीति-वचन, लोकोक्ति या मार्मिक अनुभूति की परम्परा भारत में प्राचीन रही है। उसी का योगदान नीतिकथा में भी है। इस प्रकार की नीति-कथा पूर्ण रूप धारण करने के उपरान्त ही विदेश गई है। कॉस्किन का कथन ठीक है कि, पहले अनार्यो से कथाएं ली गईं, बाद में हिंदू कथाएं विदेश में गईं। अनार्यों की इस कथा में प्राणिकथा मुख्य थी, और इसी का ग्रहण जब सभ्य समाज द्वारा हुआ तब सभ्य समाज का अपना नीति-शिक्षात्मक उद्देश्य भी उस में आ गया। यह नीतिकथा विदेश में गई और वहां वेब्रिअस, प्लेन्युडस, फाएड्रस आदि प्राचीन ग्रीक-रोमन साहित्यकार तथा मध्ययुगीन मेरी डी फ्रांस, ला फॉन्टेन और डोड्स्ले, चॉसर आदि भी उससे प्रभावित हुए हैं। यह भी मान लेना होगा कि, ईसप के नाम से भारतीय नीतिकथाओं को देखकर कुछ स्वतंत्र-प्राणिकथाएं भी नीतिकथा का रूप धारण कर चुकी थीं।

लोक-साहित्य के पण्डित यह कह सकते हैं कि, प्राणिकथा की उत्पत्ति सर्वत्र समान रूप से स्वतंत्र हुई। किन्तु उस प्राणिकथा की नीतिकथा सर्वत्र एक ही समय में हुई यह वे भी नहीं कह सकते। क्योंकि, असभ्य मानव-समाज की सभ्यता का प्रारम्भ सर्वत्र समान अवस्था में ही हुआ होगा यह मान लिया जा सकता है। किन्तु कोई देश या जाति उचित कारणों से अन्य देश या जाति की अपेक्षा पहले सभ्यता एवं संस्कृति के शिखर तक पहुंच सकती है। यह तो उस देश या जाति की अपनी शक्ति एवं परिस्थिति है जो वह इस उन्नयन की दिशा में प्रगति कर लेती है। सभ्यता एवं संस्कृति का फल यदि साहित्य है तो प्राचीन असभ्य अवस्था के सभी मूल संस्कारों का उदात्तीकरण (sublimation) होकर उसे साहित्य का रूप प्राप्त होता है। नीतिकथा भी उसी साहित्य का एक अंग है और वह समाज की धारणा, प्रथा और विश्वास से पुष्ट प्राणि-कथा का परिष्कृत एवं साहित्यिक रूप है। भारत की इस प्राचीन भूमि पर आर्य एवं अनार्य संस्कृति मे सामञ्जस्य स्थापित हुआ और उसका एक प्रतीक नीतिकथा भी है। उसमें आर्यो एवं अनार्यो के आवश्यक प्रभाव ग्रहण किये गये है। स्पष्ट है कि, विश्व के अन्य राष्ट्र के पूर्व ही भारत में प्राणिकथा को चिरन्तन रूप देकर उसे ग्रन्थबद्ध कर लिया गया[1]।

सुविख्यात रूसी उपन्यासकार श्री इलिआ एहरनबर्ग ने १९५६ में भारत को भेंट दी थी। तब भारत की प्राचीन सभ्यता को देखकर वे आश्चर्य से विमूढ़ हो गये। उन्होंने व्यक्त किया है कि, हमें स्कूलों में बचपन में केवल ग्रीक

---

१. Dr. Winternitz, Geschichte der indischen Litterature, III, p. 26 ़.

वैदिक कथाओं से कहानी का विकास

ऋग्वेद में कुछ महत्वपूर्ण सम्वाद-सूक्त प्राप्त होते हैं। पुरूरवा एवं उर्वशी[1], यम एवं यमी[2] तथा सरमा एवं पणियों[3] के सम्वाद विशेष उल्लेखनीय हैं। विश्वामित्र एवं नदियों का सम्वाद भी उल्लेखनीय है[4]। भारतीय कहानी के इतिहास में इन प्राचीन सम्वादों का बड़ा ही महत्व है। उन्हें 'आख्यान सूक्त' भी कहा गया है। प्राचीन काल के आख्यानों के ही ये शेष रूप हैं। कहानी कला का प्रारम्भ ऋग्वेद के समय में ही हो चुका था यह स्पष्ट है।

लगभग २६ पुरातन कथाएं (Legends) ऋग्वेद से प्राप्त हो सकती हैं[5]।

---

१. ऋ. सं. १०. ९५

२. वही, १०-१०

३. वही, १०-१०८

४. वही, ३. ३३.

विशेष—

श्री ओल्डेनबर्ग ने इन सम्वादों को प्राचीन आख्यानों के अवशिष्ट रूप माना है। उनका मत है कि, ऋग्वेद कालीन आख्यान गद्य-पद्यात्मक थे, पद्यांश रोचक था अतः वह रहा; किन्तु गद्यांश कथात्मक था, वह धीरे-धीरे लुप्त हो गया। चम्पू शैली का आधार ये ही आख्यान हैं।

किन्तु सिल्वा लेवी, डॉ० श्रोडर तथा डॉ० हर्टेल् इन्हें प्राचीन नाटकों के अवशिष्ट अंश मानते हैं। यज्ञ में पात्रों का सन्निवेश हुआ करता था। डॉ० विंटरनित्ज ने इन्हे प्राचीन लोकगीत (Ballad) का नमूना माना है। अर्ध-कथात्मक एवं अर्ध-रूपकात्मक उनका स्वरूप था। श्री भावे ने इन्हे नाटको के सम्वाद मान लिया है। (The Proplems of the Dialogue Hymns of the Rgveda XI, All India Oriental Conference, Hyderabad, 1941), और डॉ. उपाध्ये ने दैवतावादी वीर-गाथाएं कहा है जिनमे कथा एवं नाट्य के तत्व विद्यमान हैं (वृहत्कथा कोश पृ. ७)।

शौनक ने तो पुरूरवा-उर्वशी के सम्वाद को 'आख्यान' ही कहा है।

इस विषय मे अधिक चर्चा करना अप्रासंगिक ही होगा। फिर भी इस मतामत को देखकर हम यह कह सकेंगे कि, चाहे आख्यानों के वे सम्वाद रहे हों या नाटकों के, इनमे प्राचीनतम लोककथा अवश्य झाँक रही है। अतः प्राचीन वैदिक कहानी-तत्व के लिए ये सम्वाद महत्वपूर्ण ही है।

५. Dr. H. L. Hariyappa : Rgvedic Legends through the Ages, Poona, 1953 : "Besides the exploits of individual deit-

इन आख्यानों को नीतिकथा या फेबल् कहने की अपेक्षा पुरातन कथा

ties as above illustrated, 29 legends of a more general-chara-cter could be noted· They are as follows :—

1. Saramā I 6.5
Sunaśśepa I 24. 1
Kakṣīvat and Svanaya I. 125
Dīrgha tamas I 147
5. Agastya and Lopāmudrā I. 179
Grtsamada II. 12
Vasiṣtha and Viṣvāmitra III. 53, VII. 33 etc.
The Descent of soma III. 43.
Vāmadeva IV. 18.
10. Tryaruna and Vrśa Jāna V. 2
Birth of Agni V 11.
Syāvāśva V. 52
Saptavadhri V 78
Brbu and Bharadvāja VI 45
15. Rjiśvan and Atiyāja VI 52
Sarasvatī and Vīādhryaśva VI 61
Viṣnu's three strides VI 69
Birth of Bṛhaspati VI, 71.
King Sudās VII 18 etc.
20. Nahuṣa VII 95
Asanga VIII 1.33
Apālā UIII 91.
Kutsa X 38 (I 33, 51; 97 etc.)
King Asmati and the four priests—X 57-60
Nābhānedistha X 61, 82
Vrsākapi X 86
Urvaśi and Purūravas, X, 95
Devāpi and Santanu X 98
Naçiketas X 135.

(Legend) ही कहा जाना अधिक समीचीन होगा। यम-यमी के सम्वाद से वैदिक कालका नीति-विषयक चित्र हमारे सामने अवश्य उपस्थित होता है। यम और यमी भाई-बहन हैं। यमी यम को चाहती है। किन्तु यम ने अपने उदात्त चरित्र का परिचय दिया है। इस अनैतिक समागम को यम नहीं चाहते। यमी को यम ने नीति का ही पाठ दिया है। फिर भी इस सम्वाद को 'फेबल्' नहीं कह सकते।

पुरूरवा और उर्वशी जैसे सम्वादों में परी-कथा (Pairy-tale) के बीज विद्यमान हैं। उर्वशी अतिमानुष योनि की है। पुरूरवा को वह छोड़ चली जाती है। यह प्रागैतिहासिक आख्यान है। उसे शौनक ने 'पवित्राख्यान' (आख्यान) कहा है[१]।

वैदिक 'आख्यानविद्' लोगों (Legendarians) को निरुक्त में 'ऐतिहासिक' कहा है[२]। वेदों की व्याख्या अन्यान्य दृष्टिकोण रखकर की जाती है। उनमें 'इतिहास' के अनुसार वेदों की व्याख्या करने वाले लोग 'ऐतिहासिक' समझे जाते थे। अथर्व-वेद मे इतिहास-पुराण का उल्लेख है[३]। इतिहास को पञ्चम वेद मान लिया गया था[४]। मेक्स म्युलर के अनुसार वैदिक साहित्य में जिसे 'पुराण' कहा गया है उसी की सामग्री बाद मे लिखे गये पुराणसाहित्य मे कुछ परिवर्तन के साथ पाई जाती है[५]। ऋग्वेद मे देवता इन्द्राविष्णु की प्रार्थना ऋषि भरद्वाज ने की है :

"हे इन्द्राविष्णु, सोम के मद में तुमने जो पृथ्वी का आक्रमण किया वह स्तुत्य है। जो तुमने अन्तरिक्ष का विस्तार किया और सर्व लोगों को उत्पन्न किया वह हमे जीवित रहने के लिए ही[६]।'

---

१. बृहद्देवता १. ५३ : आख्यानं तु हये जाये विलापः स्यान्नदस्यमा।
अवीरामात्मनः श्लाघा सुदेव इति तु स्पृहा ॥

२. निरुक्त, ५. ०. १६, ३. १. १०

३. अथर्ववेद १५. ६. ४

४. छान्दोग्योपनिषद्, ७. १ तथा ७; बौद्ध सुत्तनिपात, ३. ७; शतपथ १३. ४. ३. १२. 'इतिहासो वेदः सोयमिति कंचिदितिहासमाचक्षते।'

५. Hibbert Lectures, P. 154 Note; Also "India, What can it teach us?;' 88-89

६. ऋ मं. ६. ६९. ५:
"इन्द्राविष्णू तत् पनयाय्यं वां सोमस्य मद उरू चक्रमाथे।
अकृणुतमन्तरिक्षं वरीयोऽप्रथतं जीवसे नो रजांसि ॥

इसी का विकास हम तैत्तिरीय संहिता की आख्यायिका में पाते हैं, जिसमें कहा है कि, देवों एवं दैत्यों में तीन जगत् के लिए झगडा हुआ तब विष्णु ने अपने 'वामन स्वरूप' की आहुति दी, और इस प्रकार तीनों लोक जीत लिये[१]। वामनावतार की जो पुराण कथा है वह इन्हीं वैदिक आख्यानों का विकसित रूप है।

कुछ लोगों का मत है कि, प्राचीन वैदिक "इतिहास" मौखिक रूप से चला आ रहा था। उसके कोई ग्रन्थ नहीं थे। किन्तु भोग महाशय का मत है कि, "इतिहास" के अंश ब्राह्मणों तथा सूत्र-साहित्य में बिखरे हुए पाये जाते है[२]। उपरोक्त उदाहरण से यह तथ्य स्पष्ट भी हो जाता है। फिर भी इन सकेतों के अतिरिक्त भी कई आख्यान प्राचीन काल से मौखिक रूप में चले आ रहे होगे। उनका ग्रहण ऋग्वेद में नहीं हुआ, या हुआ भी हो तो सुरक्षित नहीं रह सका। ऐसे आख्यान आगे चलकर ब्राह्मणों एवं उपनिषदों में विकास कर चुके हैं। क्योंकि ऋग्वेद के अनन्तर जो भाष्यकाल आया उसे इन आख्यानों को पाठकों के सामने रख देना आवश्यक प्रतीत हुआ। इसीलिए उन आख्यानों के पूर्वरूप हमें ब्राह्मणों तथा उपनिपदों में प्राप्त होते है। पुराणों में तो और भी वृद्धि हुई है।

जो मौखिक रूप मे प्रवाहित आख्यान-धारा रही होगी, वह लोकसाहित्य से भिन्न न थी। भाष्यकारों ने वैदिक दैवतवाद (Mythdology) के लिए उपादेय आख्यानों को ही अपने भाष्य में चुन कर रखा था यह स्पष्ट है। यज्ञीय विधि-मीमांसा के लिए देवासुर-संग्राम की कथाएं तथा अन्य आख्यान उपयुक्त सिद्ध हुए थे। फिर भी, अनेक ऐसे भी आख्यान रहे होंगे जिनका स्वरूप बहुत कुछ लौकिक (secular) रहा होगा। ऐसे आख्यानों का जहां अपने सिद्धान्तों एवं सांप्रदायिक नियमों की पुष्टि के लिए उपयोग किया गया वहां उनका स्वरूप लौकिक नहीं रह सका। फिर भी सभी लौकिक आख्यान भाष्यकारों द्वारा नहीं अपनाये गये होंगे यह तर्क तो प्रस्तुत किया ही जा सकता है। इसीलिए एक लौकिक कथा की धारा मौखिक रूप में प्रवहमान रही अवश्य होगी।

नीतिकथा लौकिक (secular) साहित्य रहा है। उसके विकास को

---

१. तै० सं० २. १, ३; श०प०ब्रा०, १. २. ५. १.

२. Vide Sieg's article on Itihāsa, Encyclopaedia of Religion and Ethics, ग्रिफिथ् ने भी इतिहास-पुराण को "Legendary and traditionary records" कहा है, Griffith's Transl. of अथर्ववेद Vol. II, XV-7, p. 191, Foot note No. 4.

समझने के लिए अलिखित, अप्राप्य किन्तु अनुमेय लौकिक आख्यानों की धारा की गतिविधि को विशेष महत्व दिया जाना चाहिये। भाष्यकाल में ब्राह्मणों में सर्वत्र साम्प्रदायिक आख्यानों की चर्चा ही सुनाई देती है। किन्तु एकाध लौकिक अर्थ की कहानी भी कहीं पर प्रकट हो गई है। उदाहरण के लिए ऐतरेय ब्राह्मण में कमलनाल चुराने वाले चोरों के द्वारा ली जाने वाली शपथ का उल्लेख है[1]। इससे उस समय की लौकिक कहानी की ठीक कल्पना आ जाती है। फिर भी वैदिक साहित्य मे लौकिक अर्थ की ऐसी कथाएं अधिक नहीं आने पाई।

जो आख्यान ब्राह्मणों जैसे धार्मिक ग्रंथों में समाविष्ट हो चुके, उनकी सर्वजन-ग्राह्यता का लोप होता गया। वे साम्प्रदायिक, धार्मिक और किसी समाज विशेष के प्रिय आख्यान बन बैठे। लोकवाणी में तो उनके मूल रूप स्वतंत्र एवं लौकिक भी रहे होंगे। कुछ एक आख्यान तो अर्थवाद या प्रशंसा के अंग के रूप में प्राचीन ऋषियों ने कल्पित भी किये होंगे। किन्तु ऐसे समय में भी पहले ही से प्रचलित लोकप्रिय कल्पना-बंध (motifs) उन्होंने अनजाने ही अपना लिये होंगे।

नीतिकथाओं के विकास में ग्रंथ-गत वैदिक धर्म-कथाओं का योगदान भी बहुत रहा है। नीतिकथा मे जो नीति-विचार का तत्व विकसित हुआ है वह वैदिक दैवतकथाओं की ही देन है। शिक्षा या पाठ देने की प्रणाली भी इसी धारा मे प्रस्फुटित हुई। नीतिकथा की उद्देश्य- प्रधानता तथा शिक्षाप्रद आख्यान का सार-तत्व दैवत कथा से प्राप्त हुए हैं।

भाष्यकाल में कहानी का अच्छा विकास हो गया था। ऐतरेय-ब्राह्मण, शतपथ-ब्राह्मण, बृहदारण्यकोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद् आदि ग्रन्थों में कई रोचक आख्यान मिलते हैं। ये आख्यान ऋग्वेद काल में दैवत-कथा-परम्परा से प्रभावित है। इनका केवल मनोरञ्जन ही उद्देश्य नहीं है। उनका उद्देश्य है विधि-विधानों की पुष्टि या किसी कर्म अथवा वस्तु की आवश्यकता का प्रतिपादन। शुनःशेप, हरिश्चन्द्र, सत्यकाम जाबालि, नचिकेत आदि के आख्यान भाष्यकाल में जन-प्रिय थे और उन्हे ब्राह्मणादि ग्रंथों में स्थान मिला है। व्यापक अर्थ में जीवन-सम्बन्धी नीति भी इन आख्यानों से व्यक्त होती है।

---

१. ऐ. ब्रा. "अनेन स मेनसा सोभिशस्तां।
वैयस्वतो पापहरादेनः ॥
एकातिथिमपसायं रुणधि।
बिसानि स्तेनो अपसोजहार ॥" (पंचिका ५, अध्याय २५, तं ५)

भाष्यकाल में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य को खोज यह हुई कि, किसी सिद्धांत, नियम या कर्म की उपादेयता सिद्ध करने के लिए कहानी का उपयोग किया जाने लगा। वह कहानी भी पहले ही से जनप्रिय होती थी। उसके माध्यम से कथा-निवेदक का अन्तिम उद्देश्य भली भाँति सफल हो जाता था। यह अप्रत्यक्ष प्रणाली (Indirect method) दो प्रकार की होती थी : एक तो सादृश्य या दृष्टान्त मात्र देकर अपने मन्तव्य को पुष्ट करना और दूसरी यह कि, कहानी कह कर उसके तात्पर्य या सारतत्व के रूप में अपना उपदेश या मन्तव्य प्रकट करना। ऐतरेय-ब्राह्मण में देवासुर-संग्राम आदि की कथाएँ कह कर यज्ञ-विशेष के विधान की पुष्टि की गई है[१]।

दृष्टान्त या सादृश्य दिखाकर अपना विचार व्यक्त करने की प्रणाली ऋग्वेद में भी पाई जाती है। कुछ प्राणियों के भी उदाहरण या दृष्टान्त पाये जाते हैं[२]। ऋग्वेद के ये प्राणि-दृष्टान्त अन्योक्ति अलंकार एवं नीतिकथा के पूर्व रूप ही हैं। वे दृष्टान्त ऋग्वेद तथा ब्राह्मणों में ही दैवतथाओं की प्रबलता के कारण नीतिकथा का रूप धारण न कर सके। धर्मकथा की एक ऐसी परंपरा चल पड़ी थी कि, प्राचीन वीरों, विभूतियों और देवों के चरित्र-सम्बन्धी आख्यान ही वैदिक धर्म की पुष्टि करने के लिए पर्याप्त थे। प्राणियों की कहानी एक कल्पित-कथा ही सिद्ध होती है। उसकी उपादेयता परम्परा से सत्यकथा के रूप में प्राप्त धर्मकथा या पवित्राख्यान के सम्मुख कुछ भी नहीं थी।

वैदिक युग में वैदिक धर्म की पुष्टि के लिए ही कहानी का उपयोग हुआ। कहानी के लिए कहानी नहीं कही गई। कहानी रोचक इसलिए की गई कि, वह श्रोताओं को आकृष्ट कर सके और अपने प्रतिपाद्य के प्रतिपादन में सफलता मिले। इससे विषय को स्पष्ट करने की अपेक्षा भी पूरी हो जाती थी। जो आख्यान स्वयं रोचक थे, उनका ग्रहण भी इसी दृष्टि से किया गया। इस प्रकार पवित्राख्यान का जहां बोलबाला हो रहा था, वहां कतिपय प्राणियों के दृष्टान्तों एवं उदाहरणों से ही काम लिया गया। प्राणियों की कथा कहने की आवश्यकता वैदिक ऋषियों को नहीं पड़ी। दृष्टान्तों से ही काम चल गया। दृष्टान्त देने से प्रतिपाद्य वस्तु में स्पष्टता आ गई। यदि प्राणिकथा कहते तो उसकी सत्यता के विषय मे श्रोता शंकित हो जाते जो वैदिक ऋषियों को कदापि अभिप्रेत नहीं था। इसीलिए बुद्धदेव ने प्राणियों की कहानी कहने पर भी उसे अपने पूर्व जन्म को सत्यता प्रदान की है।

---

१. ऐ. ब्रा. पं. २. खं. १०. खं. ४; ३. १२. १; ६. २७. १ इत्यादि।

२. ऋ. सं. ८. ३४, ३; १. १०. ४. इत्यादि।

ब्राह्मणकाल में पवित्राख्यान की परम्परा दृढ़ हो गई। क्योंकि, ब्राह्मण आदि ग्रन्थों मे केवल प्राचीन वीरों या देवताओं का नाम उल्लेख कर देते तो श्रोताओ के लिए वह समस्या वनी रहती और मूल उद्देश्य की भी पूर्ति न हो पाती। इसलिए उनकी पूरी कथा कहने की आवश्यकता पड़ी। कहानी से अपने प्रतिपाद्य (theme) की पुष्टि या सिद्धि कर लेने का जो तत्व (element) है, वह प्राचीन संस्कृत साहित्य मे सबसे प्रथम यदि कहीं प्राप्त होता है तो ब्राह्मणों में ही।

ये आख्यान धर्मकथाएं थी, प्राणिकथा नहीं। किन्तु उनमें तथा अन्यत्र संस्कृत नीतिकथा के पूर्व रूप अवश्य ही देखे जा सकते है। इन पूर्व रूपों का संस्कृत नितिकथा के विकास में सहायक सिद्ध होना महत्वपूर्ण तथ्य है। क्योंकि, नीति-कथा की तो यह प्रमुख विशेषता रही है कि, नीतिकथाकार अपने अभिप्राय की पुष्टि कहानी से करे। वह कहानी प्राणियों की हो तो उसे नीतिकथा का आज का रूप (fable) आ जाता है। फिर भी मूलतत्व तो वही है जो ब्राह्मणों में था। उनमें अपने सिद्धान्त की पुष्टि के लिए लौकिक कहानियाँ इसी मूल तत्व के आधार पर अपनाई गई है।

मन्त्र-परम्परा

ऋग्वेद के सूक्त का अर्थ है सम्पूर्ण ऋषि-वाक्य[1]। सूक्त मंत्रों का समूह है। वैदिक परम्परा का विश्वास है कि, द्रष्टा ऋषियों द्वारा वैदिक युग में इनका प्रत्यक्ष दर्शन होता था। इसके साथ साथ वेद अपौरुषेय है। हरेक मंत्र का अपना देवता एवं ऋषि है। इन मंत्रों का विषय विविध है : ज्ञान, कर्म एवं भक्ति।

वैदिकधर्म भी देवत्व, धर्मग्रन्थ तथा वीर या गुरु से सम्बन्धित है। देवत्व के साथ कर्मकाण्ड एवं भक्ति, तथा धर्मग्रंथ के साथ श्रद्धा एवं चिन्तन का योग रहा है। किसी महामहिम व्यक्ति के साथ सम्प्रदाय (dogma), शिक्षा या उपदेश तथा उनके चरित्र का सम्बन्ध है।

ऋग्वेद मे दैवतवाद (mythology) के अन्तर्गत अनेक दैवतकथाओं के सम्वाद प्राप्त होते हैं। कर्मकाण्ड तथा भक्ति भी उसी का फल है। ऋग्वेद प्रार्थना-प्रधान होने से मन्त्रों मे अनुभूति से सम्पृक्त ज्ञान के कण भी बिखरे पड़े हुए है। इनका उपयोग आगे चलकर धर्मग्रंथों, प्राचीन वीरों तथा गुरुओं का महत्व बढ़ाने के लिए होना स्वाभाविक था। उपदेश या शिक्षा देने की प्रवृत्ति उपरोक्त सभी तत्वो (elments) के सामन्जस्य से हुई। एक वैदिक सम्प्रदाय

---

१. बृ. दे. "संपूर्ण ऋषिवाक्यं तु सूक्तमित्यभिधीयते।" (१. १३.)

कर्मकाण्ड की महत्तापर बल दे रहा था, ज्ञान के क्षेत्र में दूसरे ने प्रणिधान किया और भक्ति का क्षेत्र भाष्यकाल में भी पुष्ट हुआ। ऋग्वेद में देवता की स्तुति करते समय वह नाम, रूप, कर्म, तथा बांधवों का उल्लेख करके होती है[1]। इनके देवता के किसी कार्य का उल्लेख दैवतकथा का बीज ही है।

ये सूक्त, जिनसे सूक्ति या किसी ऋषिवचन का अर्थ भी लिया जाने लगा, उपदेश तथा नीतिवचन के प्राचीन निधान हैं। सूक्त का 'सुष्ठु उक्तम्' यह लौकिक अर्थ लिया जा सकता है। ऐसे वचन, जो देश, काल, सम्प्रदाय, जाति, भाषा आदि के विभेद की परिधि को लांघकर जा सकते थे, जन-जीवन में प्रिय हो बैठे। आचार्यो तथा उपदेशकों ने उनका उपयोग किया। सुभाषित, आभाणक, लोकोक्ति या कहावत ये इस सूक्ति के ही रूप है। ये सदियों से जन-मानस की सम्पत्ति हो बैठे हैं। वह वस्तु ही सामाजिक हो बैठी। इसी सूक्ति की परम्परा से प्राप्त उपदेश-वचन, नीतिवचन या अनुभव-वाक्य नीतिकथा में प्रविष्ट हुआ। नीतिकथा मे जो सारवाक्य होता है, उसका प्रारम्भ मंत्रों से होता है। मन्त्र-परम्परा से नीतिकथों को यह विशेषता प्राप्त हुई है।

ऋग्वेद में ऐसे वचन आये हैं जो 'सूक्ति' या सुभाषित का रूप धारण किये हुए है:

"न वै स्त्रैणाणि सख्यानि सन्ति।"[2]

"न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।"[3]

"अग्निना अग्निः समिध्यते।"[4] इत्यादि।

भिक्षु आंगिरस द्वारा की गई दान-स्तुति में तो ऐसे और भी वाक्य मिलेंगे। वहीं पर—

"न स सखा यो न ददाति सख्ये।"[5] एवं

"ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्राऽन्यमन्युमुपतिष्ठन्त रायः।[6]

आदि वाक्य वैदिक युग के बड़े मार्मिक वचन है जिनमे देशकालातीत सत्य पैठ गया है। ये सत्यवचन हर युग के समाज और व्यक्ति के लिए मान्य होते रहेंगे।

---

१. वही, स्तुतिस्तु नाम्ना रूपेण कर्मणा बान्धवेन च। (१. ७.)

२. ऋ. सं. १०. ९५. १५.; श.प.ब्रा. ११. ५. १. ९.

३. वही, ४. ३३. ११.

४. वही, १. १२. ६

५. वही, १०. ११७. ४

६. वही, १०. ११७. ५

इनकी यह विशेषता जानकर ही उपदेशक इनका प्रयोग करने के लिए प्रयत्नशील होते रहे है।

"ओ हि वर्तन्ते" इस वाक्य में एक सार्वत्रिक सिद्धान्त है: सम्पत्ति एक के पास से दूसरे के पास जाती रहती है। इस तथ्य की पुष्टि के लिए एक सुन्दर उपमान प्रस्तुत किया गया है। जिस प्रकार रथ का चक्र कहीं एक जगह पर नहीं रहता उसी प्रकार यह धन भी किसी एक के पास नहीं रहता[१]। अर्थात् इन दोनों उपमान-उपमेयों में एक है समर्थक एवं दूसरा समर्थ्य[२]।

नीतिकथा में भी किसी सामान्यरूप नीतिवचन या सिद्धान्त का समर्थन विशेश-रूप उदाहरण या कहानी से किया जाता है। या प्रथम विशेष-रूप कहानी कह कर अनन्तर एक सामान्य तथ्य या सिद्धान्त से उसका समर्थन हो जाता है।

अपने सिद्धान्त का समर्थन कहानी से करने की प्रवृत्ति अति प्राचीन है। इस समर्थ्य-समर्थकभाव का विकास नीतिकथा मे भी हुआ है। किसी सामान्य तत्व को प्राणियों की कहानी से पुष्ट किया जाता है। नीतिकथा में नीति-वचन का समर्थन प्राणियों की कहानी कहकर किया जाने लगा। उसमें उस नीतिवचन का ऋग्वेदकालीन रूप तो स्पष्ट ही है। हम यह कहने की स्थिति में हैं कि, मन्त्र परम्परा से भी संस्कृत नीतिकथा को बहुत कुछ प्राप्त हुआ है। भले ही उन वैदिक नीति-वचनों को हम नीतिकथा नहीं कह सकते, फिर भी नीति-कथा के विकसन मे मंत्र-परम्परा का योगदान इस प्रकार की सूक्तियों के द्वारा अवश्य रहा है।

ऐतरेय ब्राह्मण की हरिश्चन्द्र की कथा में पद्य में नीतिवचन इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है:

आस्ते भग असीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगश्चरैवेति, इति।[3]

---

१. देखिये सायणाचार्य का भाष्य।

२. 'अर्थान्तिरन्यास' नाम के अलंकार में तो यह समर्थ्य-समर्थक भाव अभिधेय हो रहता है। उसी शैली में प्राणिकथा का निवेदन प्रस्तुत किया जाय तो वह नीतिकथा का रूप धारण कर लेती है।

देखिए, अर्थान्तिरन्यास-लक्षण: "सामान्यं वा विषपो वा यदन्येन समर्थ्यते।
यत्तुसोऽर्थान्तिरन्यासः साधर्म्येणेतिरेण वा॥"

मम्मट, का. प्र. १०.१०९

३. ऐ. ब्रा. ७. १३. ३: अर्थ; "जो बैठा रहेगा उसका भाग्य भी बैठा

ऐतरेय-ब्राह्मण में ही 'सुभाषित' शब्द का भी प्रयोग हुआ है[१]। वह एक 'गाथा' का ही रूप है। महाभारत में तो ऐसे अनेक नीति-वचन हैं। स्मृतिकारों तथा भर्तृहरि, चाणक्य आदि के नीतिवचन बहुत हैं। साहित्य शास्त्र में इन सुभाषितों का कोई स्वतंत्र मूल्य नहीं आंका गया। अर्थान्तरन्यास जैसे अलंकारों में ऐसे वचनों की प्रयोग-शैली पर ही ध्यान दिया गया है। छान्दोग्योपनिषद् में नीतिशास्त्र के लिए 'एकायन' शब्द का उपयोग किया गया है और 'सर्प-देव-जन-विद्या' लौकिक विद्याएं हैं[२]।

स्मृति श्रुति के अनुसार चलने वाली होती है। स्मृति में परम्परा का निर्वाह होता है। वेदांग, स्मार्तसूत्र, धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण तथा नीतिशास्त्र इन स्मृति के अंगों में नीति वचन का विकास अधिक हुआ है। मनु के धर्मशास्त्र में राजनीति एवं लोकनीति से सम्बन्धित विचार दृढ़ हुए। ऐहिक जीवनविषयक युक्ति-प्रयुक्ति का विधान होने लगा। राजाओं के धर्म एवं व्यवहार में कुशलता आदि की चर्चा की गई। लौकिक शास्त्रों में नीतिशास्त्र का रूप निखर उठा। मनु, उशनस्, चाणक्य, शुक्र, कामन्दक आदि आचार्यों ने नीतिशास्त्र की रचना करते समय सबसे अधिक बल लौकिक जीवन में सफलता प्राप्त करने पर ही दिया है। राजा के लिए येन-केन-प्रकारेण शत्रु पर विजय प्राप्त करना सबसे महत्व का कार्य है। इसलिए समय आने पर विश्वास-घात करने के लिए भी कहा गया है। नीति का अर्थ Policy लिया जाता था। इस प्रकार की राजनीति के अन्तर्गत अनैतिक दिखाई देने वाले कार्य भी करने का विधान नीतिशास्त्रकारों ने किया है। अर्थात् चतुरता, छल, कपट, दम्भ आदि से भरे इस संसार में यदि सफलता प्राप्त करना हो तो 'शठं प्रति शाठ्यम्' इस न्याय से संधि, विग्रह, आसन, यान, संश्रय, द्वैधीभाव जैसी षड्विधा नीति को अमल में लाना जरूरी है।

ऐसे नियमों के लिए उदाहरण इतिहास से सत्यकथा के रूप में दिये जा सकते थे। किन्तु किसी के विषय में चतुरता या छल कपट आदि की कहानी कह दी जाए तो सम्भव था कि उसके दुष्परिणाम भी भुगतने पड़ते। जबकि, आचार्यों के जिम्मे राजाओं के पुत्र नीतिशास्त्र के अध्ययन के लिए किये जाते थे, तब उन्हें रोचक लगे ऐसी कहानियाँ कहकर ही शिक्षा देना आवश्यक था। वहीं

रहता है। और जो खड़ा होगा उसका भाग्य भी खड़ा रहेगा। निद्रामें पड़े आदमी का भाग्य सोता है और चलने वाले का चलता है।"

१. वही, २. ५. ५; 'एफ वक्ष्यमाणा गाथा याज्ञिकैस्सर्वै—
गीयमाना सभाषित रूपाऽभिहिता सर्वतो गीयते वक्ष्यते।'

२. छान्दोग्योपनिषत्, ७. १. २

नाटक[1], तथा उपमितिभवप्रपंचकथा[2] में भलीभांति किया गया है। इसी प्रकार अन्य न्याय भी हैं। ये सब नीतिकथा के प्राचीन अंशों का वहन कर रहे हैं। इनमें प्राणियों के स्वभाव-विशेषों का जो सूक्ष्म निरीक्षण प्रकट होता है वह बड़ा ही रोचक है। जैसे अन्य न्याय : कूर्माङ्गन्यायः; गड्डरिका-प्रवाहन्यायः; गोबलीवर्दन्यायः; घुणाक्षर-न्यायः, मण्डूक-प्लुति[3], 'न हि कठोरकण्ठीरवस्य कुरंगशावः प्रतिभटो भवति, काकोलूकनिशावत् (भर्तृहरिकृत नीति शतक, ९३); टिट्टिभन्याय (हितोपदेश, २. १३७); न हि भवति तरक्षुः प्रतिपक्षो हरिण-शावकस्य; मत्स्यन्याय (Tawney Vol. II, P.390 मनु ७. २० म); मृतं दुण्डुभमासाद्य काकोऽपि गरुडायते; यदि श्वेन हृतं पुरा तत्पश्चाद्गर्धभः प्राप्तुं केनोपायेन शक्नुयात्; व्यालनकुलन्यायः (पाणिनि, २.४.९.; पंचतन्त्र ५.[4] ब्राह्मणी-नकुल-कथा १)।

इनका विषय लोक-नीति ही रहा है और जातकों में पाये जाने वाले नीतिवचनों का विषय 'धर्मनीति' है। नीतिशास्त्र के प्रभाव से महाभारत में 'राजनीति' को सामने रखकर भी नीतिवचनों का उपदेश दिया है। पंचतंत्र में यह राजनीति लोकनीति से कोई भिन्न वस्तु नहीं रहने पाई, जैसे 'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पण्डितः'[5] यह नीतिवाक्य राजा और जनसाधारण दोनों के लिए उपादेय है और इसलिए प्रयुक्त हुए हैं। कई तो जन साधारण के लिए ही उपयुक्त है[6]।

पंचतंत्र और हितोपदेश में नीतिवचन या सूक्तियां पद्य में दी गई हैं और कहानी गद्य मे। ये पद्य बहुत प्राचीन हैं। राजनीति के अतिरिक्त

---

१. प्रथम अंक।

२. यो न निर्गत्य निःशेषां विलोकयति मेदिनीम्।
अनेकाद्भुतवृत्तान्तां स नरः कूपदर्दुरः॥

३. महाभाष्यम् १.१.३ (वार्तिक २). ५.२.४ (२); ६.१. १७ एवं ३. ४६; ७.२-१७. Vide Ballantynes Aphorisms of the Nyaya, II, 80.

४. 'अत्रान्तरे दैववशात्कृष्णसर्पो विलान्निष्क्रान्तः। नकुलोऽपि तं स्वभाववैरिणं मत्वा भ्रातू रक्षणार्थं सर्पेण सह युद्ध्वा सर्पं खण्डशः कृतवान्'; उदयनकृत आत्मतत्त्वविवेक, पृ. ५३.

५. पंचतंत्र, ४. १, २८, ५. ४.३१; तंत्रवार्तिक में कुमारिलभट्ट ने 'ह्यर्द्धं' लिखा है।

६ पं तं. में मूर्खपण्डित चतुष्टय कथा (५. ४) एवं अन्य।

प्रतिदिन के व्यवहार में भी नीतिवचन उपादेय सिद्ध हुए हैं। ऐहिक जीवन में सफलता प्राप्त करने की वह कुंजी है। ब्राह्मणों एवं जातकों की दृष्टान्त-कथाएं एवं नीतिकथाएं सम्प्रदाय या धर्म-विशेष से सम्बन्धित रही। किन्तु महाभारत एवं पंचतंत्र की नीतिकथा का स्वरूप लौकिक रहा है। अतः प्रतिपाद्य वचन भी 'लोकनीति' का रूप धारण कर सके।

भारतीय प्रज्ञावाद

नीतिकथा के प्रधान अंग के रूप में हम प्रज्ञावाद को ले सकते हैं। प्राचीन भारत में पारमार्थिक ज्ञान के साथ ऐहिक जीवन के लिए उपादेय लोकनीति की शिक्षा भी महत्वपूर्ण मानी गई है। वैदिक साहित्य के उत्तरार्द्ध मे तथा महाभारत, पंचतंत्र एवं जातक ग्रन्थों में हम देखते हैं कि व्यावहारिक एवं लौकिक प्रज्ञा का रूप स्पष्ट हुआ है। वैदिक युग के अनन्तरकाल में तो इस प्रज्ञा की महती आवश्यकता मानी जाने लगी। परलोक में कल्याण की कामना करने के पूर्व इह लोक में सफलता की प्राप्ति हरेक व्यक्ति के लिए अभीष्ट थी। इसी लिए प्रतिदिन के व्यवहार में राजा या सामान्य प्रजाजन को कुशलता का परिचय देना आवश्यक था। लोकपक्ष की सफलता का रहस्य मानवीय बुद्धि एवं युक्ति में निहित है। इस तथ्य को समझ लेने के कारण ही राजनीति के लिए तो प्रज्ञा एक आवश्यक अंग बन गई।

भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने इसी 'प्रज्ञावाद' का उल्लेख किया है। महाभारत में प्रज्ञा का प्रभाव भलीभाँति परिलक्षित होता है। विदुरनीति प्रज्ञा का उत्तम निदर्शन है। महात्मा विदुर को 'महाप्रज्ञ' कहा है। विदुर ने कहा है—

> "यस्य संसारिणी प्रज्ञा धर्मार्थावनुवर्तते।
> कामादर्थं वृणीते यः स वै पण्डित उच्यते॥"
>
> (म०भा०, उद्योग ३३)
>
> "प्रज्ञामेवावगमयति यः प्राज्ञेभ्यः स पण्डितः।"
>
> (म० भा० उद्योग, ३५)

स्पष्ट है कि, प्रज्ञा से ही मनुष्य पण्डित होता है। 'प्रज्ञा' शब्द से 'पण्णा' शब्द होकर उसी से 'पण्डित' हो गया है।

ब्रह्म देश में नीति के उपदेशकों एवं पण्डितों की प्रज्ञा को 'पण्णा' कहते है। भारतीय प्रज्ञा का हो यह ब्रह्मी रूप है।

प्रज्ञा दृष्टि एक दार्शनिक विचार धारा है। जनपद काल की इस दार्शनिक विचारधारा को 'प्रज्ञादृष्टि' कहा जाता है। महात्मा विदुर की नीति इस का

अच्छा उदाहरण है। इसी प्रज्ञावाद दर्शन से प्रमाणित है श्रीकृष्ण, विदुर, भीष्म आदि महाभारतीय महापुरुष। यहां तक कि, स्वयं बुद्ध भी प्रज्ञावाद दर्शन से प्रभावित है। जातक कथाओं में यह प्रज्ञा स्पष्ट रूप से व्यक्त हो गई है।

इसी प्रज्ञावाद के विकास से नीतिकथा मे निहित नीति को बल मिला है। राजनैतिक प्रज्ञा (Political wisdom) तथा लौकिक प्रज्ञा (Worldly wisdom) का सामञ्जस्य नीतिकथा मे हो कर हमारे सम्मुख पञ्चतन्त्र-साहित्य, महाभारत की नीतिकथाएं तथा बुद्ध की जातककथाएं उपस्थित हुई है। आध्यात्मिक प्रज्ञा के साथ-साथ आधिभौतिक प्रज्ञा का पक्ष भी प्रबल रहा है। नीतिकथा के रूप मे इस प्रज्ञा ने विकास कर लिया है।

नीतिकथा के क्षेत्र का विस्तार

बौद्ध साहित्य में भी नीतिवचन 'गाथा' में है और कहानी गद्य में। शिष्यमण्डली में बैठकर बुद्ध देव ने गाथा कही, और उसे स्पष्ट करने के लिए- अपने पूर्व जन्म की कथा कह सुनाई। अन्त में फिर से वे गाथा को कहते हुए उपदेश देते है। अर्थात् ये गाथाएं भी प्राचीन भारतीय सूक्ति-परम्परा से ही उन्हे प्राप्त हुई है। उन्होंने अपने सिद्धान्तों के लिए उनका उपयोग मात्र किया है। जब कोई भी वस्तु सामाजिक सम्पत्ति एवं परम्परागत हो बैठती है तो उसका उपयोग समाज के द्वारा हो जाया करता है। जातकों में इसी प्रकार का उपयोग हुआ।

जातकों मे पाई जानेवाली गाथाएं धर्म से सम्बन्धित अवश्य है। उनका रूप धर्मनीति का भी रहा है। किन्तु ब्राह्मणों में जो तथ्य या सिद्धान्त कहानी कहकर स्पष्ट या पुष्ट किये गये थे उनका स्वरूप संकुचित था। एक सम्प्रदाय-विशेष का प्रभाव बढ़ जाने से उसके अन्तर्गत कर्मकाण्ड के विधानों को पुष्टि करना आवश्यक था। फिर भी वैदिक कर्मकाण्ड के साथ-साथ अन्य सम्प्रदाय के अंग भी कर्मकाण्ड से भिन्न किन्तु अपनी ज्ञान या भक्ति को शाखा को वृद्धि देखना चाहते थे। ब्राह्मणों में जो सिद्धान्त या नीतिवचन आये उनमें किसी सम्प्रदाय विशेष के लिए ही उपयोग किया गया।

प्रत्युत जातक के नीतिवचन लोकनीति की ओर उन्मुख हो गये थे। उस समय धर्म का आन्दोलन चल पड़ा था। इस धार्मिक क्रान्ति के कारण यह स्वाभाविक था कि, लौकिक वचनों का धार्मिक नेताओं द्वारा उपयोग हो। वे वचन लौकिक होते हुए भी धर्म को सिद्धि के लिए उपयोग में लिये जाने के कारण धार्मिक रूप धारण कर गये। इस प्रकार जातकों में वे "धर्मनीति" के अंग अवश्य बने। ब्राह्मणों में पाई जाने वाली सीमित रेखा लुप्त होने लगी

और वह जन-साधारण की ओर प्रवाहित होकर उन्हें नीति और आचार की शिक्षा देने लगी। नीतिवचनों का प्रयोग अब जन-साधारण और उसके ऐहिक जीवन के लिए होने लगा। बुद्धदेव का धर्म जन-साधारण के लिए था, अर्थात् धर्मनीति के वचनों में लौकिकता की नितान्त आवश्यकता थी। चन्द विद्वानों का वह सम्प्रदाय नहीं था। इसलिए "धर्मनीति" तथा "लोकनीति" के बीच की कड़ी के रूप में जातक की गाथाओं को हम देखते हैं। दूसरी कड़ी वह है जिस में लौकिकता बढ़ चुकी थी। वह है "राजनीति" के अंग के रूप में उन वचनों का उपयोग। अर्थात् राजाओं के लिए उपादेय सिद्धान्त इतने लौकिक स्वरूप के पाये गये कि, सामान्य व्यक्ति के लिए भी वे उपादेय सिद्ध हुए। यही कारण था कि, राजपुत्रों को व्यवहार में कुशल करने के लिए ही विष्णुशर्मा ने पंचतंत्र की कहानियां कहीं और लोकोक्तियों का मर्म समझाया।

इस प्रकार मंत्र—परम्परा से प्राप्त सूक्तियों या नीतिवचनों को ब्राह्मणों में सीमित स्थान मिला। जातकों में कुछ लौकिक वचनों को व्यापक धर्मनीति का अंग बनकर रहने का अवसर मिला। महाभारत-पंचतंत्र में उन्हें लौकिक रूप मिला और लोकनीति का स्वरूप भी स्पष्ट हुआ। राजाओं एवं जनसाधारण के लिए उपादेय नीतिवचन प्राणिकथा के द्वारा स्पष्ट एवं पुष्ट किये गये तभी संस्कृत नीतिकथा का विशुद्ध स्वरूप स्पष्ट हुआ। प्राणिकथा मूल से ही लौकिक थी। पंचतंत्र में वह नीतिकथा के रूप में फिर से लौकिक हो गई। बीच में धार्मिक नेताओं के द्वारा उसका उपयोग कर लेने से दृष्टान्त-कथा और धर्मकथा का रूप उसे अवश्य प्राप्त हुआ। फिर भी लौकिक स्वरूप में पंचतंत्र के रूप में वह अक्षुण्ण होकर प्रकट हो गया था। इसी स्वरूप से पंचतंत्र को सर्वाधिक लोकप्रियता देश एवं विदेश में प्राप्त हो सकी।

मानवीकरण की भावना का विकास

वैदिक मंत्र-परंपरा से मानवीकरण की देन प्राप्त है जिसने नीतिकथा की सहायता की है। पशु हो या पक्षी हो, हम उसे मानववत् समझ कर ही उसकी कहानी कहते सुनते हैं। मानवीय आरोप होने से वे पशु-पक्षी भी अपने विचार एवं भाव प्रस्तुत कर देते हैं। ऋग्वेद में यही पद्धति अपनाई गई थी। किन्तु उसके आलम्बन पशु-पक्षी न थे। वे थे प्राकृतिक दृश्य या पदार्थ। उन पर भी तो मानवीय अध्यारोप ही किया गया था।

किन्तु वैदिक मानवीकरण की यह विशेषता रही है कि, अध्यारोप प्राकृतिक दृश्यों या वस्तुओं पर होने के कारण उसका रूप कलात्मक हो गया। प्रकृति स्वयं सुन्दर है। उस पर आरोप होने पर तो एक भाव-जगत् की सृष्टि

हो गई। इसी धारा से ध्वनिकथा, परीकथा, भाव-कविता आदि विधाएं प्रकट हुई हैं। प्राकृतिक पदार्थ या वस्तु में चैतन्य भर देना कलापक्ष की दृष्टि से महत्वपूर्ण था।

वह विशेषता उतनी मात्रा में नीतिकथा के मानवीकरण में नहीं आने पाई। उसके दो कारण है-एक तो पशु-पक्षी चेतन प्राणी ही हैं। उनपर चेतनता का आरोप करने की चमत्कृति का अवसर नहीं है। दूसरा तथ्य यह है कि, पशु मनुष्य से हीन समझे गये है। उनपर मानवीय विचारों एवं गतिविधियों का अध्यारोप कर देने से बालकों के मनोरंजन की वस्तु भले ही बन जाए, किन्तु कलात्मक सौन्दर्य की मात्रा कम ही होती है। प्रौढ़ों को उसमें निहित मार्मिक व्यंग्य, उलाहने, उपरोध या उपहास बौद्धिक आनंद तथा नीतितत्व के अंश ही आकृष्ट करते हैं। वैदिक कवियों का जैसा प्राकृतिक प्रेम था वैसा प्रेम प्राणियों पर मानवीकरण की आड़ में नहीं था। क्योंकि, प्राणि-सुन्दरता के प्रति आकृष्ट होने के लिए एक तो अवसर ही कम है, और दूसरी वह प्रवृत्ति है जो मानव से पशु हीन समझ लेने से उत्पन्न होती हैं। इसीलिए भावों का सौन्दर्य भी नीतिकथा में अपेक्षाकृत कम ही है। प्रत्युत नीतिकथाकार की प्रवृति अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अभीष्ट प्राणियों के प्रसंग उपस्थित कर देने में है। सर्कस के रिंग मास्टर के समान वह अपना कार्य उन प्राणियों से करा लेता है। अर्थात् वे प्राणी केवल अन्तिम नीतितत्व की सिद्धि के लिए ही वहां अपना खेल प्रस्तुत करते है।

प्राकृतिक पदार्थों पर आदिकवियों ने जो मानवीकरण किया वह उनकी आन्तरिक सुन्दरता की आत्माभिव्यक्ति ही थी। प्रातःकालीन मनोरम दृश्य देखकर वैदिक ऋषियों ने "स्वसरस्य पत्नी" (सूर्य की पत्नी) उषा की प्रार्थना की है[1]। वह उषा की सुन्दरता से प्रेरित होकर उनके अन्तःस्थल में विद्यमान सौन्दर्यभाव की अभिव्यक्ति ही थी। किन्तु नीति-कथाकार ने जो पशुओं का मानवीकरण किया उसकी आड़ में केवल विचित्रता के प्रति आसक्ति और कुछ प्राणिप्रवणता (animism) के संस्कार का प्रभाव ही था। मानव को तो सदियों से पशु या पक्षियों की अपेक्षा मूक, नीरव, विशाल एवं स्वयं सुन्दर प्रकृति के दृश्यों, वस्तुओं या पंचमहाभूतों के अन्यान्य रूपों ने मोहित कर रखा है। उसे प्रकृति अधिक सुन्दर लगे यह भी एक प्राकृतिक तथ्य ही है। अतः कालपक्ष की दृष्टि से दोनों की मानवीकरण-प्रक्रिया में भेद है।

---

१. ऋ. सं. ३-६१.४

"अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युपा याति स्वसरस्य पत्नी।
स्वर्जनन्ती सुभगा सदंसा आन्ताद् दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥४॥ इत्यादि.

मंत्र-परम्परा से कहानी-कला की भी प्राप्ति हुई है जैसा कि हमने ऋग्वेद के सम्वादों में देखा है। ब्राह्मणों में उसके कई तत्वों का विकास हुआ। जातकों में कहानी बहुत ही परिष्कृत हुई है। बृहत्कथा, बृहत्कथा-मंजरी, कथासरित्सागर और अन्य गद्यकाव्यान्तर्गत आने वाली, 'कथा' तथा 'आख्यायिका'—यह विशाल साहित्य अपनी कहानी कला का चरम उत्कर्ष दिखा रहे हैं। पंचतंत्र एवं हितोपदेश भी इन्हीं में है।

सूत-परम्परा

वैदिक सूत-परम्परा का भी कार्य महत्वपूर्ण रहा है। वैदिक दैवतकथा पण्डित ब्राह्मणवर्ग के साहित्य एवं सम्प्रदाय का अंग बन चुकी थी। यज्ञ-संस्था तो ब्राह्मण जाति के लोगों के अधीन ही थी। फलतः ब्राह्मण ग्रंथों का मुख्य विषय यज्ञीय विधान तथा उनकी उपयोगिता ही था। एक सम्प्रदाय-विशेष में उसे मान्यता थी। उसमें उद्देश्य भी विशेष प्रकार का ही रहा। भाष्यकाल में इस प्रकार कथा-साहित्य इसी सम्प्रदाय द्वारा अपने सिद्धान्त की पुष्टि के लिए लिखा गया और वह साहित्य का अंग बना।

किन्तु, सूतों की स्थिति ब्राह्मणों से कुछ भिन्न थी। एक तो वे वैदिक परम्परा में पले हुए थे, किन्तु जाति के ब्राह्मण नहीं थे। या यों कहना चाहिए कि, वे संकर वर्ण के, प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न थे[१]। परम्परा के अनुसार ब्राह्मणी को क्षत्रिय से उत्पन्न सन्तान को "सूत" और ब्राह्मणी को वैश्य से उत्पन्न सन्तान को "मागध" कहा जाता है। पद्म पुराण से ज्ञात होता है कि, सूतों को वेदों का अधिकार प्राप्त न था[२]। वे इतिहास-पुराण के अधिकारी माने जाते थे। सूतों की अपनी एक अलग परम्परा थी। मन्त्र-परम्परा के साथ साथ वह भी चलती आ रही थी। मंत्र-परम्परा का विषय प्रार्थना, कर्मकाण्ड तथा ज्ञान ही रहा है। सूत परम्परा में इतिहास-पुराण जिसका उल्लेख अथर्ववेद में आया है, आ जाता है। सूत इतिहास-पुराण के संरक्षक एवं संवर्द्धक थे। स्पष्ट है कि, मन्त्र-परम्परा में धार्मिक साहित्य के लिए अवसर था और सूत-परम्परा में लौकिक साहित्य के लिए।

इसीलिए नीतिकथा के विकास में सूत-परम्परा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

---

१. सूतों की उत्पत्ति के लिए देखिए: वायु पुराण, ६२. १३६-४१; १. ३६; Dr. Patil, Cultural History from the Vāyu Purāna, pp. 28-29.

२. पद्मपुराण, सृष्टिखंड, अध्याय १.

सूतों को वेदों के अधिकार प्राप्त न थे, फिर भी वैदिक परम्परा पर उनका विश्वास था। अनार्यों की दृष्टि से वे आर्य ही थे। आर्यों की दृष्टि से वे विशुद्ध सम्बन्ध से उत्पन्न मात्र न थे। सम्भव है, उनके निषिद्ध संबन्ध से उत्पन्न होने के कारण उन्हें वेदों का प्रत्यक्ष अधिकार तत्कालीन ऋषि-समाज द्वारा प्रदत्त नहीं किया गया था। यज्ञप्रसंग में होता या ऋत्विज का पद उन्हें प्राप्त होना ब्राह्मण काल में असम्भव ही था। फिर भी वैदिक परम्परा में वे पले हुए थे। उनके लिए एक महान् कार्य शेष था जिसे पूरा करने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ। प्राचीन लोककथाओं एवं वीर-गाथाओं का खासा संग्रह इन सूतो के द्वारा हुआ और उन्हीं की परम्परा में संरक्षित भी रहा। सम्भवतः ऐतरेय ब्राह्मण मे 'आख्यानविद्' लोगो का जो उल्लेख है,[1] उसका संकेत इन ऋषिसम्मत सूतो की ओर ही है, क्योकि प्राचीन आख्यानों का संग्रह उनकी विशेषता बन चुकी थी।

सूतों को यज्ञ मे ऋत्विज या होता बनने का कोई अवसर नहीं था इसी लिये संभवतः वे लोकाभिमुख हुए। लोगों में प्रचलित साहित्य के संग्राहक एवं संवर्धक बने। वे प्रत्यक्ष यज्ञ-कर्त्ता न थे। इसलिए लोक-व्यवहार एवं लोक-साहित्य मे उनकी रुचि बढ गई हो इसमें आश्चर्य की बात नहीं। श्रोता लोगों के द्वारा भी उन्हें अनुकूल प्रोत्साहन मिल जाता था। इससे यह स्वाभाविक था कि, लौकिक कहानियों को वे लोगो मे ही जा कर सुनाते। इससे वे लोकप्रिय हो गए। जनसाधारण के लिए होता, ऋत्विज आदि ऋषियों के मन्त्र अनाकलनीय से थे। किन्तु वैदिक परम्परा मे पले हुए सूतों की प्राचीन कहानियां एवं वीर-गाथाएं जनता को प्रिय थीं। उनकी लौकिकता के कारण ही सूतों के द्वारा लोककथा-कीर्तन होने लगा जिसका विकास कीर्तन-परम्परा मे हुआ। महाराष्ट्र मे वह परम्परा आज भी जीवित है। उस समय भी लोकप्रियता देखकर यज्ञों मे भी अवकाश के समय सूतों का साहित्य सुना जाता रहा हो तो आश्चर्य नहीं।

सूतों ने लौकिक आख्यायिकाओं को वैदिक धर्म के अन्तर्गत लाने का महान् कार्य किया है। उनके कारण वैदिक दैवतकथा की परम्परा को बल मिला है। क्यों कि, लौकिक धर्म की पुष्टि करने वाली कहानियां लोगों में प्राचीन काल से चली आ रही थीं। आर्यो ने भी ऐसी कई आख्यायिकाओं को अपना लिया था। उनका संग्रह करने का कार्य सूतों के द्वारा होना शेष था।

भाष्यकाल में भी यही हुआ। इधर संहिताओं पर भाष्य लिखे जा रहे थे,

---

१. ऐ. ब्रा ३. १३. १.

कर्मकाण्ड का विवेचन हो रहा था, रहस्यात्मक स्थलों को स्पष्ट करने का प्रयास हो रहा था; और उधर वीरों एवं अधिनायकों के जो प्रभावशील चरित्र लोगों में प्रचलित थे एवं अनेक पुरातन कथाएं बद्धमूल हो चली थीं, उनका संग्रह सूतों के द्वारा होता रहा। इस काल में भी, इन संग्रहों का उपयोग था। यज्ञ के प्रसंग में समय-यापन, मनोरंजन, कुतूहल-पूर्ति एवं अन्त में सदाचरण की प्रतिष्ठा के लिए उनका निवेदन (narration) सूतवर्ग के द्वारा हुआ करता था इसमें सन्देह नहीं।

ब्राह्मणों का जो 'अर्थवाद' अंश है, वह इस तथ्य की पुष्टि करता है। सूतों का ब्राह्मणों पर प्रभाव अर्थवाद के रूप में परिलक्षित होता है। यज्ञीय विधानों की पुष्टि के लिए उन्हें सूतों के लौकिक साहित्य का भी सहारा लेना पड़ा होगा। ब्राह्मणों में पायी जाने वाली आख्यायिकाएं धर्म-कथाएं बन गईं। फिर भी उनके मूल में श्रद्धाशील जनसाधारण की मौखिक पुरातन-कथाएं ही थीं। इस उपलब्धि के लिए मध्यस्थ थे सूत। इन्होंने ही अर्थवाद के लिए लोकाख्यान उपलब्ध करा दिये।

कुछ द्विजों में भी आख्यानों के सम्पादन एवं निवेदन का कार्य चलता था। महाभारत में ऐसे दिव्याख्यान कहने वाले पौराणिक तथा कथक द्विजों का उल्लेख है[1]। प्राचीन लौकिक तथा देवासुर-सम्बन्धी कथाओं का यज्ञ-विधान की चर्चा में उपयोग किया गया। इस प्रकार यज्ञ से उनका सम्बन्ध जोड़ देने से वे 'दिव्याख्यान" के रूप में परिणत हो गये। मंत्र-परम्परा से भी दैवतकथा की धारा प्रवाहित थी, अतः ऐसे दिव्याख्यानों का निवेदन करने के लिये "पौराणिक" या "कथक" जैसे द्विज भी अग्रसर हुए हों तो आश्चर्य ही क्या? आगे चल कर सूतों के साहित्य को मान्यता मिली। व्यास, मार्कण्डेय, शौनक, वसिष्ठ, नारद आदि ऋषियों के द्वारा पुराण-साहित्य के रूप में परम्परागत साहित्य का संहितीकरण हुआ है।

सूत-परम्परा की इस देन के कारण वैदिक साहित्य में भी लौकिक कथाओं का प्रभाव परिलक्षित किया जा सकता है। वेदों एवं ब्राह्मणों के आख्यान दिव्य विषय लेकर ही चल रहे थे। उनका पूरा बल पारमार्थिक प्रयोजन पर ही था। हम यह कह चुके हैं कि, ब्राह्मणों में लौकिक प्रयोजन के लिए आख्यायिकाएं नहीं कही गईं। कमलनाल को चुराने वाले चोरों की शपथ का जो उल्लेख है[2], उस से लौकिक कथा का अनुमान अवश्य हो सकता है।

---

१. महाभारत, १, २१४, २-३

२. ऐ. ब्रा. ५. २५-५

फिर भी प्रायः सभी आख्यान साम्प्रदायिक अर्थ से कहे गये हैं। हां, मुख्य धार्मिक अर्थ के अतिरिक्त ब्राह्मणों की आख्यायिकाओं से व्यावहारिक या राजनैतिक चतुरता, युक्ति-प्रयुक्ति भी प्रकट हो ही जाती है।

महाभारत में तो सूतों की परम्परा का बहुत बड़ा योगदान रहा है। इस विशाल साहित्य-संग्रह में लौकिक कथाओं का भंडार भरा हुआ है। उस समय में प्रचलित लोक-कथाओं को महाभारत में स्थान मिल गाया। तब यह स्वाभाविक ही था कि, नीतिकथा को भी उसमें स्थान मिले। उपनिषत्काल में लौकिक विषय के साहित्य की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। यह भाष्यकालीन यज्ञीय मीमांसा की प्रतिक्रिया ही थी कि उपनिषत् काल में साहित्यकारों ने लौकिक कथाओं को पहले से कहीं अधिक अपनाया। ब्राह्मणों के बाद ही अन्यान्य लौकिकशास्त्र एवं चतुःषष्टी कलाओं की चर्चा करने की प्रवृत्ति का उदय हुआ। ज्ञान का क्षेत्र इस प्रकार बढ़ रहा था और उसी का परिणाम महाभारत के रूप मे प्रकट हुआ है। लौकिक शास्त्रों एवं ज्ञान-शाखाओं का कोश ही महाभारत है। उसमे नीतिकथा का भी संग्रह किया गया। नीतिशास्त्र का प्रभाव ग्रहण करके महाभारत मे भीष्म के मुख से नीतिकथाएं कहीं गई है। जिस प्रकार मंत्र-परम्परा से नीतिवचन प्राप्त हुए उसी प्रकार सूतपरम्परा से लौकिक विषय की कहानी प्राप्त हुई। फलस्वरूप संस्कृत साहित्य मे प्रथम बार लौकिक विषय, नीतिवचन एवं प्राणियों की लोक-कथा (folktale) का एकत्र संयोग होकर नीतिकथा का स्पष्ट रूप हमारे सामने आया है।

डा० विन्टरनिट्ज़ ने सूतों के विषय मे लिखा है : "सूत प्राचीन वीरगाथा काव्य के प्रतिनिधि थे जो राजाओं के दरबार मे बैठते थे एवं उनकी प्रशंसा किया करते थे[1]। राजाओं के साथ वे भी युद्धभूमि पर जाया करते थे। उन्हें युद्ध का प्रत्यक्ष दर्शन होता था। राजा के लिए ये दरबारी कवि अन्य विद्वान ब्राह्मणों की अपेक्षा अधिक निकट थे। उन्होंने सारथि का भी काम किया और युद्ध मे भाग लिया।"

किन्तु डॉ. दासगुप्ता ने सूत प्राचीन वीरगाथा के वाहक थे इस विषय में सन्देह प्रकट किया है[2]। उन्होंने अथर्ववेद (३. ५, ६, ७), गौतम-स्मृति (४. १५) बौधायन-० (१०. १. ६. ६), वसिष्ठ-० (१८. ६), मनु०-

---

१. Dr. Winternitz, Geschichte der Indischen Litteratur, Vol. III, Leipzig, p. 1.

२. Dr. S. N. Dasgupta, A History of Sanskrit Literature, Vol. I, Intro. pp. XIII-XIV.

(१०, २), विष्णु ध. सू. (१६. ६), याज्ञवल्क्य० (१. ३.) और सूतसंहिता से सन्दर्भ देते हुए सूतों का कार्य निर्दिष्ट किया है। वे सारथी एवं रसोइये थे। क्षत्रियों के 'परिचारक' और वायु पुराण के अनुसार वे राजाओं तथा बड़े लोगों की वंशावली के संरक्षक भी थे। किन्तु वे वीरगाथा गाने वाले कवि न थे। उनका मुख्य कार्य था हाथियों को वश करना, रथ को हांकना एवं घुड़सवारी करना।

वास्तव में सूतों को 'रथकार' भी कहा गया है और हाथी, घोड़े आदि को सिखाने का भी कार्य उनका था। किन्तु वे प्राचीन वीरगाथा के कवि नहीं थे इस अभिप्राय की पुष्टि नहीं हो सकती। डॉ. दासगुप्ता ने स्वयं वायुपुराण का सन्दर्भ देकर कहा है कि, सूतों के पास राजाओं की वंशावलियां (Pedigrees) रहा करती थीं। किन्तु, क्या यह सम्भव नहीं है कि, ये वंशावलियां सूतों के घरानों में गीत में गाई जाती हों और इस प्रकार सुरक्षित रखी जाती हो ? पुराणों के पूर्वकाल मे तो यह कहीं अधिक सम्भव था। किसी परम्परागत साहित्य को गीतों में सुरक्षित रखना वैदिक गाथा की प्राचीन विशेषता रही है जो ऋग्वेद की नाराशंसी दान-स्तुति की ऋचाओं मे स्पष्ट हुई है[1]।

अन्य लोगों ने भी वायु पुराण मे पृथुराज की कहानी मे सूतों एवं मागधों की उत्पत्ति का उल्लेख किया है। मागधों को भी राजसभा के कवि मान लिया गया है[2]। वैदिक गाथा प्राचीन होने पर भी उसके गीत गानेवाले सूत या मागध नहीं रहे हों यह कहना ठीक नहीं। हमें तैत्तिरीय ब्राह्मण में "गीताय सूतम् (आलभते)" यह वचन मिलता है[3]। ब्राह्मण-साहित्य में राजसभा का कवि (Bard) एवं गायक सूत ही माना गया है[4]। राजसूय यज्ञ में तो उन्हें सम्मान प्राप्त था[5]।

---

१. विशेषतः शौनक ने नाराशंसी गाथा को दानस्तुति कहा है (बृ. दे. ३. १५४)। उनके अनुसार राजाओं के वीरकार्य तथा दान की स्तुति ही नाराशंसी (Laudaion of men) या दान-स्तुति है। इस नाराशंसीका विषय लौकिक ही रहा है। नर की स्तुति भी देवताओं के साथ कर दी गई है, जैसे कक्षीवान ने राजा स्वनय की स्तुति की है : ऋ. सं. ३. १२५। इससे कक्षीवत् और स्वनय की कहानी का संकेत मिलता है।

२. D. K. Patil, Cultural History from Vāyu Purāna, Poona, 1946, p. 97

३. तैत्तिरीय ब्राह्मण, ३-४. २. २.

४. Macdonell and Keith, Vedic Index, II, pp. 462-3.

५. Jayaswal K. P., Hindu Polity, 2. 27.

तैत्तिरीय ब्राह्मण में ही अन्यत्र 'मेधायै रथकारम् (आलभते)' यह वचन प्राप्त होता है[1]। इससे ज्ञात होता है कि रथकार सूतों को मेधावी भी समझा जाता था।

वाजसनेयी संहिता में 'सूतायाहन्त्यै'[2] इस प्रकार का उल्लेख है। इससे यह कहा जा सकता है कि, संहिता-काल में सूतों का कार्य सारथ्य ही था। वे युद्ध में प्रत्यक्ष रूप से शस्त्र आदि का प्रयोग करके शत्रु वध का कार्य नहीं करते थे। क्योंकि, उसे 'अहन्त्यै' अर्थात न मारने वाला कहा है। ब्राह्मणों में उनका गीत-गायन से सम्बन्ध रहा है ऐसा उल्लेख स्पष्ट है।

इससे, सूत मेधावी, कवि एवं प्राचीन आख्यायिकाओं के संग्राहक थे यही स्पष्ट होता है। इतिहास-पुराण के प्राचीन साहित्य में जो उल्लेख प्राप्त होते हैं, उनका संकेत सूत-परम्परा से है। सूतों द्वारा रक्षित आख्यान ग्रंथ के रूप में रहे थे या नहीं यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। फिर भी पतन्जली के उल्लेख[3] से तो यह स्पष्ट ही है कि, प्राचीन आख्यान ईसा के दो सौ वर्ष पूर्व ही साहित्यिक ग्रंथों के रूप में लोकप्रिय हो बैठे थे। 'यायातिक', 'यावक्रतिक' आदि आख्यानों के जानकार घराने पतन्जलि के समय में विख्यात थे।

इन सूतों का साहित्य-संग्रह इतना प्रभावशील था कि, भाष्यकाल में ही इसे पंचम-वेद माना जाने लगा था[4]। महाभारत में तो इनके बिखरे हुए परम्परागत साहित्य का अच्छा संकलन हो गया। सूत, मागध, वंदी, कुशीलव, भरत आदि लोगों ने इतिहास-पुराण की वृद्धि की है। कुछ अन्य सवर्ण तथा शूद्र जातियों के लोगों ने भी पुराणों की मूलकथाओं का संवर्धन किया है[5]। यही सूत-साहित्य जब संस्कृत पंडितों के हाथ में चला गया, तब उससे ही विशाल साहित्य निर्माण हुआ। पुराणों का जो मूल रूप है उसका सम्बन्ध वैदिक साहित्य से है। जहां स्पष्टीकरण किया गया है वह अनन्तर की वस्तु है। उस मूल रूप में वैदिक आख्यान भी आ गये हैं, जिनका रूप स्पष्टीकरण के समय

---

१. तै० ब्रा०, ३. ४. ४. २

२. वाजसनेयी संहिता, १६. १८; उवट-भाष्यम् : "नमः सूताय सूतोऽश्वसारथिः। अहन्त्यै अहन्त्रे। न हि सूतः कंचिदपि हन्ति।" इति। महीधर-भाष्यम्: "सारथिर्न हन्ति" इति।

३. महाभाष्य, Keilhorn's ed., II, p. 313.

४. शतपथ ब्राह्मण, १३, ४, ३, १२: इतिहासो वेदः "सोऽयमिति किंचिदितिहासमाचक्षते।" छांदोग्य. ७. १. २.

५. पं. लक्ष्मण शास्त्री जोशी, वैदिका संस्कृतीच इतिहास, पृ. १२७

में भिन्न हो गया[1] । क्योंकि, सूतविद्या का संवर्धन यह कोई पुराणों का उद्देश्य नहीं था, अपितु सूतविद्या की सहायता लेकर धार्मिक कर्मों का एकीकरण यही उनका लक्ष्य था । वीरकथा के उपयोगी होने के कारण वेदव्यास द्वारा उसका उपयोग महाभारत में किया गया[2] । वहीं सूत-विद्या का लौकिक स्वरूप भी कुछ ढल गया और धार्मिक-सा बन गया । फिर भी ब्राह्मण ग्रन्थों की अपेक्षा महाभारत में लौकिकता अधिक है ।

इसी सूत-विद्या ने वीर-कथा के साथ-साथ लौकिक कथा भी महाभारत में अर्पित की । नीतिकथा इन्हीं लौकिक कथाओं में से एक है । नीतिकथा को प्राणिकथा से उठाकर साहित्यिक रूप किसने दिया होगा यह निश्चित रूप से कहना कठिन है । फिर भी इधर वैदिक मंत्र-परम्परा से सूतों का संबंध था और उधर लोक-वाणी में प्रचलित कथाओं से भी । इसी का परिणाम यह हुआ होगा कि, सूतों ने भृगुओं के साथ नीतिविचारों को प्राणिकथा में भरकर ही आर्यों के सामने नीतिकथा रखी होगी[3] । प्राणिकथाओं में नीतिविचार व्यक्त करने की इस शक्ति को देखकर महाभारत में उसे अपनाया गया । महाभारत-कालीन समाज में तो आर्य-अनार्यों में उतनी कटुता नहीं रही थी । अतः नीति-कथा के विकास के लिए अच्छा अवसर प्राप्त हो गया था । महान् संहिताकार व्यास ने सूतों द्वारा कही जाने वाली लोक-कथाओं का भी ग्रहण कर लिया । महाभारत में नीतिकथा अपनी अधिक स्पष्ट विशेषताओं के साथ दिखाई देती है ।

उपसंहार

सूतों एवं भृगुओं को यह प्राणिकथा मंत्र परम्परा से प्राप्त नहीं हुई थी । ऋग्वेद में प्राणियों का दृष्टान्त भर है । नीतिविचारों की भी अभिव्यक्ति है । ब्राह्मणों में केवल अपने सिद्धान्त की पुष्टि के लिए ही कहानी का माध्यम चुना गया था । इतिहास-पुराण से वीरकथाएं मिल गईं और दैवत-कथाओं (Myths) का प्रभाव भी बढ़ गया था । किन्तु इनमें प्राणिकथा को बढ़ने का कोई अवकाश नहीं था ।

सम्भव है सूतों के पास अनार्यों एवं शूद्रों की प्राणिकथाएं थीं । या जिन शूद्रों ने आख्यान-संग्रह का कार्य किया उन्हे प्राणिकथाएं भी मिली होंगी । प्रारम्भ में ये प्राणिकथाएँ वैदिक आचार्यों द्वारा अनादृत रही होंगी । क्योंकि,

---

१. P. L Bhargava, India in the Vedic Age 1956, Chapt. V, p. 65.

२. डॉ. केतकर, महाराष्ट्र ज्ञानकोश, प्राचीन महाराष्ट्र, शातवाहन पर्व, पृ. ७८, ८५

३. देखिए, अध्याय ६, 'म०भा० में नीतिकथा' में भृगुओं के कार्य की चर्चा ।

दैवतकथा ही धार्मिक उद्देश्य की पूर्ति का अधिक उपयुक्त माध्यम था। इसीलिए प्राणिकथा का अनादर ही हुआ और उसे यज्ञ के कार्य में सहायक होने से वंचित कर दिया तो आश्चर्य नहीं।

उसे यदि प्रकट होने का कभी अवसर प्राप्त हुआ होगा तो वह महाभारत के रचना-काल में। बौद्ध लोगों ने भी उसे अपनाया। दैवतकथाओं का उपयोग उनके लिए सिद्धान्ततः विरोधी था, इसीलिए उन्होंने समाज में प्रचलित प्राणि-कथा एवं नीतिकथा को अपना लिया। पंचतंत्र-साहित्य का मूल रूप भी लौकिक कथाओं का संग्रह ही था।

महाभारत जन साधारण की उस इच्छा का प्रतीक है जिससे लोग लौकिक साहित्य को अत्यधिक चाहने लग गये थे। उसमें नीतिविचार भी है। किन्तु उनमे ऐहिक, भौतिक या व्यावहारिक मूल्य अपेक्षित था। किसी सम्प्रदाय विशेष की धर्म-नीति या सिद्धान्त-चर्वणा मे जनसाधारण की उतनी रुचि नहीं थी। यह तथ्य अवश्य है कि, परम्परा से प्राप्त दैवतकथाओं के प्रति उनकी रुचि थी। इसीलिए इतने विशाल पुराण साहित्य की सृष्टि हो सकी। किन्तु ग्रंथगत यज्ञीय चर्चा के प्रति उनकी उतनी रुचि नहीं रही। यह स्वाभाविक भी था। अब लोग लौकिक कथा को चाहते थे। विद्वान भी लौकिक शास्त्र की ओर बढ़ रहे थे। पाणिनि ने भाषा को परिमार्जित करने का प्रयास किया। नीतिशास्त्र भी इसी प्रकार के प्रयत्न का फल है। राजाओं के लिए मार्गदर्शन करने वाले आचार्यों ने नीतिशास्त्र लिखा, जो सर्व जनता के लिए उपादेय हो गया।

पालि-साहित्य मे भगवान् बुद्ध की वाणी का संग्रह करते समय जातकों के रूप मे कई नीतिकथाएँ संकलित की गई थीं। वे भी प्राचीन लोककथा से ही ली गई थीं। बौद्धों ने नीतिकथा को धर्म-प्रचार के लिए अपनाया और बुद्धदेव के पूर्व जन्म की कथा के रूप मे उसका ग्रहण किया, इसीलिए वह "गुणकथा" बन गई है। जातकों में नीतिकथा का यह रूप धर्म-पोषणाय रहा है।

बौद्ध तथा महाभारत की कथाओं के पूर्व उपनिषत्-साहित्य में नीतिकथा ने अपना किंचित् रूप प्रकट किया है। छान्दोग्योपनिषद् में राजा जानश्रुति सारसों का वार्तालाप सुनता है[१], तथा कुत्तों का अन्न-प्राप्ति के लिए अपने श्वेत श्वान को खोज कर उसका अनुसरण[२] करने आदि प्रसंगों में प्रारंभिक नीतिकथा के अंश प्राप्त है। इनकी चर्चा विशेषतः चतुर्थ अध्याय में होगी।

---

१. छान्दोग्य० ४. १. १., ५, ७

२. वही, १. १२. १-५, और देखिए वही, ४-१.

३ संहिता-साहित्य में नीतिकथा के पूर्वरूप

प्राणि-कथा से ही नीतिकथा बनी है। इस नीतिकथा के वैदिक साहित्य में भी कुछ पूर्वरूप पाये जाते हैं। ये आज की नीतिकथा के सर्वाधिक प्राचीन एवं साहित्यिक पूर्वरूप हैं। हमें यहाँ देखना है कि वे कौन से तत्व हैं जो नीतिकथा के बीजरूप मे वैदिक साहित्य में पाये जाते हैं। वेद धर्म-ग्रन्थ हैं, किन्तु उनमें भी तत्कालीन लौकिक तथ्य प्रवेश कर गये हैं। वैदिक साहित्य में नीतिकथा का अवतार दृष्टांत-कथा (Parable) के रूप मे हुआ था। नीतिकथा के साहित्यिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था को समझने के लिए वैदिक कथा साहित्य की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

भारतीय कथाएँ बहुत प्राचीन हैं। उनसे भारत की संस्कृति एवं सभ्यता का परिचय प्राप्त होता है। प्राचीन से प्राचीन साहित्यिक चेतना की जड़ें इन भारतीय कथाओं मे निहित हैं। इनसे धार्मिक, साहित्यिक एवं सामाजिक इतिहास ज्ञात हो सकता है[१]।

लौकिक कथा

ऋग्वेद मे तत्कालीन लोकसाहित्य के रूप भी प्रकट हुए हैं। उसमें दैवत-कथाओं का बोलबाला अवश्य रहा है। पवित्राख्यान (sacred tale) की परंपरा ऋग्वेद से ही चल पड़ी है। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें केवल अलौकिक विषय को चर्चा या परमार्थ की प्राप्ति की कामना के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। शौनक ने बृहद्देवता में कहा है कि स्वर्ग, दीर्घायु, संपत्ति एवं संतान आदि के लिये ऋग्वेद में ऋषियों ने प्रार्थना की है। सच पूछा जाय तो 'स्वर्ग की स्तुतियाँ बहुत कम हैं।'[२]

---

१. Felix Lacote, Essay on Guṇādhya and the Bṛhatkathā, Preface, pp. 3 (Transl. by Tabard) : "........the Indian tales have deep roots in the literary past of India. They are for its history, religious, literary and social, of a capital importance."

२. बृ. दे. १. ८ : "ताभ्यश्चाल्पतरास्ताः स्युः स्वर्गो याभिस्तु याच्यते।"; ऋ. सं. ७. ५. ६; २४. ६, ६७. १०.

वैदिक ऋषियों ने अधिकतर अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्रार्थना की है। पणियों ने उनकी गायें चुरा लीं, तब उन्हें प्राप्त करने के लिये वे प्रयत्नशील हुए। ऋग्वेद के मंत्रों के अपने अपने देवता हैं। उनकी प्रार्थना करते समय उनसे धनधान्य की ही याचना उन्होंने की है। केवल देवताओं के अलौकिक चमत्कार का ही वर्णन नहीं है।

ऋग्वेद में शुनःशेप के प्रार्थना-सूक्तों से प्राचीन लोककथा का संकेत मिलता है। ऋग्वेद प्रार्थना-प्रधान साहित्य है, अतः शुनःशेप की केवल प्रार्थना ही उसमें सुरक्षित है[1]। इस प्रार्थना से जो प्राचीन कहानी व्यक्त होती है वह इस प्रकार हैं :

वेधसपुत्र हरिश्चन्द्र की सौ पत्नियां होने पर भी उसे सन्तान नहीं थी। नारद के कहने पर हरिश्चन्द्र ने वरुण की प्रार्थना की। हरिश्चन्द्र ने वरुण को वचन दिया कि पुत्र की प्राप्ति होने पर वह वरुण को बालक का बलि समर्पण करेगा। वरुण ने मान लिया। आगे चल कर हरिश्चन्द्र को रोहित नाम का लड़का हुआ। वरुण ने बलि मांगी। परंतु हरिश्चन्द्र टालते रहे। रोहित बड़ा हो गया। राजा ने उसे वरुण की मांग से अवगत करा दिया। तब वह जंगल में भाग गया। वरुण ने हरिश्चन्द्र को ग्रस लिया। उसे जलोदर हुआ। रोहित घर आया किन्तु इन्द्र ने उसे उकसाकर घर छोड़ने को बाध्य किया। रोहित जंगल में सात वर्ष तक घूमता रहा। घूमते हुए वह ऋषि अजीगर्त के पास आया। ऋषि के तीन पुत्र थे। शुनःपुच्छ, शुनःशेप और शुनोलांगूल। रोहित ने ऋषि से सब कहानी कही और सौ गायें देकर मझले लड़के को बलि के लिये प्राप्त कर लिया। घर आकर पिता को उसने बलि दिखाई। वह बलि हरिश्चन्द्र ने वरुण को दिखाई। उसने भी इस ब्राह्मण बलि को पसंद किया। शुनःशेप को यज्ञभूमि की ओर ले गये तब वहाँ विश्वामित्र होता, जमदग्नि अध्वर्यु, वशिष्ठ ब्रह्मा तथा अपास्य ऋषि उत्गाता थे।

वहाँ शुनःशेप को यूप से बाँधने के लिये कोई तैयार नहीं हुआ। इस पर शुनःशेप के पिता ने सौ गायें और लेकर अपने लड़के को यूप से बाँध दिया। उसके बाद सौ और गायें देकर शुनःशेप को मारने के लिये उसके पिता को ही ठहरा लिया गया। तब पिता पुत्र को मारने के लिये उद्युक्त हुआ। ऐसे प्रसंग में शुनःशेप ने देवताओं की प्रार्थना शुरू की।

शुनःशेप ने प्रजापति की प्रार्थना की। उन्होंने उसे अन्य किसी देवता के पास भेजा। इस प्रकार वह इस देवता से दूसरे के पास भटकता और प्रार्थना

१. ऋ. सं. १. २६—३०

करता रहा। अन्त में उषा की प्रार्थना के समय उसके बंधन टूट गये। हरिश्चन्द्र रोग-मुक्त हुए। विश्वामित्र ने शुनःशेप के हाथों द्वारा यज्ञ संपन्न कराया। अजीगर्त ने उसे अपना पुत्र बने रहने का आग्रह किया। किन्तु शुनःशेप पिता की ओर नहीं गया। उसे विश्वामित्र ने दत्तक के रूप में देवताओं से ले लिया इसलिये उसका नाम 'देवरात' हुआ।

इस कहानी में प्राचीन लोककथा झाँक रही है। इस कथा से एक तत्व स्पष्ट है। धन के लालच से मनुष्य अपने पुत्र तक की बलि देने के लिये तैयार हो सकता है। अजीगर्त ने न केवल शुनःशेप को बेचा, अपितु धन लेकर वह उसे बाँधने और मारने के लिये भी तैयार हुआ। ऋग्वेद के अनन्तर शुनःशेप को प्रार्थना का महत्व बढ़ा। उस प्रार्थना से उसे मुक्ति मिली यही लोकविश्वास रहा होगा। तभी ऐतरेय ब्राह्मण में इस आख्यायिका को मुख्य स्थान मिला है[1]।

इस कथा से ऋग्वेद कालीन समाज में दासप्रथा प्रचलित थी यह कहा जा सकता है। यास्क ने शुनःशेप के विक्रय की पुष्टि की है[2]।

इसके अतिरिक्त और भी अनेक सूक्त है जिनमें लौकिक कथाओं का आभास मिलता है। ऋषि त्रित आप्त्य ने विश्वेदेव की प्रार्थना की है[3]। शाट्यायन-ब्राह्मण के अनुसार एकत, द्वित और त्रित ये तीन भाई प्यास के कारण एक कुएँ के पास आये। वहाँ त्रित ने अन्दर जाकर पानी पिया और फिर पानी लाकर भाइयों को पिलाया। तब दोनों भाइयों ने उसे कुएँ में ढकेल दिया। कुआँ बंद कर दिया। तब त्रित ने प्रार्थना की।

कक्षीवान् ने राजा स्वनय की जो दानस्तुति की है[4] उसका आधार भी एक लोककथा ही है। ब्रह्मचारी कक्षीवान् गुरुकुल से वेदाभ्यास समाप्त कर घर लौट रहा था। रास्ते मे एक जगह रात को सोया। भावयव्य का पुत्र स्वनय अपने मित्रों के साथ वहाँ आया। तब उसने तेजस्वी कक्षीवान् को देखा। कक्षीवान् उठ खड़ा हुआ। उसकी वह सुन्दरता देखकर राजा उसे घर ले आया। उसका सम्मान किया। राजा स्वनय ने उसे दस कन्यायें एवं धन भी दिया। इन्हे लेकर कक्षीवान् अपने पिता के पास आया। स्वनय की इस उदारता की स्तुति कक्षीवान् ने की है।

ऋग्वेद के कई मंत्रों मे पुरातन कथाओं (Legends) का आभास मिलता

---

१. ऐ. ब्रा. ७. १८.
२. निरुक्त ३. ४
३. ऋ. सं. १. १०५
४. ऋ. सं. १. १२५

है। आगे चल कर यास्क शौनक, कात्यायनद्या द्विवेद आदि ने उन्हें स्पष्ट रूप दिया। वैदिक कहानियां बहुत प्राचीन समय से चली आ रही है[१]।

एक सूक्त मे कहा है कि वामदेव योग सामर्थ्य से श्येन का रूप लेकर उदर से बाहर आये[२]। कोई गर्भ पक्षी का रूप धारण करके माता के उदर से बाहर निकले यह लोकविश्वास का ही एक रूप है जो ऋग्वेद में इस सूक्त में अंकित हो गया है।

एक और सूक्त में प्राचीन लोककथा का आभास दृष्टिगोचर होता है: वरुण के घर में वशिष्ठ सो रहे थे। वहाँ एक कुत्ता चिल्लाते हुए आया। काटने के लिए उद्युक्त उस कुत्ते से वशिष्ठ ने ऋचाएं कहीं[3] और उसे शान्त कर दिया। फलतः वे और वरुण के अन्य लोग सो सके।

अत्रि की लड़की अपाला को कुष्ठ के कारण पति ने त्याग दिया था। वह सोम लाने के लिये नदी पर जाती है। स्नान करके लौटते समय रास्ते में सोम को खा लेती है। यह समझ कर कि सोम को कोई कूट रहा है, इंद्र वहां उपस्थित हुआ किन्तु वस्तुस्थिति ज्ञात होने पर वह जाने लगा। तब अपाला ने पुनः उसके लिए सोम तैयार कर दिया। इन्द्र ने उसका कुष्ठ दूर किया[४]।

ऐसे ही अन्य कई सूक्त है, जिनसे प्राचीन आख्यान व्यक्त होते हैं। बृहद्देवता मे कुछेक आख्यानों को प्रस्तुत किया गया है।

ये आख्यायिकाएं प्राचीन लोककथाएं ही हैं। दैवत-कथाओं से इनका स्वरूप कुछ भिन्न-सा है। इनका मुख्य विषय धार्मिक नहीं है। ये कहानियां वैदिक काल के जनसमाज मे प्रचलित थीं। ऋग्वेद मे उनको पूर्ण स्थान नहीं मिल पाया।

---

१. देखिये, पं. बलदेव उपाध्याय, वैदिक कहानियां, काशी १६४६

२. ऋ. सं. ४. २७

३. ऋ. सं. ७. ५५. २-३; बृ. दे. ६. ११—१३:

"वरुणस्य गृहान् रात्री वशिष्ठः स्वप्न आचरत् ॥११॥
प्राविवेशाथ तं तत्र श्वा नदन्नभ्यधावत।
क्रंदन्तं सारमेयं स धावन्तं दष्टुमुद्यतम् ॥१२॥
यदर्जुनेति च द्वाभ्यां सांत्वयित्वा व्यसुष्वपत्।
स तं प्रस्वापयामास जनमन्यं च वारुणम् ॥१३॥

इस विषय मे यह भी आख्यायिका है कि भूखे वशिष्ठ ने वरुण के घर में चोरी करने के लिये प्रवेश किया तब रक्षक कुत्ता और वरुण के लोग सो जाये इसलिये ये ऋचाए कहीं है।

४. ऋ. सं ८. ९१

किन्तु कुछ कहानियों में वैदिक समय के श्रेष्ठ व्यक्तियों का संबन्ध जुड़ा हुआ था। वशिष्ठ की उपरोक्त कहानी इसका उदाहरण है। इसीलिए उनसे संबन्धित सूक्तों में उन दिनों की लोककथा का अंश भी आ गया है। अगर वशिष्ठ जैसे वैदिक श्रेष्ठ व्यक्तियों से ये कथाएं संबंधित न होतीं, तो शायद ही उनकी निशानी वेदों मे पायी जाती।

वैदिक समय में लोककथाएं लोकवाणी में प्रचलित थीं। नीतिकथा भी किसी समय में एक लोककथा ही थी। इसीलिए हमने ऋग्वेद में व्यक्त कुछ प्राचीन कथाओं का उल्लेख किया है। ये आख्यान अवश्य ऋग्वेद के समय भी जनप्रिय रहे होंगे। इससे स्पष्ट है कि दैवत-कथा या धार्मिक कथा से विभिन्न प्रकार की लौकिक कथा का भी संकेत ऋग्वेद में मिलता है, किन्तु इन लोक-कथाओं के संकेतों में प्राणिकथा का कोई स्पष्ट रूप हम नहीं देख पाते। प्राणिकथाओं के संकेत ऋग्वेद में प्राप्त हो रहे हैं या नहीं, इसे अभी देखना है।

वास्तव मे ऋग्वेद में पूर्ण रूप से प्राणिकथा नहीं है। कुछ संवादों में प्राणियों ने हिस्सा अवश्य लिया है। किन्तु उन्हें हम सम्पूर्ण कथा नहीं कह सकते। फिर भी एक तथ्य अवश्य है। प्राणियों के दृष्टान्त देकर ऋग्वेद में ऋषियों ने अपने मंतव्य की पुष्टि की है। ऐसे स्थलों मे नीतिकथा के बीज प्रकट हुए जिनका विवेचन आवश्यक है।

ऋग्वेद में पशु-पक्षी

किसी प्रतिपाद्य विषय को स्पष्ट करने के लिए दृष्टान्त, उपमा या उदाहरण से काम लिया गया है। यह हम कई बार कह आए है। ऋग्वेद इसका अपवाद नहीं।

इस दृष्टि से ऋग्वेद के पशु-पक्षियों पर विचार करना श्रेयस्कर होगा। ऋग्वेद मे ऋषियों ने इस प्रकार के दृष्टांत एवं उपमाएं दी है जिनसे उनके विचार और भी स्पष्ट हो गये हैं। इन्हीं प्राणि-दृष्टान्तों को हम नीतिकथा के पूर्व-रूप कह सकते है। प्राणियों के जो दृष्टान्त प्राप्त होते है वे प्राणिकथा के साहित्यिक प्रवेश को सिद्ध करते हैं। इन दृष्टान्तों के मूलाधार प्राणिकथा भी रही है और इन दृष्टान्तों ने परवर्ती साहित्य में भी विकास कर लिया है।

ऋग्वेद में इंद्र देवता की स्तुति करते समय ऋषि आंगिरसों ने भेड़िये का मार्मिक दृष्टांत दिया है :

"जिस प्रकार कोई भेड़िया भेड़ों को कंपित कर देता है, उसी प्रकार इस यज्ञ मे सोम पत्थरों को विचलित कर देता है[1]।"

---

१. ऋ सं. ८. ३४. ३ :—'अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः। दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवाऽवसो ॥

इस प्रकार प्राणियों का सूक्ष्म निरीक्षण व्यक्त हुआ। प्राणियों के स्वभाव-विशेषों को भी उन्होंने समझ लिया था। उनका यह निरीक्षण मार्मिक एवं गहरा था। इससे जान पड़ता है कि ऋषियों ने ऐहिक वस्तुओं की ओर भी ध्यान दिया था और क्षुद्र प्राणियों की भी उपेक्षा नहीं की थी।

शुनःशेप सूक्त में एक मंत्र है :

"हे इंद्र, यह सोम भी तुम्हारा ही है। जिस प्रकार गर्भवती मादा के साथ उसका नर कपोत रहता है, उसी प्रकार तुम्हारा इस सोमरस के साथ साहचर्य बना रहता है[1]।"

प्राणियों की गतिविधि से ऋषि परिचित थे। एक ऋषि ने कहा है :—

"जिसने प्रथम सोमरस निकाला और कई स्तोत्रों का गायन किया वह मैं ही हूँ। भेड़िया प्यासे मृग को खा लेता है, उसी प्रकार व्यथा मुझे जर्जर कर रही है[2]।"

वहीं पर दूसरे एक मंत्र में ऋषि ने कहा है कि,

"जुलाहों के द्वारा बुने हुए तंतुओं को चूहे जिस प्रकार काट डालते हैं उसी प्रकार रोग मुझे खा रहे हैं[3]।"

ऋषियों ने इन प्राणियों के विश्व का निकट से अवलोकन कर लिया था। इससे उनकी उपमाएँ मार्मिक हो गयी हैं। एक मंत्र में इन्द्र को बैल की भी उपमा दी गई है। ऋषि ने कहा है :

"जिस प्रकार कोई प्यासा बैल हौज खाली कर देता है, उस प्रकार इन्द्र सोमरस के पात्र को खाली करता है[4]।"

जिन प्राणियों से निकट संपर्क आया था उनके उदाहरण अधिक दिये गये।

---

१. ऋ. सं. १. ३०. ४ :—

"अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम्।
वचस्तच्चिन्न ओहसे ।।"

२. ऋ. सं. १. १०५. ७ :—

"अहं सो अस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित्।
तं मा व्यंत्याध्यो ३ वृको न तृष्णजं मृगं वित्तं मे अस्य रोदसी ।।"

३. ऋ. सं., १. १०५. ८ :—

"सं मा तपंत्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः। मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी ।।"

४. ऋ. सं., १. १६. ५.

अतः उनकी उपमायें स्वाभाविक रूप में ही अभिव्यक्त हुई हैं। उनमें कोई कृत्रिम प्रयास नहीं दिखाई देता।

ऋग्वेद में प्राणि-दृष्टान्त मानवीय अर्थ के लिये प्रतीक (Symbols) बन बैठे हैं। नीतिकथा में प्रायः प्राणियों के पात्र आते हैं। ये पात्र मानव के ही प्रतीक बनकर नीतिकथा में आते हैं। कोई सिंह यदि सियार के कहने से भक्ष्य को छोड़ देता है तो हमारे सामने उस राजा का चित्र आ जाता है, जिसने अपने मंत्री के कहने पर अपने हित की वस्तु छोड़ दी हो। कोई मंत्री राजा के साथ अपनी युक्ति से प्रतारणा कर सकता है और वह राजा शूर होते हुए भी चतुरता के अभाव के कारण हानि उठा सकता है। यह अर्थ हमें उस सियार की कहानी से प्राप्त होता है, जिसने सिंह, भेड़िया, चूहा और सियार जैसे पशुओं को भक्ष्य को खाने नहीं दिया और उसे अपने ही लिए सुरक्षित रक्खा[1]।

ऐसे प्रतीकों का बीज उपरोक्त वैदिक दृष्टांतों में निहित है। इनका उपयोग अर्थालंकार की शैली में हुआ है। अर्थात् उपमा आदि का प्रयोग करने से उन प्रतीकों में स्पष्टता आ गयी है। अपने कथन को स्पष्ट करने की ऋषियों की इच्छा थी। इस कार्य में प्रतीकों से उन्होंने काम लिया। वामदेव ने इंद्र की स्तुति करते समय कहा है :

"हे इंद्र, सूर्य के पास खड़े होने पर भी अमर ऐसे तुम्हारी कांति चमकती दिखाई देती है। हाथी के समान तुम्हारा बल है और आयुधधारी तुम सिंह के समान भयंकर दिखाई दिये[2]।"

ऐसे प्रसंगों में हाथी या सिंह से इंद्र की तुलना कर देने से उसका बल और भयानक रूप और भी स्पष्ट हुआ है। हाथी एवं सिंह बल एवं भयानकता के प्रतीक रहे हैं। आज ये प्रतीक हमें सस्ते एवं प्रतिदिन के व्यवहार में लिए जाने के कारण निर्जीव लगते हैं। किन्तु ऋग्वेद के समय प्राणियों के प्रतीक अमूर्त भावों को मूर्त रूप देने में समर्थ थे। उनका उस समय का प्रयोग मौलिक ही रहा है। ऋषियों ने उनका प्रयोग सफलतापूर्वक किया, बाद में उन प्रतीकों का निर्वाह सर्वत्र होने लगा। इसी कारण आज वे प्रतीक परिचित एवं निर्जीव-

---

१. महाभारत में कणिक नीति, आदि पर्व, १.१२९.१; Mahābhārata, Ed. by Sukthankar, Appendix I, P. 929.; पंचतंत्र में सियार, सिंह, व्याघ्र एवं चीते की कथा, तंत्र ४, कथा १०.

२. ऋ. सं. ४. १६. १४

से लगते हैं। ऋग्वेद में सबसे महत्वपूर्ण प्रतीक सौपर्ण दृष्टांत[1] में निहित है। वास्तव में नीतिकथा का ही प्राचीन रूप इस दृष्टांत में हमें मिलता है। दीर्घतमस् ऋषि ने विश्वेदेव की स्तुति करते समय कहा है :

"साथ-साथ रहने वाले मित्र रूप दो पक्षी एक ही वृक्ष पर बैठे हुए हैं। उनमें से एक उस वृक्ष के मधुर फलों का भक्षण करता है और दूसरा कुछ भी नहीं खाता, केवल उसकी ओर देख रहा है।"

यहां वृक्ष 'प्रकृति' का प्रतीक है और दो पक्षी 'जीवात्मा' तथा 'परमात्मा' हैं। अर्थात् इस चराचर प्रकृति में जीव वस्तुओं का भोग लेता है। क्योंकि वह सोपाधिक आत्मा है। किन्तु परम चैतन्य केवल साक्षी ही होता है। उसमें वासना नहीं होने से वह भोक्ता नहीं होता, केवल द्रष्टा होता है। अथवा एक ही शरीर में भोगी जीव तथा साक्षि-चैतन्य की सत्ता रहा करती है[2]।

इसी रूपक का उपयोग आगे चलकर दार्शनिकों ने अपने ब्रह्मविद्या-निरूपण में किया है[3]। क्योंकि अद्वैतवाद का सार-तत्व इस दृष्टांत में निहित है। फिर भी ऋग्वेद में यह एक गूढार्थवाहक मंत्र है। वेदांतियों ने अपने गूढ आध्यात्मिक रहस्य को स्पष्ट करने के लिये दो पक्षियों के इस दृष्टांत का उपयोग कर लिया। ऋग्वेद में इस दृष्टांत के रूप में संस्कृत नीतिकथा के बीज पहले से प्रकट हो चुके हैं।

प्राणि-कथा की उत्पत्ति :

यह हम कह चुके हैं कि, प्राणिकथा की उत्पत्ति गडरियों या शिकारियों के द्वारा हुई भी मानी गई है[4]। शिकारियों को प्राणि-स्वभाव में भी मनुष्य के स्वभाव दिखाई दिये थे। इस समानता के आधार पर अपने साथियों के बीच उन्होंने प्राणियों के उदाहरण सुनाये। किन्तु ऐसे उदाहरणों से भी उच्च कोटि के प्राणि-दृष्टांत ऋग्वेद में प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद-कालीन ऋषियों ने शेप-

---

१. ऋ. सं. १.१६४.२० :--

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥

२. देखिये यास्क, निरुक्त, १४.३० : "द्वौ द्वौ प्रतिष्ठितौ सुकृतौ धर्मकर्तारौ।"

३. मुण्डकोपनिषद्, ३.१. १--२ :--

"समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महीमानमिति वीतशोकः ॥"

४. इसी ग्रंथ का अध्याय २.

प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण कर लिया था। इसके साथ-साथ प्राणियों के विषय में कितना मार्मिक ज्ञान उन्हें था इसका परिचय भी हमें इन दृष्टान्तों से प्राप्त होता है।

वैदिक युग में भी प्राणियों का शिकार किया जाता था। ऋग्वेद में ऐसे मंत्र आये हैं जिसमें बहेलिये और उनके लक्ष्य पक्षियों का संकेत मिलता है। एक मंत्र के ऋषि ने पक्षी को कहा है : "हे कपिंजल पक्षी, श्येन तुम्हारा वध न करें। गरुड तुम्हें न मारें। तुम्हें बाणयुक्त धनुर्धारी वीर न पकड़ें। पितरों की (दक्षिण) दिशा में पुनः-पुनः शब्द करने वाले तथा मंगल एवं शुभ शब्द करने वाले तुम यहां कूजन करो[1]।"

इससे स्पष्ट है कि, ऋग्वेद के समय मनुष्य का प्राणियों के साथ आखेट-संबंध स्थापित हो चुका था। इसके आधार पर कह सकते हैं कि शिकारियों द्वारा ऋग्वेदकालीन जन-समाज में प्राणियों के विषय में कुछ दृष्टांत और कहानियां प्रचलित की गई होंगी। ऋग्वेद में ऐसे ही प्राणि-दृष्टांत अपना लिये गये हैं। क्योंकि अर्थ की स्पष्टता के लिए लोकप्रिय दृष्टांत को अपनाने की प्रवृत्ति होती है यह सिद्ध हो चुका है। ऐसे प्रभावशील दृष्टांतों में तत्कालीन शिकारियों और गडरियों द्वारा प्रवर्तित मार्मिक प्राणि-दृष्टांत भी अपनाए गए होंगे तो क्या आश्चर्य? इसके अतिरिक्त आश्रमवासी ऋषियों ने जंगल के पशु-पक्षियों को भी देखा-निहारा और उनके स्वभाव, गतिविधियां और व्यवहार के अध्ययन का ही यह फल था कि सुंदर प्राणि-दृष्टांत ऋग्वेद में प्रवेश कर गये।

प्राकृतिक दृश्यों पर पशुओं का आरोप :

प्राकृतिक दृश्य देखकर उनका मानवीकरण किया गया। किन्तु कहीं-कहीं उनपर पशुओं का भी अध्यारोप किया गया है। देवतारोप के कारण इन पशुओं को ऋग्वेद में स्थान मिल गया है।

ऋग्वेद में द्यौस् की तुलना काले घोड़े से की गयी है। अग्नि को वृषभ कहा है, क्योंकि उसकी तड़तड़ आवाज बैल की आवाज के समान है। उसकी ज्वालाएं बैल के हजारों सींग हैं। विद्युत् की गर्जना भयानक जानवरों की आवाज है। विद्युत को सर्प भी कहा है। इनसे एक तथ्य स्पष्ट है। प्राकृतिक तथ्यों पर ज्ञात वस्तुओं का अध्यारोप होता है। लोक-साहित्य का यह एक सिद्धांत है कि, अपनी परिचित वस्तु को साम्य के आधार पर मनुष्य अपरिचित

---

१. ऋ. सं. २. ४२. २:—
"मा त्वा श्येन उद् वधीन् मा सुपर्णो मा त्वा विददिषुमान् वीरो अस्ता।
पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत् सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह"॥

स्थल में आरोपित कर देता है। पशु-पक्षी वैदिक ऋषियों के चिरपरिचित प्राणी थे। उन्होंने यदि उनका आरोप कुछ प्राकृतिक तथ्यों पर इस प्रकार कर दिया हो तो आश्चर्य नहीं। यह एक मनुष्यमात्र की स्वाभाविक प्रवृत्ति है[1] और उसी का रूप इन आरोपों में दिखाई देता है।

ऋग्वेद में वामदेव के सूक्तों में एक मंत्र है,

"वह सुपर्ण श्येन सामर्थ्यशाली बना रहे जो बिना चक्र के रथ से देवप्रिय हविर्द्रव्य लोगों के पास में लाता है। सभी पक्षियों में वह बलवान रहे। वह श्येन सभी चतुर पक्षियों में चतुर रहे।"[2]

तथा—

"गर्भ में रह कर भी मैंने सब देवताओं के जन्म जान लिये। मेरी रक्षा सैकड़ों लोह-शरीरों से हुई है। अब मैं श्येन बनकर आवेग से बाहर निकलता हूँ[3]।"

यहाँ तथा अन्यत्र कहा गया है कि, स्वर्ग से श्येन पक्षी सोमरस को लाता है। वास्तव में यह एक रूपक है। स्वर्ग में जो विद्युत्‌रूपी अग्नि है वही श्येन पक्षी है। कल्पना की गयी है कि स्वर्गीय पेय सोम मेघों में छिपाकर रखा जाता है। ग्रीष्म के अंत में आकाश में जब मेघगर्जना होती है तब विद्युत्‌रूपी श्येन मेघ को चीरकर बाहर आता है और उसके साथ-साथ यज्ञ में लगने वाला 'स्वर्गीय रस' भी प्राप्त होता है।

ब्लूमफील्ड ने इस रूपक का यही अर्थ लिया है। उसके अनुसार श्येन सोम को लाता है अर्थात् मेघ (लोहदुर्ग) से विद्युत् निकल कर नीचे आ गिरती है। उसके साथ जल भी बरसता है। यह एक सामान्य प्राकृतिक तथ्य है। अन्यत्र भी इस प्रतीक का इसी अर्थ में प्रयोग हुआ है[4]। अवेस्ता में भी उल्लेख है कि सोम को दिव्य पक्षी लाये थे। इससे स्पष्ट है कि यह बहुत प्राचीन कल्पना है। ऋग्वेद में हम देखते हैं कि श्येन या गरुड़ इस सोम को इंद्र के लिये द्युलोक से

---

१. Farrer, On the Origin of Languages, p. 119.

२. ऋ. सं. ४.२६.४ :—

"प्र सुषविभ्यो मरुतोविरस्तु प्र श्येनः श्येनेभ्य आशुपत्वा।
अचक्रया यत्स्वधया सुपर्णो हव्यं भरन्मनवे देवजुष्टम् ॥"

३. वही, ४.२७.१ :—

गर्भे नु सन्नन्वेशामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम् ॥

४. ऋ. सं. १.९३.६; अ. वे. ६.४८.

लाया है[१] । एक मंत्र में सोम और श्येन को एक ही मान लिया है[२] । किन्तु यह मंत्र कुछ बाद का ही प्रतीत होता है । दूसरी बात यह है कि, सोम-श्येन-कथा का इस मंत्र से सम्बन्ध नहीं है । ब्राह्मण ग्रंथों में प्राप्त सोमाहरण की कथा ऋग्वेद के दो सूक्तों से प्रभावित है । उनमें गायत्री छंद द्वारा सोम लाया कहा गया है । गायत्री का संबंध अग्नि से है । कारण गायत्री छंद अग्नि के लिए प्रयुक्त होता है । यह अग्नि द्युलोक की विद्युत् है । क्योंकि द्युलोक का अग्नि विद्युत् ही हो सकता है । इसीलिए ऐतरेय ब्राह्मण में गायत्री छंद पक्षी होकर सोम को लाने गया है । वह देवताओं और ऋषियों के लिए यह सोम द्युलोक से ले आया[३] ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि, ऋग्वेद में लोह-दुर्ग को भेदकर श्येन ने सोम-रस पृथ्वी पर लाकर छोड़ा, इस घटना के पीछे प्राकृतिक अर्थ छिपा हुआ है । विद्युत ने घने मेघ को चीरकर पृथ्वी के लिए जल बरसाया । यह सब इंद्र के लिए किया गया । इंद्र वैदिक प्रजा में मुख्य है । अर्थात् सारी प्रजा के लिए जल की जो आवश्यकता थी उसकी पूर्ति हो गयी ।

श्येन पक्षी ने इंद्र को द्यु-लोक से सोम-वल्ली लाकर दी इस घटना में लोक-साहित्य की एक प्राचीन मूल घटना (Incident) छिपी है । प्राचीन समय में लोक-विश्वास रहा है कि पशु या पक्षी मनुष्य की सहायता करते रहे हैं । असभ्य समाज की कई प्राचीन कथाओं में जानवर या पक्षी मनुष्य की सहायता करते दिखाई देते है[४] । ऋग्वेद में इसी घटना को अपनाया गया है । अवेस्ता के अनुसार भी पक्षियों ने यह उपकार-कार्य किया है । ग्रीक देवता झ्यूस के

---

१ ऋ. सं. ३. ४३. ७ :—

"इंद्रं पिब वृषधूतस्य वृष्ण आयं ते श्येन उशते जभार ।
यस्य मदे च्यावयसि प्र कृष्टीर्यस्य मदे अप गोत्रा ववर्थ ॥"

(हे इन्द्र, बड़ा बल लगाकर निकाला हुआ यह सोमरस पियो । सोमरस पीने के लिए उत्सुक ऐसे तुम्हारे लिए श्येन पक्षी यह सोम लाया है । इस सोम से मस्त होकर तुम शत्रु को नष्ट कर देते हो और गायों को बंधमुक्त कर देते हो ।)

२. वही, १०.९९.८.

३. ऐ. ब्रा. ३.१३.१–२.

४. Bompas, the Folklore of the Santal Parganas, pp. 217, 259.

लिए श्येन अमृत लाया है। ओडिन नामक देवता श्येन का रूप धारण कर शहद[1] ले गया। अप्राप्य वस्तुओं की प्राप्ति पक्षियों के प्रयत्न से हुई है।

वृहद्देवता में सोभरी ने चूहों के राजा (आखुराज) चित्र की इंद्र के साथ स्तुति की है। चित्र ने भी उसे खुश होकर गायें दी[2]। भारतीय लोक-कथाओं में ऐसे अनेक स्थल मिलेंगे जिनमें पशु-पक्षी मनुष्य की सहायता करते दिखाई देते है[3]। परी-कथाओं में भी पशु-पक्षी नायक-नायिका की सहायता करते हैं। इन सबके मूल में वही तथ्य है जो विश्व में सर्वत्र लोक-साहित्य में पाया जाता है।

मनुष्य की पशु-पक्षी सहायता करें यह कल्पना ऋग्वेद के सोमाहरण-सूक्तों में हमें स्पष्ट दिखाई देती है। उस समय की लोक-कल्पना का ही वह प्रभाव था। वैदिक आख्यानों के इन वीजों से ही प्राणिकथा और नीतिकथाएं अंकुरित हुई हैं।

ऋग्वेद में अश्व को सूर्य का प्रतीक माना है[४]। अश्व के वर्णन मिलते हैं। दधिक्रा[५], तार्दय[६], पैड्व[७], ऐतश[८] ये उनके नाम हैं।

ऋग्वेद मे पाये जाने वाले प्राणि-दृष्टांतों से लगता है कि ऋग्वेद-कालीन समाज में प्रचलित प्राणिकथा का अनुमान किया जा सकता है। वैदिक ऋषियों का कार्य केवल प्राणियों के दृष्टांत से ही चल गया। उन्हें प्राणि-कथा को अपनाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। क्योंकि ऋग्वेद प्रार्थना-प्रधान ग्रन्थ है। दैवत-कथाएँ भी उसमें पूरी नहीं मिलतीं। वास्तव में ये दैवत-कथाएँ उनके वैदिक धर्म का मूलाधार थीं। फिर भी ऋग्वेद में उन्हें पूर्ण स्थान नहीं मिल पाया। आख्यान-सूक्तों से ऋग्वेद-कालीन दैवत-कथाओं का आभास हमें मिलता है। बाद में दैवतकथा-शास्त्र इतना बढ़ गया कि साहित्य ने दैवत-कथाओं को पूर्ण रूप से अपना लिया। इनमें प्राणियों के दृष्टांत नीतिकथा की दृष्टि से

---

१. सं. मधु, ग्रीक मेडु और असीरियन मेडु।

२. वृ. दे. ६. ६०.

३. JBORS, Vol. II, pt. III, Sept. 1916—Jackal's Srata-gem, p. 289.

४. ऋ. सं. ७.७७.३.

५. ऋ. सं. ४.३८–४०; ७.४४.

६. ऋ. सं. १.८९.६; १०.१७८.१.

७. ऋ. सं. १.११६.१०; ७.७१.५.

८. ऋ. सं. ७.६२.२; १०.३७.३.

महत्वपूर्ण अंश समझे जा सकते हैं। जैसे उषा की किरणों पर गायों का आरोप किया गया है[1]। अज एकपाद[2] एवं गर्ध[3] का भी ऋग्वेद में उल्लेख है।

किन्तु प्राणि-कथा लोककथा के रूप में ही सीमित रही थी। उसे ऋषियों ने जानबूझ कर अपने साहित्य में अपनाने का यत्न नहीं किया। किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि ऋग्वेद के समय प्राणिकथा नहीं थी। वास्तव में ऋग्वेद के महत्वपूर्ण गद्य-भाग से ही हम वंचित हो चुके हैं। यह बहुत कुछ संभव है कि इस लुप्त गद्यभाग में अनेक प्रकार की कथाओं के साथ-साथ प्राणि-कथाएँ भी रही हों। ऐसे उदाहरण ऋग्वेद में अवश्य मिलते हैं जिनसे ऋग्वेद-कालीन प्राणिकथा का पूर्ण रूप तो नहीं, किन्तु प्राणियों की सक्रिय घटना का स्वाभाविक वर्णन अवश्य प्रस्तुत हो गया है। ऐसे स्थलों की चर्चा हम यहाँ करेंगे तो वह अप्रासंगिक न होगी।

मंडूकसूक्त :—

ऋग्वेद में मंडूकसूक्त इसी दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस सूक्त के ऋषि वशिष्ठ हैं और देवता मंडूक। इसमे वशिष्ठ कहते हैं :

"व्रत का आचरण करने वाले ब्राह्मणों के समान साल भर तक पड़े हुए ये मेंढ़क पर्जन्य को प्रिय ऐसा शब्द कर रहे हैं[4]। जब स्वर्गीय जल सूखी पखाल

---

१. ऋ. सं. ४.५२. २–४.

२. वही १.१६५. २, ३.

३. वही १.३४.९; ११६. २.

४. ऋ. सं० ७. १०३ :—

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥ १ ॥
दिव्या आपो अभि यदेनमायन् दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम्।
गवामह न मायुर्वत्सिनीना मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति ॥ २ ॥
यदीमेनां उशतो अभ्यवर्षीत् तृष्यावतः प्रावृष्यागतायाम्।
अख्खलीकृत्या पितरं न पुत्रो अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति ॥ ३ ॥
अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनोरपां प्रसर्गे यदमंदिषाताम्।
मण्डूको यदभिवृष्टः कनिष्कन् पृश्निः संपृङ्क्ते हरितेन वाचम् ॥ ४ ॥
यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः।
सर्वं तदेषां समृधेव पर्व यत् सुवाचो वदथनाध्यप्सु ॥ ५ ॥
गोमायुरेको अजमायुरेकः पृश्निरेको हरित एक एषाम्।
समानं नाम बिभ्रतो विरूपाः पुरुत्रा वाचं पिपिशुर्वदन्तः ॥ ६ ॥

के समान सरोवर में पड़े इस मेंढ़क पर बरसा तब सवत्स गाय की आवाज के समान मेंढ़क को आवाज बाहर आ रही है (२); वर्षा आने पर प्यासे एवं पानी की इच्छा रखने वाले इस मेंढ़क पर जब वर्षा होती है तब, जिस प्रकार बच्चा अपने पिता के पास खुश होकर जाता है उस प्रकार वह मेंढ़क दूसरे को ओर तोतलीभाषा मे बोलते हुए जाता है। (३); पानी बरसने पर जब वे आपस में प्रसन्न हो जाते हैं और वर्षा से भीगा हुवा वह चित्रविचित्र रंग का मेंढ़क जब हरे रंग के मेंढ़क से आवाज मिलाता है, तब एक मेंढ़क दूसरे को पकड़ता है (४); हे मेंढ़कों, जिस प्रकार शिष्य गुरू के शब्दों का अनुकरण कर वेद पठन करता है, उस प्रकार ये मेंढ़क एक दूसरे के शब्दों का अनुकरण करते है, और पानी पड़ने से उनके शरीर के अवयव पूर्ण हो जाते हैं। ग्रीष्म में मिट्टी में मिले हुए ये मेंढ़क वर्षा में फिर से जीवित हो जाते है। (५); एक मेंढ़क गाय के समान तो दूसरा बकरी के समान अपनी आवाज करता है। उनमें से एक चित्रविचित्र रंग का है और दूसरा हरे रंग का। अनेक प्रकार के होने पर भी मेंढ़क (मंडूक) इस नाम को धारण करने वाले ये प्राणी अनेक स्थान पर उत्पन्न होते हैं। (६); अतिरात्र नाम के यज्ञ में जिस प्रकार ब्राह्मण मंत्र का उच्चारण करते हैं उस प्रकार जल-पूर्ण सरोवर के किनारे पर ये मेंढ़क रट लगा रहे हैं। जब वर्षा आती है तब साल के उस दिन पर अनेक मेंढ़क उत्पन्न होते है। (७); सोमरस पीकर वर्षा संबंधी स्तोत्र गाने वाले ब्राह्मणों के समान मेंढ़क रट लगा रहे हैं। प्रवर्ग्य ऋत्विज के समान पसीने से तर ये मेंढ़क वर्षा होते ही बाहर आते हैं। (८); ये सब बड़े मेंढ़क देवताओं की आज्ञा का पालन करते है। बारहमासी ऋतुओं के नियमों का भी आचरण करते हैं। वर्ष के अंत में वर्षा ऋतु आने पर आतप से पीडित मेंढ़क बिल से बाहर आते है। (९); गाय के समान शब्द करने वाले तथा बकरी को तरह आवाज करने वाले

ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्तः।
संवत्सरस्य तदहः परिष्ठ यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव ॥ ७ ॥

ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम्।
अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना आविर्भवन्ति गुह्या न केचित् ॥ ८ ॥

देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम् ॥ ९ ॥
गोमायुरदादजमायुरदात् पृश्निरदाद्धरितो नो वसूनि।
गवां मण्डूका ददतः शतानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥ १० ॥

चित्रविचित्र या हरे रंग के सभी मेंढ़कों ने संपत्ति दी। वर्षा ऋतु के अनन्तर सैकड़ों गाएं और दीर्घायु हमें दी। (१०)।

श्री ओल्डेनबर्ग का कथन है कि, प्राचीन समय में प्रचलित जादू की शक्ति (Magical power) इस सूक्त में व्यक्त हुई है[१]। मेक्सम्युलर ने इसे ब्राह्मणों का व्याजोक्ति रूप उपहास (Satire) निरूपित किया है। उनके अनुसार, ब्राह्मणों एवं मेंढ़कों में साम्य दिखाकर उस समय के ब्राह्मणों पर यहां व्यंग्य कसा गया है[२]। बर्गेन द्वारा इस सूक्त की व्याख्या वायुमान (Meteorological phenomena) के अनुसार की गयी है[३]।

हमारे मत से मंडूक सूक्त की ओर लोक-साहित्य की दृष्टि से देखना अधिक समीचीन होगा। मंडूक-सूक्त में ऋग्वेद-कालीन या पूर्व वैदिक काल में प्रचलित लोकभ्रम, लोक-कल्पना एवं लोक-विश्वास का दर्शन होता है। इस दृष्टि से देखने पर भी विद्वानों के मतामत में मूलतः कोई विरोध नहीं रहने पाता। संभव है, उन दिनों की जादू की विद्या का प्रभाव भी इस सूक्त पर पड़ा हो। किन्तु वह भी प्राचीन लोकभ्रम या विश्वास के कारण ही प्रचलित रहा होगा। ब्राह्मणों की तुलना मेंढ़कों से करने से आज उपहास अवश्य व्यक्त हो रहा है, किंतु उस समय, जबकि वशिष्ठ ने यह तुलना प्रस्तुत की थी, वास्तव में वह उपहासास्पद रही थी या नहीं यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

उस समय का यह दृढ विश्वास रहा होगा कि मेंढ़क पर्जन्य के दूत होते है। पर्जन्य के बिना सारा संसार नष्ट हो जायगा। इस लोक-विश्वास के कारण पर्जन्य के अग्रदूतों की कीमत बढ़ सकती है। यह अटल तथ्य है कि किसी भी क्षुद्र प्राणी के पीछे यदि दैवतवाद खड़ा हो जाता है तो उसकी क्षुद्रता जन साधारण के लिए नहीं रह पाती। आज भी चूहा, कुत्ता, या किसी अन्य प्राणी को किसी देवता का वाहन मान लेने पर उसकी क्षुद्रता का अस्तित्व नहीं रहता। ऋग्वेद के समय में लोगों में मेंढ़कों को केवल क्षुद्र प्राणी नहीं समझा गया। मण्डूक-सूक्त इसका साक्षी है।

प्राचीन वैदिक समाज में मंडूक को वर्षा का प्रतीक (Symbol) माना

---

१. Oldenberg, Die Religion des Veda, p. 70.

२. Max Muller, History of Ancient Sanskrit Literature, pp. 255 6; see Muir's Original Sanskrit Texts, 5.436.

३. Bergaigne, La Religion Vedique I, 292 etc : देखिए Hopkins, Religions of India, pp. 100-1.

था। इस तथ्य की पुष्टि आज देहातों में प्रचलित लोक-कथाओं से हो सकती है। वर्षा होते ही मेंढ़क प्रकट होते हैं यह कोई कल्पना की उपज नहीं है, अपितु वह एक प्राकृतिक तथ्य है। इस तथ्य की आड़ में प्राचीन काल से किसान अपने-अपने मन एवं मस्तिष्क के अनुसार उसकी कारण-परंपरा की कल्पना करता आया है। आधुनिक काल में भी कहीं देहाती इलाकों में वर्षा के साथ-साथ मेंढ़कों का आगमन होता है, इसलिए पर्जन्य के लिए उन्हें मनाते है।

डा० फ्रेझर का मत है कि मंडूक वर्षा का रक्षक (Custodian) देवता माना गया है। क्योंकि मेंढ़क जल के साथ रहता है[1]। किन्तु इस पर आपत्ति प्रस्तुत करते हुए प्रो० मित्रा ने कहा है कि, पर्जन्य देवता मंडूक नहीं है। इंद्र ही पर्जन्य की देवता है। मंडूक तो वर्षा के प्रारंभ में उत्पन्न होता है[2]।

वर्षा न होने पर कहीं-कहीं पर ग्रामवासियों के द्वारा आज भी मंडूक-विवाह कराया जाता है[3]। उनका पूजन भी होता है। कहीं-कहीं तो मेंढ़कों को कष्ट देने से वर्षा आ जाती है इस प्रकार का विश्वास लोगों में पाया जाता है। तिब्बत में तो दफनाए हुए एक मंडूकराज के कलेवर पर मंदिर खड़ा है।

वशिष्ठ ने पर्जन्य की स्तुति करते समय मेढ़कों की भी स्तुति कर दी है। ऋग्वेद-कालीन लोक-विश्वास का ही यह प्रभाव था जो साहित्य में अंकित हो गया।

वैदिक ऋषियों की रुचि कृषिकार्य में थी। क्योंकि वैदिक यज्ञ धर्म के लिए कृषिकर्म से उत्पन्न वस्तुओं की बड़ी आवश्यकता पड़ती थी। वर्षा के कारण कृषिकर्म सफल हो जाता था। अनाज की उत्पत्ति प्रचुर मात्रा में होने से बड़े-बड़े यज्ञ संपन्न करने में कठिनता नहीं होती थी। इसीलिए गाएं और अनाज उनका धन था। व्यवहार के वे ही मुख्य साधन थे। यह स्वाभाविक ही था कि, वैदिक ऋषि पर्जन्य को देवता मानकर उसका स्तवन करते और साथ-साथ उसके अग्रगामी मेंढ़कों की भी प्रशंसा करते।

---

१. Sir J. G. Frazer, Golden Bough, (Abridged ed,); London, 1923, p. 78.

२. Prof. S. C. Mitra, "The Frog in North-Indian Rain-Compelling Rites' The Journal of the Bihar & Orissa Research Society, Vol. XIV, pt. III, Sept., 1928.

३. आसाम में ये मंडूक-विवाह कराये जाते हैं। मंडूक उत्सव दक्षिण अमरीका में ओदिनोको के इंडियन्स भी मनाते हैं। लोक-विश्वास समान रूप से सर्वत्र पाये जा सकते है।

जिस समाज में मंडूक एक क्षुद्र प्राणी नहीं था उस समाज के द्वारा ब्राह्मणों की मेंढ़कों के साथ तुलना कर देने से वह अनुचित या उपहासास्पद नहीं हो सकती। इधर ब्राह्मण लोग देवताओं एवं जन साधारण के बीच खड़े थे, देवता की प्रार्थना से उसे प्रसन्न कर, अभीष्ट प्राप्त करने के लिए वे मध्यस्थ का काम करते थे और उधर पर्जन्य देवता तथा किसान के बीच मेंढक मध्यस्थ (Mediator) का कार्य करते हैं। यह साम्य मंडूक-सूक्त का जनक है।

ब्राह्मणों के मंत्रोच्चारण एवं मेंढ़कों की आवाज में साम्य देखकर जन साधारण में यह उपमा प्रचलित हुई है। वशिष्ठ ने इसी लोक-साहित्य की उपमा का उपयोग यहां कर लिया है। उन्होंने इस प्रकार का उपयोग किया इसीलिए उसे ऋग्वेद में स्थान मिला। जिस मार्मिक शैली में वह वर्णन किया है, उसमें वह सूक्त चिरंतन हो गया है।

हम मंडूक के इस सूक्त को संस्कृत नीतिकथा का पूर्वरूप मानते हैं। भले ही इसमें कोई कहानी न हो, किन्तु मेंढ़कों का वर्णन इतना सजीव है, तथा उनका मानवीकरण (Personification) भी इतना मार्मिक है कि उसे हम नीतिकथा का प्राचीन पूर्व रूप मान सकते हैं।

अवश्य ही इसे संपूर्ण नीतिकथा नहीं मान सकते। हो सकता है उस समय लोक-वाणी में मंडूक-कथा भी प्रचलित रही हो। किन्तु वह ऋग्वेद में नहीं आ सकी। मंडूकसूक्त से उसके अस्तित्व का अनुमान मात्र किया जा सकता है।

समाज के नेताओं एवं चिंतकों के जो अनुभव-वाक्य थे उनमें से कुछ नीति-वचन बनकर ऋग्वेद में प्रवेश कर गये हैं। क्योंकि ऋषियों ने उनके सत्य को जान लिया था। ऐसे नीति-वचनों की सामग्री ऋग्वेद में प्रवेश कर रही थी, उसी समय अनजाने प्राणिकथा के अंश भी प्रवेश कर गये। मंडूक-सूक्त उन्हीं अंशों में से एक है।

मंडूक-सूक्त से तत्कालीन प्राचीन समाज की प्राणि-प्रवणता, लोक-प्रथा, विश्वास आदि कई तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इस वर्णन में मंडूक आलंबन के रूप में वर्णित हैं। इसमें मंडूक प्रधान हैं। उनका अपना विश्व है। उसका चित्र चंद वाक्यों में वशिष्ठ ने प्रस्तुत कर दिया है। अन्यत्र हम देखते हैं कि मनुष्य-संबंधी किसी तथ्य को स्पष्ट करने के लिए प्राणियों की उपमा दी जाती है। किन्तु इस सूक्त में मंडूकों की गतिविधि दिखाने के लिए मनुष्य को उपमान चुना है। एक सुंदर उपमा प्रस्तुत की गई है। जिस प्रकार बच्चा अपने पिता की ओर तोतली भाषा में बोलते हुए जाता है, उस प्रकार आवाज करता हुआ एक मेंढ़क दूसरे की ओर लपकता है[1]।

---

१. ऋ. सं ७. १०३. ७.

नीतिकथा में भी प्राणी आलंबन होते हैं। उनकी अपनी कहानी है और इसीलिए उन्हें प्रधानता दी जाती है। इसी विशेषता का ऋग्वेदीय रूप मंडूक-सूक्त में अङ्कुरित हो गया है।

मेंढ़कों का सूक्ष्म वर्णन कवि ने प्रस्तुत किया है। इसमें ऋषियों का मार्मिक एवं गहरा निरीक्षण वारंवार प्रकट हुआ है। वर्षा से भीगा हुआ मेंढ़क अनेक रंग का है और अपनी आवाज हरे रंग के मेंढ़क की आवाज से मिलाता है। तव एक मेंढ़क दूसरे मेंढ़क को पकड़ने की चेष्टा करता है। इन सीधे सादे वाक्यों ने कितना सजीव चित्र उपस्थित कर दिया है। जीवन के उपेक्षित अंगों पर प्रकाश डालने का यह अपूर्व साहित्यिक कार्य था। भरे-पूरे तालाव के किनारे पर वैठे हुए मेंढ़क आवाज लगा रहे हैं। उनकी तुलना यज्ञ में वैठे हुए तथा वेद-पठन करने वाले ब्राह्मणों से की गयी है। यह उस समय के जीवन का एक चित्र ही है। एक मंत्र में ब्राह्मणों को 'सोमिनः'[1] (सोम पिये हुए) विशेषण दिया गया है। उससे तो इस उपमा में और भी मार्मिकता आ गयी है। जिस प्रकार सोमरस पीकर उच्च-नीच स्वर में ब्राह्मणों का मंत्रोच्चारण होता है उसी प्रकार मेंढ़क भी उच्च-नीच स्वर में रट लगाते हैं। ऋषि लोग इकट्ठे वैठकर ही मंत्रोच्चारण किया करते थे।

डॉ. दासगुप्ता के अनुसार प्राणि-संवंधी नीतिकथा का उद्गम मंडूकसूक्त में देखना व्यर्थ है। उनका कथन है कि, मेंढ़कों को यहां जादू विद्या के लिए ही उपस्थित किया गया है, न कि किसी नीति-तत्व का उपदेश देने के लिये[2]। वास्तव में मंडूक-सूक्त को हम भी प्राणि-संवंधी नीतिकथा (Beast-fable) नहीं मानते। फिर भी उसे नीतिकथा का वीज या पूर्वरूप अवश्य माना जा सकता है। एक तो निश्चत रूप से यह नहीं कह सकते कि, जादू के कार्य में यह सूक्त गाया गया है। नीतिकथा का पूर्वरूप मानने से हमारा अभिप्राय प्राणियों के मानवीय व्यवहार तथा राजनैतिक या लौकिक निदर्शन से है। मेंढ़कों की तुलना ब्राह्मणों के साथ करने की प्रवृत्ति कोई कम महत्वपूर्ण नहीं है। ऐसे प्राणि-दृष्टांत या प्राणि-वृत्तांत आगे चलकर कहानी का रूप धारण कर गये हैं। आगे चलकर समूची प्राणिकथा को ही दृष्टान्त के रूप में रख दिया गया

---

१ ऋ. सं ७.१०३.८

२. Dr. S. N. Dasgupta, History of Sanskrit Literature Vol. I p. 85, "but it is futile to seek the origin of the beast-fable in the Rgvedic hymn of frogs (VII. 103) which panegyrises the frogs more from a magical than didactic motive."

तव वहां नीतिकथा का संपूर्ण रूप स्पष्ट दिखाई देने लगा। अतः ऐसे प्राणि-दृष्टान्त या प्राणियों के मनुष्यवत् व्यवहार को नीतिकथा की उत्पत्ति के बीज मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

ऋग्वेद में यज्ञ के अश्व का भी स्तवन किया गया है[1]। किसी पशु पर किये हुए देवतारोप का यह प्राचीन रूप है। ऐसे ही वर्णन आगे चलकर प्राणि-संबंधी अन्योक्ति में विकसित हुए हैं। गाय के पश्चात् अश्व को ऋग्वेद में प्रधानता दी गई है। प्राणियों को संबोधित कर कुछ कहने की प्रणाली ने ही अन्योक्ति का रूप ले लिया है। प्राणि-संबंधी अन्योक्ति में कहानी भर देने से वह नीति-कथा का रूप धारण कर सकती है। ऋग्वेद में अश्व के ऊपर देवता-रोप किया गया है, इसीलिए इस देवतारोप के कारण अन्योक्ति का-सा चमत्कार यहाँ नहीं दिखाई देता। किन्तु साहित्य में व्यक्त इस प्रयत्न से यह अनुमान किया जा सकता है कि, लोक-साहित्य में प्राणियों को संबोधित कर कुछ कहने की प्रवृत्ति ऋग्वेद के समय में अवश्य रही होगी।

प्राणियों के ये दृष्टांत या उनके प्रति किये हुए कुछ निवेदन ऋग्वेद में सुरक्षित है। किन्तु यह नहीं कह सकते कि इन्हीं सब स्थलों को ज्यों के त्यों लेकर उन्हें नीति-कथा का रूप दे डाला गया। वास्तव में तो ये प्राणि-दृष्टांत ऋग्वेद जैसे साहित्य में स्थिर हो बैठे हैं। कभी ये दृष्टांत ऋषियों के मस्तिष्क की अपनी उपज थी और कभी वे लोक-साहित्य से लिए गये थे। लोक-साहित्य मे प्राणियों के विषय में जो कल्पनाएँ रही हैं, उन्हीं का विकास आगे चलकर प्राणिकथा और नीतिकथा में हुआ है। जब इस प्रकार जन-वाणी में प्राणिकथा अत्यधिक जनप्रिय तथा तीव्र हो गई तब साहित्यकारों ने अपनी अनुभूति तथा प्रतिभा से उसे साहित्य में स्थिर रूप दे दिया। इन दृष्टांतों में प्राणि-कथा एवं नीतिकथा का पूर्वरूप हमें दिखाई देता है। क्योंकि, इसी दृष्टांत में कहानी-तत्व का प्रवेश हुआ है। जिस प्रतिपाद्य के लिए उस दृष्टांत का योग किया जाता था उसका भी विकास हो गया। उसे नीति (moral) का रूप मिल गया। इस प्रकार इधर दृष्टांतों की जगह प्राणिकथा ने ले ली और उधर किसी सामान्य लौकिक तथ्य या अनुभव-वाक्य की जगह नीति (moral) ने ली। इस परिस्थिति में नीतिकथा का जन्म हुआ।

प्राणि-दृष्टांतों के साथ-साथ सीधे-सादे लौकिक वाक्य भी ऋग्वेद में पाये जाते हैं। एक सूक्त में कहा है: 'घोड़ा चाहता है कि गाड़ी हलकी हो, चाटुकार

---

१. ऋ. सं. १.१६२.

लोग हँसना पसंद करते हैं। मेंढ़क पानी की इच्छा रखते हैं। हे सोम, इंद्र के लिए तुम बहते हो[1]।'

इससे स्पष्ट है कि, ऋग्वेद-कालीन ऋषियों ने लौकिक व्यवहार-पक्ष की उपेक्षा नहीं की। इतना होते हुए भी प्राणि-कथा को अपनाने की आवश्यकता इन्हें नहीं पड़ी। ऐसे कुछ लौकिक वाक्य अनजाने ही ऋग्वेद में प्रवेश कर गये हैं।

सरमा-पणि-संवाद :

ऋग्वेद में जो कुछ संवाद प्राप्त होते हैं उनमें नीतिकथा की दृष्टि से सरमा-पणि-संवाद का बड़ा ही महत्व है। इस सूक्त में सरमा नाम की कुतिया और पणि नामक असुरों के बीच हुआ संवाद सुरक्षित है। सरमा की पूरी कहानी ऋग्वेद में नहीं मिलती। वैदिक ग्रंथों के अनुसार कहानी इस प्रकार है: पणि लोग इंद्र की गाएं चुरा ले गये थे। वे रसा नदी के पार रहा करते थे। वहाँ उन्होंने गायों को पर्वतों में छिपा रक्खा था। इंद्र ने गायों की खोज करने के लिए सरमा नाम की देवता की कुतिया को पणियों की ओर भेज दिया। वहाँ जब सरमा पहुँची तब पणियों ने उसके आने का कारण पूछा। सरमा ने अपना परिचय दिया, "मैं इंद्र की दूती हूँ। गाएँ लौटा दो। इंद्र से झगड़ा मोल न लो। इंद्र और उसके साथी अपनी गायें ले जावेंगे। तब तुम कुछ कर न पावोगे।" इस पर पणियों ने सरमा को लालच देकर उसके साथ भाई-बहन का नाता जोड़ने की इच्छा प्रकट की। किन्तु सरमा उनके पक्ष की नहीं हुई। उसने इन्कार कर दिया। उसने लौटकर इंद्र को सब हाल सुनाया। तब इंद्र ने वहाँ जाकर पणियों को हराया और अपनी गायें प्राप्त कीं।

इस प्राचीन कथा का आधार ऋग्वेद का यह संवाद सूक्त है[2]।

---

१. ऋ. सं. ९.११२.४:
"अश्वो वोळ्हा सुखं रथं हसनामुपमन्त्रिणः।
शेपो रोमण्वन्तौ भेदौ वारिन्मण्डूक इच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४ ॥"

२. ऋ. सं. १०.१०८:

किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानड् दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः।
कास्मेहितिः का परितक्म्यासीत् कथं रसायाः अतरः पयांसि ॥ १ ॥
इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि मह इच्छन्ती पणयो निधीन् वः।
अतिष्कदो भियसा तन्न आवत् तथा रसाया अतरं पयांसि ॥ २ ॥
कीदृङ्ङिन्द्रः सरमे का दृशीका यस्येदं दूतीरसरः पराकात्।
आ च गच्छान्मित्रमेना दधामाथा गवां गोपतिर्नो भवाति ॥ ३ ॥

(१) पणि :—किस इच्छा से सरमा इधर आई ? कितना लम्बा यह रास्ता है ? सरमे, तुम्हारा हमारे पास क्या काम है ? तुम रात्रि को कहां थी और रसा नदी को तैर कर इस ओर कैसे आ सकी ?

(२) सरमा :—हे पणियों, मैं इंद्र की दूती, इंद्र द्वारा भेजी गई हूं। तुम्हारे बड़े-बड़े खजानों की इच्छा रखने वाली मैं सुरक्षित रूप से घूम रही हूं। इसीलिए पानी को लांघकर (यहां तक) आने में मुझे डर नहीं लगता। अतः मैं रसा नदी को तैर कर आ गई।

(३) पाणि :—इतनी दूर से तुम जिसकी दूती बनकर आई हो वह इंद्र कैसा है और उसकी दृष्टि कैसी है ? वह हमारे पास आवे और हमसे मित्रता करे। वह हमारे गोधन का मालिक बने।

(४) सरमा :—जिसकी दूती बनकर मैं यहां आई हूं वह सबको मार सकता है, किंतु उसे कोई मार नहीं सकता। (रसा का) यह गहरा प्रवाह भी उसे निगल नहीं सकता। इंद्र के द्वारा मारे जाने पर तुम्हारी मृत्यु होगी।

(५) पणि :—हे सुभगे, स्वर्ग के इर्द गिर्द घूमने वाली तुम जिन गायों की इच्छा करती हो, उन्हें युद्ध किये विना कौन भला छोड़ेगा ? हमारे शस्त्र भी तीखे हैं।

नाहं तं वेद दभ्यं दभत् स यस्येदं दूतीरसरं पराकात्।
न तं गूहन्ति स्रवतो गभीरा हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे ॥ ४ ॥
इमा गावः सरमे या ऐच्छः परि दिवो अन्तान् सुभगे पतन्ती।
कस्त एना अव सृजादयुध्व्युतास्माकमायुधा सन्ति तिग्मा ॥ ५ ॥
असेन्या वः पणयो वचांस्यनिषव्यास्तन्वः सन्तु पापीः।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था बृहस्पतिर्व उभया न मृळात् ॥ ६ ॥
अयं निधिः सरमे अद्रिबुध्नो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्न्यृष्टः।
रक्षन्ति तं पणयो ये सुगोपा रेकु पदमलकमा जगन्थ ॥ ७ ॥
एह गमन्नृषयः सोमशिता अयास्यो अंगिरसो नवग्वाः।
त एतमूर्वं वि भजन्त गोनामथैतद्वचः पणयो वमन्नित् ॥ ८ ॥
एवा च त्वं सरम आजगन्थ प्रबाधिता सहसा दैव्येन।
स्वसारं त्वा कृणवै मा पुनर्गा अप ते गवां सुभगे भजाम ॥ ९ ॥
नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरंगिरसश्च घोराः।
गोकामा मे अच्छदयन् यदायमपात इत पणयो वरीयः ॥ १० ॥
दूरमित पणयो वरीय उद्गावो यन्तु मिनतीर्ऋतेन।
बृहस्पतिर्या अविन्दन्निगूळ्हाः सोमो ग्रावाण ऋषयश्च विप्राः ॥ ११ ॥

(६) सरमा :—तुम्हारी यह भाषा सेना के लिए प्रेरक न हो। तुम्हारे शरीर बाण छोड़ने में असमर्थ हों। क्योंकि वे पापी हैं। तुम्हारा मार्ग चलकर जाने के लिए अयोग्य सिद्ध हो। बृहस्पति तुम्हें सुख न दें।

(७) पणि :—सरमे, गाय, बैल, घोड़े और धन से भरा हुआ यह खजाना पत्थर के बने हुए दुर्ग में है। अच्छे संरक्षक पणी उसकी रक्षा कर रहे हैं। शंका लेकर तुम यहां व्यर्थ आई हो।

(८) सरमा :—पणियों, सोम पीकर नवग्व अंगिरस अयास्य गायों को बांट लेंगे। तभी तुम अपनी जिद छोड़ दोगे।

(९) पणि :—सरमे, तुम्हें देवताओं ने कष्ट दिया इसीलिए यदि तुम इधर आई हो तो हम तुम्हें बहन मान लेते हैं। तुम लौटकर न जाओ। सुभगे, तुम्हारी गायों का बटवारा हमलोग आपस में कर लेंगे।

(१०) सरमा :—पणियों, मैं न तो बहन का नाता जानती हूँ और न भाई का ही। यह नाता तो इंद्र एवं भयंकर अंगिरस जानते हैं। गायों को चाहने वाले मेरे इंद्रादि देवता तुम्हारे (शिविर के) ऊपर हमला कर देंगे। (इसलिए) पणियों दूर भाग जाओ।

(११) बृहस्पति, सोम, मेधावी ऋषि एवं सोम कूटने के पत्थरों को जिन गुप्त गायों का पता लगा, उन्हें अब प्रकृति-नियम के अनुसार मुक्ति मिले। पणियों, तुम कहीं दूर चले जाओ।"

क्या इसे हम नीति-कथा कह सकेंगे ? प्रथम अध्याय में हमने नीतिकथा की व्याख्या के सम्बन्ध में जो चर्चा की है उसके अनुसार हम इसे पूर्णतया नीति-कथा (fable) नहीं कह सकते। कोई नीति-तत्व प्राणियों की पूरी कहानी कह देने से यहाँ व्यक्त नहीं हुआ है। आज हम इसे नीति-कथा नहीं कह सकेंगे, किन्तु ऋग्वेद के समय इस प्रकार की कहानी के अन्यान्य रूप नहीं बन पाये थे। पूरी कहानी ही ऋग्वेद में कहाँ मिलती है ? ऋग्वेद में प्राप्त कुछ सम्वादों से ही प्राचीन कहानी की कल्पना की जा सकती है। आख्यान-सूक्तों में प्राप्त संवाद प्राचीनतम वैदिक कहानी के ही अंश हैं। फिर भी इस संवाद मात्र को पूरी कहानी नहीं कह सकते।

एक तथ्य अवश्य है। एक कुतिया मनुष्य के समान प्रौढ़ता से इंद्र की दूती बन कार्य करे इसे महत्व है। इस प्रकार की घटना ऋग्वेद में इस सम्वाद में वर्णित है। हम देख चुके हैं कि, नीतिकथा में पशु-पक्षी मनुष्यवत् व्यवहार करते हैं। उनकी उस गतिविधि से मनुष्य की क्रिया (action) व्यक्त होती रहती है। वही तत्व (element) इस सरमा-पणि-संवाद में पाया जाता है।

किन्तु इस संवाद में सरमा को देवशुनी (Divinebitch) मानने पर ही नीतिकथा का प्राणि संबंधी पूर्व रूप देखा जा सकता है। तो क्या वास्तव में सरमा देवशुनी थी ? ऋग्वेद में कहीं पर भी सरमा को कुतिया नहीं कहा गया। इस संवाद के अतिरिक्त ऋग्वेद में अन्य छः मंत्रों में सरमा का उल्लेख आ चुका है[१]। किन्तु सरमा को इंद्रदूती ही कहा है[२], देवशुनी नहीं।

इन मंत्रों के भिन्न-भिन्न ऋषि और देवता है। इनसे भी सरमा की कहानी स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाती है। इन मंत्रों में सरमा को कहीं पर भी देवशुनी नहीं कहा गया है[३]।

शौनक ने बृहद्देवता में उसे "इंद्र की दूती"[४] कहा है, वहाँ कुतिया के रूप में उसका उल्लेख नहीं है, प्रत्युत उसे ब्रह्मवादिनों में से एक माना है[५]। किन्तु यास्क ने उसे स्पष्ट शब्दों में देवशुनी कहा है[६]।

शौनक को छोड़कर अन्य भाष्यकारों ने यास्क का ही अनुकरण किया है और उसे देवताओं की कुतिया माना है। सर्वानुक्रमणि में भी उसे देवशुनी कहा है[७]। सायण ने उसे देवशुनी कहा है और उसकी कहानी प्रस्तुत की है[८]।

---

१. सरमा :—ऋ. सं. (१) १.६२.३, (२) १.७२.८, (३) ३.३१.६, (४) ४.१६.८, (५) ५.४५ ७, (६) ५.४५.८.

२. ऋ. सं. १०.१०८.२

३. इस तथ्य की ओर कई विद्वानों ने ध्यान आकर्षित किया है : Max Miiller History of Ancient Sanskrit Literature, 2 p. 467; Keith, RPV. p. 192; Macdonell, Vedic Mythology, p. 151; E. D. Perry, JAOS, 11. p. 141; E. J. Thomas, VH. p. 51.

४. बृ. दे. ८.२७, दूत्यैन्द्री, २८ इन्द्रस्य दूतीम्।

५. वही, २.८२ ८४; जै. ब्रा. २.४ ३८-४४०

६. निरुक्त, २.२५ : "देवशुनीमिन्द्रेण प्रहिताम्'।

७. कात्यायन, सर्वानुक्रमणि :—"सरमां देवशुनीमिन्द्रेण प्रहिताम्"।

८. ऋ. सं. १.६२.३ पर सायणाचार्य : "अत्रेदमाख्यानम् सरमा नाम देवशुनी पणिभिर्गोष्वपहृतासु तद्गवेषणाय तां सरमामिन्द्रः प्राहैषीत्। यथा लोके व्याधो वनान्तर्गतमृगान्वेषणाय श्वानं विसृजति तद्वत्। सा च सरमा एवमवोचत्। हे इन्द्र, अस्मदीयाय शिशवे तद्गोत्रसंबंधि क्षीराद्यन्नं यदि प्रयच्छसि तर्हि गमिष्यामीति। स तथेत्यब्रवीत्। यथा च शाटचायनकम्—'अन्नादिनीं ते सरमे प्रजां करोमि या नो गा अन्वविन्दः' इति। ततो गत्वा गवां स्थानमज्ञासीत्। ज्ञात्वा चास्मै न्यवेदयत्। तथा निर्वेदितासु गोषु तमसुरं हत्वा ता गाः स इन्द्रोऽलभतेति। अयं अर्थोऽत्र प्रतिपाद्यते" इति।

सायण ने भाष्य में कहा है कि जिस प्रकार शिकारी लक्ष्य की खोज के लिए अपने कुत्ते को आगे भेज देता है उसी प्रकार गायों को खोजने के लिए इंद्र ने सरमा नामक कुतिया को आगे भेज दिया। सरमा को तीव्र गति के कारण उसे सरमा कहा है। यास्क ने व्युत्पत्ति प्रस्तुत की है, 'सरमा सरणात् तस्या एषा भवति[१]।'

सायण ने एक और जगह पर सरमा का एक वैकल्पिक अर्थ भी दिया है। उन्होंने उसे देवशुनी अथवा वाक् (वाणी) कहा है[२]। अथर्ववेद में सरमा का दो बार उल्लेख आया है। उनमें से एक उल्लेख ऋग्वेद के मंत्र को ही उद्धृत कर देने से हो गया है[3]। दूसरा उल्लेख बैल के वर्णन में हुआ है। यहां कहा गया है कि सरमा कूर्म श्ववर्ति कृमी आदि के लिए बैल की कुष्ठिका (dew claws), खुर और अपचित (bowels) अन्नभाग रहे हैं[४]। कूर्म आदि के साथ सरमा का उल्लेख करने से लगता है कि अथर्ववेद संहिता में सरमा को कुत्तों की देवता मान लिया गया था। वाजसनेयी संहिता में सरमा को 'वाक्' कहा है[५]। मैत्रायिणी संहिता में, 'वाग् वै सरमा' कहा है। अर्थात् सरमा का अर्थ वाणी लिया गया है[६]। इसी अर्थ को देखकर सायण ने 'वाणी' का वैकल्पिक अर्थ प्रस्तुत किया है। सरमा का तीसरा अर्थ 'वेदी' लिया गया है[७]। यह अर्थ कर्म-कांड का महत्व बढ़ने पर लिया जाने लगा होगा।

---

१. निरुक्त ११ २४

२. ऋ. सं. ५ ४५.७ पर भाष्य, "ऋतं सत्यं यज्ञं वा यती प्राप्नुवती सरमा सरणशीला स्तुतिरूपा वागंगिरसां गवार्थमिन्द्रेण प्रहिता देवशुनी वा गा अविन्दत् पणिभिरपहृताः।"

३. ऋ. सं. ४. १६. ८ और अ. वे. २०. ७७. ८.

४. अ. वे. ९. ४. १६ : 'ते कुष्ठिकाः सरमायै कूर्मेभ्यो अदधुः शफान्।
ऊवध्यमस्य कीटेभ्यः श्ववर्तेभ्यो अधारयन्।

५. "विदद्यदी सरमा" इ०। भाष्यकार उवटः—"सरमा वाक् त्रयी लक्षणा। सा हि अभिषवे समानं रमते" इ.। अर्थात् वह सोम-यज्ञ में समान रूप से सुख देती है। किन्तु महीधर की व्याख्या है :—"सह रमन्ते देवा विप्रा वा यस्यां सा सरमा वाक्।"—शुक्ल यजुर्वेद संहिता, ३३.५९ (उवट—महिधर-भाष्य-समेता नि. सा. प्रे.) पृ. ५४९.

६. मै. सं. ४.६.४.

७. तै. आ. प्रपाठक १, अनुवाक १०, (राजेन्द्रलाल मित्र द्वारा सायण-भाष्य के साथ संपादित कलकत्ता १८७१) पृ. ७३–७४ : "सरमा इति स्त्री

यास्क ने इस अर्थ का निर्देश नहीं किया। महाभारत में 'देवशुन्या सरमया' कहा गया है[१]। वराहपुराण में बृहद्देवता के अनुसार कहानी प्रस्तुत की गई है। किन्तु सरमा को कुत्ती कहा है[२]। द्या द्विवेद (१५ वीं सदी) उसे देवशुनी[3] मानते हैं। सायण का प्रभाव उन पर स्पष्ट दिखाई देता है। सरमा को रोहिणी नक्षत्र भी मान लेने की चर्चा की गयी है[४]। उसे आंधी की देवी (Storm-goddess) भी मान लिया गया है। सरमा को प्रतीक-कथा मान लेने पर यह कहा जा सकता है कि पणियों के अधीन गायों को छुड़ाने के लिए इंद्र ने सरमा को भेजा, अर्थात् मेघों में रुके हुए पानी को बरसाने के लिए द्युलोक की देवी ने अपनी दूती आंधी (Storm) को भेजा। अंत में देवी ने स्वयं जाकर विद्युत एवं वज्र से मेघों को चीर दिया[५]। मेक्सम्युलर के अनुसार सरमा उषा है और गायें उसकी किरणें। ये गायें (किरणें) पणियों ने (रात्रि ने) चुराई थीं[६]। इसकी पुष्टि के लिए पश्चिम के विद्वानों ने ट्यूटानिक शब्द *Storm और ग्रीक शब्द Horm का 'सरमा' इस शब्द से रूपात्मक साम्य* भी दिखा दिया है। अथर्ववेद में चार आंखों वाली कुतिया का उल्लेख प्राप्त है[७]। इस पर से ब्लूमफील्ड ने सरमा का संकेत व्यक्त किया है[८]।

पुमम्" इति। भाष्य : "सरमा वेदिः, सरः सरणं अनुष्ठानप्रवृत्तिः सा च मीयते परिच्छिद्यते अत्रेति सरमा सा च तयोर्दुहिता। 'इति' एवं स्त्री पुमम एका स्त्री द्वौ पुमांसौ इति अपत्यत्रयं संपन्नम्।"

१. म. भा., आदिपर्व ३. १–९.

२. व. पु अध्याय १५, vv 17-19 Bibliotheca Indica, 1993.

३. नीति मंजरी, Ed. S. J. Joshi, Benares, 1933, pp. 40, 41, 143, 146, 336, 338.

४. Narayan Ayyangar, Essays on Indo–Aryan Mythology, 1898, pt. I p. 180.

५. Aufrecht, ZDMG, 1859, p. 497;

६. Max Muller, Lectures on the Science of Language, 2nd series, 1864 pp. 468-470; John-Dowson, A Ciassical Dictionary of Mythology, London. Ed. VIII. 1953, On Saramā p. 282; A. B. Keith, Religion and Philosophy of the Veda, p. 128.

७. अथर्ववेद ४.२०.७ "कश्यपस्य चक्षुरसि शून्याश्च चतुरक्ष्याः।" आदि

८. Bloomfield, Sacred Books of the East, Oxford, XLII

सायण ने अथर्ववेद की इस कुतिया को 'सरमा' कहा है[१]। हिलब्रेंड (Hillebrandt) ने सरमा को उषा मानकर 'सारमेयौ' को सूर्य एवं चन्द्र निरूपित किया है[२]।

ऋग्वेद के दसवे मंडल में ही दो कुत्तों का उल्लेख है। उसे इस संदर्भ में देख लेना आवश्यक है। वहाँ कहा है[3] :

"हे अग्ने, अच्छे मार्ग से, चितकवरे और चार आँखों वाले[४] सरमा के जो दो पुत्र हैं उन्हें टालकर तुम जाओ" आदि (१०), 'हे यमराज गृहरक्षक, चार आँखोंवाले मार्गरक्षक और लोकविख्यात ऐसे तुम्हारे दो कुत्ते इस प्रेत की रचा के लिए दो' आदि (११)[५]; 'जिनकी नाक लम्बी है, ऐसे ये प्राणिजीवी, बलवान और यम के दूत दो कुत्ते लोगों पर दृष्टि रखकर घूमते हैं। ये कुत्ते सूर्य का दर्शन करने के लिए हमे अच्छे प्राण प्रदान करें।' (१२)

यह ध्यान देने योग्य बात है कि, दसवे मंत्र में 'सारमेयौ' कह देने पर 'श्वानौ' यह और एक पद रखा गया है। इस सारमेयौ विशेषण से 'सरमा के लड़के' इतना अर्थ मंत्रदृष्टा ऋषि को अभिप्रेत प्रतीत होता है। ऋग्वेद के समय 'सारमेय' का अर्थ कुत्ता नहीं रहा होगा। इसीलिए 'श्वानौ' पद अलग से दिया गया है। इस दृष्टि से देखने पर 'सरमा' को कुतिया ही मानना होगा।

---

p. 404; Journal of the American Oriental Society, New Haven U. S. A., XV p. 163.

१. सायण, 'चत्वारि अक्षीणि यस्याः सा चतुरक्षी तादृश्याः शुन्याः देवानां संबंधिन्याः सरमाख्यायाः। चक्षुरासीत् इत्यनुषंगः।'

२. Vide: Keith, Religion & Philosophy of the Veda, p. 128

३. ऋ. सं. १०.१४.१०-१२

४. यहाँ सरमा के पुत्रों की चार आँखें बताई गई हैं। अथर्ववेद में भी कुतिया को चार आँखोंवाली कहा गया है। (अ. वे, ४. २०. ७: शुन्याश्च चतुरक्ष्याः' इ) यहाँ ग्रिफिथ के अनुसार कह सकते है कि इन चार आँखों में दो आँखें है और उन आँखों पर रहने वाले दो काले दाग हैं, मिलकर चार आँखों-वाली शुनी का उल्लेख है। यह मत उचित जान पड़ता है। Griffith's Hymns of the Atharva Veda, Vol. I (Transl.) 1916, IV, XX, 7. p. 160 Foot-note, 7.

५. क्या यह ११ वां मंत्र उस समय की अनुप्रास रचना को तो प्रयास नहीं है ?

कुछ विद्वानों ने माना है कि, 'सारमेय' शब्द की व्युत्पत्ति बाद मे की गई । उसे देखकर सरमा को कुतिया मान लिया गया। किन्तु सारमेयौ का कुत्ते के अर्थ में प्रयोग यदि ऋग्वेद मे होता तो 'श्वानौ' शब्द से द्विरुक्ति करने की कुछ आवश्यकता नहीं थी । क्योंकि मंत्र मे 'सारमेयौ श्वानौ' कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि, ऋग्वेद मे 'सारमेयौ' का अर्थ 'श्वान' नहीं है, अपितु 'सरमा के दो पुत्र' है। बाद मे सम्भवतः सारमेय का श्वान जाति के अर्थ मे विकास हो गया है।

श्वान का अर्थ सायण ने 'वायु' भी दिया है। श्वान की व्युत्पत्ति 'श्वास लेने वाले' के अर्थ मे की है। यास्क ने 'श्व' धातु से श्वान शब्द की व्युत्पत्ति बताई है[1] । अन्यत्र 'श्वि' धातु से भी व्युत्पत्ति की गई है[2] । मध्वाचार्य ने अपने छान्दोग्योपनिषद् के भाष्य मे श्वान का अर्थ कुत्ता नहीं लिया, अपितु 'वायु' लिया है। इस भाष्य के अनुवादक श्रीशचन्द्र वसु ने भी उन्ही का अनुसरण किया है[3] । यदि हम इस अर्थ को लेंगे तो सरमा को आँधी के रूप मे ले सकेंगे। क्योंकि आँधी के पुत्र वायु ही हो सकते हैं। दो प्रकार के ये वायु कौन से थे इसकी कल्पना नहीं हो सकती। सरमा को कुतिया न मानकर यदि आंधी मान लिया जाता है तो ऋग्वेद मे वर्णित यम के दूत 'सारमेयौ' के साथ 'श्वानौ' को वायु कहना पड़ेगा। तब सरमा के सूक्त को प्राणि-कथा की उत्पत्ति की दृष्टि से हम महत्व नही दे सकेंगे।

किन्तु जब कि हमे सरमा के अर्थ के विषय मे कोई निश्चित कल्पना नही हो पायी है, तब हम ऋग्वेद के भाष्यकारों को ही प्रमाण मानकर चलेंगे। अधिकतर भाष्यकारों ने सरमा को कुतिया ही माना है।

ब्रह्माण्ड पुराण मे सरमा कश्यप और क्रोधा की कन्या है और उसके श्याम और शबल दो पुत्र यम के अनुचर हैं। यास्क के समय सारमेयौ शब्द की व्युत्पत्ति की जाने लगी और शबल कुत्तो के साथ सरमा को भी कुतिया मानने लगे होंगे। ऋग्वेद मे वर्णित सरमा तथा यम के अनुचर दो शबल कुत्ते इनका समीकरण हो गया हो यह भी संभव है। ऋग्वेद मे दोनो श्वान शबल है किन्तु आगे चलकर एक श्याम और दूसरा शबल हो गया है।

पश्चिम के विद्वानों ने जो सरमा को उषा (dawn) या आंधी (storm)

---

१. निरुक्त ३.१८.

२ उणादि I 158, श्वि to prosper, to grow.

३. S. C. Vasu, Chāndogya Upanisad, Vol. III. Allahabad 1910, Introduction, p. IV and translation p. 88.

का प्रतीक माना है, उसके अनुसार सरमा और पणियों की कहानी एक प्रतीक-कथा ही रह जाती है। फिर भी भारतीय नीतिकथा (fable) का पूर्वरूप हमें उसमे दिखाई दे सकता है। एक कुतिया की गतिविधि से प्राकृतिक अर्थ लिया जाना नीतिकथा का पूर्वरूप प्रकट कर सकता है।

वास्तव में कुतिया से प्राकृतिक तथ्य निकाल कर उसे प्रतीक-कथा मानना समीचीन न होगा। पहले तो कुतिया का मानवीकरण और उसी पर प्राकृतिक तथ्य का आरोप करना एक दूर की सूझ मात्र है। हमें तो लगता है कि, सरमा-पणि-संवाद ऐसे उलझे हुए अर्थ को व्यक्त नहीं करता। वास्तव में 'रसा' नदी को पार कर जाने वाली सरमा के प्रति पणियों ने आश्चर्य व्यक्त किया है। उन्होने उसे प्रलोभन दिखाकर अपने पक्ष में लाने की चेष्टा भी की है। इन विशेषताओं को देखकर इस संवाद से किसी तथ्यपूर्ण ऐतिहासिक घटना का ही बोध होता है, न कि किसी प्रतीकात्मक अर्थ का।

श्येन सोमरस इंद्र के लिए द्युलोक से ले आया इस घटना का ऋग्वेद में उल्लेख है[१]। वहां वह प्रतीक उचित जान पड़ता है। सरमा की कथा में वैसा ही प्रतीक पश्चिम के विद्वानों ने ढूंढ़ निकाला है। संभव है, भारतीय परंपरा में भी इस साम्य-संबंध की चर्चा हो चुकी हो। क्योंकि जैमिनीय ब्राह्मण की सरमा-कथा मे कहा गया है कि, पहले गरुड को पणियों की ओर भेजा था। किन्तु पणियों ने उसे रिश्वत दी और वह फिसल गया। बाद मे इंद्र ने सरमा को भेजा। उसकी एक शर्त थी : उसकी संतान को गायों का दूध मिला करेगा तो वह जा सकती है। इसे मंजूर करने पर सरमा ने सफलतापूर्वक कार्य किया[२]।

सुपर्ण (गरुड) को किसी कार्य के लिए भेजने की यह कल्पना ऐतरेय ब्राह्मण मे भी आ चुकी है। उसमें सोम लाने के लिए जगती आदि छंदों को भेजा गया। वे छंद पक्षी बनकर उड़े। प्रथम दोनों छंद असफल रहे। गायत्री नामक तीसरे छंद को कहा गया तब उसने देवताओं से कहा कि वे उसकी स्तुति करें। उन्होने गायत्री की स्तुति की। तब पक्षी बनकर वह उड़ कर गई। वहां सोमरक्षक गंधर्वों के साथ उसका युद्ध हुआ। फिर वह पक्षी सफल होकर लौट आया[3]।

किन्तु यह समान रूप भाष्यकाल में प्रस्तुत किया गया है। वास्तव में ऋग्वेद का सरमा-सूक्त एवं श्येनद्वारा सोम-हरण का सूक्त भी अपने आप में स्वतंत्र है।

---

१. ऋ. सं. ४. २६. ४-७.

२. जै. ब्रा. २.४३८-१; ३३९-१, ४४०-१.

३. ऐ. ब्रा. ३. १३. १-२.

उषा या आंधी का प्रतीकात्मक अर्थ सरमा में नहीं दिखाई देता। हां, श्येन अवश्य अग्नि अर्थात् विद्युत् का प्रतीक माना जा सकता है।

ऋग्वेद में सरमा को कुतिया नहीं कहा है, किन्तु यम के दो अनुचर कुत्तों को 'सारमेयौ' कहा गया है, इसकी पुष्टि जनसमाज में प्रचलित श्वान-संबंधी धारणाओं से हो जाती है। बंबई के पारसी समाज में मृत्यु के समय कुत्ते को पास रखते है, ताकि मृत उसपर बैठकर जा सके। यह प्राचीन लोक-धारणा रही है कि कुत्ता यम का दूत है। आज भी कुत्तों का रात को रोना सुनकर बहुतेरे लोग उसे अशुभ मानते हैं। अतः 'श्वानौ' का अभिप्राय कुत्तों से ही है।

बृहद्देवता में उसे 'देवशुनी' नहीं कहा गया। इस तथ्य की ओर ध्यान देने पर भी वहीं पर प्रस्तुत उसके चरित्रचित्रण से उसे 'देवशुनी' कहा जा सकता है। बृहद्देवता में प्रस्तुत सरमा-कथा[१] में कहा है कि पणियों ने उसे बहन का नाता जोड़ने का प्रस्ताव किया और धन की भी लालच दी। किन्तु उसने उसे ठुकरा दिया। फिर भी उसे दूध की इच्छा हुई। स्वभाव के 'लौल्य' के कारण पणि यों का दिया हुआ दूध वह पी गई[२]। इंद्र ने उसके लौटने पर गायों के बारे में पूछा तब वह कुछ न कह सकी। तब इंद्र ने उसे लात मारी, जिसके कारण सरमा ने असुरों का पिया हुआ दूध उगल दिया।

यहां सरमा ने बहन का नाता और धन ठुकारा दिया है। क्योंकि एक कुतिया के लिये ये चीजें क्या महत्व रखती है; किन्तु प्राणि-'स्वभाव' के अनुसार चंचलता और जिह्वा का 'लौल्य' तो अवश्य ही उस कुतिया में है। यह स्वाभाविक था कि, तत्काल दूध मिल जाने पर इंद्र का कार्य वह न करे; और इंद्र ने भी उसे लात से मारा। यदि सरमा अन्य ऋषि या देवता होती तो इंद्र उसपर अपने हाथ से वार करता। किन्तु एक कुतिया पर महाबली इंद्र को हाथ चलाने की आवश्यकता न थी। वह कुतिया थी, इसीलिए उसे पैर से मारने में सुविधा अधिक थी। हमे लगता है कि, शौनक को भी वह देवशुनी के रूप में ही अभिप्रेत रही है भले ही उसका वैसा उल्लेख न किया गया हो।

सरमा कुत्ती थी इसीलिए इंद्र ने अभियान के पूर्व पणियों को ओर उसे भेजा था। ऋग्वेद-काल मे शिकारी शिकार किया करते थे। भालू एवं भेड़िये की शिकार के उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त है[३]। लोगों में इन प्राणियों के विपय

---

१. वृ. दे. VIII, 24–36 (Măcdonell's Edition).

२. वही ३१-३२.

३. O. Schrader, Reallexikon der Indogermanische Alterlumskunde, Strassburg 1901.

ने कुतूहलपूर्ण चर्चा चलती ही होगी। इसलिए बहेलिये तथा अन्य शिकारियों के सम्पर्क से जनता में कुछ संकेत दृढ़ हो गये। जैसे, किसी शिकारी का कार्य दूत के रूप में कुत्ता करे यह अनूठी चीज थी। वह एक लोकसाहित्यिक घटना हो बैठी हो। इस अर्थ में ऋग्वेद की सरमा का तात्पर्य कुतिया से है। भले ही पूर्व-वैदिक कहानी में यह दूती मानवीय रही हो।

सायणद्वारा भी दी गई युक्ति से इस तथ्य की पुष्टि होती है। उन्होंने भाष्य में कहा है कि, 'जिस प्रकार लोगों में दूसरे अरण्य में भटक रहे पशुओं की खोज करने के लिए बहेलिया कुत्ता छोड़ता है उसी प्रकार इंद्र ने भी गायों की खोज के लिए सरमा को भेजा[1]'। इससे स्पष्ट है कि इन्द्र के द्वारा कुतिया को भेजा जाना स्वाभाविक था। प्राचीन काल में बहेलिये अपने कुत्तों को पशु की खोज में भेजा करते थे। कुत्तों का मृगया के लिए उपयोग प्राचीन समय में होता था[2]। सरमा-कथा में उसी लोक-घटना का रूप हमें मिलता है।

ऋग्वेद में उल्लेख है कि सरमा सत्यमार्ग से पणियों की ओर गई[3]। उसे यदि पणियों से अथवा इंद्र से अन्न मिला भी होगा तो भी उसकी सत्यप्रियता को आँच नहीं पहुँचती। सर्वानुक्रमणी में कात्यायन ने उसे देवशुनी कहा अवश्य है, फिर भी उसके चरित्र को हीन होने नहीं दिया[4]। विश्व साहित्य में यह एक अच्छा उदाहरण है कि, पणियों ने बहन का नाता जोड़ने का प्रस्ताव रखा फिर भी उसने उसे स्पष्ट शब्दों में ठुकरा दिया[5]। वह अपने स्वामि-कार्य से हटी नहीं। पणि उसे चोरी के माल का हिस्सा भी देने को तैयार थे, किन्तु उसने इंद्र को धोखा नहीं दिया[6]।

इस सूक्त को नीतिकथा तो नहीं, किन्तु उसका पूर्वरूप अवश्य मान लेंगे।

---

१. ऋ. सं. १.६२.३ सायणाचार्यः "पणिभिर्गोष्वपहृतासु तदन्वेषणाय तां सरमामिन्द्रः प्राहैषीत्। यथा लोके व्याधो वनान्तरगतमृगान्वेषणाय श्वानं विसृजति तद्वत्।"

२. P. S. Desmukh, The Religion in the Vedic Literature, p. 82.

३. ऋ. सं. ५.४५.४. "ऋतं यती सरमा गा अविन्दत्" इ०।

४. कात्यायन-विरचिता ऋग्वेद-सर्वानुक्रमणी : 'कि इच्छन्ती पणिभिरसुरैर्निरूळ्हा या अन्वेष्टुं सरमां देवशुनीमिन्द्रेण प्रहितामसुरैः पणयो मित्रीयन्तः प्रोचुः सा तान् युग्मांत्याभिरनिच्छन्ती प्रत्याचष्टे।'

५. ऋ. सं. १०.१०८.१० : 'नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वम्" इ.

६. ऋ. सं. वही, मंत्र ९

इसके दो कारण हैं : एक तो यह कि, सरमा-सूक्त में कुतिया को मनुष्यवत् व्यवहार करते हम देखते हैं और उससे मानवीय अर्थ प्राप्त होता है। दूसरा कारण यह है कि, इस सूक्त में अत्यन्त प्राचीन काल की राजनैतिक तथा व्यावहारिक प्रज्ञा (political and worldly wisdom) व्यक्त हो चुकी है। इसमें साम, दान, भेद आदि युक्तियों का प्रयोग हुआ है जो प्राचीन भारतीय नीतिशास्त्र के नियमों में प्रमुख रहे हैं। इन नियमों का भी प्राचीन रूप हमें इस सूक्त में मिलता है।

सरमा एक कुशल एवं मेधावी दूती का सफल कार्य कर रही है। उसने पणियों को उनकी कमजोरी से अवगत करा दिया[१]। पणियों ने तो उसे इंद्र के विषय में उपहास-गर्भ प्रश्न पूछे है। पणी भी मूर्ख नहीं थे। उन्होंने भी उसे कहा कि, वे इंद्र की मित्रता चाहते है। इस पर इन्द्र की सामर्थ्य के विषय में सरमा ने उन्हें जब कहा, तब वे शांत होकर उत्तर देते है : 'हमारे भी शस्त्र तीखे है। युद्ध के विना गायें कौन छोड़ेगा ?' पणि पहले से ही जानते थे. इन्द्र का आक्रमण होगा। अत: वे तैयार हो गये थे। सरमा को वहन बनाने की एक राजनैतिक चाल थी।

श्री हरियप्पा का कथन है कि, सरमा स्वयं कुतिया नहीं थी[२] जिस प्रकार कद्रु सर्पो की तथा विनता गरुड की माता हो गई, उसी प्रकार सरमा भी कुत्तों की मां बन गई है। यहां हम यही कहना चाहेंगे कि, भले ही सरमा मूलरूपेण मनुष्य योनि की दूती रही हो, किन्तु ऋग्वेद के समय में ही उसे देवशुनी मान लिया होगा तो कोई आश्चर्य नहीं। जहां तक साम, दान आदि नीतिशास्त्र के नियमों का प्रश्न है, वे सरमा-सूक्त ने भलीभाँति व्यक्त हो रहे है। अत: इस विशेषता के आधार पर भी इसे हम नीति-कथा का पूर्वरूप मान ही लेंगे तो असमीचीन न होगा।

आगे चल कर बृहद्देवता में सरमा का चरित्र उदात्त नहीं रहा है। उसमें वह लालची है। उसके स्वभाव में "लौल्य" भी है। किन्तु यहाँ भी साम, दान, भेद आदि युक्तियों का प्रयोग किया हुआ है।

आगे चल कर संस्कृत नीतिकथा मे इन युक्ति-प्रयुक्तियों का प्रयोग जानवरों ने काफी किया है, जो मनोरंजन का विषय हो वैठा है। इसका प्राचीन रूप हमे पंचतंत्र में मिलता है। जानवर अपने करतब दिखाने लग गये। सियार ने सिंह

---

१. ऋ. सं. १०.१०८.६ "असेन्या व: पणयो वचांसि" इ.

२. Dr. Hariyappa, Rgvedic Legends through the Ages, p. 183.

एवं बैल की मैत्री में बाधा उपस्थित कर बैल को मरवा डाला[1]। तब सियार ने साम, भेद विग्रह आदि युक्तियों का ही प्रयोग किया है। पाली साहित्य में भी इस प्रकार की युक्तिपूर्ण प्राणिकथाएँ संगृहीत हुई हैं। इनमें भी राजनैतिक पटुता व्यक्त होती है। इस विशेषता का सबसे प्राचीन रूप हमें सरमा सूक्त में मिलता है। अतः युक्ति-प्रयुक्तियों से भरी नीतिकथा का प्रारंभ सरमा सूक्त से अच्छा ज्ञात हो जाता है।

ऐतिहासिक रूप में हमने यह संभावना प्रकट की थी कि, पणी उस समय के यहूदी लोग रहे होंगे, जो भारत में व्यापार के लिए आया करते थे। पणी और फिनेशियन्स (Phonecians) में रूपात्मक साम्य तो है ही और यास्क ने भी पणियों को बनिया कहा है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि, पणियों को ऋग्वेद में असुर तथा दस्यु नहीं कहा है। बृहद्देवता एवं सर्वानुक्रमणी में उन्हें असुर कहा है[2]। किन्तु वह देवताओं के विरोधी होने के कारण ही। पणी भारत के आदिवासी अनार्य नहीं हैं। ये लोग सूद का व्यवहार तथा क्रयविक्रय करने वाले, फिनिशिया के बाशिंदे, व्यापार के निमित्त रसा के उस पार रहा करते थे। वे यदि अनार्य और असभ्य लोग होते तो सरमा को जीवित न रखते। किन्तु वे जिस चतुरता से सरमा के साथ पेश आये हैं उससे स्पष्ट होता है कि, पणी सभ्य संस्कृति के व्यापारी लोग थे। यास्क एवं सायण ने भी उन्हें व्यापारी एवं व्यवहारी कहा है[3]। संभव है, ऐसा और कार्य भी विदेशियों के द्वारा उस समय किया जाता हो। आर्यों में मुख्य वीर इंद्र ने इन विदेशियों को परास्त कर गायें प्राप्त कर लीं।

इस सूक्त से यही नीति-तत्व लिया जा सकता है कि, सचाई एवं चतुरता से काम लेने पर सफलता निश्चित रूप से मिलती है। सरमा को कुतिया मान लेने पर अथवा न मानने पर भी नीतिकथा का पूर्वरूप इसमें मिलता ही है। क्योंकि सरमा-सूक्त में प्राचीन काल की राजनैतिक पटुता का रूप हमें मिलता है। इसीलिए इसे नीतिकथा का पूर्वरूप कहा जाय तो अयुक्तिक न होगा।

वैदिक कल्पित-कथा (Fiction)

ऋग्वेद में कल्पित कथा के होने मे संदेह प्रकट किया जा सकता है। क्योंकि वेद अपौरुषेय है। यह प्राचीन धारणा रही है कि वेद में जो कुछ कहा है, वह तथ्यपूर्ण है। किन्तु ऋग्वेद मे देवतारोप के कारण कई अचेतन वस्तुएं मनुष्यवत्

---

१. पंचतंत्र, तंत्र १.

२. बृ. दे. ८.२३

३. निरुक्त, २ १७ "पणिर्वणिग् भवति"; सायण, "पणि : मा भूः व्यवहारी मा भूयाः" (भाष्य, ऋ. सं. १.३३.३)।

व्यवहार करती दिखाई देती है। जो बात प्राणियों की, वही प्राकृतिक दृश्यों की। इन प्राकृतिक दृश्यों में नदियाँ भी आ जाती हैं और नदियों तथा विश्वामित्र में हुआ संवाद ऋग्वेद में सुरक्षित है[१]।

विश्वामित्र पैजवन सुदास नामक राजा के पुरोहित हुए तब उनको पुरोहित-कर्म में प्रचुर धन प्राप्त हुआ। सारा धन लेकर विश्वामित्र विपाट-शतुद्री (रावी और सतलज) के संगम पर आये। नदियों में काफी पानी था। नदी पार करने के लिए विश्वामित्र ने तीन ऋचाओं में नदियों की स्तुति की। नदी ने कहा : "इस प्रदेश को हराभरा करते हुए देवनिर्मित समुद्र की ओर हम जा रही हैं। हमें रुकना नहीं है। तो आखिर यह ब्राह्मण नदियों को क्यों आह्वान कर रहा है ?" विश्वामित्र ने कहा : "नदियों, सोमयज्ञ करने के लिए मुझे उस पार जाना है। क्षणभर रुक जाओ। श्रद्धापूर्वक मेरी यह प्रार्थना है.' नदी ने उत्तर दिया : "वज्रबाहु इंद्र ने हमे खोदा है। नदियों को रोकने वाले वृत्र का संहार उसने किया है। सुहस्त इंद्र ने ही हमें प्रवाहित किया। उसी की आज्ञा से हम इतनी विस्तार से बह रही है। इंद्र ने बहते पानी को बहने दिया है।" नदियों ने इस संवाद को न भूलने को भी कहा। विश्वामित्र ने उन्हें बतलाया कि वे रथ आदि लेकर आये हैं। वे उस पार जा सकें इतना पानी कर दिया जाय। नदियों ने कहा : "हे प्रशंसक, तुम्हारी बात हम मान लेती है। क्योंकि गाड़ी एवं रथ में बैठकर तुम दूर से आये हो। मां अपने बच्चे को घाने के लिए, या लड़की अपने पिता के सामने जिस प्रकार झुक जाती है, उस प्रकार हम यहां झुक रही हैं।" विश्वामित्र ने कहा कि, "यदि मार्ग मिल जाय तो भरत लोग तर जावेंगे। वे उसकी स्तुति करेंगे। भरत उस पार चले गये। तुम्हारा प्रवाह चलता रहेगा। नहरों को पानी मिला करे। जल्दी बहने लगो। तुम्हारी समृद्धि हो।"

ऋग्वेद के इस संवाद से प्राचीन कल्पित-कथा व्यक्त हो रही है। आज जिसे अलेगरी (Allegory) या ध्वनिकथा कहेंगे, उसी का यह पूर्व रूप है। क्योंकि नदियाँ मानवेतर प्राकृतिक पदार्थ हैं एवं अचेतन होने पर भी वे सचेतन हो उठी हैं। अचेतन पदार्थों को प्राणवान् कल्पित कर उनकी कहानी कह देने से 'अलेगरी' या ध्वनिकथा हो सकती है। इसी का पूर्वरूप हमें इस संवाद में दिखाई देता है।

ऋग्वेद में इस सूक्त को देवतारोप के कारण ही स्थान मिल पाया है। नदियों पर देवता का आरोप बहुत प्राचीन काल से होता आया है। इसमें एक

---

१. ऋ. सं. ३.३३.१-१३.

ओर तो विश्वामित्र का ऐतिहासिक आख्यान है और दूसरी ओर नदियों का कल्पित संवाद भी। इसीलिए यह पूर्ण कल्पित कथा नहीं है। नीतिकथा अवश्य कल्पित-कथा ही होती है। नीति-कथा में कभी कभी पशुपक्षियों के साथ अचेतन प्राकृतिक वस्तुएँ भी आ जाती हैं। किन्तु उनकी स्थिति नीतिकथा में गौण रहा करती है। इसीलिए डॉ० जॉन्सन ने 'फ़ेबल' की व्याख्या में उल्लेख किया है कि, ऐसे अचेतन पदार्थ 'कभी-कभी' आते हैं[1]। ऐसे प्राकृतिक पदार्थ जिस नीतिकथा में आ जाते हैं उसी का प्राचीन रूप इस संवाद में निहित है। अर्थात् अलेगरी एवं फ़ेबल के प्राचीन रूप पूर्णतया भिन्न न थे। यह एक प्राचीन बीजतत्त्व है। यहाँ नदियाँ मनुष्यवत् संभाषण कर सकी हैं। उनका यह मानवीकरण भारतीय कल्पित-कथा का प्राचीन रूप प्रस्तुत करने में समर्थ है, जो प्राणि-संबंधी नीति-कथा के पूर्वरूप के अत्यंत निकट है।

ऋग्वेद की टीकाओं में आख्यानों की परंपरा

ऋग्वेद की आख्यान-परंपरा बाद में कई ग्रंथों में प्रकट हो चुकी है। शौनक (ख़ि. पू. ५००) ने बृहद्देवता में ऋग्वेद की दैवतकथाओं का संकलन किया है[2]। यास्क ने वैदिक व्युत्पत्तिशास्त्र को प्रस्तुत किया, तो शौनक ने दैवत-कथाओं की ओर ध्यान दिया। शौनक के बाद कात्यायन ने सर्वानुक्रमणी में कुछ दैवत-कथाओं की ओर संकेत किया है[3]। इसमें सरमा-पणि-संवाद का भी उल्लेख है। सर्वानुक्रमणी की टीका 'वेदार्थ-दीपिका' षड्गुरुशिष्य ने प्रस्तुत की है। इसमें भी आख्यानों की ओर ध्यान दिया गया है। ऋग्वेद पर भाष्य लिखते समय सायणाचार्य ने इस परंपरा को ध्यान में रखकर कुछ आख्यानों को प्रस्तुत किया है। सायण के इस प्रयत्न से ऋग्वेद के आख्यान-सूक्तों का अर्थ बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है। फिर भी इन आख्यायिकाओं में ऐतिहासिक तथ्यों की खोज करना सरल कार्य नहीं। सायण ने दैवत-कथा का रूप ही हमारे सामने रखा है। वैदिक आख्यानों के पीछे कोई प्राकृतिक या ऐतिहासिक

---

१. Dr. Johnson, Lives of English Poets, Gay, Vol. II. London p. 283. देखिए प्रथम अध्याय, पृ. ४, पद चिह्न ३.

२. Macdonell, Bṛhaddevatā, Text, pt. I, Harvard, 1904. मेकडोनेल ने बृ. दे. का रचना-काल ख़ि. पू. ५०० के बाद का ही माना है, किन्तु इधर पं. बलदेव उपाध्याय ने विक्रम पूर्व ८ वीं शताब्दी में उसे माना है। देखिए वैदिक साहित्य १९५५ पृ. ३४३.

३. देखिए Macdonell's Edition of Sarvānukramaṇi with Ṣaḍguruśiṣya's Comm. Oxford.

घटना या तथ्य रहे होंगे, इस तथ्य की ओर सायण ने ध्यान नहीं दिया। उन्होंने पणियों को वणिक् अवश्य कहा है[1], किन्तु वह यास्क का अनुसरण मात्र है। सायण के बाद द्या द्विवेद (१५ वीं शती) ने नीतिमंजरी में ऋग्वेद को दैवत-कथाओं से कुछ नीतिपाठ दिये है। इस प्रकार उन्होंने वैदिक कथाओं को अपने नीति-सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए दृष्टांत के रूप में रक्खा है।

ऋग्वेद के आख्यान-सूक्तों में प्राचीन आख्यानों की खोज करने का प्रयास पश्चिम के पंडितों ने किया। ओल्डेनबर्ग ने कुछ सूक्तों की ओर आख्यानों की दृष्टि से ध्यान दिया है। मेक्समुलर ने तो दैवत-कथाओं के पीछे एक विशाल प्राकृतिक तथ्य (Natural Phenomena) को प्रस्तुत किया है। मेकडोनेल आदि अन्य पश्चिमी विद्वान भी वैदिक आख्यानों को प्राकृतिक घटनाओं पर किया हुआ रूपक मानते है। आख्यानों से ऐतिहासिक तथा सभ्यता-विषयक तथ्य भी स्पष्ट किये जा रहे हैं।

बृहद्देवता

बृहद्देवता की सभी आख्यायिकाओं में एक दो स्थल ही ऐसे हैं, जहाँ हमें नीतिकथा का पूर्वरूप दिखाई देता है। सरमाकथा शौनक ने अवश्य कही है[2], किंतु बृहद्देवता की इस कथा को शब्दशः लेंगे तो उसे हम प्राणि-कथा का पूर्वरूप निश्चित रूप से नहीं मान सकेंगे। क्योंकि शौनक ने सरमा को स्पष्ट शब्दों से देवशुनी नहीं कहा। यहां केवल वह 'दूत्यैन्द्री' है[3]।

एक तथ्य अवश्य है। राजनैतिक तथा व्यावहारिक सूझ-बूझ या प्रज्ञा शौनक ने अपनी सरमा-कथा में प्रस्तुत की है। नीति-कथा की इस विशेषता का प्राचीन रूप यहां दिखाई देता है। ऋग्वेद के समान बृहद्देवता में भी साम, दान आदि युक्तियों का प्रयोग हुआ है। यहां सरमा ने पणियों का दिया हुआ दूध पी लिया[4] और इंद्र का विश्वासघात किया। उसके स्वभाव में 'लौल्य' है। इसे प्राणि-कथा की अपेक्षा राजनैतिक पटु-कथा का तो पूर्व रूप अवश्य मान लिया जा सकता है।

प्राणि-कथा का पूर्वरूप भी बृहद्देवता मे अन्यत्र मिलता है। सोभरि और

---

१. ऋ. सं. १०.१०८.१० "किंच पणयः व्ययासहिष्णवो वणिजः। पणिर्वणिग्भवति। (निरुक्त २.१७) इति यास्कः पणय इव लुब्धकः—इ. (सायण कृतं भाष्यं)

२. बृ. दे. ८.२४-३६

३. वही ८.२७

४. वही ८.३१

चित्र की कथा इसका उदाहरण[1] है। कण्व के पुत्र 'सोभरि' ने अपने कुटुंबियों के साथ कुरुक्षेत्र मे यज्ञ प्रारंभ किया। किन्तु चूहों ने उसके यज्ञ का अनाज एवं हविष् खा डाला। तब सोभरि ने इंद्र, चित्र और सरस्वती की स्तुति की। चूहों का राजा चित्र इस स्तुति से बहुत प्रसन्न हुआ। क्योंकि इंद्र और सरस्वती के साथ उसकी भी स्तुति कर देने से उसे देवत्व का सम्मान मिल गया। चित्र ने ऋषि को दस हजार गायें दान में दीं। स्तुति करते हुए ऋषि ने उनको स्वीकार किया। अंतःकरण से प्रसन्न होकर चित्र ने ऋषि को कहा : 'ऋषि की स्तुति के लिए मैं योग्य नहीं हूँ। क्योंकि मैं जानवर की योनि में उत्पन्न हूँ। देवताओं की तुम स्तुति करोगे ?' इस पर भी ऋषि ने उसकी अंतिम मंत्र[2] से स्तुति की। 'ओत्यम्०' इस सूक्त से "अश्विनी" की भी स्तुति की[3]।

चूहों के राजा चित्र की यह कहानी बड़ी मार्मिक है। चूहों ने सोभरि का अन्न खा डाला है। इस पर इंद्र के साथ चूहों की भी स्तुति सोभरि ने की, यह एक रोचक घटना है। चित्र ने ऋषि को स्पष्ट शब्दों में कहा है कि, वह पशुयोनि मे उत्पन्न है। हम देखते हैं कि, एक चूहा मनुष्य के समान प्रशंसा से प्रसन्न होकर कुछ कहता है। जानवर के द्वारा मानवीय व्यवहार का यह तथ्य प्राचीन प्राणि-कथा की घटना (Incident) को व्यक्त करता है। प्राणि-कथा के इस साहित्यिक अंकन को संस्कृत नीतिकथा का पूर्वरूप मान लेंगे तो अनुचित न होगा। चूहे के मनुष्यवत् व्यवहार को देखकर ही हम इसे पूर्व रूप मानेंगे।

इस कथा से एक नीति-सार व्यक्त हो रहा है कि, बड़ों के साथ छोटों का भी सम्मान या स्तुति होने पर वे तुरंत खुश हो जाते हैं और सम्मान देनेवाले का कार्य सफल हो जाता है। प्रशंसा किसे अच्छी नहीं लगती ?

शौनक ने ऋग्वेद के दो सूक्तों के आधार पर यह आख्यान प्रस्तुत किया है[4]। दोनों के ऋषि सोभरि काण्व है। प्रथम का देवता 'इन्द्र' एवं 'चित्र' है, तो दूसरे को 'अश्विनी'। शौनक ने सोभरि-कृत चित्र की स्तुति ऋग्वेद के प्रथम सूक्त के अन्तिम मंत्र से इस प्रकार की है :

'हविष् देने वाले मुझे इन्द्र ने धन दिया या धनवती सरस्वती ने अथवा राजा चित्र ने दिया ?'

---

१. बृ. दे. ६.५८-६२
२. ऋ. सं. ८.२१.१८
३. ऋ. सं. ८.२२
४. ऋ. सं. ८. २१ एवं २२

'सहस्र एवं दशसहस्रों की यह संपत्ति उसे चित्र ने ही दी है। सरस्वती तट पर थोड़े राजा लोग हैं। उनमें चित्र ही वर्षा के समान धन देने वाला है[१]'।

ऋग्वेद की पुरातन कथा (legend) इस प्रकार है : सरस्वती तीर पर राजा चित्र ने इंद्र के संतोष के लिए यज्ञ किया। तब उस यज्ञ में इन मंत्रों के द्रष्टा ऋषि सोभरि को प्रचुर धन प्राप्त हुआ। सोभरि ने दान देने वाले राजा चित्र की दान-स्तुति की।

वास्तव में ऋग्वेद में राजा चित्र को चूहों का राजा नहीं कहा है। शौनक के समय में राजा चित्र का रूपान्तर आखुराज अर्थात् चूहों के राजा में हो गया। यह कहा जा सकता है कि, जिस प्रकार सरमा का रूपान्तर निरुक्त में देवशुनी के रूप में हुआ, उसी प्रकार चित्र का चूहों के राजा के अर्थ में। फिर भी ऋग्वेद के 'सारमेयौ' शब्द से सरमा को कुत्तों की मां मान लिया गया, किन्तु चित्र के विषय में ऐसा कोई कारण नहीं दिखाई देता। ऋग्वेद के इस सूक्त मे चित्र एक राजा है और उसने सोभरि को बहुत धन दिया। किन्तु चित्र चूहा था इसका कोई संकेत प्राप्त नहीं होता। उसकी दान-स्तुति से स्पष्ट हो जाता है कि वह एक यज्ञकर्ता दानशील राजा ही था।

फिर भी, वृहद्देवता की चित्रकथा का जहाँ तक संबंध है, उसे हम शौनक के समय की प्राणिकथा कह सकेंगे, इसीलिए नीतिकथा का पूर्वरूप भी। संस्कृत नीतिकथा के ये सब बीज हैं। वैदिक युग में ये बीज उपेक्षित रहे, किन्तु आगे चलकर स्वतंत्र रूप से वे दृढमूल हो बैठे। जब लोककथा ने साहित्य में नया प्रवेश किया तब इनका विकास होने लगा। यह विकास उत्तरोत्तर जातक, पंचतंत्र तथा महाभारत की कथाओं में भलीभांति दिखाई देता है।

नीतिमंजरी

द्या द्विवेद का समय पंद्रहवी शताब्दी है। उन्होंने ऋग्वेद की दैवतकथाओं को प्रस्तुत किया है। नीतिशास्त्र एवं अन्य लौकिक नीतिवचनों की पुष्टि के लिए उन्होंने इन वैदिक कथाओं के उदाहरण दिये है। अतः स्वयं उन्होंने इस ग्रंथ को 'नीतिमंजरी' कहा है। वास्तव में किसी सिद्धांत की पुष्टि के लिए कहानी कहने की प्रणाली बहुत प्राचीन रही हैं। उसी का अनुसरण द्या द्विवेद ने किया है। फिर भी सर्वसाधारण नीतिवचनों (Maxims) को लेकर उनकी

---

१. ऋ. सं. ८. २१. १७. एवं १८: 'इन्द्रो वा घेदियेन् मघं सरस्वती वा सुभगो ददिर्वसु। त्वं वा चित्र दाशुषे।' (१७)

'चित्र इद् राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु।
पर्जन्य इव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुता ददत् ॥' (१८)

प्रणाली (device) ऋग्वेद में नहीं अपनायी गई। इस प्रकार की प्रणाली का आविष्कार प्रथम ब्राह्मण-ग्रंथों में ही हुआ। नीतिशास्त्र के सिद्धांत भी स्थिर नहीं हुए थे, जिनकी पुष्टि प्राणिकथा को लेकर ऋषि करते।

वैदिक कथाओ से तत्कालीन समाज एवं सभ्यता का भली भांति परिचय हमे मिलता है। इन कथाओं से उस समय के लोक-साहित्य की कल्पना हम कर सकते है।

इनकी सब से बड़ी विशेषता यह है कि, ये आख्यान शिक्षाप्रद हैं। प्राचीन परंपरा से प्राप्त महान व्यक्ति के चरित्र तथा महान दार्शनिकों के उपदेश से समाज को शिक्षा देने का कार्य चलता था। इस उपदेश का माध्यम ये कथाएं रही है। इसी से वैदिक समय में 'इतिहास' साहित्य का निर्माण हुआ। किसी भी दार्शनिक विचारों के रहस्य को स्पष्ट करने के लिए लोगों मे कहानी कहने की प्रणाली बहुत प्राचीन है।

ऋग्वेद के आख्यान-सूक्तों की भाषा सरल है और अभिव्यक्ति में कृत्रिमता का अभाव है। संवादों की भाषा-शैली मंजी हुई है और अर्थ-ग्राहिणी है। सरमा या पणियो की उक्तियों मे शब्दों का जो विन्यास है उन्हें विशेष महत्व है। पणियों को सरमा ने 'असेन्या वो वचांसि' कह कर गागर मे सागर भर दिया है।

यजुर्वेदः

तैत्तिरीय संहिता—

संस्कृत साहित्य में प्रथम बार गद्य का आविष्कार यजुर्वेद में हुआ। आगे चलकर लौकिक संस्कृत में गद्यकाव्य के रूप में गद्य का स्वरूप स्पष्ट हुआ। अत्यन्त प्राचीन समय में गद्य एवं पद्य दोनों रूप रहे आए थे। यह स्वाभाविक था कि श्रुति-काल मे श्रवण के द्वारा किसी भी साहित्य का ग्रहण किया जाता था। इसलिए गद्य की अपेक्षा पद्य को महत्व प्राप्त था। प्राचीन संस्कृत साहित्य मे इसीलिए छंदों को अपनाया गया। जो गद्य प्रकट हुआ वह कंठस्थ न होने से टिक नहीं पाया। इसीलिए ऋग्वेद के कई स्थल त्रुटित अवस्था मे रह गये है। संभव है आख्यान सूक्तों के भीतर कभी किसी समय मे गद्य भाग भी रहा होगा और उसमे कुछ कहानियाँ भी रही होंगी। उस समय की जो लोकप्रिय कथाएं थीं उन्हे इस लुप्त गद्यभाग में स्थान मिला होगा। जो भाग पद्यरूप मे था वह टिक गया किंतु गद्य का कथांश लुप्त हो गया।

यजुर्वेद का विषय ही कुछ भिन्न सा है। इस काल में यज्ञीय विधिविधान एवं देवासुर-संग्राम की कथाओं को विशेष स्थान प्राप्त हो गया था। ये दोनों तत्व परस्पर पोषक थे। एक ओर ऋग्वेद-कालीन दैवत-कथाएं स्थिर हो बैठी थीं

और यज्ञीय देवता साकार हो उठे तो दूसरी ओर इन देवताओं का यज्ञ के लिए प्रसन्न होना उनका एक स्वभावकार्य हो बैठा था।

यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता मे यज्ञ को चर्चा की गई है। इसमे कुछ आख्यान भी आए हैं। नीतिकथा के विकास में उनका भी योगदान रहा है। ऋग्वेद की सरमा कथा में साम, दाम, भेद आदि राजनैतिक युक्ति-प्रयुक्तियों का प्रयोग किस प्रकार हुआ इसे हम देख सकते हैं। किन्तु ऐसे स्थल ऋग्वेद में बहुत कम है। तैत्तिरीय संहिता में ऐसे स्थल कई मिलेंगे। क्योंकि ऋग्वेद-कालीन समाज इंद्र द्वारा प्रशासित था। तब आपस के संघर्ष उतने नहीं थे जितने बाद में बढ़े। और इंद्र भी स्वयं अच्छा राजनीतिज्ञ था। किन्तु यजुर्वेद के समय में राजनैतिक चतुरता और लौकिक सूझबूझ की आवश्यकता अधिक प्रतीत होने लगी। इसका रूप हम देव और दैत्य के संघर्ष को कथाओं में देखते हैं।

तैत्तिरीय संहिता में देवासुर-संग्राम की एक कथा इस प्रकार है :—

देवता, मानव तथा पितर एक पक्ष में तथा विरोधी पक्ष में दैत्य, राक्षस और पिशाच थे। इनमें से राक्षस जिस व्यक्ति के शरीर से रक्त निकाला करते थे, उसे विषैला बना देते थे। इस से वह व्यक्ति प्रातःकाल तक मर जाता था। देवताओं ने जान लिया कि यह सब राक्षसों का कार्य है। उन्होंने राक्षसों को अपनी ओर बुला लिया। राक्षसों ने शर्त रक्खी कि, असुरों को लूटने में प्राप्त धन में से आधा हिस्सा उन्हें मिलना चाहिए। देवताओं ने उनकी शर्त मान ली। इस फूट के कारण असुर पराजित हुए। विजय प्राप्त होने पर देवताओं ने राक्षसों को भगा दिया। तब राक्षसों ने उनके इस छल कपट के विषय में बहुत शोर मचाया। इस पर देवताओं ने अग्नि को आगे किया और राक्षसों को पराजित कर दिया[१]।

इस आख्यायिका से स्पष्ट होता है कि देवताओं ने असुरों को जीतने के लिए 'भेद' नामक युक्ति का प्रयोग किया है। अनार्यों को जीतने के लिए आर्यों द्वारा राजनैतिक चतुरता से काम लिया गया है।

दूसरी एक आख्यायिका है :

देवताओं के पुरोहित बृहस्पति थे और असुरों के शंड तथा मर्क। असुरों के ये दोनों पुरोहित बड़े मेधावी थे। इसीलिए देवताओं को असुरों पर विजय पाना दुष्कर कार्य हो बैठा। तब देवताओं ने यज्ञ में शंड और मर्क को सोम देने प्रलोभन दिया। फलस्वरूप शंड और मर्क की राजनैतिक सलाह से असुर वंचित रहे और असुर पराजित हुए। आगे चलकर देवताओं ने यज्ञ प्रारंभ किया। तब

---

१. तै. सं. २. ४. १: "देवा मनुष्याः पितरस्ते० परासुराः"। इति।

देवताओं के वचनानुसार शण्ड और मर्क शुक्र और मंथी नामक पात्र में रखे हुए सोम को पीने के लिए यज्ञ में दाखिल हुए। तब देवताओं ने आपस में मंत्रणा की कि अपने काम के लिए इन्हे सोम दिया पर अब इन उद्दाम पुरोहितों को अपने पक्ष में रखना उचित नहीं। यह विचार करके देवताओं ने उनको सोम तो दिया ही नहीं, प्रत्युत उनकी फजीहत करके उन्हे वहां से निकाल दिया[1]।

इस आख्यायिका से स्पष्ट ही देवताओं की कूटनीति, चतुरता दिखाई देती है। पहले तो उन्होंने शण्ड और मर्क को 'भेद' युक्ति से असुरों का बुद्धिबल नहीं-सा कर दिया, और बाद में स्वार्थ पूर्ण हो जाने के उपरान्त गद्दारों पर विश्वास न करना चाहिए और वह भी शत्रुपक्ष का गद्दार हो तो कतई विश्वास के लिए योग्य नहीं है, इस कूटनीति-विषयक सिद्धान्त का ही उन्होंने अनुसरण किया है।

पंचतंत्र में काकोलूकीयम् नामक जो तृतीय तंत्र है उसमें इसी तथ्य को कौए तथा उल्लुओं की कहानी मे प्रकट किया गया है। तैत्तिरी संहिता की उपरोक्त शण्ड-मर्क की कहानी में यह सिद्धान्त कहानी द्वारा प्राचीन काल में ही व्यक्त हो चुका है। उसी का विकसित रूप काकोलुकीयम् में देखा जा सकता है। इस तंत्र का प्रथम श्लोक ही इस प्रकार रखा गया है :

"न विश्वसेत् पूर्वविरोधितस्य शत्रोश्च मित्रत्वमुपागतस्य।
दग्धां गुहां पश्य उलूकपूर्णां काकप्रणीतेन हुताशनेन॥[2]

और इसके अनन्तर काकराज तथा उलूकराज की कथा प्रारंभ होती है। उसका सारतत्व उपरोक्त श्लोक में प्रकट किया गया है। किन्तु श्लोक के प्रथम चरण मे जो कहा गया है वह नीतिविषयक सिद्धान्त पंचतंत्र से भी प्राचीन है। यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता के समय भी इसी प्रकार का नीति-विषयक सिद्धांत अवश्य ज्ञात था। शण्ड और मर्क की आख्यायिका में इस तथ्य का उदाहरण प्रस्तुत हो गया है। शण्ड और मर्क की आख्यायिका और काकोलूकीयम् में नीतितत्व समान है : शत्रु को मित्र बना लेने पर भी उस पर विश्वास नहीं रखना चाहिए।

इससे यही तथ्य स्पष्ट होगा कि, पंचतंत्र की कथाओं की पूर्व परम्परा में यजुर्वेद की इन कथाओं को भी महत्व है। पंचतंत्र में राजनैतिक प्रज्ञा तथा लौकिक चतुरता (Political and Worldly Wisdom) का जो दर्शन होता है, उसका उद्गम ऋग्वेद की सरमा-कथा में व्यक्त हुआ था। किन्तु वहाँ संपूर्ण

---

१. तै. सं. ६, ४, १० "बृहस्पतिर्देवानां पुरोहित०" इत्यादि। (तै. ब्रा. १·१·१)

२. पंचतंत्र, ३ तंत्र, १

कथा में प्राप्त नहीं है। यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता मे इस प्रकार की कथा पूर्ण-रूपेण उपस्थित है। देवासुर-संग्राम की कथाएँ या शण्ड और मर्क की आख्यायिका में राजनैतिक प्रज्ञा, लौकिक चतुरता तथा युक्ति-प्रयुक्तियाँ भलीभांति प्रकट हो चुकी है। आगे चलकर ऐसे ही सिद्धान्तों ने प्राणिकथा का चोला पहन लिया और पंचतंत्र की एक परंपरा हो बैठी।

किन्तु यह मान लेना होगा कि, यजुर्वेद की इन आख्यायिकाओं का मुख्य उद्देश्य धार्मिक ही था। यज्ञकर्म का ही विषय इन कहानियों मे अभिप्रेत है। फिर भी ऐसी आख्यायिकाओं मे अनायास ही राजनैतिक या लौकिक प्रज्ञा प्रकट हो गई है। इसे आगे चलकर महाभारत तथा पंचतंत्र मे प्रमुखता मिली है और वह प्राणिकथा के चोले में। इसीलिये हम इन आख्यायिकाओं में पूर्व रूप देख पाते है।

वराहावतार की कल्पना का बीज भी तैत्तिरीय संहिता मे निहित है। इसी का तैत्तिरीय ब्राह्मण मे विकास हुआ है[1]।

कहानी का प्राचीन रूप

ऋग्वेद मे प्राप्त कुछ मंत्रों से प्राचीन कहानी की कल्पना की जा सकती है। ऋग्वेद मे यम-यमी संवाद जैसे सूक्त कहानी को व्यक्त करते है। किन्तु ऋग्वेद में कोई संवाद पूर्णरूपेण प्राप्त नहीं होता। कहानी का संपूर्ण रूप यजुर्वेद मे ही सर्वप्रथम दिखाई देता है। वाजसनेयी संहिता तथा मैत्रायणी संहिता यजुर्वेद की प्राचीन संहिताएँ है। तैत्तिरीय संहिता मे प्राप्त कुछ प्राचीन दैवत-कथाएं इसमे आई है। इन कहानियों में हम देवासुर-संग्राम की कथा का रूप देख चुके है। मैत्रायणी संहिता मे रजनी की उत्पत्ति के विषय में एक सुंदर आख्यान है[2]।

यम की मृत्यु हो गयी। तब उसकी बहन यमी को देवताओ ने बहुत समझाया। किन्तु वह यम को भूल न सकी। देवताओं के पूछने पर वह कहती रही की यम की आज ही मृत्यु हुई है। तब देवताओं ने परामर्श किया कि यह इस प्रकार भूल नहीं सकती अतः रात्रि को उत्पन्न किया जाय। उस काल मे केवल दिन ही होता था, रात नहीं थी। रात का निर्माण कर देने से दूसरा दिन आया। बाद मे यमी अपने विषाद को भूल सकी। इसलिए कहते हैं कि दिन और रात दुःख भुला देते है।

इसी आख्यान मे रात की कारण-कथा प्रस्तुत की गई है वह एक सुंदर कल्पित कथा है। इसी संहिता मे इंद्र द्वारा पर्वतों के पंख काटने की कहानी भी है[3]।

---

१. तै. ब्रा. १.१.३ : 'आपो वा इदमग्रे-अयो शन्त्वाय, इति (सम्भार ६)।
२. मै. सं. १.५, १२
३. मै. सं० १.१०,१३

यजुर्वेद का प्राचीन गद्य ऋग्वेद की अर्वाचीन ऋचाओं का समकालीन है[१]। इसी गद्यशैली का विकास अथर्ववेद, ब्राह्मण आदि ग्रंथों में हुआ है। इसके पहले लोक-साहित्य के मौखिक रूप में गद्य का जो उपयोग होता था उसी को साहित्य में अपनाया जाने लगा। गद्य की भूमि साहित्य-क्षेत्र मे प्राप्त हो जाने पर कहानी ने यजुर्वेद संहिता में प्रवेश किया। आगे चलकर गद्यकाव्य की 'कथा' एवं 'आख्यायिका' जैसी विधाओं के रूप में गद्यशैली विकसित हुई।

प्राचीन गद्य की दो धाराएँ चल पड़ी थीं। एक धारा धार्मिक ग्रंथों में प्रवाहित थी और दूसरी धर्म ग्रंथों से दूर। पहली धारा यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मणों तथा उपनिषदों मे स्पष्ट हुई है और दूसरी धारा लोकवाणी में प्रचलित लोक-साहित्य में प्रवाहित थी। लोगों में वीरकथा, अद्भुतकथा, प्राणिकथा आदि कई प्रकार की कहानियाँ कही सुनी जाती थीं। ये कहानियां लौकिक गद्य मे थीं। उसी का विकास गुणाढ्य द्वारा पैशाची मे लिखित बृहत्कथा मे हुआ। दुर्भाग्य से बृहत्कथा आज अप्राप्य है। फिर भी इस लौकिक गद्य का प्राचीन रूप बृहत्कथा मे अवश्य रहा होगा। इसी गद्य-शैली में नीतिकथा का जन्म हुआ। पंचतंत्र में इसी का साहित्यिक एवं परिष्कृत रूप सुरक्षित है।

यजुर्वेद के समय गद्य में कहानी का प्रारंभिक रूप दिखाई देता है। यहां भी प्राणिकथा नहीं मिलती। देवासुर-संग्राम-विषयक तथा अन्य कथाओं का मूल उद्देश्य यज्ञधर्म की पुष्टि करना है। फिर भी अनायासेन छल, कपट, चतुरता, युक्तिप्रयुक्ति आदि का उपयोग इन कहानियो के पात्रों ने किया है। इसी राजनैतिक या लौकिक चतुरता को प्राणिकथा की आड़ में व्यक्त किया जाने लगा। इसीलिए संस्कृत नीतिकथा के पूर्वरूप यजुर्वेद मे भी पाये जाते है।

अथर्ववेद

अथर्ववेद मे भी पूर्ण नीतिकथा का अभाव है। ऋग्वेद के बहुत बाद की रचना होने के कारण प्राकृतिक दृश्यों पर किए गये देवतारोप का स्वाभाविक स्वरूप इसमें नहीं दिखाई देता। वैदिक दैवत-कथाएं धर्म का अभिन्न अंग बन चुकी थीं, इसीलिये अथर्ववेद में उनका ग्रहण नहीं किया गया। क्योंकि अथर्ववेद में धार्मिक क्रियाओं की अपेक्षा लौकिक ज्ञानविज्ञान की ओर ध्यान दिया गया।

अथर्ववेद का संहितीकरण बहुत बाद में हुआ है। फिर भी उसमें निहित बहुत सी सामग्री प्राचीन है। प्राचीन काल से ज्ञान-विज्ञान की बातों का संग्रह इस संहिता में हुआ है। अनार्यों की भी सामग्री इसमें समाविष्ट हो गई है, जो

१. A. B. Keith, Classical Sanskrit Literature, Calcutta, 1923. Chapt. I. p. 89.

आर्य एवं अनार्य संस्कृति के सामंजस्य की ओर संकेत करती है। भृगुओं ने इस देश की परंपरा, आख्यायिका तथा लोक-साहित्य से जो कुछ अच्छा था, उसे ले लिया और उसका ब्राह्मणीकरण कर डाला[१]। किन्तु भृगुओं ने प्राणि-कथाओं को नहीं अपनाया, यह अथर्ववेद से स्पष्ट होता है। उस समय प्राणि-कथा प्रचलित नहीं थी यह नहीं कह सकते। संभव है ब्राह्मण धर्म के लिए अनार्यों की प्राणिकथा को उपयुक्त नहीं समझा हो। प्राणिकथा बाद में अपनायी गई। संहिता साहित्य के काल में प्राणिकथा किसी तथ्य या तत्व का प्रतिपादन करने के लिये माध्यम नहीं बन पाई थी। इसीलिए ऋषियों के मंत्रों मे उसका अभाव है।

अथर्ववेद में ऐहिक तथा लौकिक तथ्यों को प्रकट होने का अवसर मिला यह बड़ी महत्वपूर्ण घटना है। यजुर्वेद का विषय कर्मकाण्ड था। उसका अंतिम लक्ष्य पारलौकिक सुख ही था। ऋग्वेद की प्राचीन कथाओं मे अधिकतर लौकिक सुखो की ही कामना की गई थी, तथा यजुर्वेद के समय से कर्मकाण्ड के आधिक्य से उसका लोप हो बैठा था। किन्तु अथर्ववेद में लोक साहित्य एवं लोक विश्वासों को स्थान मिल गया। तब वैदिक साहित्य मे फिर लौकिक विचार दृष्टिगोचर होने लगे। लौकिक कर्म के माध्यम से ऐहिक लाभ की कामना अथर्ववेद मे प्रकट हुई है। नीतिकथा मे यह ऐहिक तथा भौतिक लाभ ही लक्ष्य होता है। लौकिक जीवन के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आर्थिक नैतिक क्षेत्रों में अभीष्ट सफलता की कुंजी नीतिकथा में निहित होती है। अतः विषय की दृष्टि से ऐहिकता का प्रवेश संहिताओं मे अधिकतर अथर्ववेद मे ही पाया जाता है। अर्थात् आगे चल कर लौकिक साहित्य का यह प्रारंभ ही है।

अथर्ववेद मे प्राणि-कथा नहीं है। फिर भी पशुओं के दृष्टांतों से अपना मत स्पष्ट किया हुआ कहीं कहीं पर दिखाई देता है।

'हजारों सींग वाला बैल अर्थात् हजारों किरणवाला चंद्र जिसका समुद्र से उदय हुआ है, उस बलवान की सहायता से हम लोगों को सुला देता है[२]।"

यहाँ चंद्र पर बैल का तथा उसकी किरणों पर सींगों का आरोप किया

---

१. A. P. Karmarkar, The Fish in Indian Folklore and the Age of Atharvaveda, A. B. O. R. I. XXIV (3-4) 1944.

२. अ. वे. ४. ५. १.

"सहस्रशृंगो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत्।
तेना सहस्येना वयं निजनान्स्वापयोमसि॥

गया है[१]। यह विशाल प्रतीक ऋग्वेद में भी व्यक्त हो चुका है[२]। अथर्ववेद में प्राणियों का सूक्ष्म निरीक्षण किसी उपमा के द्वारा प्रकट हुआ दिखाई देता है[३]। सरमा का भी उल्लेख है, किन्तु उसकी कथा नहीं है। यहाँ कहा गया है कि, वैल कुष्ठिकों को सरमा के लिए तथा खुरों को कछुए के लिए धारण करते हैं। इनका अपक्व अन्न कुत्तों के साथ रहने वाले कीड़ों के लिए रख दिया है[४]। ऋग्वेद का "द्वा सुपर्णा" (१. १६४) मंत्र अथर्ववेद मे ज्यों का त्यों रक्खा गया है। फिर भी अगले मंत्र मे कुछ भेद कर दिया है : "इस संसार-वृक्ष पर मीठा फल खाने वाले अनन्त पक्षी जीवात्मा है। यहाँ अपनी संतानवृद्धि करते है और सब इस वृक्ष पर ही रहते है।" ये पक्षी जीवात्मा होकर अनेक हैं। ऋग्वेद मे दूसरा पक्षी एक ही है यहाँ अनेक है[५]। एक मंत्र में[६] कहा है कि इस शरीर रूपी रथ को सात घोड़े जोड़े जाते हैं। ये सात घोड़े होते हुए भी सप्त नामक एक ही घोड़ा उसे चलाता रहता है। अर्थात् आंख, कान, नाक, रसना, त्वचा, मन ये छः ज्ञानेद्रियां है, किन्तु आत्मा की चित् शक्ति ही शरीर को चलाती है।

एक और मंत्र मे कहा है कि बंदर जैसा कुत्ते को तुच्छ मानता है वैसे बधन (इलाज) करने वाले लोग रोग या दुख का प्रतिबंध करते हैं[७]। रोग को तुच्छ

---

१. श्री ग्रिफिथ ने यह रूपक सूर्य पर निरूपित किया है। ग्रासमन् के अनुसार यह नक्षत्रों से भरे आकाश की ओर संकेत करता है। किन्तु आफ्रेक्ट (Aufrect) एवं पं. सातवलेकरजी ने इसे चंद्र माना है।

२. ऋ. सं. १. १५४-६

"ता वां वास्तून्युश्यसि गर्मध्ये यत्र गावो भूरिशृंगा अयासः
अत्राहि तदुरुगायस्य वृष्णःपरमं पदमव भाति भूरि ॥"

सायणः—"यत्र येषु वास्तुषु गावः रश्मयः भूरिशृंगा अत्यन्तोन्नत्युपेता बहुभिराश्रयणीया वा निरुक्त २. ७ ग्रिफिथ के अनुसार अनेक सींगवाला तथा अशांत बैल का प्रतीकार्थ अनेक किरणोंवाले नक्षत्र है। यह अर्थ ग्रासमन की व्याख्या की पुष्टि करता है। Griffith 's Translation of अथर्ववेद Vol. I. P. 135 (Foot Note No. 1.)

३. अ. वे. ६. ७०. २.

४. अ. वे. कां. ६ सूक्त ४, मंत्र १६ "ते कुष्ठिकाः सरमायै कूर्मेभ्यो अदधुः शफान्। ऊवध्यमस्य कीटेभ्यः श्ववर्तेभ्यो अधारयन्।

५. अ. वे. काण्ड ९ सूक्त ९, २०; मं. २०

६. वही मंत्र २

७. वही काण्ड ३ सूक्त ९ मंत्र ४

मान कर उसे दूर करने वाले लोग दूसरों को भी तुच्छ मानते थे क्या ? सहज ही आज के कुछ डॉक्टरों का स्मरण हो जाता है। उनको उपमा उन वंदरों को दी गई है, जो वृक्ष पर सुरक्षित बैठ कर नीचे से ताकने वाले कुत्तों का उपहास करते हैं। कुशल डॉक्टर रोग का उपहास करता है। यह प्राणि-विषयक उपमा बड़ी मार्मिक है। यह सब लौकिक जीवन के सूक्ष्म निरीक्षण का ही परिणाम है।

निष्कर्ष :

इस चर्चा से हम निम्नलिखित निर्णय पर पहुँचते हैं:-

(१) ऋग्वेद के आख्यान-सूक्त प्राचीन कहानी के पद्यांश हैं।

(२) 'इतिहास-पुराण' साहित्य वैदिक लोक-कथाओं का ही रूप था।

(३) ऋग्वेद में संस्कृत नीतिकथा के पूर्वरूप मिलते हैं।

(अ) दृष्टांत:- ऋग्वेद में प्राणि-दृष्टांत देकर ऋषियों ने अपने कथन की पुष्टि या स्पष्टीकरण सौपर्ण दृष्टांत आदि में किया है। (ल) प्रतीक:- उपमा, रूपक, आदि के द्वारा प्राणियों के प्रतीक प्रकट हुए हैं। जैसे विद्युत पर श्येन का आरोप। (स) लौकिक नीतिवचन:- ऋग्वेद में ऋषि के वचन सूक्तियां बन गए। दान-स्तुति का सूक्त (१०.११७. १-९.) लौकिक वचनो से भरा पड़ा है। (द) राजनैतिक प्रज्ञा (Political Wisdom), युक्तिप्रयुक्ति, चतुरता तथा लौकिक जीवन में उपादेय सारतत्व; साम, दाम, दंड आदि का प्रयोग ऋग्वेद में दिखाई देता है ऋग्वेद की सरमा-कथा और यजुर्वेद मे उन्हीं युक्तियों का विकास देवासुर-संग्राम कथा में मिलता है।

(४) यज्ञ-संबंधी आख्यायिकाओं से अपने सिद्धान्त एवं नियम की पुष्टि तैत्तिरीय संहिता आदि में की गई है।

(५) अथर्ववेद में लौकिक विद्याओं की ओर वैदिक समय में प्रथम बार ध्यान दिया जाने लगा। लोक-साहित्य को मान्यता प्राप्त होने के लिए यह शुभ लक्षण था।

(४) उत्तर-वैदिक साहित्य में नीतिकथा

ब्राह्मणों में आख्यान—

वैदिक साहित्य के दो भाग माने गये है। संहिताओं में मंत्र निहित है और मंत्र-व्यतिरिक्त भाग को 'ब्राह्मण' कहा गया है।[1] संहिताओं में हमे नीतिकथा प्राप्त नहीं हुई, उसके पूर्व रूप मात्र प्राप्त हुए। अब हमें देखना है कि, ब्राह्मणों तथा उपनिषदों में नीतिकथा का क्या रूप रहा है।

आर्यों के प्राचीन भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति ऋग्वेद की प्रार्थना, कर्मकाण्ड एवं ज्ञान की शाखाओं के रूप में हुई है। संहिताओं में वैदिक मंत्र सुरक्षित है। इन मंत्रो की व्याख्या करना, उनके अर्थ को स्पष्ट करना तथा वैदिक विधानो की पुष्टि करना यही ब्राह्मणों का मुख्य विषय है। ब्राह्मण भाष्यग्रंथ है, वे अपने आप मे स्वतन्त्र विषय का आविष्कार करने वाले मूल ग्रंथ नहीं है। उनका विषय मंत्रानुसारी है।

ब्राह्मणों के मुख्य दो अंश महत्त्वपूर्ण हैं। एक है यज्ञ-संबंधी विधानों का कथन और दूसरा है 'अर्थवाद'। ब्राह्मणों मे वैदिक यज्ञ संबंधी नियमों की चर्चा की गई है। वैदिक उत्तरकाल मे यज्ञ विषयक जिज्ञासा बहुत ही बढ़ चुकी थी। यज्ञों के विधान भी जटिल एवं विवाद्य होने लग गये थे। उन पर चर्चा करके उन विषयों को स्पष्ट करना आवश्यक था।

हम यह कह चुके है कि, यज्ञ-संबंधी नियमों की पुष्टि के लिए अर्थवाद की रचना ब्राह्मणकारों ने की है। विधि के लिए अर्थवाद पोषक है। भाष्य लिखते समय स्पष्टीकरण तथा पुष्टि के लिए भाष्यकारों ने दृष्टान्त एवं आख्यायिकाएं कही है। किसी तथ्य का विवेचन, व्याख्यात्मक उल्लेख, कहानी, मत की

---

१. कल्पसूत्रकार के अनुसार:- (अध्याय २, प्रथम पाद).

"मंत्रश्च ब्राह्मणं चैव द्वौ भागौ तेन मंत्रतः।

अन्यद् ब्राह्मणमित्येतद्भवेद् ब्राह्मणलक्षणम्॥" इति, एवं सायणाचार्य द्वारा ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य मे प्रथम अध्याय के प्रारम्भ में उद्धृत।

पुष्टि, उद्देश्य-कथन, प्रशंसा आदि अर्थवाद के अर्थ है ।[1] ब्राह्मणों में इस प्रकार के अर्थवाद के अन्तर्गत आख्यायिकाओं का योगदान बड़ा ही महत्वपूर्ण रहा है। भाष्यकारों ने प्राचीन 'इतिहास-पुराण' का उपयोग अर्थवाद के रूप में कर लिया। प्राचीन काल से प्रचलित इतिहास-पुराण के भंडार से आख्यायिकाओं को लेकर विधि-विधानों की पुष्टि ब्राह्मणों में की गई है। इसीलिए अर्थवाद को 'भूतार्थवाद' भी कहा जाता है। यज्ञ के केवल नियमों को ही रख देना भाष्य-कारों ने ठीक नहीं समझा। उन्होंने भाष्य के रूखेपन को दूर करने तथा विषय को स्पष्ट करने के लिए बड़े ही रोचक तथा मार्मिक आख्यानों का उपयोग किया है।

जो घटना हो चुकी होगी, उसी का कथन 'भूतार्थवाद' के रूप में किया जाता था। इससे लगता है, अर्थवाद में अपनाई गई आख्यायिकाओं की सत्यता के विषय में भाष्यकाल में सन्देह नहीं था। बाद में अर्थवाद को उतना यथार्थ नहीं समझा जाने लगा। क्योंकि कोई सिद्धान्त या नियम ही मुख्य रूप से प्रति-पाद्य होता है। अर्थवाद को उस प्रतिपाद्य की प्रशंसा या उसे गौरव प्रदान करने का प्रयत्न माना जाने लगा। फिर भी एक तथ्य स्पष्ट है कि इस अर्थवाद में आये हुए आख्यान बहुत प्राचीन थे। इसीलिए ऋषियों ने उन्हे अपना लिया था।

वर्गीकरण

ब्राह्मणों की आख्यायिकाओं का वर्गीकरण डॉ० कर्णिक के अनुसार निम्न प्रकार किया गया है।[2]

(१) प्रतीकात्मक आख्यान। ये कहानियां ऋत्विजों की उपज है। प्रतीकार्थ का वहन इनकी मुख्य विशेषता है।

(२) ऐसे ऐतिहासिक तथा जनप्रिय आख्यान, जो उस समय के बड़े व्यक्तियों से संबंधित हों।

(३) दार्शनिक पुरातन कथाएँ, एवं

---

१. M. William, A Sanskrit English Dictionary, p. 83 :-
Arthavāda :—Explanation of a an affair, explanatory remark, exegesis, affairmatian or narrative, declaration of purpose or object; speech or expression having a certain object, sentence, praise, eulogium.

२. H. R. Karnik, A Legend of Political Wisdom in the Satapatha Brahmana (I. V. 4-6-11), po 7, Oct. [illegible]

(४) नीति-संबंधी कहानियाँ[१]। इनमें राजनैतिक तथा लौकिक प्रज्ञा (Political and Worldly Wisdom) का परिचय प्राप्त होता है।

इनमें अंतिम प्रकार की कहानियाँ संस्कृत नीतिकथा का पूर्व रूप प्रस्तुत करती हैं।

ब्राह्मणों का विषय यज्ञ, उसके नियम, उसकी उपादेयता, अर्थवाद आदि है। अर्थवाद के रूप में प्राचीन आख्यानों का ग्रहण हुआ है। इन आख्यानों का प्रमुख उद्देश्य यज्ञ-नियमों की पुष्टि करना है। यज्ञ के संकीर्ण प्रान्त मे उनका स्वरूप धर्मकथा का ही है। फिर भी कर्मकाण्ड की कर्कशता उनमें आने नहीं पाई, साहित्य के व्यापक क्षेत्र मे ये आख्यान चले आये हैं, और इसीलिए रोचक भी है।

इन आख्यानों मे निम्नलिखित तथ्यों की पुष्टि के लिए उनकी उत्पत्ति, व्युत्पत्ति, कारण या प्रशंसा को लेकर प्राचीन आख्यान प्रस्तुत किए गए हैं।

(१) वस्तु:—किसी यज्ञ-संबंधी वस्तु की प्रशंसा के लिए आख्यान कहे गये है। जैसे, 'पयस्या' नामक पदार्थ की प्रशंसा एक आख्यान के रूप में की गई है। कहानी है कि, दीर्घजिह्वी असुरों ने देवताओं के यज्ञ में आकर प्रातःसवन को चाट लिया। तब उस दूषित वस्तु को शुद्ध करने के लिए मित्र वरुण ने 'पयस्या' के रूप में वर दिया। इस पयस्या से देवताओं ने प्रातःसवन के दोष का परिहार कर दिया। इससे उनकी समृद्धि बढ़ी।[२]

(२) कर्म:—कभी-कभी कर्मविशेष क्यों करना चाहिए, इस विषय में आख्यान कहे गये हैं। 'प्रवर्ग्य' कर्म करने के बाद 'उपसद' नामक कर्म करने का विधान है। उसकी पुष्टि के किए कहानी प्रस्तुत की गई है।[3] किसी यज्ञ मे एक अग्नि को प्रथम ले जाना चाहिए, इस नियम की पुष्टि भी पशु और देवताओं के एक आख्यान से की गई है। इस प्रकार की कहानियाँ अनेक है।[४]

---

१. अंग्रेजी मे Moral tale एक संज्ञा है। वह व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होती है। इस संज्ञा के अन्तर्गत Fable के अतिरिक्त अन्य नीति-संबंधी कहानियाँ भी आ जाती है। अतएव केवल 'नीति-संबंधी कहानियां' कहने से हमारा तात्पर्य ऐसी कथाओ से है जिनसे कोई नीति-तत्व प्रकट होता हो। किन्तु इस संज्ञा से मानवेतर सचेतन या अचेतन पात्रों का विधान स्पष्ट नहीं होता। अतः इन नीति संबंधी कथाओं को हम नीतिकथा या fable के पूर्व रूप मान लेंगे। प्राचीन नैतिक आख्यान नीतिकथा (fable) के पूर्वरूप प्रकट करते है।

२. ऐ. ब्रा., पं. २, अ. ८, खं ४.

३. वही, १, ४-६,

४. वही, २. ४. ६.

(३) नाम:—कोई नाम किस प्रकार चल पड़ा, इस विषय में कहानी कही गई है। रुद्र भूपति को 'एष' कहा गया है। यह नाम कैसे हुआ इसकी कहानी कही गई है।[1] और एक प्रसंग में भारद्वाज के साम को 'सामकश्व' क्यों कहते हैं, इसकी कारण-कथा कही है। उसमें कहा है: अग्नि घोड़ा बन गया और उसने असुरों को मारा।[2]

(४) देवता:—यज्ञ में किसी देवता-विशेष का ग्रहण क्यों किया जाना चाहिए इसे स्पष्ट करने के लिए भी कहानी प्रस्तुत की गई है। सोमयाग में प्रथम और अंतिम चरु की देवता अदिति है। इसकी कारण-कथा में कहा गया है: यज्ञ-पुरुष देवताओं के यज्ञ से चला गया। देवताओं ने अदिति की प्रार्थना की, तब चरु के रूप में वर दिया और सोमयाग करने के लिए कहा। इसीलिए वह चरु की देवता है।[3]

(५) ब्राह्मणों में देवासुर-संग्राम की कथाएं भी कही गई हैं। प्राचीन आर्य एवं अनार्य के संघर्ष का प्रत्यङ्कन दैवतकथा के रूप में हो चुका था। ऐतरेय तथा शतपथ ब्राह्मण में इस प्रकार के आख्यान मिलते हैं।[4] इस प्रकार की कथाएं तैत्तिरीय संहिता में भी मिलती हैं। उन्हीं का यह भाष्यकालीन रूप है।

नीति-संबंधी आख्यान. (Moral Narratives) :

ब्राह्मणों में अन्यान्य प्रकार के कई आख्यान मिलते हैं। उनमें प्रतीक-कथा, इतिहासकथा, दार्शनिक कथा और नीति-संबंधी कथा के रूप स्पष्ट हुए हैं। इनमें नीति-संबंधी कथा के अन्तर्गत वे आख्यान आ सकते हैं, जिनमें राजनैतिक तथा लौकिक प्रज्ञा (Political and Worldly Wisdom) का दर्शन होता हो। ऐसे आख्यानों की चर्चा हमें इसलिए करना है कि, ये आख्यान नीतिकथा के पूर्वरूप ही हैं। वैदिक काल में नीतिकथा का पूर्वरूप इस प्रकार अनजाने ही प्रकट हो गया था। उसी का विकास आगे चलकर महाभारत तथा पंचतंत्र में हुआ है।

पचतंत्र में नीतिकथा का पूर्ण रूप निखर उठा है। इन नीतिकथाओं में राजनैतिक तथा लौकिक प्रज्ञा का ही परिचय हमें प्राप्त होता है। विष्णुशर्मा एक नीतिशास्त्र के अच्छे पंडित थे और राजपुत्रों को नीतिशास्त्र का ज्ञान करा

---

१. वही, ३. १३. ६.

२. वही, ३. १६. ६.

३. ऐ. ब्रा. १.२.१.

४. ऐ. ब्रा.: १.३.४., १.४.६., १.४.७., २.७.१ इ.। श. प. ब्रा. २.१.६.८-१८

देने की प्रतिज्ञा कर बैठे थे। उन्होंने नीतिशास्त्र के नियमों को नीतिकथाएं सुनाकर स्पष्ट एवं पुष्ट किया है। उनकी नीतिकथाओं में नीति अर्थात् राजनीति (Policy) की युक्ति-प्रयुक्तियां भरी पड़ी हैं। इस प्रकार की कहानियों में प्राणियों के पात्र होने के कारण जनसाधारण के लिए भी उसमें निहित नीति (Moral) लौकिक व्यवहार में उपादेय सिद्ध हुई। विष्णुशर्मा की इन कथाओं में इस प्रकार राजनैतिक तथा लौकिक बुद्धि, चतुरता या युक्ति-प्रयुक्ति का उपयोग किया गया है।

पंचतंत्र की इस मुख्य विशेषता का उद्‌गम पहले से ही ब्राह्मण ग्रंथों में हो चुका है। ऐतरेय तथा शतपथ ब्राह्मण में ऐसे आख्यान मिलते हैं जिनमें राजनैतिक तथा लौकिक बुद्धि, चतुरता या युक्ति-प्रयुक्ति का परिचय हमें मिलता है। भारतीय प्रज्ञावाद का वैदिक रूप हमें इन ग्रन्थों में भी भली भांति दिखाई देता है। संस्कृत नीतिकथा का यह विशेष गुण बहुत महत्वपूर्ण बन गया है।

ऐतरेय ब्राह्मण :

ऐतरेय ब्राह्मण में इस प्रकार के आख्यान मिलते है। वास्तव में मूल उद्देश्य यज्ञ-विधान की पुष्टि ही है। फिर भी अनजाने ही इनमें राजनैतिक तथा लौकिक प्रज्ञा का उपयोग किया गया दिखाई देता है। एक आख्यान है :

"प्रवर्ग्य" यज्ञ-पुरूष देवतओं के यज्ञ से दूर हट गया। उसने कहा, 'मैं तुम्हारे यज्ञ में अन्न नहीं बनूंगा।' देवताओं ने उसकी प्रार्थना की, किन्तु उसने नहीं माना। देवताओं ने ताडना, भर्त्सना एवं उपहास कर उसे कष्ट दिया। फिर भी उस पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। तब आपस में देवताओं ने मंत्रणा की कि इसे नाराज करने पर अन्न कैसे उपजेगा ? इसे तो उचित साधनों से पुष्ट ही करना चाहिए। तव उन्होंने 'अश्विनों' की प्रार्थना की कि वे यज्ञ-पुरुष को औषधि देकर सुखी करें और ऋत्विजों को उसकी स्तुति करने को कहा।[१]"

इस आख्यायिका में देवताओं की चतुरता परिलक्षित होती है। उन्होने साम, दण्ड, एवं दान का प्रयोग किया और अन्ततः अपना स्वार्थ पूरा कर लिया है। यहां यह द्रष्टव्य है कि देवताओं ने न केवल असुरों से ही, अपितु यज्ञ-पुरुष के साथ भी इस प्रकार की चाल चली है। एक आख्यायिका में तो उन्होने अंगिरस ऋषियों के साथ भी ऐसी युक्ति का प्रयोग कर उनसे वाजी मार दी

---

१. ऐ. ब्रा. १.४.१.

यज्ञो वै देवेभ्य उदक्रामन्न वोऽहमन्नं भविष्यामीति नेति देवा अब्रुवन्नन्नमेव नो भविष्यसीति तं देवा विमेथिरे सहैभ्यो विहृतो व प्रबभूव ते होचुर्देवा न वै न इत्थं विहृतोऽलं भविष्यति हन्तेमं यज्ञं संभरामेति तथेति तं संजभ्रुः, इति।

है[१]। समय को देखकर अपने स्वार्थ की पूर्ति कर लेने की चतुरता देवताओं में पर्याप्त दिखाई देती है। इस चतुरता का परिचय एक और आख्यायिका में मिलता है :

प्राचीन काल में देवताओं ने ज्योतिष्टोम यज्ञ को सम्पन्न किया। फलस्वरूप उन्हें स्वर्ग मिला। तब उन्हें लगा, कहीं मनुष्य एवं ऋषि भी इस यज्ञ का संपादन कर स्वर्ग में न चले आवें। अत: उन्होंने ऋषियों एवं मनुष्यों के मन में भ्रम उत्पन्न करने के लिए यूप को उलटा गाड़ दिया और वे चले गये। मनुष्यों एवं ऋषियों ने वहां आकर यज्ञ चिह्नों में उस यूप को भी देखा। तब वे समझ गये कि, हमारे ही लिए देवताओं ने यह चाल चली है। उन्होंने उसे उखाड़कर ऊर्ध्वमुख कर लिया और यज्ञ सम्पन्न कर स्वर्ग को प्राप्त किया।[२]

इस आख्यान में देवताओं का बड़ा मार्मिक चरित्र-चित्रण प्रस्तुत किया गया है। मनुष्यों एवं ऋषियों की प्रवंचना करने में देवता तत्पर दिखाई देते हैं। इस कहानी से जहाँ राजनैतिक चाल प्रकट हो रही है वहीं लौकिक नीतितत्व भी व्यक्त हो रहा है। इस कहानी का सार यह हो सकता है कि, उत्तम पद की प्राप्ति के मार्ग में रोडे अटकाने पर भी मेधावी एवं उद्यमशील लोग अपने मार्ग की अड़चनें दूर करके सफलता प्राप्त कर लेते हैं। जीवन में बड़े लोगों द्वारा निर्मित अड़चनों को दूर करने की बुद्धि एवं साहस का जनसाधारण में होना अभीष्ट हैं। पंचतंत्र में नीतिसार को व्यक्त करने की जो प्रणाली है उसका यह प्राचीन वैदिक रूप है। केवल अन्तर इतना ही है कि, पंचतंत्र में नीतिसार वाक्य में स्पष्ट रूप से कह दिया गया है और यहाँ वह वर्जित है। इसका कारण यही है कि, इन आख्यानों का मुख्य उद्देश्य सम्प्रदाय-विशेष की पुष्टि करना है, वैदिक यज्ञ-विधानों को उपयोगी सिद्ध करना है।

इस उद्देश्य के कारण इन आख्यायिकाओं का लौकिक (Secular) रूप नहीं रहने पाया। क्योंकि, किसी धार्मिक प्रचार या स्पष्टीकरण के लिए उन्हे ब्राह्मणों के अन्तर्गत स्थान मिला है। ऐसे आख्यान उन दिनों लोगों में अवश्य

---

१. ऐ. ब्रा., ६.३.८

२. वही. २.६.१. यज्ञेन वै देवा ऊर्ध्वा: स्वर्गं लोकमायस्तेऽबिभयुरिष्वंनो दृष्ट्वा मनुष्याश्च ऋषयश्चानुप्रज्ञास्यन्तीति तं वै यूपेनैवायोपयंस्तं यद्यूपेनैवायोपयंस्तद्यूपस्य यूपत्वं तमवाचीनाग्रं निमित्योर्ध्वा उदायंस्ततो वै मनुष्याश्च ऋषयश्च देवानां यज्ञवास्त्वभ्यायन्यज्ञस्य किंचिदेषिष्याम: प्रज्ञात्या इति ते वै यूपमेवाविन्दन्नवाचीनाग्रं निमितं ते विदुरनेन वै देवा यज्ञमयुयुपन्निति तमुद्धृत्योर्ध्वं न्यमिन्वंस्ततो वै ते प्र यज्ञमजानन्प्र स्वर्गं लोकम्, इति।

प्रचलित रहे होंगे। इन लौकिक आख्यानों को ही दैवतकथा का साहित्यिक रूप ब्राह्मणों में मिल गया। सूत परम्परा से चले आए आख्यान ही यज्ञ के प्रसंगों पर कहे सुने जाते थे। उन्हीं आख्यानों को भाष्यग्रंथों में स्थान मिल गया।

ऐतरेय ब्राह्मण में इस प्रकार की लौकिक कथा भी मिलती है। कहानी इस प्रकार है:

'भृगु, अंगिरस प्रभृति ऋषियों ने सरस्वती नदी के तट पर सत्र किया। उनमें 'आलूष' नामक किसी पुरूष का 'कवष' नामक एक पुत्र था। ऋषियों ने उस 'कवष' को यज्ञ से बाहर निकाल दिया और कहा: 'यह दासी का पुत्र जुआ खेलता है, अतः अब्राह्मण (शूद्र) है। इस प्रकार हम जैसे शिष्टों में रह कर यह दीक्षा कैसे ले सकता है?' यह कहकर उन लोगों ने 'कवष' को सरस्वती नदी से दूर निर्जल देश में छोड़ दिया, जहां उसे पानी न मिल सके और उसकी प्यास से मृत्यु हो जावे। उस जंगल में 'कवष' को बहुत प्यास लगी। उस पीड़ा के परिहार के लिए उसने 'प्रदेवत्रा' इत्यादि 'अपीनप्तृदेवताक' सूक्त को पढ़ा। इससे वह जल देवता के निकट पहुँच गया। सरस्वती भी उसके लिए दौड़ आई। वह आज भी तीर्थस्थल है। ऋषियों ने जब देखा कि, देवताओं ने उसका सम्मान किया है, तो उसे बुला लिया। उसी सूक्त को पढ़कर वे स्वयं भी जल तथा अन्न की देवता के स्थान को प्राप्त कर गये।[1]''

इसीलिए 'अपोनप्त्रीय' करना चाहिये, यह एक विधि है। इसी की प्रशंसा उपरोक्त अर्थवाद में की गई है। किन्तु इसके अतिरिक्त और भी कुछ महत्वपूर्ण तथ्य इस आख्यान से व्यक्त हो रहे हैं।

इसमें उस समय की मानाजिक गतिविधि पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। सदाचरण से दूर भटके हुए शूद्र व्यक्ति को किस प्रकार वैदिक आर्य दण्ड दिया करते थे इसका लौकिक चित्र यहां प्रस्तुत है। प्रयत्न करने पर पाप धोए जा सकते हैं, यह नीतिसार इस कहानी से निकाला जा सकता है। इस आख्यायिका को यज्ञ विषयक धर्मकथा का रूप ब्राह्मणकार ने अवश्य दिया है, फिर भी मूलतः जिस लोक-साहित्य से वह ली गई है, उसकी लौकिक विशेषताएं इस आख्यान में आ गई हैं, इसमे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि, एक शूद्र ऋषि को यज्ञ विधि का अधिकार प्राप्त हो गया है। एक और प्रसंग में ऐहिक लोककथा का आभास हमें मिलता है। कमलनाल चुराने वाले चोरों ने शपथ ली, इसका भी उल्लेख हम

---

१. ऐ. ब्रा. २. ८. १.

निर्दिष्ट कर चुके हैं।[1] यह उल्लेख एक गाथा में हुआ है, और भाष्यकार उस कहानी को नहीं, अपितु शपथ का संदर्भ मात्र देना चाहते हैं। किन्तु इस उल्लेख से उस समय की कमलनाल चुराये जाने की लोककथा ध्वनित हो ही जाती है।

कुछ आख्यानों में पशुपक्षियों को भी स्थान मिल गया है। प्रायः नीतिकथा के पात्र पशुपक्षी होते हैं। नीतिकथा के विकास की दृष्टि से ऐसे आख्यानों का तो और भी महत्व है। देवताओं के लिए सोम लाने के उद्देश्य से छन्द पक्षी बन कर गये हैं। इसे 'सौपर्णाख्यान' कहा जाता था। पहले गायत्री तथा त्रिष्टुप छन्दों ने प्रयास किया, किन्तु वे असफल रहे। अन्ततः गायत्री छन्द द्वारा सौपर्ण रूप लेकर सोम को लाया गया। उसे रास्ते मे सोमरक्षक गंधर्व के साथ युद्ध भी करना पड़ा।[2]

एक तो पक्षी मनुष्य के समान सोमाहरण करे और विरोधी गंधर्व से युद्ध करके लौट आवे यह तथ्य महत्वपूर्ण है। इसी तथ्य को आगे चलकर नीतिकथा मे प्रधानता मिली। प्राणी मनुष्यवत् व्यवहार करे यह नीतिकथा की एक बड़ी विशेषता है। एक और तथ्य हम स्पष्ट कर चुके हैं कि प्राणियों का नायक के काम में सहायक होना लोककथा का एक तत्व (Element) है। उसी का यह ब्राह्मण-कालीन दिव्य रूप है। इस प्रकार की प्रवृत्ति वैदिक साहित्य मे क्षीण हो रही है। फिर भी वह लोककथा की अतिप्राचीन घटना (Incident) है।[3] ऋग्वेद में सोमाहरण के सूक्त[4] मे तथा प्रस्तुत प्रसंग में लोककथा का वही तत्व प्रकट हुआ है। कोई पशु या पक्षी मनुष्य की सहायता करे इस घटना (Incident) का विकास परिकथा एवं नीतिकथा मे हो गया है। लोककथाओं से इस घटना को ग्रहण कर लेने से परीकथा या नीतिकथा मे उसका रूप लौकिक (Secular) ही रहता है। आज प्राप्त हो रही लोककथाओं मे यह प्राचीन घटना (Incident) परम्परा से चली आई दृष्टिगोचर होती है।[5] उसका मूल

---

१. ऐ. ब्रा. ५. २५. ५
"अनेन समेनसा सो भिशस्तादेनस्वतो वाऽपहरादेनः।
एकातिथिमप सायं रुणद्धि विसानि स्तेनो अपसो जहारेति, इति ॥

२. ऐ. ब्रा. ३. १३. १-२

३. ऐ. ब्रा. ३. १३. १-२

४. ऋ. सं. ३. ४३. ७.,

५. Journal of Bihar and Orissa Research Society, Patna. June-Sept., 1931, Vol. XVII, pts II-III, the Artical II. Studies in the Folk-lore of North Bihar, p. 189. The Folk-tale : "The Indigent Brāhman and the Helpful Birds."

ऋग्वेद तथा ब्राह्मणों के उपरोक्त सौपर्णाख्यान में वैदिक काल में प्रकट हो चुका है। इस आख्यान से उस समय की लोककथा का अनुमान किया जा सकता है। इस प्रकार की लोक-कथाएं उस युग में भी प्रचलित रही होंगी, यह स्पष्ट है। आगे चलकर ये ही पक्षी नायक-नायिकादि लौकिक व्यक्तियों की भी सहायता करते दिखाई देते हैं। परीकथा में यह विशेषता देखी गई है। नीतिकथा में ये पशु पक्षी स्वयं नायक-नायिका की जगह ले चुके हैं। अर्थात् ये प्राणी स्वयं पात्र बनकर अपनी कहानी से किसी नीतिसार को व्यक्त करने लग गये।

ऋग्वेद में भी सौपर्ण दृष्टान्त "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया०"[1] आदि मंत्र में प्रस्तुत किया गया है। किन्तु वहां पक्षियों का दृष्टान्त मात्र है। यहां सुपर्ण पक्षी स्वयं कार्यशील है और वे मनुष्यवत् कार्य कर रहे हैं। ब्राह्मणों में ये पक्षी सक्रिय हुए हैं। इस प्रकार सक्रिय पशु-पक्षियों ने कहानी में पात्रों का रूप धारण कर लिया है। नीतिकथा में ये पात्र आते हैं। उनके दृष्टान्त में कहानी कह देने से नीतिकथा हो जाती है। प्राणी-दृष्टान्त या प्राणी संबंधी अन्योक्ति में यदि कहानी प्रवेश कर जाय तो वह प्राणि-कथा ही हो जाती है। वैदिक तथा बाइबल जैसे धर्मग्रंथों में ऐसी कहानियों को दृष्टान्त कथा (Parables) कहा जाता है।

ये दृष्टान्त-कथाएं लौकिक नीतिकथाओं के ही पूर्व रूप हैं। ऋग्वेद में प्राणि दृष्टान्त तो प्राप्त होते हैं, किन्तु प्राणि-संबंधी संपूर्ण दृष्टान्त-कथाएं नहीं मिलतीं। ब्राह्मणों में पक्षियों का क्रियाशील प्रसंग सौपर्णाख्यान में है तथा ऐसे ही अन्य आख्यान दृष्टान्त-कथाएं ही है। मनुष्य तथा देवताओं की दृष्टान्त-कथाएं अनेक प्राप्त होती है। प्राणिपात्रों की दृष्टान्त-कथाएं कुछ कम है। जातकों में भी बौद्धों की नीतिकथाओं के साथ-साथ इस प्रकार की मानवसंबंधी दृष्टान्त कथाएं कही गई हैं। ब्राह्मणों की दृष्टान्त-कथाओं का ही उन पर प्रभाव है। इसीलिए हम कह सकेंगे कि, भले ही सौपर्णाख्यान जैसी दृष्टांतकथा नीतिकथा का वैदिक रूप ज्यों का त्यों प्रस्तुत नहीं करती हो, तथापि उसमें नीतिकथा की प्रारंभिक अवस्था अवश्य देखी जा सकती है। ऋग्वेद का सौपर्ण-दृष्टांत प्रतीकवाद पर आधृत है, तो ब्राह्मणों में वर्णित पक्षियों के द्वारा सोम लाने की घटना (incident) लोककथा का एक अंग है। एक का मूलाधार विद्युत्-श्येन साम्य है तो दूसरे का लोक-विश्वास। यह विभेद होते हुए भी ये दोनों स्थल नीतिकथा के अपने आपमें पूर्व रूप निरूपित किये जा सकते हैं। क्योंकि प्राणियों के दृष्टांत में कहानी ने प्रवेश किया है और अपने मुख्य प्रति-

---

१. ऋ. सं. १. १६४. २०.

पाद्य को स्पष्ट या पुष्ट किया है। तब नीतिकथा का रूप बन बैठा। उसी प्रकार पक्षियों द्वारा कथा में किसी पात्र की सहायता करने की घटना ने ही परी-कथा तथा नीतिकथा में विकास कर लिया है। यह स्पष्ट हो ही चुका है कि, नीति-कथा के प्राणिपात्र सक्रिय होते हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण के इस सौपर्णाख्यान में तो एक और लोक-साहित्य का प्राचीन तत्व (element) प्रकट हो रहा है। छन्दों का पक्षियों में रूपांतर (transformation) होना यह प्राचीन लोक-विश्वास का ही एक रूप है।[१] उसका अंकन ब्राह्मण साहित्य में हो गया है। इस प्रकार ब्राह्मणों के साहित्यिक तथा धार्मिक आख्यानों में भी उस समय की लोक-साहित्य की घटनाएं तथा तत्व (incidents and elements) देखे जा सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि, लोक-कथा भारतवर्ष में वैदिक युग में भी इतनी जनप्रिय एवं परम्परा से दृढमूल हो बैठी थी कि, उसके कुछ तत्व वैदिक आख्यानों में भी अनजाने ही प्रकट हो चुके। संस्कृत नीतिकथा में इसी प्राचीनतम लोककथा की अनेक घटनाएं एवं तत्व (incidents and elements) विकसित होकर तथा साहित्यिक रूप लेकर स्थिर हो बैठे है। लोक-साहित्य के इन तत्वों का प्रभाव हर युग के साहित्य ने ग्रहण किया हैं। ब्राह्मणों की आख्यायिकाओं मे पशु-पक्षियों ने प्रवेश कर लिया है, इन आख्यानों में ये प्राचीन लोक-साहित्यिक तत्व प्रकट हुए हैं इसलिए उनका महत्व है।

और एक आख्यान में पशुओं को भी मनुष्यवत् क्रियाशील दिखाया गया है। प्राचीन समय में देवता यज्ञ में 'अग्निषोमीय' पशु को मारना चाहते थे। किन्तु पशुओं ने यज्ञ में सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया। उन्होंने प्रत्युत्तर दिया, 'हमारा वध न हो।' देवताओं ने देखा कि, यज्ञ का यूप ही पशुओं के भय का कारण है। वह यूप वज्र के समान दिखाई देता था। तब देवताओं ने उस यूप का मुँह ऊपर करके उसे स्थापित किया। तब कहीं डरे हुए पशु देवताओं के निकट आए और वे उस यज्ञ में देवताओं के अन्न तथा आलम्भन के लिए तैयार हो गए।[२]

---

१. M. William, A Sanskrit English Dictionary, Oxford, p. 1139 "N. of a Vedic story which relates the transformation of the meters into birds that fetch the soma from heaven."

२. ऐ. ब्रा. २. ६. ३ "देवेभ्यो वै पशवोऽन्नाद्यायाऽऽलम्भाय नातिष्ठन्त तेऽपक्रम्य प्रतिवावदतोऽतिष्ठन्नास्मात्रालप्स्यध्वे नास्मानिति ततो वै देवा एतं यूपं-

इस आख्यायिका में पशु मूक नहीं हैं। वे भी मनुष्य के समान कह सके हैं: 'हम यज्ञ में सम्मिलित न होंगे।' पंचतंत्र की नीतिकथाओं में जो पशु मानववत् व्यवहार करते दिखाई देते है, उन्हीं का यहां प्राचीन रूप व्यक्त हुआ है। पशुओं ने कथोपकथन में भाग लिया है। देवताओं ने भी युक्ति से काम लिया है जिससे वे यज्ञ सम्पन्न कर सकें। व्यावहारिक चतुरता का परिचय उन्होंने यहां दिया है। ये दोनों तत्व नीतिकथा (fable) में महत्व रखते हैं। ब्राह्मणों की आख्यायिकाओं मे ये तत्व (elements) नीतिकथा का पूर्व रूप प्रकट करते है। इस प्रकार के तत्व वैदिक साहित्य में प्रकट हो रहे थे, इसी से लगता है कि लोगों मे प्रचलित प्राणिकथा की ओर ध्यान दिये जाने का यह प्रारंभ था। आगे चल कर जब लौकिक विद्या का महत्व बढ़ने लगा, शास्त्रों की चर्चा अधिक होने लगी; तब लौकिक कथा की ओर भी स्वाभाविक प्रवृत्ति हुई। फलस्वरूप भाष्य काल मे प्राणिकथा एवं नीति-संबंधी कहानी एकत्र आने की स्थिति में आ गई। फिर भी लोकवाणी मे ही वह रूप रहा। साहित्य में संपूर्ण नीतिकथा की अभिव्यक्ति शेष थी।

एक आख्यायिका में कहा है कि, वधस्थान की ओर पशु को जाते समय उसने मृत्यु को प्रत्यक्ष देखा। तब वह देवताओं का अनुसरण करने से साफ इंकार करने लगा। तब देवताओं ने उसे कहा: 'हे पशो, तुम आओ। तुम्हारे साथ ही हम सब स्वर्ग को चलेंगे।' पशु ने इस बात को मान लिया। किन्तु उसने एक सुझाव रखा, 'आपमें से कोई देवता मेरे आगे-आगे चला करे।' तब उसके वचन के अनुसार अग्नि देवता उसके आगे चलने लगे। पशु भी संतुष्ट हुआ और अग्नि के पीछे हो गया। इसलिए अग्नि को पहले ले जाना चाहिए।[1]

इस आख्यायिका का तो और भी महत्व है। इसमें न केवल देवताओं ने चतुरता से काम लिया, अपितु उनसे कहीं अधिक पशु ने अपनी व्यावहारिक प्रज्ञा का परिचय दिया है। यज्ञ में पशु अगर सम्मिलित नहीं होता तो यज्ञ सम्पन्न कैसे होगा? साधारण व्यक्ति के बिना भी बड़ों के काम रुक जाते है। तब उन्हें पहले संतुष्ट करना पड़ता है। देवताओं ने पशु को स्वर्गफल की प्राप्ति

वज्रमपश्यंस्तमेभ्य उदश्रयंस्तस्माद् बिभ्यत उपावर्तन्त तमेवाद्याप्युपावृतास्ततो वै देवेभ्यः पशवोऽन्नाद्यायाऽऽलम्भायातिष्ठन्त, इति।"

१. ऐ. ब्रा. २. ६. ६. "पशुर्वै नीयमानः समृत्युं प्रापश्यत् स देवान्नान्व कामयतै तुं तं देवा अब्रुवन्ने हि स्वर्गं वै त्वा लोकं गमिष्याम इति स तथेत्यब्रवीत्तस्य वै मे युष्माकमेकः पुरस्तादैत्विति तथेति तस्याग्निपुरस्तादैत्सोऽग्निमनु प्राच्यवत," इति।

करा देने का भी वचन दिया है। देवताओं ने वचन देने पर भी पशु का उन पर कोई विश्वास नहीं है। उसने स्पष्ट कहा है कि कोई देवता उसके आगे चले। इससे तो यह एक मनोरंजक तथ्य प्रकट हो रहा है कि, पशु जैसे साधारण योनि के जीव ने देवताओं के वचन पर यह सुझाव रख कर अविश्वास-सा प्रकट किया है। मानों पशु भी देवताओं की चालों से भलीभाँति परिचित थे। छल और कपट में निपुण इन्द्र जिनके मुखिया हैं, उन देवताओं पर अविश्वास उन दिनों जनसाधारण में रहा होगा। समाज में बड़ों द्वारा लालच देने पर भी अब छोटे लोग उनकी चाल में एकाएक फँस नहीं सकते यही सारतत्व इस कहानी से निकलता है।

यज्ञ में अग्नि को सामने रखना चाहिए, इस विधान की पुष्टि के लिए यह कहानी गढ़ी गई है। यह एक कल्पित कथा (fiction) ही है। वैसे तो पशु मनुष्यवत् कैसे बोल सकता था? पशु में इतनी चतुरता कहाँ? फिर भी यह चित्र हमारे सामने रखा गया है। संस्कृत नीतिकथा का वैदिक साहित्य के अन्तर्गत पाया जाने वाला यही प्रारंभिक रूप है। कथा में पशु मनुष्यवत् वाणी और बुद्धि का उपयोग कर सकते हैं। यह तत्व वैदिक साहित्य में ही प्रकट हो चुका था। पशु को समझाने बुझाने के लिए देवताओं ने अग्नि को आगे कर दिया और अपना स्वार्थ पूर्ण कर लिया, इसमें देवताओं की ही विजय है। पशु की आशंका भी दूर हो गई। राजनैतिक तथा लौकिक व्यवहार में ये दाँव-पेंच खेले जाते हैं। उसी का यह रूप ब्राह्मण-साहित्य में प्रकट हुआ है।

देवताओं ने छल और कपट से कोई कम काम नहीं लिया। उनके स्वभाव में भी साधारण मनुष्य की तरह सत् और असत् दोनों विद्यमान हैं। यज्ञ करते समय उनके मन में स्वार्थ है, उसमें विघ्न आते ही अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए उन्हें छल, कपट, बुद्धि-चातुर्य, साम, दाम, दण्ड आदि युक्तियों का प्रयोग करना ही पड़ता है।

एक और आख्यायिका में उनका यह स्वभाव स्पष्ट हुआ है। दो दो देवताओं के ग्रह क्यों बनाने पड़ते हैं, इसकी चर्चा इस कहानी में की गई है। प्राचीन काल में देवताओं में यह निश्चित नहीं हो पाया कि प्रथम सोमरस कौन पिये। तब यह शर्त रखी गई कि जो कोई वृक्ष को पहले छू लेगा वही सोमरस पहले पियेगा। इस प्रकार देवताओं की दौड़ प्रारम्भ हुई। उसमें वायु आगे निकल गया और बाद में इंद्र झपटकर उसके पास आया और कहने लगा कि हम दोनों साथ-साथ वृक्ष को छू लेंगे तो अच्छा। दोनों आधा-आधा रस बाँट लेंगे। वायु को यह बात सम्मत नहीं हुई। तब इंद्र ने कहा कि, केवल तीसरा ही भाग मुझे

दे दो। तब भी वायु ने इन्कार कर दिया। इन्द्र ने चौथा भाग ले कर तीनों वायु को देने की बात रक्खी, तब वायु राजी हो गया। इस से वायु और इन्द्र दोनों साथ-साथ पहुँचे। इसीलिए 'द्विदेवाय' ग्रहों की व्यवस्था की जाती है।[१]

इस कहानी में इंद्र की राजनैतिक सूझबूझ प्रकट हो रही है। इस कहानी से भी नीतिसार निकलता है: 'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पंडितः' यह नीति-वाक्य पंचतंत्र के चौथे तंत्र में मन्डूक एवं सर्प की कथा में कहा गया है।[२] इसी नीतितत्व का उपरोक्त आख्यायिका में इन्द्र ने अनुसरण किया है। यहाँ तक कि वायु को राजी करने के लिए वह सोम के एक चतुर्थांश से ही संतुष्ट हो जाता है। किन्तु इस सुलह से उसकी पराजय टल गई और उसे सोम भी मिल गया। इस से स्पष्ट है कि, पंचतंत्र में निर्दिष्ट उपरोक्त नीतिसार इन्द्र की आख्यायिका से भी निकलता है। उसी युक्ति-प्रयुक्ति का उपयोग यहाँ हुआ है। केवल भेद यह है कि, वहां मण्डूक तथा सर्प की कथा है और यहां इंद्रादि देवताओं की। इसीलिए यह दैवत-कथा (Myth) होते हुए भी नीतिकथा (fable) का पूर्वरूप अवश्य प्रकट कर रही है।

प्राचीन काल मे दौड़ लगाकार स्पर्धा की जाती थी और निर्णय किया जाता था यही तथ्य इस आख्यान से स्पष्ट होता है। इस प्रकार की प्रथा आधुनिक नहीं है। वैदिक भाष्य काल मे इस प्रकार की स्पर्धा का उल्लेख अन्यत्र भी मिलता है।[3] भारत में यह प्रथा कितनी प्राचीन है यह इस कहानी से स्पष्ट होता है।

प्राणि-विषयक उपमा भी हमें मिलती है। प्रतिदिन के यज्ञ में सर्वत्र समानता रखने का देवताओं तथा ऋषियों ने निश्चय किया। इंद्र जिस घर में प्रथम दिन आता है उसी घर में दूसरे दिन आता है। जैसे घरों में घूमने वाला बिल्ला (मार्जार) पूर्व दिन में जिन घरों में संचार करता है उन्हीं घरों में दूसरे दिन भी संचार करता है। इसलिए यज्ञों में समानता का निर्वाह करना चाहिए।[४]

मार्जार की इस उपमा में ऋषियों का प्राणियों के विषय में सूक्ष्म निरीक्षण व्यक्त हो रहा है। हम पहले ही देख चुके हैं कि अपने मंतव्य की पुष्टि के लिए

---

१. ऐ. ब्रा. २.१६.१.

२. पं. तं. "सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पंडितः।
अर्थेन कुरुते कार्य-सर्वनाशो हि दुस्सहः॥" ४.१८.

३. ऐ. ब्रा. ४. १७. १.

४. ऐ. ब्रा. ६. २९. २. "ओकःसारी वा इंद्रो यत्र वा इंद्रः पूर्वं गच्छत्यैव तत्रापरं गच्छति यज्ञस्यैव सेन्द्रेतायै।' इति, देखिये अध्याय ५.

प्राणियों के दृष्टांत या उपमान देना ऋषियों ने उपयुक्त समझा था। इस प्रकार मानवीय अर्थ व्यक्त करने के लिए प्राणियों की ओर उनका झुकाव दिखाई देता है। दूसरी विशेषता यह है कि, ब्राह्मणो में घरेलू प्राणियों को अधिक स्थान मिल पाया है। यज्ञ में उपयुक्त भेड़ या अजा और मार्जार ये आश्रम की सीमा के अन्दर रहने वाले प्राणी हैं। वन्य हिंस्र पशुओं की ओर उनका ध्यान कम गया है।

इन उपमाओं या दृष्टान्तों से अनुमान किया जा सकता है कि, यज्ञ-प्रसंगों मे अवकाश के समय मे इन प्राणियों की रोचक कहानियां भी कही-सुनी जाती थी। केवल उन्हे साहित्यिक रूप प्राप्त न हो सका। क्योंकि ऐसी मनोरंजन-प्रधान प्राणिकथाएं यज्ञ-विधानों की सिद्धि के लिए उपादेय नहीं प्रतीत हुईं। संभवतः प्राणिकथा को प्रौढ साहित्य में नहीं गिना जाता हो।

ऋग्वेद से प्राप्त सरमा की कथा को छाया ऐतरेय ब्राह्मण मे बलपूर्वक गाएँ चुराई जाने की घटना[1] मे अवश्य परिलक्षित हो सकती है। किन्तु ऋग्वेद में सरमा को दूती बनाकर भेजा गया है, और गायों का पता लगने पर इंद्र ने उन्हें प्राप्त किया है। यहां तो साम, दाम, भेद, दंड आदि युक्ति से काम नहीं लिया गया। केवल यज्ञ से ही गायों की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए ब्राह्मणों मे पायी जाने वाली गो-प्राप्ति किसी प्राणि-विशेप की चतुरता का निदर्शक नहीं है।

इसी ब्राह्मण मे एक आख्यायिका में अचेतन जल भी आपस में स्पर्धा करते दिखलाए गये है। इस प्रकार अचेतन में चेतनता का आरोप कर देने की प्रणाली ऋग्वेद से ही चली आ रही है। जलों की यह स्पर्धा ध्वनिकथा (allegory) का क्षीण पूर्व रूप प्रस्तुत करती है, क्योंकि ऐसे प्राकृतिक अचेतन पदार्थ जब प्राणवान हो उठते हैं, तब उनमें कहानी का प्रवेश होने के उपरान्त वह ध्वनि-कथा (allegory) में ही परिणत हो जाती है। बहुत कम दशा में वह स्पष्टाभिप्राय व्यक्त करने वाली नीतिकथा रह पाती है। अतः सूक्ष्मतया इसे हम ध्वनि-कथा का ही पूर्व रूप मान लेंगे।

ब्राह्मणों में कहानी-कला का विकास बहुत कुछ हो चुका था। ऋग्वेद में केवल कुछ एक सूक्तों से आख्यानों की कल्पना की जाती है। वे आख्यान आदि, मध्य एवं अन्त रूप अंगों से विहीन है। यजुर्वेद की संहिताओं में देवासुर-संग्राम की कथाएं तथा यज्ञ-संबंधी और भी आख्यान अधिक स्पष्ट रूप तो धारण कर सके, किन्तु ऋग्वेद की अपेक्षा वह बहुत बाद की रचना होने के कारण आख्यान-सूक्तों एवं यजुर्वेदीय आख्यानों में महान अन्तर परिलक्षित होता है।

---

१. ऐ. ब्रा. ६. २६. ८.

यजुर्वेद के समय में कहानी का रूप स्पष्ट हुआ है। साहित्य में उसे किसी सिद्धान्त या विधि की पुष्टि के लिए उपादेय समझा गया है। इसी तथ्य का स्पष्ट रूप ब्राह्मणों में प्रचुर मात्रा में दिखाई देने लगा। आख्यान इस प्रकार ब्राह्मणों में अर्थवाद के मुख्य अंग बन गये। विधि का कथन मात्र ही ब्राह्मण नहीं है। वह तो एक नीरस विषय ही है। आख्यानों के कारण ब्राह्मण ग्रंथ रोचक बन गये हैं। उपरोक्त आख्यानों में तो बड़े मार्मिक बुद्धिपक्ष को प्रस्तुत किया गया है।

किन्तु इन आख्यानों के अतिरिक्त भी प्राचीन कहानी का रूप यदि देखना हो तो शुनःशेप का कहानी की ओर संकेत किया जा सकता है। यह नीतिकथा नहीं है। नीति-संबंधी कहानी अवश्य हो सकती है। इस कहानी से कोई न कोई उपादेय नीतितत्व निकाला जा सकता है। इसलिए हम इसे शिथिल अर्थ में ही नीति-संबंधी कहानी (Moral tale) मात्र निरूपित कर सकेंगे।[1]

हरिश्चन्द्र के पुत्र शुन.शेप का यह आख्यान ऋग्वेद के सूक्त के आधार पर ऐतरेय ब्राह्मण में विस्तार के साथ प्रस्तुत किया गया है।[2]

एक पुरानी कहानी के रूप में इसका बड़ा ही महत्व है। एक पिता धन के लालच में अपने पुत्र को बेचकर उसे अपने ही हाथों से मारने को तैयार हो सकता है। यह तथ्य कहानी पढ़ने वालों को चुभ जाता है। ऋग्वेद के शुनःशेप सूक्त[3] का ही यह भाष्य-कालीन रूप है। इस से प्राचीन काल के नरमेध की कल्पना को विद्वानों ने निरस्त कर दिया[4] है। एक बात अवश्य है कि, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थिति का द्योतन अवश्य हो सकता है। ब्राह्मण अजीगर्त ने अपने पुत्र को बेच दिया है। मनुष्य-विक्रय की हीन प्रथा एवं दास-प्रथा उस समय प्रचलित थी यह स्पष्ट है। अजीगर्त और शुनःशेप का जो कथोपकथन है वह भी बड़ा ही मार्मिक है। भारतीय कहानी के विकास में इस कहानी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इसके अतिरिक्त अन्य भी अनेक प्राचीन आख्यान देखे जा सकते हैं। (ऐ. ब्रा. ३. १४, ३. ३०., ३. ४६. ५०, ४. १७. ५. १, ३. ३३, ५. ३२. ३. २०–२२, ६. ३३, ५. १४.) इनमें प्राचीन भारत की नैतिक विचारधारा भी अनजाने प्रकट हुई है।

---

१. कहानी का सार देखिये : अध्याय ३ में।

२. ऐ. ब्रा. ७७–३३. १–६.

३. ऋ. सं. १. २४. ३०.

४. Hariyappa, Regvedic Legends through the Ages II, p. 240.

शतपथ ब्राह्मण

यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण एक अत्यंत प्राचीन ग्रंथ है। उसमें भी प्राचीन आख्यायिकाएं मिलती हैं। बड़ी और छोटी कहानियों से शतपथ ब्राह्मण सरस हो उठा है। वस्तुतः इसका मुख्य उद्देश्य विधि-विधानों की व्याख्या करना ही है। फिर भी कई स्थानों पर आख्यानों ने साहित्यिक रूप भी धारण कर लिया है। इसलिए यज्ञविषयों की नीरस चर्चा से उठकर हम इन आख्यानों के सरस साहित्य में आ जाते हैं।

बड़े आख्यानों में पुरूरवा एवं उर्वशी,[१] जल-प्रलय की कथा[२] आदि हैं और ऐतरेय के शुन:शेप के समान इनका मूल भी संहिता में निहित है। कुछ छोटे आख्यान भी हैं। उन में से एक वह है जिसमें अग्नि-मन्थन के समय घोड़े को आगे किया गया है। देवासुर-संग्राम की प्राचीन कहानी भी इस ब्राह्मण में मिलती है।

एक आख्यायिका में मन एवं वाणी में कलह दिखाया गया है। दोनों अपने आप को श्रेष्ठ कहने लगे। मन ने कहा : 'मैं तुम से श्रेष्ठ हूँ, क्योंकि मुझे जो अभीष्ट है, वही तुम कह देती हो। तुम्हारा अपना उसमें कुछ नहीं होता। मेरी कृति का अनुकरण मात्र तुम करती हो। मेरा केवल अनुकरण करती हो, इसीलिए मैं तुम्हारी अपेक्षा श्रेष्ठ हूँ।' वाणी ने कहा : 'मैं ही श्रेष्ठ हूँ। तुम्हें जो ज्ञान होता है, उसको मै ही प्रथम ज्ञात करा देती हूँ। उसका निवेदन मैं ही करती हूँ।' फिर दोनों इस विवाद का निपटारा करने के लिए प्रजापति के पास गये। प्रजापति ने मन के पक्ष में निर्णय दिया और वाणी से कहा, 'मन तुम से अधिक श्रेष्ठ है। क्योंकि तुम उसकी कृति का अनुसरण करती हो, उसकी अनुचरी हो।' यह निर्णय सुनते ही वाणी का वीर्यभंग हो गया। क्षोभ के कारण उसका गर्भपात हुआ। उसने प्रजापति को कहा, 'तुमने मेरे विरोध में निर्णय दिया है, अतः मैं तुम्हारे हव्य का साधन नहीं बनूंगी।' इसीलिए यज्ञ में जहां प्रजापति देवता के लिए हवन करने का प्रसंग आता है, वहां मौन रह कर ही कर्म सम्पन्न किया जाता है। क्योंकि, प्रजापति के हविर्द्रव्य का वहन वाणी नहीं करती।[३]

वास्तव मे यह कोई ऐतिहासिक पुरातन-कथा (Legend) नहीं है। यह एक कल्पित कथा है। ब्राह्मणकारों ने अपनी यज्ञ-विधि को सिद्ध करने के लिए

१. श. प. ब्रा. ११ ५. १., ऋ. सं. १०. ९५. १–१८

२. श. प. ब्रा. १. ८. १.

३. श. प. ब्रा. प्रपाठक १, ब्राह्मण १, ८ १३.

इस कल्पित कथा का उपयोग कर लिया है। ऐसे आख्यानों को ऋषियों द्वारा रचित समझना चाहिए। वे कोई परम्परा से आये हुए ऐतिहासिक आख्यान नहीं है। इस प्रकार की कल्पित कथा का ब्राह्मण मे पाया जाना बड़ा ही महत्वपूर्ण है। क्योंकि मनुष्येतर मूर्त या अमूर्त को प्राणवान् बनाकर उनकी कहानी कहने का यह ढंग प्राचीन है। आज की ध्वनिकथा (allegory) तथा नीतिकथा (fable) का भी बीज यह कहानी प्रकट कर रही है। आज नीतिकथा में अधिकतर पात्र पशु-पक्षी आते हैं। एकाध अचेतन पदार्थ भी आ सकता है। किन्तु ब्राह्मण-काल में इस प्रकार का विभेद स्पष्ट नहीं था : यह कल्पित कथा है इतना कह देने से ही उस समय की नीतिकथा को भलीभांति कल्पना आ सकती है। मन एवं वाणी दोनों अमूर्त हैं। किन्तु इन दोनों का यहाँ मानवीकरण हो गया है। इनका मनुष्य के समान हुआ संवाद ब्राह्मणकारों की कल्पनाशक्ति का अद्भुत उदाहरण है। यह कल्पना नीतिकथा तथा ध्वनिकथा का मूलाधार है। इस दृष्टि से मन एवं वाणी के झगड़े की कथा में हम अत्यन्त प्राचीन नीतिकथा का बीज देख पाते हैं। आगे चल कर ध्वनिकथा में इसी प्रकार के अमूर्त तथा अचेतन मूर्त पदार्थों को प्राणवान होते देखा गया है। संस्कृत में प्रबोधचंद्रोदय नाटक में यह प्रणाली अपनाई गई है। वहाँ पात्र अमूर्त भाव ही है।[१] इधर अमूर्त पात्र मनुष्य के समान कार्य करने लगे। उधर मूर्त पदार्थ सचेतन होते गये। पशु-पक्षी भी कहानी में पात्र होने लगे। फलतः आगे चलकर नीतिकथा और ध्वनिकथा में कुछ भेद स्पष्ट हो गया। फिर भी प्राचीन काल में इनका मूलाधार एक ही था। यह रूप मानवीकरण से स्पष्ट हो गया था। उपरोक्त कल्पित कथा में वह प्राचीन रूप सुरक्षित है।

प्रजापति को हविर्द्रव्य देते समय मंत्रोच्चारण हलकी आवाज में ही करना चाहिए, इस विधि-विधान की पुष्टि के लिए मन एवं वाणी की यह कहानी कही गई है। फिर भी इसमें एक मनोवैज्ञानिक तत्व भी प्रकट हो रहा है। वाणी की अपेक्षा मन को ही अधिक श्रेष्ठता प्रदान कर ब्राह्मणकारों ने यह सूचित किया है कि, मन शुद्ध होगा तो वाणी भी शुद्ध होगी, अन्यथा मन की अपवित्रता से वाणी भी अपवित्र हो जाती है। इसलिए 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः' यही सत्य है। वाणी केवल एक माध्यम है।

---

१. कृष्ण मिश्र कृत प्रबोधचन्द्रोदय नाटक, Macdonell; History of Sanskrit Literature, London, Chapt. XIII, P. 366 , देखिए म. भा. १४. २२. में मन एवं इन्द्रियों का सम्वाद।

इसी ब्राह्मण के एक और आख्यान में भी छन्द द्वारा पक्षी बनकर अमृत लाने की घटना कही गई है। रास्ते में गंधर्वों ने सोम का अपहरण किया। तब देवताओं ने विचार किया: गंधर्व स्त्रियों को चाहने वाले होते है। अतः वाणी को उन्होंने गंधर्वों के पास सोम लाने के लिए भेज दिया। वाणी सोम को लेकर आ गई तब उसके पीछे गंधर्व भी आ गये और कहने लगे: 'सोम तुम ले लो, किन्तु वाणी को हमारे अधीन करो।' देवताओं ने स्वीकार कर लिया और कहा; 'यदि वह हमारी तरफ़ अपनी राजी खुशी से आ जाती है तो तुम उसे जबर-दस्ती नहीं ले जा सकोगे। हममें से उसे कौन आकृष्ट कर सकता है, देखें।' अनन्तर गंधर्वो एवं देवताओं मे स्पर्धा हुई। गंधवों ने वेद पठन किया। 'हम यह जानते हैं, वह जानते हैं' आदि प्रकार से उन्होने उसकी स्तुती की। इधर देवताओं ने वीणा निर्माण की और वे उसे बजाने एवं गाने लगे। उन्होंने उसे कहा: 'हम इस प्रकार गाकर तुम्हारी सांत्वना करेंगे।' वाणी देवताओं पर प्रसन्न हो गई। वह उनके पास आ गई। वास्तव में अर्थहीन गीत सुनकर वह भ्रान्त हो गई। गंधर्व उसकी स्तुति कर रहे थे। फिर भी वह उन्हे छोड़ कर गाने वाले देवताओं के पास ही आ गई। इस से आज भी हम देखते हैं कि, अर्थहीन एवं सामान्य वस्तु की ओर आकृष्ट होना महिलाओं का स्वभाव होता है।[१]

इस कहानी का सारतत्व हम देखते है कि, जो अच्छे गाते हैं, नाचते हैं, उनके प्रति स्त्रियां आकृष्ट हो जाती है। आज भी उनका यह स्वभाव दिखाई देता है।

शतपथ ब्राह्मण में देवासुर-युद्ध की भी कथा है। देवताओं की पराजय होने से वे भाग गये। तब असुर पृथ्वी का बँटवारा करने लगे। यह देख कर देवताओं ने विष्णु को आगे किया और असुरों से कहा: 'हमें भी पृथ्वी का हिस्सा मिले।' किन्तु असुरों के मन में मत्सर था। उन्होंने विष्णु द्वारा आक्रमित भूमि देना ही स्वीकार किया। विष्णु ने वामन रूप धारण किया था, इसलिए असुरों ने यह व्यवस्था रखी। किन्तु उसने विराट रूप धारण कर सारी पृथ्वी को आक्रान्त कर लिया। इस प्रकार देवताओं को सारी पृथ्वी मिल गई।[२] इस कहानी से स्पष्ट है कि देवताओं ने भी वामन रूप धारण कर असुरों के साथ कपट किया।

---

१. श. प. ब्रा. ३. २. ४, २-६, ३. १. १९.

२. श. प. ब्रा. कां. १. अ. २ ब्रा. ५. १-९ 'देवाश्च वाऽअसुराश्च' आदि।

डॉ० कर्णिक ने ब्राह्मणों में नीति-सम्बन्धी कथाओं पर प्रकाश डाला यह ठीक ही हुआ। फिर भी संहिताओं की खोजबीन के पश्चात् हम यह देख चुके हैं कि, ब्राह्मणों से पूर्व मंत्रसंहिता के काल में इस प्रकार की राजनैतिक तथा लौकिक चतुरता प्रकट करने वाले कथांश प्राप्त हैं। ऋग्वेद के सरमा-पणि-संवाद में इस तथ्य का प्रारंभिक रूप ही स्पष्ट हुआ है। किन्तु तैत्तिरीय संहिता में प्राप्त आख्यायिकाओं को विगत अध्याय में उद्धृत कर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि, इस प्रकार की राजनैतिक तथा लौकिक युक्ति या प्रज्ञा का अच्छा निदर्शन संहिताकाल के साहित्य में प्रकट हो गया था। संहिताओं की इन आख्यायिकाओं की चर्चा हो चुकी है। डॉ० कर्णिक द्वारा निर्दिष्ट शतपथ ब्राह्मण की कथाओं से भी तैत्तिरीय संहिता की आख्यायिकाएँ अधिक प्राचीन हैं।

शतपथ या ऐतरेय ब्राह्मण की कथाओं में कहानी-कला ने अवश्य विकास कर लिया है। किन्तु नीतिकथा की यह राजनैतिक या लौकिक चतुरता की विशेषता तैत्तिरीय संहिता की आख्यायिकाओं मे जितनी सुस्पष्ट दिखाई देती है, उतनी डॉ० कर्णिक द्वारा निर्दिष्ट आख्यायिकाओं में नहीं। तैत्तिरीय संहिता में हम देख चुके हैं कि, देवताओं ने कूटनीति के द्वारा उनसे स्पर्धाशील असुरों, मनुष्यों तथा ऋषियों को परास्त कर दिया तथा अपने स्वार्थ की सिद्धि कर ली। इस प्रकार की घटनाएँ शतपथ ब्राह्मण की आख्यायिकाओं में भी पाई जाती हैं। किन्तु उसका प्राचीनतम रूप तैत्तिरीय संहिता में पहले ही प्रकट हो चुका था।

इस प्रकार ब्राह्मण-काल से भी प्राचीन संहिताकाल में नीतिकथा के बीज-तत्व बोए जा चुके थे। वैदिक संहिताओं में आख्यानों के रूप में कहानी अपना स्वरूप तो प्रकट कर ही चुकी थी। उसमें तैत्तिरीय संहिता से राजनैतिक और लौकिक चतुरता भी व्यक्त होने लग गई। कहानी के क्रमिक विकास में यह एक नया मोड़ था। वैदिक युग में लौकिक विषय की कथा का यह प्रारंभ था। यहीं नीतिकथा का पूर्व रूप प्रकट हो चुका है। यही पूर्व रूप ऐतरेय तथा शतपथ ब्राह्मण की कथाओं में अधिक मात्रा में प्रकट होने लगा। वैदिक कथा की इस विशेषता का प्राणिकथा के साथ मिलन हो जाने के उपरान्त नीतिकथा

Wisdom in the "Satapatha Brāhmana" (I. V. 4.6.11), in the P. O. vol. VII, April 1942, Jan. 1943, pp 217-226 :—

"Some tales certainly establish the theory that the genealogy of narrative works such as the Panchatantra, the Hitopadesa etc. may be taken back to the days of the Brahmanas and that India is the 'home land' of such tales." (p. 217)

का रूप स्पष्ट हुआ है। संस्कृत साहित्य में पंचतंत्र एवं महाभारत में इन्हें स्थिरता प्राप्त हो गई।

'दि क्लासिकल एज' नामक ग्रंथ में कहा गया है कि यद्यपि इस प्रकार के साहित्य के तत्व (elements) भारत मे प्राचीन काल से चले आ रहे हैं, फिर भी पंचतंत्र से अधिक प्राचीन ऐसे प्रत्यक्ष उदाहरण नहीं मिलते।[१]

यह हम देख चुके हैं कि, संहिताओं में प्रत्यक्ष नीतिकथा नहीं मिलती और नीतिकथों के पूर्व रूप या बीज पंचतंत्र से भी प्राचीन काल में तैत्तिरीय संहिता-काल में प्राप्त होते है। ये पूर्व रूप बहुत बाद में किसी कथा-विशेष की विधा (form) में परिणत हो गये। पहले इनका रूप दृष्टान्त-कथा (parable) का रहा है। इनका उद्देश्य धार्मिक था, फिर भी राजनैतिक तथा लौकिक प्रज्ञा इनमें अनजाने ही प्रकट हो गई। फिर भी ऐतरेय तथा शतपथ ब्राह्मण में नीतिकथा ने पूर्ण रूप धारण नहीं किया था। किन्तु यह कहना कि, पंचतंत्र के पूर्व नीतिकथा के प्रत्यक्ष उदाहरण नहीं मिलते, समीचीन नहीं। पंचतंत्र के प्राप्त संस्करणों से पूर्व ही बौद्ध जातक में कई नीति-कथाएं संग्रहित हो चुकी थीं। पंचतंत्र की कथाओं के विकास में बौद्ध जातक-कथाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। श्री हर्टेल तथा श्री एजर्टन् आदि पंडितों के अनुसार पंचतंत्र का रचना काल ई. पू. २०० वर्ष का माना गया है। इसके एक शतो पूर्व ही जातकीय नीति-कथाओं के चित्र भरहुत को पाषाण वेष्टनियों पर चित्रित हो चुके थे। नीतिकथा के पूर्व रूप मात्र जातक काल के पूर्व ही वैदिक साहित्य में प्रकट हो चुके है। मूल पंचतंत्र तो अप्राप्य है। वह लोककथा का संग्रह अवश्य था।

भाष्य-काल में आख्यान का प्रारम्भ 'ह', 'वै' या 'वा' शब्दों से होता रहा है। इससे स्पष्ट है कि, आख्यान कहने वाले ऋषि भी उन्हें पुरातन-कथा समझते थे। ऋग्वेद-काल में इस प्रकार के वैदिक-अवैदिक आख्यान प्रचलित थे। उनके 'ह' 'वै' आदि शब्द साक्षी हैं। उन्हीं का उपयोग आवश्यकतानुसार ब्राह्मणों में हुआ। ये आख्यान दृष्टान्त के रूप में उपयोग मे लाए जाते थे। अतः दृष्टान्त कथा की उत्पत्ति (Origin of Parables) भारतवर्ष में ऋग्वेद काल में हो हो चुकी थी। यह दृष्टान्त कथा भी नीतिकथा का पूर्व रूप है। या यों कहिए कि बाद में स्पष्ट हुई नीतिकथा प्राचीन समय में दृष्टान्त-कथा के रूप में विद्यमान थी।

---

१. The Classical Age, Bhāratiya Vidyā Bhavan, Edited by, R. C. Majumdar and A. D. Pusalkar, Chapt. XV, 7. p. 314.

(१) मत्स्यावतार की मूल कथा :

भगवान् विष्णु के दस अवतारों में तीन अवतार पशु-सम्बन्धी योनि में हुए हैं। बौद्ध जातकों से स्पष्ट है कि भगवान बुद्ध ने अपने पूर्व जन्म पशुयोनि में भी लिए थे। अपने जन्म से कोई महामहिम व्यक्ति पशु योनि का स्तर भी ऊँचा करे यह भारतीय लोक-विश्वास के अनुकूल घटना है। विष्णु के तीन अवतारों में यही विश्वास अवतार-वाद के रूप में प्रकट हुआ है। किन्तु मूलरूपेण वह प्राणिसम्बन्धी एक घटना ही रही है। भले ही आगे चल कर वह अवतार-कथा बन बैठी हो। इन अवतारों की मूल कथा अवश्य रूपेण नीतिकथा का पूर्वरूप प्रकट करती हैं। अतः उनकी चर्चा करना असंगत न होगा। क्योंकि ये मूलकथाएँ भी प्राचीन साहित्य में सुरक्षित हैं।

प्राचीन समय मे मत्स्य का सम्बन्ध प्रलय-कथा से रहा है। भारतवर्ष में मनु एवं मत्स्य की कथा सर्वप्रथम शतपथ ब्राह्मण में मिलती है।[१] प्रातःकाल मनु के हाथ पर पानी के साथ एक छोटा-सा मत्स्य भी आ गया। उसने मनु से कहा, 'मुझे अगर सुरक्षित रखोगे तो मैं तुम्हारे काम आ सकूँगा।' मनु ने पूछा, 'तुम कैसे मेरे काम आ सकोगे ?' मत्स्य ने मनु से एक नाव बनाने को कहा उसमे रखकर मत्स्य को बड़ा करके उसे समुद्र में छोड़ दिया जावे। आगे चल कर एक बड़ा प्रलय आवेगा। उसमे वह मनु को बचावेगा। मनु ने वैसा ही किया और उसे बड़ा होने पर समुद्र में छोड़ दिया। एक दिन जलप्रलय हुआ। तब मनु ने नाव का सहारा लिया। इतने में वह मत्स्यराज मनु के पास आया। उसने मनु को हिमालय को चोटी पर सुरक्षित लाकर छोड़ा। वहाँ मनु ने यज्ञ किया। उसे वहाँ स्त्री का लाभ हुआ और प्रजा की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार मनु का ऋण मत्स्य ने चुका दिया।

वास्तव मे नीतिकथा का ही यह प्राचीन रूप है। किन्तु इस बीजतत्त्व का विकास दैवतवाद और अवतार-वाद के कारण पौराणिक मत्स्यावतार के रूप में हो गया है।

मोहेनजोदड़ो के सभ्यता काल मे मत्स्य एक मुख्य देवता रहा है। जल-प्रलय होने के उपरान्त हो मत्स्य की यह पुरातन कथा (legend) बन बैठी होगी तो आश्चर्य नहीं। संभवतः इसी जल-प्रलय ने मोअनजोदड़ो को भूगर्भ में दबा दिया, शतपथ,में यह कथा उसी प्रलय की ओर संकेत कर रही है। भारतीय युद्ध के बाद यह जल-प्रलय आया होगा। ऋग्वेद में इस जल-प्रलय का कोई उल्लेख नहीं है। इससे अनुमान है कि ऋग्वेद के बाद ही यह जलप्रलय

---

१. श. प. ब्रा. अ. ८. ब्रा. १, १-६.

कोई उल्लेख नहीं है। इस से अनुमान है कि, ऋग्वेद के बाद में ही यह जल-प्रलय आया होगा। ऋग्वेद में तत्कालीन अनावृष्टि की छाया पड़ी हुई दिखाई देती है। पर्जन्य-सूक्त से इस तथ्य को पुष्टि हो सकती है। प्रलय का कुछ संकेत ऋग्वेद के एक सूक्त में अवश्य मिलता दिखाई देता है।[१] किन्तु वह अस्पष्ट-सा है और मनु-मत्स्य-कथा में वर्णित प्रलय से उसका संबंध निश्चित रूप से नहीं जोड़ा जा सकता।[२] अथर्ववेद, शतपथ ब्राह्मण तथा महाभारत में प्रलयकथा को प्राचीन हो जाने पर ही स्थान मिला है।[3]

संसार मे प्राचीन समय में अनेक प्रलय कथाएं प्रचलित थीं। झेंद अवेस्ता में इस कथा को हम पाते हैं।[४] बाइबल में ईश्वर ने नूह को यह प्रलय-कथा सुनाई है।[५] यूनानी धर्मकथा के अनुसार ईश्वर ज्यूस (Zeus) ने ड्यूकेशियन (Deucation) और उसकी पत्नी पाशाह (Psyssha) को एक नाव बनाने को कहा है।[६] यहाँ भी इस कथा का कल्पना-बंध (Motif) विद्यमान है। बेबिलोनियन कथा से शतपथ की कथा अधिक प्राचीन है फिर भी ये दोनों स्वतंत्र रही होंगी। डॉ. सूर्यकान्त का यह कथन युक्तिसंगत लगता है कि, मनु एवं मत्स्य की कथा वेबिलोनियन बाढ़ की कथा से भिन्न हैं।[७]

जहाँ तक नीतिकथा का संबंध है, शतपथ की मनु एवं मत्स्य की कथा को हम नीतिकथा के प्राचीन रूप में देखते हैं। अनन्तर भले ही यह एक अवतार-कथा बन गई हो। इस प्राचीन कथा मे एक मत्स्य मनुष्य के समान मनु से बात-चीत करता है। वह अपने उपकार-कर्त्ता को बचाता है, यह कोई कम महत्वपूर्ण घटना नहीं है। बाद में ऐसी ही घटनाएं संस्कृत नीतिकथा में विकास कर चुकी है। आज के विदेशी नितिकथाकार भी मत्स्य-कथा लिखने में रुचि रखते

---

१. ऋ. सं. ७.८८. ३.५.

२. Dr. Suryakant, The Flood Legend in Sanskrit Literature, Delhi, Introduction, pp. 1-4.

३. A. P. Karmarkar, The Fish in Indian Folklore and the Age of Atharvaveda, ABORI, Poona, XXIV (3-4), 1944.

४. Avesta Vedidad Fargar, II, 25.

५. बाइबल, तौरेत पर्व, ६.

६. D. P. Mackenzi, Myths of Babylonia and Assyria, p. 195.

७. Dr. Suryakant, The Flood Legend in Sanskrit Literature, Delhi, Intro. p. VIII.

हैं। किन्तु बहुत प्राचीन समय से भारतवर्ष में मत्स्य की कथा प्रचलित हो चुकी थी। कथासरित्सागर में, एवं विदेश में मृत मत्स्य द्वारा किसी का उपहास करने की घटना (incident) कहानी का अंग बन बैठी है।[1] शतपथ की उपरोक्त कथा का विकास संस्कृत पुराण साहित्य में हुआ है। उसके अन्यान्य रूप महाभारत, मत्स्य पुराण, आग्नेय पुराण, पद्म पुराण, विष्णु पुराण भागवत पुराण, स्कंद पुराण, भविष्य, पुराण, कालक पुराण आदि ग्रंथों में देखे जा सकते हैं।[2]

(२) कूर्मावतार की मूल कथा

विष्णु के अवतारों में कूर्मावतार की मूल कथा भी द्रष्टव्य है। कूर्मावतार के मूल मे भी परम्परा से प्राप्त कूर्म संबंधी वैदिक कल्पना विद्यमान है। आगे चल कर उसकी भी दैवत-कथा बन गई है। वाजसनेयी संहिता में जल के देवता के रूप मे कच्छप वर्णित है।[3] अथर्ववेद में उसे प्रजापति सदृश माना है।[4] ऐतरेय ब्राह्मण में ऐन्द्र महाभिषेक की प्रशंसा मे विश्वकर्मा ने कश्यप को पृथ्वी का दान दिया, इस घटना का उल्लेख है। इसमे पृथ्वी स्वयं विश्वकर्मा को कहती है : हे विश्वकर्मन्, मुझे कोई भी मर्त्य दान में नहीं दे सकता। मैं पानी में डूब जाऊंगी तब कश्यप का यह प्रयास (संग्राम का) व्यर्थ ही होगा।[5] कच्छप एवं कश्यप में रूपात्मक साम्य तो है ही। इसके अतिरिक्त जल में पृथ्वी का डूब जाना एक प्राचीन कल्पना है। उसी का विकास पुराणों में कूर्मावतार की कथा मे हुआ है। शतपथ ब्राह्मण मे भी प्रजापति का रूपान्तर कूर्म में हुआ दिखाया गया है।[6] तैत्तिरीय संहिता के उल्लेखानुसार पुरोडाश का कूर्म में रूपान्तर हो गया है।[7] कोई व्यक्ति या वस्तु पशु का रूप धारण कर लेता है,

---

१. कथा सरित्सागर, तरंग ५वां Tawney's translation, note on p. 24. (Ed. 1880)

२. बाढ़ की कथाओं के अन्यान्य रूप देश-विदेश के साहित्य में प्राप्त हैं। उनके लिए देखिए : Dr. Suryakant, The Flood Legend in Sanskrit Literature, Delhi 1950.

३. वा. सं. १३. ३१.

४. अ. वे. १९. ५३. १०.

५. ऐ. ब्रा. ८. ३९.७. :— 'न मा मर्त्यः कश्चन दातुमर्हति विश्वकर्मन् भौवन मां विदासिथ। निमङ्क्ष्येऽहं सलिलस्य मध्ये मोघस्त एष कश्यपायाऽऽस संगर इति।'

६. श. प. ब्रा. ७. ४. ३, ५

७. तै. सं. २. ६. ३. ३.

यह एक प्राचीन लोकविश्वास प्राचीन साहित्य में प्रकट हुआ हैं। यह कूर्म-संबंधी मूलकथा भी प्राचीनतम प्राणिकथा की ओर ही संकेत कर रही है। भले ही देवतारोप के कारण उसका विकास नीतिकथा के रूप में न होकर दैवतकथा (Myths) में हो गया हो।

(३) वराहावतार की मूलकथा

वराहावतार की मूल कल्पना तैत्तिरीय ब्राह्मण की एक उत्पत्ति-कथा[1] में व्यक्त हो गयी है जो तैत्तिरीय संहिता का ही भाष्यकालीन रूप है। तैत्तिरीय संहिता की कथा में पृथ्वी की उत्पत्ति के विषय में कहानी है।[2] जल-प्रलय होने पर प्रजापति वायुरूप में घूम रहे थे, तब उन्हें पृथ्वी दिखाई दी। उन्होंने वराह का रूप धारण कर उसका आश्रय लिया। अपने गीले अंग को उन्होंने पृथ्वी से रगड़ा तो उसका विस्तार हुआ। उसका 'पृथन' होने से वह 'पृथ्वी' हुई। तैत्तिरीय ब्राह्मण की कथा के अनुसार प्रजापति को कमल दिखाई दिया। उसे देख कर उन्हे कल्पना हुई कि उस कमल के डंठल की कोई आधारभूत पृथ्वी अवश्य होगी। तब वराह का रूप धारण कर प्रजापति तल में पहुँच गये। वहां की जमीन को अपनी दाढ़ से उन्होंने खोदा। ऊपर आकर उस मिट्टी को कमल के पत्ते पर उन्होंने बिछा दिया। इस प्रकार उसका विस्तार हुआ, 'पृथन' हुआ, अतः वह पृथ्वी हुई।

इस कथा का विकास पुराण ग्रंथों में वराहावतार के रूप मे हुआ है।[3] फिर भी संहिता एवं ब्राह्मण में व्यक्त मूल कथा से नीतिकथा का प्राचीन रूप झलक रहा है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण

तैत्तिरीय संहिता[4] में जो शण्ड और मर्क की कथा आ चुकी थी, वही-तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी आ गई है।[6]

राजनैतिक और व्यावहारिक चतुरता को व्यक्त करने वाली आख्यायिका भी तैत्तिरीय ब्राह्मण में है। 'कालकंज' नामक असुर थे। उन्होंने स्वर्ग के लिये

१. तै. ब्रा १. १, ३.

२. तै. सं. ७. १, ५.

३. Macdonell, fournal of Rayal Asiatic Society 27, 178-189.

४. तै. सं. ६. ४. १०.

५. तै. ब्रा. १. १. १.

६. वही १. १. २.

यज्ञ प्रारंभ किया, तब ब्राह्मण का वेष धारण कर इन्द्र ने असुरों से उसे भी यज्ञ में सम्मिलित कर लेने का अनुरोध किया। उन्होंने उसे ले लिया। जब यज्ञ के लिए प्रत्येक व्यक्ति अपनी ईंट जमाने लगा, तब इन्द्र ने भी अपनी ईंट जमा दी। अनुष्ठान के समाप्त हो जाने पर पूर्व-रचित चयन पर चढ़कर असुर स्वर्ग को जाने लगे तब इन्द्र ने अपनी ईंट निकाल ली। तब चयन रूप श्येन पक्षी गिर पड़ा, और असुर स्वर्ग तक पहुँच न सके। इस दोष के कारण वे मकड़ी हुए। दो असुर श्रद्धा के बल पर स्वर्ग में पहुँच सके। किन्तु चयन-भ्रष्टता के कारण वे देवलोक[४] के कुत्ते बन गये।

इस कहानी में इंद्र का छल और कपट स्पष्ट रूप में प्रकट हुआ है। अपनी ईंट निकालने में इंद्र ने असुरों के यज्ञ की पूर्ति में बिघ्न उपस्थित किया। उसका स्वार्थ पूरा हो गया। कुछ असुर मकड़ी और कुछ कुत्ते बन गये, इस तथ्य को और भी ध्यान देना चाहिए। मकड़ी की उत्पत्ति का कारण एवं देवलोक के कुत्तों की कल्पना, लोक-साहित्य के ही प्राचीन तत्व प्रकट कर रहे हैं।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी देवासुर-संग्राम की कथाएं मिलती हैं।[१] देवताओं की उत्पत्ति,[२] आंगिरस ऋषियों का यज्ञ,[३] जगत्सृष्टि,[४] सोम विवाह[५] स्वर्ग के लिए स्पर्धा[६], इंद्र भारद्वाज सम्वाद[७], नाचिकेता[८] आदि अनेक कथाएं प्राचीन कहानी का विकास प्रस्तुत कर रही हैं। इसी ब्राह्मण में एक स्थान पर कहा है कि, अग्नि ने चूहे का रूप धारण कर पृथ्वी में प्रवेश किया और वह बिलों में संचार करने लगा।[९] यहां भी नीतिकथा का बीज प्रकट हुआ है। किसी देवता ने पशु का देह धारण करने की कल्पना प्राचीन है। उसी का यह रूप तैत्तिरीय ब्राह्मण में प्रकट हुआ है तो उस समय की प्राणिकथा की ओर संकेत कर रहा है।

ताण्डय ब्राह्मण में भी आख्यायिकाएं मिलती हैं। एक कहानी में देवताओं द्वारा वाणी का त्याग किये जाने की घटना वर्णित[१०] है। एक और कथा में यज्ञ का अश्वरूप से अपाक्रमण और दर्भ से प्रत्यावर्तन दिखाया गया है[११]। ये सब आख्यान संस्कृत पवित्राख्यान की परम्परा में अपना विकास प्रस्तुत कर रहे हैं।

---

१. तै. ब्रा. १. १. ४, १. ५, ६.　　२. वही १. १, ९.
३. वही २. १, १.　　४. वही २. २, ९.
५. वही २. ३, ११　　६. वही ३. ९. २१.
७. वही ३. १०, ६-११.　　८. वही ३. ११, ८.
९. तै. ब्रा. १. १. ३ :—'अग्निर्देवेभ्यो निलायंत. तदेवावरुन्द्धे, इति।
१०. ताण्डय ब्रा. ६. ५. १०-१२　　११. वही ६. ६. ८.

कौशीतकि ब्राह्मण में भी एक स्थान पर नीतिकथा का पूर्व रूप दिखाई दे रहा है। सुवर्ण पक्षी केशी दार्भ्य को दीक्षा देता है।[१] एक पक्षी शिक्षा-दीक्षा या उपदेश दे यह घटना (incident) नीतिकथा का बीज रही है। ब्राह्मण-साहित्य में पाये जानेवाले अन्य प्राचीन पूर्वरूपों में यह भी एक है।

तैत्तिरीय आरण्यक में भी कथाओं को अपनाया है। अजापुत्रा अदिति की कहानी द्रष्टव्य है।[२] एक और कहानी के अनुसार शास्त्र एवं ब्रह्मचर्य का पालन कर के देवताओं ने यज्ञ किया तब उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति हुई, किन्तु असुरों ने वैसा नहीं किया, इसलिए उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति नहीं हुई।[3] अर्थात इस आरण्यक के समय में देवताओं एवं असुरों के बीच देवताओं के पक्ष में ही अधिक पक्षपात दिखाना कहानीकार का कर्तव्य दिखाई देने लगा है। कर्मकाण्ड एवं धर्मशास्त्र की प्रधानता भी हो बैठी थी।

राक्षसों का सूर्य के साथ युद्ध हुआ इस विषय की भी एक कहानी है। एक और बड़ी कथा है जिसमें देवताओं का युद्ध वर्णित है। कहानी इस प्रकार है: देवताओं ने यज्ञ करना प्रारंभ किया। यह ठहर चुका था कि, यज्ञ का कीर्ति रूप फल आपस में समान रूप से बाँट लेंगे। कुरुक्षेत्र इस यज्ञ की वेदी का क्षेत्र था। पश्चिम में परिणत् देश और उत्तर में तुर्घ्न (तुर्क ?) था। रूखा सूखा मारवाड़ इस यज्ञ का उत्कर (कचरे कूडे का स्थल) था। यद्यपि यज्ञ में सभी देवताओं को समान रूप से सम्मान प्राप्त था, फिर भी यज्ञ के लिए कोई गृहपति होना आवश्यक था। यह सम्मान विष्णु को मिला। सब दूर वार्ता फैल गई कि विष्णु ने यज्ञ किया। फलस्वरूप विष्णु को गर्व हो गया। अन्य देवताओं से यह नहीं सहा गया। यज्ञीय कीर्ति का पूरा श्रेय विष्णु को कैसे जा सकता है? वे विष्णु पर हमला करने आये। विष्णु ने इच्छा मात्र से ही धनुष्य और बाण अपने हाथ में उत्पन्न किए। इसीलिए वह 'यज्ञजन्मा' है। यज्ञ ही विष्णु है, इनमें कोई भेद नहीं है। धनुष्य एवं बाण भी 'यज्ञजन्मा' है। शस्त्र-हीन देवता सशस्त्र विष्णु को देखकर डर गये। अब तो विष्णु के सिर पर गरूर सवार हो बैठा। विष्णु ने विकट हास्य किया। घमंड के कारण उसके कर्म में दोष उत्पन्न होने लगे। हास्य के कारण उसका यज्ञतेज निकल गया।

---

१. कौ ब्रा. ७. ४.; Keith's Rigveda Brahmanas, HOS, 1920, pp. 385-386.

२. तै. आ. १. १३.

३. तै. आ. २. १.

वह उसे फिर से प्राप्त न हो इसलिए देतवाओं ने उस तेज को औषवियों में छिपाकर रक्खा। ये ही श्यामक-स्मयाक' औषधियां हुई हैं। यज्ञ में दीक्षित ने हंसना नहीं चाहिए, यदि हंसी आ ही गई तो प्रावरण से मुंह ढांक लेना चाहिए।

विष्णु अपने धनुष्य को टिकाकर खड़े रहे। उसका एक कोना जमीन पर तथा दूसरा ड्योढ़ी पर लगा था। तब देवताओं ने कीड़ों से सहायता मांगी। कीड़ों ने यह शर्त रक्खी कि जहां वे अपने छोटे मुंह से खोदेंगे वहां की जमीन गीली हो जाया करे। देवताओं ने उनका कहना मान लिया और वे धीरे-धीरे जमीन पर टिके हुए धनुष्य की डोर को अपने दांतों से काटने लगे। रस्सी कटने से धनुष्य की कमान जोर से ऊपर उछली और ड्योढ़ी पर आघात होने से (यज्ञ) विष्णु का सिर हवा में उड़ गया। नीचे गिरने वाले सिर को 'प्रवर्ग्य', घ्रां घ्रां आवाज करने पर 'घर्म' एवं पराक्रमी यज्ञ-पुरुष के शरीर से अलग होने के कारण 'महावीर' कहा गया। उसी का एक नाम 'सम्राट' भी हुआ।

तीन देवताओं ने विष्णु के शरीर को बांट लिया। किन्तु मस्तक-विहीन शरीर होने के कारण उन्हे यज्ञ का अभीष्ट फल नहीं मिला। उन्होंने उस सिर को शरीर से लगा देने के लिए अश्विनीकुमारों की प्रार्थना की। उन्होंने ने भी शर्त रखी कि यज्ञ का सोम उन्हें मिलना चाहिए। शर्त मान ली गई तब अश्विनी-कुमारों ने पूर्ववत् यज्ञ-शरीर से सिर जोड़ दिया। इससे देवताओं को यज्ञ का फल तथा स्वर्ग प्राप्त हुआ।[1]

इस कहानी में देवता आपस मे ही युद्ध करते दिखाई देते है। ऋग्वेद के समय में जब दस्युओं तथा अनार्यो का एकमात्र शत्रुत्व था, तब उनके साथ संघर्ष होता रहा। किन्तु अब आपस में ही शत्रु होने लगे थे। यज्ञ कर्म के फल के विषय में ही देवताओं में संघर्ष होने लगा दिखाई देता है। ब्राह्मणों में देव एवं असुर झगड़ते हुए दिखाई देते हैं। देवताओं एवं ऋषियों में भी छल-कपट को स्पर्धा दिखाई देने लगी, किन्तु अब यहां देवताओं में ही संघर्ष है। संघर्ष-कथा के इस क्रमिक विकास से वैदिक समय की सामाजिक एवं राजनैतिक गतिविधि का संकेत मिल जाता है।

उस समय की लोककथा का प्रभाव भी उपरोक्त कथा ने ग्रहण कर लिया है। इसमें विशेष रूप से कीड़ों से देवताओं द्वारा सहायता लेने की घटना महत्व-पूर्ण है। यह घटना (incident) प्राचीन लोककथा से ही प्राप्त है। नीतिकथा में इसी का रूप स्वतंत्र हो कर प्राणी अपनी ही कहानी प्रस्तुत कर रहे हैं।

---

१. तै. आ. ५. १.

लोक कथा की इन घटनाओं में प्रारंभ में पशु-पक्षी सक्रिय होकर काम करने लगे यही बड़ी विशेषता थी। इसका एक रूप परीकथा में सीधे-सादे रूप में अपनाया गया। तभी परीकथा के नायक की सहायता बंदर, तोता आदि पशु-पक्षी करते दिखाई देते है। किन्तु नीतिकथा में प्राणियों की सक्रियता में इतनी वृद्धि हो गई कि किसी दूसरे की सहायता की अपेक्षा वे स्वयं सक्रिय हो उठे हैं। इससे प्राणियों की अपनी एक कहानी प्रस्तुत होने लगी। लोक साहित्य में प्राणिकथा के रूप में प्रचलित हुई यह घटना है। उसी का यह साहित्य में प्रविष्ट रूप है। कीड़ों ने भी शर्त रखी है। कीड़े जब जमीन खोदते हैं तब जमीन गीली हो जाती है। इस तथ्य को देखकर लोगों का यह विश्वास रहा होगा कि देवताओं से उन्हे यह देन प्राप्त हुई है। इसी का रूप आरण्यक में देवताओं के द्वारा वर दिए जाने की घटना में दिखाई देता है।

इससे प्राचीन समय का एक कल्पना-बंध (Motif) स्पष्ट हो जाता है। किसी क्षुद्र प्राणी के द्वारा बड़ों की सहायता कर बड़ों को नष्ट कर देना। क्षुद्र कीटकों ने धनुष्य की डोर काटकर देवताओं पर उपकार किया है। इसी प्रकार का कल्पना-बंध हमें चूहे की एक विख्यात कहानी में भी मिलता है। सिंह व्याध के पाश में फँस गया था। उसे कोई छुड़ा नहीं सकता था। किंतु एक चूहे ने मित्र के नाते उस पाश के सब धागे अपने दाँतों से काट दिये। सिंह मुक्त हो गया। एक और नीतिकथा में हिरण्यक नामक चूहे ने कपोतराज चित्रग्रीव के पाश काट दिये और उसे मुक्त कर दिया।[१] अवसर आने पर क्षुद्र समझे गये जानवर भी बड़े महत्व का कार्य कर जाते है।

कहानी कहते समय बीच-बीच में 'यज्ञजन्मा' 'सम्राट' 'श्यामाक-स्मयाक' आदि प्रवर्ग्य यज्ञ-संज्ञाओं का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इससे कहानी की गति को बाधा पहुंचती है। किन्तु आरण्यकों में कहानी को कहानी के लिए नहीं, प्रत्युत अपने मन्तव्य या सिद्धांत की पुष्टि के लिए ही अपनाया गया। ब्राह्मणों के समान आरण्यकों ने भी अपने विचारों को इस प्रकार की आख्यायिकाओं से पुष्ट करने का प्रयास किया है।

निवेदन प्रणाली (The device of narration) :

ब्राह्मणों में पंचतंत्र की कथाओं की निवेदन-प्रणाली का भी प्राचीन रूप देखा जा सकता है। पंचतंत्र में एक स्वतंत्र कथा-रचना की प्रणाली अपनाई गई है। यह ग्रंथ पाँच तंत्रों में बँटा हुआ है। मुख्य तंत्र की एक बड़ी कथा है और इस बड़ी कथा में अनेक उपकथाएँ गूँथ दी गई है। बड़ी कहानी मुख्य होती है।

---

१. पं. तं. तंत्र २, हिरण्यक-चित्रग्रीवकथा।

जैसे 'अ' और 'ब' का सम्वाद हो रहा है। इसमें कभी 'अ' या कभी 'ब' सम्वाद के बीच में विषय के अनुसार अपनी दूसरी कहानी कह देते हैं। उपाख्यान समाप्त होने पर पुनः मुख्य कहानी को आगे कहा जाता है। इस प्रकार पुनः कोई नीतितत्व कह कर किसी प्राणी के दृष्टान्त को कहा जाता है। दूसरा उसे स्पष्ट करने को कहता है। तब पहला व्यक्ति प्राणिकथा सुनाता है। यह कहानी भी समाप्त होती है। इस पर फिर से मुख्य कहानी के पात्रों का सम्वाद प्रारम्भ हो कर मुख्य कहानी पुनः चलती है।

कभी-कभी तो, 'अ' और 'ब' में से कोई भी सम्वाद के बीच में जिस उपाख्यान को सुनाता है उस उपाख्यान का पात्र ही साथी 'क' को और एक अन्तःकथा सुनाता है। इस प्रकार कहानी में कहानी कहने की प्रणाली अपनाई गई है। मुख्य कथा के पेट में उपकथा और उपकथा के पेट मे अन्तःकथा कहने की यह प्रणाली भारतीय ही है। विश्व के विद्वानों ने कथा-निवेदन की इस प्रणाली को मंजूषीकरण (emboxment) निरूपित किया है। अर्थात एक मंजूषा या पेटी होती है और कभी-कभी उस छोटी पेटी में एक और छोटी पेटी रख दी जाती है। वास्तव में अन्दर की वह छोटी पेटी अपने आप स्वतंत्र नहीं है। बीच की पेटी से आवृत है और वह बीच की पेटी बड़ी पेटी के पेट मे निहित है। पंचतंत्र मे इस प्रकार की प्रणाली को अपनाया गया है। नीति-कथा की यह रचना-सम्बन्धी विशेषता भारतीय रही है।

किसी एक तथ्य या सिद्धान्त की पुष्टि के लिए कथाओं की माला प्रस्तुत करने की यह प्रणाली (device) भारत से विदेश में गई है, जिसका एक उदाहरण अरेबियन नाइट्स हैं। इस प्रणाली का आविष्कार ब्राह्मण ग्रंथों में पहले ही हो चुका था। जिस प्रकार नीति-प्रधान साहित्य संहिताकाल की देन है, उसी प्रकार किसी एक तथ्य या तत्व को सिद्ध करने के लिए कथाओं की मालिका का सृजन करना ब्राह्मण-काल की देन है। किसी एक तथ्य या तत्व के लिए कथा-चक्र को प्रस्तुत करना और कथा मे कथा का निवेदन करना ये दोनों विशेषताएँ ब्राह्मणग्रंथों में पाई जाती है।

ऐतरेय तथा शतपथ ब्राह्मण की आख्यायिकाएँ इसी प्रणाली (device) से कही गई है। हम देख चुके हैं कि, ब्राह्मण ग्रन्थों की सभी आख्यायिकाएँ अपने यज्ञीय विधानों की पुष्टि के लिए प्रस्तुत की गई हैं। यज्ञविधि की पुष्टि के लिए इन सभी आख्यायिकाओं का ब्राह्मणों में अस्तित्व है। पंचतंत्र में किसी मुख्य नीति-सिद्धांत की पुष्टि के लिए ही सभी नीतिकथाएँ प्रस्तुत की गई हैं। इसी प्रणाली का (device) उद्गम ब्राह्मण ग्रंथों में हम पाते हैं।

शतपथ ब्राह्मण के द्वितीय कांड में 'अग्न्याधान' विधि की चर्चा की गई है। इस विधि के पांच सम्भारों तथा नक्षत्रों के संबंध में जो उक्त कर्म है उनका महत्व दिखाने के लिए कुछ प्रतीक-कथाएं कही गई हैं। यहां एक ही 'अग्न्याधान' की पुष्टि के लिए आख्यायिकाओं का चक्र प्रस्तुत किया गया है।

कहानी में कहानी कहने की प्रणाली का सर्वाधिक प्राचीन उदाहरण ऐतरेय ब्राह्मण में पाया जाता है। इसे ही हम अन्तःकथा कह सकते हैं। इसमें राजा विश्वन्तर और श्यापर्ण ब्राह्मणों की आख्यायिका कही गई है।[1] इसी आख्यायिका में श्यापर्ण ब्राह्मणों ने जनमेजय की छोटी कहानी कही है। यहां ब्राह्मणकार ने राजा एवं श्यापर्ण ब्राम्हणों की मुख्य कथा कही है। किन्तु इस कहानी के पात्र श्यापर्ण ब्राह्मण स्वयं एक और छोटी कहानी कहते हैं। यह तथ्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। क्योंकि, पंचतंत्र मे ऐसी अनेक अन्तःकथाओं की रचना की गई है। संजीवक एवं करटक की कहानी में अनेक उपकथाएँ प्रस्तुत की गई हैं।[2] बृहत्कथा, बृहत्कथामंजरी, कथासरित्सागर आदि कथा-विषयक ग्रंथों में इसी प्रणाली को अपनाया गया है। एक कहानी के बीच में उसके समाप्त होने के पूर्व ही दूसरी कहानी उसके पात्रों द्वारा कही जाती है। इस विशेषता का सर्वाधिक प्राचीन उदाहरण ऐतरेय की उपरोक्त कथा है।

कथाओं का यह पिटारा बनाने की प्रणाली भारत में ब्राह्मणकाल में ही अपनाई गई है। इसी प्रणाली को बौद्धों ने भी अपनाया। त्रिपिटिक में जातकों की कथाएँ हैं, उनमें भी एक आख्यायिका में दूसरी आख्यायिका कहने की प्रणाली का उपयोग किया हुआ दिखाई देता है। पहले तो बुद्ध एवं उनके शिष्यों की प्रसंग-कथा (anecdote) कही जाती है। उसमें एक प्राणिकथा या मनुष्यकथा कहकर अपने सिद्धान्त की पुष्टि की जाती है। जैसे 'निग्रोधमिग जातक' के प्रारम्भ में जेतवन में बुद्धदेव ने एक वणिककन्या की कथा कही है और उसके दृष्टान्त में एक और मृगकथा कह सुनाई है।[3] अन्त में दृष्टान्त-संगति के लिए बुद्धदेव ने पुनः वर्तमान जीवन से पूर्वजन्म का संबंध दिखाकर कहानी समाप्त कर दी है। कहानी में कहानी कहने का यह ढंग बहुत प्राचीन है। पंचतंत्र में इसी का विकास होकर पांच तंत्रों में ये बड़ी-बड़ी संदूकें अपने

---

१. ऐ. ब्रा. ७. ३५. १.

२. पंचचंत्र, तंत्र १ में उपकथाएँ २२ है।

३. Cowell's Jātaka No. 12 (निग्रोधमिकाग जातक) see the plates XXV, (1) and XLIII (2) of Cunningham's Stupa of Bharhut.

आप में अनेक अन्तःकथाओं को संजाये रखती है। महाभारत एवं अन्य पुराणों में भी इस प्रणाली को अपनाया गया है।

स्पष्ट है कि वैदिक काल में ही ऐतरेय तथा शतपथ ब्राह्मण में किसी एक उद्देश्य से अनेक कहानियाँ लिखी गईं और कहानी में कहानी का रूप ऐतरेय ब्राह्मण के राजा एवं श्यापर्ण ब्राह्मणों की कहानी में प्रकट हुआ। प्रो० कीथ जैसे विद्वानों का कथन है कि, यह प्रणाली लोक-साहित्य से नहीं निकली। प्रत्युत इसके जनक ब्राह्मण लोग ही थे।[१] हमने ब्राह्मण ग्रंथों के जो उदाहरण देखे हैं, उनसे इस कथन की पुष्टि हो जाती है। पहले ब्राह्मण लोगों ने भाष्य-काल में उसे यज्ञीय आख्यायिकाओं में अपना लिया। किन्तु बाद में यह प्रणाली लौकिक कहानी के लिए भी उपयुक्त समझी गई। महाभारत में राजधर्म का उपदेश देते समय भीष्म-युधिष्ठिर के सम्वाद मे तथा पंचतंत्र में व्यवहार-चतुरता सिखाने के उद्देश्य से कहानी में कहानी कही गई है। नीतिकथा में यह कथा-निवेदन की विशेषता बद्धमूल हो बैठी। इसी का अनुसरण हितोपदेश में भी हुआ है। गद्यकाव्य की परम्परा मे वाण ने भी कादम्बरी में इसी प्रणाली को अपना कर उसे नया रूप दिया है।[२] दशकुमारचरित में दण्डी ने भी उसे अपनाया है। वेतालपंचविशंतिका, विक्रमचरित, शुकसप्तति में भी कहानी से कहानी निकलती हुई पाई जाती है।

कथा-निवेदन की यह प्रणाली (emboxment, the system of story-telling) मूलतः भारतीय है। लोक-साहित्य के विद्वानों ने लोककथा का उद्गम किसी एक केन्द्र में नहीं माना। किन्तु उन्होंने भी इस प्रणाली का मूल स्रोत भारत को मान लिया है।[3] नीतिकथा के साथ यह प्रणाली भी भारत से विदेश गई। 'अरेबियन नाइट्स' तथा 'सिंदबाद की कहानियों,' में यह भारतीय कथा-निवेदन की प्रणाली दिखाई देती है।

---

१. A. B. Kieth, Classical Sanskrit Literature, Chapt. VIII, p. 103 :—

"–and storis grouped in connected series within a frame-work in order definitely to give precepts a creation which, of course, takes us away from folk literature and reveals the intellectual subtlety and skill of the Brahmans." वही pp. 88, 101; Brahmans of the Rgveda, p. 63.

२. R. C. Majumdar, Classical Age, BVB Bombay.

३. Alexander Krappe, The Science of Folklore, (1930) p. 118.

ब्राह्मणों में इस प्रणाली का उदय हुआ है। लोकवाणी में प्रचलित कथा मे यह उलझन नहीं थी। लोकसाहित्य में कहानी अपने आप में पूर्ण रहा करती है। क्योंकि, मनोरंजन के उद्देश्य से लोककथा कही सुनी जाती है। कहानी के लिए कहानी कहकर समाप्त कर देना ही लोक साहित्य की मूल प्रवृत्ति है और वह स्वाभाविक भी है। किन्तु किसी सिद्धान्त या सम्प्रदाय के लिए कथा का चक्र और अंतःकथा को प्रस्तुत करना एक बुद्धि-कौशल का कार्य था। यह कौशल भाष्यकाल में ब्राह्मण वर्ग ने आख्यायिकाओं को प्रस्तुत करते समय प्रकट किया है। फिर भी ब्राह्मणों मे यह प्रणाली कुछ क्षीण मात्रा में दिखाई देती है। बाद में इस प्रणाली का विकास होकर इतनी उलझन बढ़ गई कि 'दशकुमार' जैसे कथा-ग्रंथों मे एक कहानी का दूसरी के साथ संदर्भ ध्यान में रखना भी कठिन होने लगा। ब्राह्मणों में यह उलझन नहीं है। इसका कारण यह है कि, ब्राह्मण कोई कथाओं के ग्रंथ नहीं है। वैदिक संहिताओं का भाष्य एवं कर्मकाण्ड के विषय मे स्पष्टीकरण करने के लिए ब्राह्मण लिखे गये है। अतः कहानियों की भरमार करने की आवश्यकता ब्राह्मणों मे नहीं थी। जहाँ कहीं आवश्यकता प्रतीत हुई, वहीं ब्राह्मणकारों ने आख्यायिका या दृष्टांत-कथा से वेद की विधि का स्पष्टीकरण किया है। इसीलिए ब्राह्मणों की दृष्टांत-कथाओं के निवेदन मे कहीं पर भी उलझन या दुरूहता नहीं आने पाई।

भाषा शैली

ब्राह्मणों की ये आख्यायिकाएँ गद्य में है। बीच-बीच में 'गाथा' भी आ जाती है।[1] ये गाथाएं तथा गद्य बहुत प्राचीन है। गद्य की शैली परिमार्जित, उदात्त एवं प्रसन्न है। वाक्यों की रचना सरल एवं सीधी है। इन आख्यायिकाओं मे निवेदन करते समय छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग हुआ है और ये वाक्य सरस भी है। भाषा मंजी हुई है। महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि कहानी प्रस्तुत करते समय उसका अनावश्यक विस्तार करने की प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती। ब्राह्मण-कारों को इन आख्यायिकाओं से अपने सिद्धांत की पुष्टि मात्र कर लेना था। अतः कहीं कहीं पर ब्राह्मणकारों का यह कार्य सिद्ध हो जाने पर कहानी अधूरी ही छोड़ दी गई प्रतीत होती है।[2] कहानी से उद्देश्य की पूर्ति हो जाने पर उसकी ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। कहानी को आवश्यकतानुसार ही ब्राह्मणों में अपनाया गया है। इतना अवश्य है कि, चंद वाक्यों में रोचक कहानी प्रस्तुत की गई है। और फिर भी दीर्घ समास का अभाव है। आगे

---

१. ऐ. ब्रा. ५.२५. ५ आदि।

२. ऐ. ब्रा. ४-१७. १.

चल कर संस्कृत साहित्य में गद्यकाव्य के अन्तर्गत समास एवं आलंकारिक शैली का बहुत ही प्रयोग हुआ है। कादम्बरी में लम्बे-लम्बे समास देखकर ही उसे 'गहन जंगल' कहा गया है। किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों के गद्य में लम्बे समास नहीं हैं। इससे अर्थ की सुगमता का अच्छा परिचय इस प्राचीन गद्य में प्राप्त होता हैं। विशेष रूप से आख्यायिका के अंश में निवेदन की शैली भी स्वाभाविक है, कृत्रिम नहीं। ब्राह्मणों की आख्यायिकाओं का प्रारम्भ 'वै' या 'ह' शब्द से होता है। ब्राह्मणकारों ने 'ह' 'वै' आदि शब्दों को कहानी के प्रारम्भ मे अपना कर कहानी की प्राचीन परम्परा को ध्वनित किया है।[१] वैदिक युग मे भी परम्परागत आख्यानों को वैदिक युग में 'इति-ह-आस' कहा जाता था इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है। 'वा' शब्द का भी 'वै' के रूप में प्रयोग हो जाता था।[२] कभी-कभी कहानी में कर्मकाण्ड का विवेचन आ जाता है। उससे कहानी खण्डित हुई सी लगती हैं। किन्तु ऐसे स्थल अधिक नहीं है।

उपनिषत् साहित्य

ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञ-कर्म की प्रधानता है और उपनिषदों में आध्यात्मिक विचारों की। ब्रह्म-विद्या की चर्चा अधिक होते हुए भी उपनिषदों मे भी आख्यान मिलते हैं।

कठोपनिषद में नाचिकेता की विख्यात कहानी कही गई है। वाजश्रवा के पुत्र उद्दालक ऋषि ने विश्वजित यज्ञ किया। उसमें उसने अपनी सब सम्पत्ति दे डाली। उसका नाचिकेता नामक पुत्र बड़ा मेधावी था। उसने अपने पिता से पूछा, 'सौ वृद्ध निर्बल गायों को दान से क्या पुण्य होगा? मैं भी तुम्हारा ही हूँ, मुझे किसे दे रहे हो?' पिता ने बालक समझ कर उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया, किन्तु बार-बार पूछने पर, 'तुम्हे मृत्यु को देता हूँ।' यह वाक्य कह दिया। पुत्र ने तुरन्त पिता के वचन का पालन किया। वह यमराज के निवासस्थान पर पहुंचा। यमराज घर नहीं थे। वहाँ तीन दिन और रात तक भूखा-प्यासा बैठा रहा। यमराज वहाँ आये, भूखे प्यासे अतिथि को बैठे हुए देखकर वे लज्जित हुए। उन्होंने तीन वर मांगने को कहा। नाचिकेता ने एक वर में कामना की कि पिता का क्रोध शान्त हो जावे। दूसरे में अग्नितत्व और तीसरे में मृत्युतत्व अर्थात् आत्मतत्व को समझाने का अनुरोध किया। यम ने पहला वर तो दिया किन्तु बालक के लिए दूसरे दो वर देने की अपेक्षा प्रचुर सम्पत्ति, ऐश्वर्य आदि का भोग देने का प्रलोभन दिया। किन्तु नाचिकेता अपनी

---

१. ऐ. ब्रा. ६. ३०. ४ सायण :—'ह शब्द ऐतिह्यद्योतनार्थः'।

२. वही. ६. ३०. ८ आदि.

अभिलाषा पर अडिग रहा। तब अन्ततः यमराज को उसे अध्यात्मविद्या को समझाना पड़ा। उस विद्या को श्रद्धापूर्वक सुनकर नाचिकेता जन्म मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो गया।

हम इसे नीति-सम्बन्धी कथा ही कह सकेंगे। बालक नाचिकेता का उदात्त चरित्र इस कहानी का प्रमुख अंश है। इस कहानी से एक नैतिक तत्त्व अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि, अटल निश्चय से मनुष्य अपनी साधना में सफल हो सकता है।

बृहदारण्कयोपनिषद् में देवासुर-संग्राम की कथा है।[१] अनेक स्थल पर उत्पत्ति-कथा को अपनाया गया है।[२] जनक की सभा मे याज्ञवल्क्य अपना पांडित्य सिद्ध करते है। इस प्रसंग पर कई रोचक संवाद प्रस्तुत किये गये है। आर्तभाग, भुज्यु चाक्रायण और कहोल ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न पूछे। गार्गी वाचक्नवी ने भी गहन प्रश्न पूछ कर याज्ञवल्क्य को विकल कर दिया। अन्त में याज्ञवल्क्य ने गहन प्रश्न पूछने पर उसे रोक कर कहा 'कहीं तेरा सिर न फट जाय'।[३] एक स्त्री के लिए इतने गहन प्रश्न पूछना आश्चर्य की बात थी। इन सम्वादों एवं कथाओं के कारण उपनिषदों में सरसता आ गई है। ब्राह्मणों को अपेक्षा उपनिषदों में कहानी अपनी अंगों से पूर्ण हो रही दिखाई देती है। उपनिषदों की कथाओं में प्रसंगों के चित्र सजीव हो उठे हैं। सम्वाद भी मार्मिक होते गये है। कहानी के विकास में उपनिषदों की कथाओं का यह योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं है।

छांदोग्योपनिषद्

छांदोग्य में भी कुछ आख्यायिकाएँ मिलती है। उनमें सत्यकाम जाबालि की कहानी बड़ी महत्वपूर्ण है।

सत्यकाम जाबालि ने अपनी माता जबाला से पूछा, 'मां, मैं गुरुकुल में शिष्य बनकर वेद पढ़ना चाहता हूँ। मेरा गोत्रनाम क्या है?' जबाला ने कहा, 'बेटा, तुम किस कुल में उत्पन्न हुए हो यह मैं नहीं जानती। परिचारिका के रूप में इधर-उधर घूमती थी तब मैंने तुम्हें पाया था।[४] तुम्हारे वंश का मुझे

१. बृहदा. अध्याय १. ब्रा. ३.

२. वही, अध्याय १, ब्रा. ४.

३. वही. अ. ३, ब्रा. ६.

४. विशेष कुछ भाष्यों में कहा गया है कि इस बालक को किसी ने छोड़ा था और जाबाला को वह मिला किन्तु 'बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे।' आदि पढ़ने पर यह अर्थ नहीं प्राप्त होता। समाज में दासी-विषयक नियम कठोर नहीं होते थे। क्योकि, गौतम ने यह सुनने पर भी उसे अपना शिष्य बना लिया था।

पता नहीं। मेरा नाम जबाला है, तुम्हारा सत्यकाम। अतः सत्यकाम यही अपना नाम (गुरुओं को) कहो।' सत्यकाम गौतम के पास गया और कहा 'मैं शिष्य बनकर आपके पास अध्ययन करने आया हूँ।' ऋषि ने उसका गोत्र पूछा तब उसने अपना वृत्तान्त कह सुनाया और कहा, 'जबाला का मैं लड़का, सत्य-काम जाबाल मेरा नाम है।' गौतम ने कहा, 'ब्राह्मण के सिवा अन्य कौन इस प्रकार सत्य बोलेगा ? बेटा जाओ, समिधा लाओ। मैं तुम्हारा उपनयन संस्कार करूँगा। क्योंकि तुमने सत्य को नहीं छोड़ा।' गौतम ने उसका संस्कार सम्पन्न किया और चार सौ कृश और निर्बल गायें देकर कहा, 'बेटा, इन गायों के पीछे जाओ। हजार गायें होने पर ही लौट आना।' सत्यकाम कई वर्ष तक अरण्य में रहा और एक दिन उसके पास हजार गायें हो गईं।[१]

इसी कथा का उत्तरार्ध इस प्रकार है: एक हजार गायें हो जाने पर सत्य-काम को बैल ने कहा, 'सत्यकाम !' सत्यकाम ने कहा, 'भगवन् !' बैल ने कहा, 'बेटा, हमारी संख्या अब हजार हो गई है। हमें अब गुरु के पास ले चलो और मैं तुम्हें ब्रह्म का एक चरण (ब्रह्म-विद्या का एक अंश) सिखाता हूँ।' बैल ने उसे ब्रह्मज्ञान पढ़ाया। सत्यकाम गायों की इच्छानुसार गुरुकुल की ओर बढ़ने लगा। रास्ते में विश्राम करते समय पहले अग्नि ने, फिर हंस ने और अंत जल मुर्ग (मुद्गु) ने उसे ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया। इस प्रकार ज्ञान ग्रहण करके वह आचार्य के घर लौट आया। आचार्य ने घर आने पर पूछा, 'सत्यकाम, तुम तो ब्रह्मवेत्ता के समान दिखाई देते हो। तुम्हें किसने उपदेश दिया ?' सत्यकाम ने उत्तर में कहा, 'मनुष्येतर (प्राणियों या देवताओं) ने। फिर भी आप पूजनीय हैं, मुझे उपदेश दीजिए। क्योंकि गुरुमुख से ज्ञान सीखने पर ही उसका लाभ होता है, यह मैंने आपसे सुना है।' फिर गौतम ने उसे वही ज्ञान सिखाया और उस विद्या मे कोई न्यूनता नहीं थी।[२]

सत्यकाम की इस आख्यायिका के पूर्वार्द्ध में कोई नीतिकथा (fable) या उसका पूर्व रूप प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देता। क्योंकि वह एक सामाजिक कथा है जो उस समय की सामाजिक परिस्थिति पर प्रकाश डालती है। श्रीशचंद्र वसु ने माता के वाक्य से यह अर्थ प्रकट किया है कि जबाली का पाला हुआ लड़का

---

१. छान्दोग्य, अध्याय अध्याय ४, ४: 'सत्यकामो ह जबालां मातरमामन्त्र-यांचक्रे ब्रह्मचर्यंवति विवत्स्यामि किं गोत्रो न्वहमस्माति ॥ १ ॥' इत्यादि।

२. छान्दोग्य० अ. ४. खं. ५-९. 'अथैनमृषभोऽभ्युवाद सत्यकाम ३ इति ह प्रतिशुश्राव प्राप्ताः सोम्य सहस्र स्म : प्रापय आचार्यकुलम् ॥ १ ॥'

था ।[१] अर्थात किसी ने छोड़ा हुआ वह बालक उसे उसे रास्ते में मिल गया। किन्तु शंकराचार्य ने भाष्य में कहा है: 'बहुभर्तृगृहे परिचर्याजातमतिथ्यभ्यागतादि-चरन्त्यहं, परिचारिणी परिचरन्तीति परिचरण वाहं परिचरणचित्ततया योत्रा-दिस्मरणे मम मनो नाभूत्' आदि। यह कथा उस समय की समाजप्रथा का चित्र प्रस्तुत करती है। अतः इसे नीति-संबंधी कथा कहा जा सकता है। किन्तु जिस अर्थ में फेबल के अंदर नीति (Policy) का प्रयोग अभिलक्षित है, वह इस कथा में नहीं है। इससे मॉरल अवश्य निकाला जा सकता है। राजनैतिक चतुरता का यहां अभाव है। केवल उदाचरण-सम्बन्धी नीति का ही यहां निदर्शन है। सत्यकाम सत्यवादी है फिर भी इस अर्थ में हम इसे नीतिकथा नहीं कह सकते। इस पूर्वार्द्ध में प्राचीन समाज की नीति-अनीति के संबंध में कुछ तथ्य अवश्य प्रकट हुए हैं। फिर भी नीति (Policy) के अर्थ में इसे हम नीति-कथा नहीं मान सकते। केवल नैतिक कथा (moral-tale) का प्राचीन रूप इसमें अवश्य सुरक्षित है।

इसी कथा के उत्तरार्द्ध में हम फेबल के पूर्व रूप अवश्य प्रकट हुआ मान लेंगे। क्योंकि बैल, अग्नि, हंस, पक्षी तथा जलमुर्ग ने सत्यकाम को उपदेश दिया है। इस स्थान पर नीतिकथा का पूर्व रूप अवश्य प्रकट हुआ है।

भाष्यकारों ने बैल को वायु का रूप, हंस को आदित्य का रूप तथा जल-मुर्ग को प्राण का रूप माना है। क्योंकि बैल आदि पशुपक्षी मनुष्यवाणी कैसे बोल सकते हैं।[२] अर्थात् वायु, अग्नि, आदित्य तथा प्राण के द्वारा ही उपदेश

---

२. Sriś Chandra Vasu, Chandogya Upaniṣad, (transl. with Madhava's Comm.), p. 273 (IV, 4.2) : Note :— Satyakāma appears to the foster child of Jabālā, She had picked him up in her youth and did not think of making enquiries as to his parentage. Abandoing of infants was not unknown in the ancient India.

१. छांदोग्य० ४. ५. १ सायणभाष्य : तमेतं श्रद्धातयोभ्यां सिद्धं वायु-देवता दिक्-सम्बन्धिनो तुष्टा सत्यृषभमनुप्रविश्यर्पन्तापन्नाऽनुग्रहायाथ हैनमृषभोऽभ्यु-वादाभ्युक्तवान्सत्यकाम-३ इति संबोध्य तमसो सत्यकामो भगव इति ह प्रति-शुश्राव प्रतिवचनं ददौ'

आनंदगिरि : 'कथमृषभः सत्यकामं प्रतिवक्तुमलं न हि लोके बलीवर्दस्य मनुष्यं प्रति प्रतिवचनं दृष्टमत आह। तमेतमिति।'

Madhava's Cammentary on छांदोग्यपनिषद्, translated by

दिया गया है। किन्तु लोक-साहित्य का तत्व इस में निहित है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। हम इस कथा को लोक साहित्य की घटनाओं (incident) की दृष्टि से पढ़ें तो स्पष्ट ही इस में लोक-कथा का प्राचीन आभास हमें दिखाई देगा। न केवल पशु-पक्षियों का मनुष्यवत् व्यवहार अपितु पशु-पक्षी के द्वारा मनुष्य के समान किसी को उपदेश दिये जाने की घटना नीतिकथा का एक प्राचीन रूप प्रस्तुत करती है। इससे स्पष्ट है कि, उपनिषत् काल के साहित्य में मानवेतर प्राणियों की मनुष्यवत् लीला प्रकट होने लग गई थी। लोककथा में तो लोक-विश्वास के कारण इस प्रकार की लीला अपने आप में स्वतंत्र थी। किन्तु ऋग्वेद के समय से ही इस प्रकार की लोक-विश्वास की घटना को अपनाते समय उस पर देवतारोप का चोला पहनाने की प्रवृत्ति रही है। क्योंकि, कोई पशु या पक्षी मनुष्य के समान उपदेशक कैसे हो सकता है? इस विषय की अनुपपन्नता को दूर करने के लिए देवतारोप (deification) का सहारा लेना पड़ता था। वैदिक साहित्य के उत्तर काल मे छान्दोग्य में यहाँ देवतारोप का आवरण स्पष्ट रूप से देने की आवश्यकता नहीं पड़ी। यहाँ भाष्यकारों ने देवतारोप को स्पष्ट अवश्य किया है और उस अनुपपन्नता को दूर करने की प्रवृत्ति का ही अनुसरण किया है। फिर भी ध्यान देने योग्य बात यह है कि, छांदोग्य में उपरोक्त स्थान पर देवतारोप स्पष्ट रूप से नहीं दिखाई देता। इसका अर्थ यह है कि, लोक-विश्वासों पर आधारित प्राणि-संबंधी घटना को ज्यों की त्यों ग्रहण करने में उपनिषत् काल में अड़चन नहीं पड़ी। अर्थात इस प्रकार की घटना को ऋषियों द्वारा बिना देवतारोप किए हुए अपनाने की स्थिति आ गई थी। इसीलिए स्पष्ट शब्दों में 'अथैनमृषभोऽभ्युवाद' आदि उपनिषद् के वाक्यों मे मानवेतर प्राणियों के द्वारा मनुष्य के समान भाषण एवं कार्य करने की घटना मूल रूप में ही प्रकट हो गई है। यहाँ नीतिकथा का विशुद्ध बीज प्रकट हुआ है। भाष्यकारों ने साम्प्रदायिक अर्थ को स्पष्ट करने के लिए देवतारोप का चोला पहना दिया है। किन्तु मूलतः वह लोककथा की ही प्राणि-विषयक घटना (incident) है। इसी लिए हम इसे नीतिकथा (fable) का पूर्व रूप या बीज मानते हैं। क्योंकि, छांदोग्योपनिषद् के रचयिता ने यहां देव-

---

Sriś Chandra Vasu : 'How could the Bull, the Flamingo and Diver-bird teach Satyakāma ? These are irrational animals,' Vol. III Allahabad 1910, 285.

मध्वाचार्य के अनुसार वायु (बैल) अग्नि (ब्रह्मा) और वरुण (जलमुर्ग) ने सत्यकाम को एक चरण पढ़ाया है।

ताओं का आरोप इन प्राणियों पर नहीं किया है। इन प्राणियों को उनके रूप में ही रखा है। यह देवतारोप करके उपनिषद् के आध्यात्मिक अर्थ को स्पष्ट करने की आवश्यकता भाष्यकारों को प्रतीत हुई यह स्वाभाविक ही था। किन्तु यह स्पष्ट है कि उपनिषत् काल में पशु-पक्षियों द्वारा उपदेश देने की प्राणिकथान्तर्गत घटना का ही वह साहित्यिक रूप था। इसीलिए नीतिकथा का पूर्व रूप यहां प्रकट हो चुका है।

राजा जानश्रुति पौत्रायण की कथा में भी दो हंसों का संवाद निहित है। पौत्रायण बड़ा दानी था। उसने अन्नदान बहुत किया। एक दिन रात को हंस उड़ रहे थे, उनमें से एक ने कहा, 'भल्लाक्ष! पौत्रायण की कांति द्युलोक के समान फैली हुई है। उसे स्पर्श करके जल कर भस्म न होना।' दूसरे हंस ने कहा, 'यह कौन ऐसा महात्मा है जिसके विषय में तुम बड़े सम्मान से बोल रहे हो? मानो गाड़ी के साथ रहने वाले रैक्व के समान वह भी आदरणीय है।' इस पर पहले हंस ने पूछा 'यह सयुग्वा रैक्व कैसा है?' दूसरे ने उत्तर दिया, 'द्यूत में जिस प्रकार कृत नामक फांसे में सब फांसे अंतर्भूत हो जाते हैं उसी प्रकार इस रैक्व के आचरण में सारे संसार के शुभ आचरण अंतर्भूत हैं। जो इस प्रकार ज्ञानवान है; वही विद्वान है। इसीलिए रैक्व की बात मैंने कही।' यह हंस-संवाद पौत्रायण ने सुन लिया। राजा बेचैन हुआ। उसे रैक्व के दर्शन की तीव्र अभिलाषा हुई। सारथी के पूछने पर उसने हंस से सुनी बात कह सुनाई। सारथी को रैक्व का पता नहीं चला। वह लौट आया तब राजा ने उसे इस प्रकार के ब्रह्मज्ञानी को किसी अरण्य के एकांत में ही खोजने को कहा। अरण्य में सारथी को एक आदमी गाड़ी के नीचे बैठकर खुजलाता हुवा दिखाई दिया। उसने राजा को आकर बताया। तब राजा छः सौ गायें, कंठहार, रथ आदि लेकर उसे उपहार देने वहां पहुँचा। उसने प्रार्थना की, इस धन को लेकर मुझे देवताओं का उपदेश दीजिए। रैक्व ने उत्तर दिया, 'हे शूद्र, यह धन अपने पास ही रहने दो।' जानश्रुति बहुत सी गायें, गाँव तथा कन्या आदि लेकर फिर से उसके पास गया, तब रैक्व ने उसे ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया।[१]

इस कहानी में प्राचीन सामाजिक तथ्य प्रकट हो रहा है। इसमें शूद्र राजा की इच्छा ब्रह्मविद्या सीखने की है। वह प्रचुर धन देकर रैक्व से उपदेश ग्रहण करता है। शूद्रों के लिए ज्ञानार्जन करना उस समय में प्रचुर धन देकर ही संभव था। यह तथ्य इस कहानी से स्पष्ट होता है। किन्तु यह कोई नीतिकथा नहीं है। फिर भी इसमें दिया हुआ हंसों का संवाद एक लोक-कथा की प्राचीन

१. छान्दोग्य० ४.१.५-८.

घटना (incident) अवश्य है। साहित्य में प्रविष्ट इन घटनाओं से यही अनुमान किया जा सकता है कि, उपरोक्त अंश लोकवाणी में प्रचलित प्राणिकथाओं में अवश्य रहे होंगे। उपनिषदों में उनका ग्रहण अनजाने हो गया है। हंस-संवाद में ही रैक्व-कथा कथा-प्रणाली के मंजूषीकरण को प्रस्तुत कर रही हैं।

श्वान-कथा :

छांदोग्योपनिषद् में जो श्वान की छोटी सी कहानी प्रस्तुत की गई है, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। एक समय बहुत बड़ा अकाल पड़ा। अन्न की प्राप्ति के लिए 'शौव-उग्दीथ' (कुत्तों के द्वारा देखा गया उद्गीथ-उद्गान साम) गाया जाता है। वहां प्राचीन समय मे दल्भ का पुत्र बक अर्थात् मित्रा का पुत्र ग्लाव रहता था। वह एक दिन स्वाध्याय के लिए गांव के बाहर गया। उस पर अनुग्रह करने के लिए श्वेतवर्ण का एक कुत्ता उत्पन्न हुआ। उसके पास अन्य कुत्ते आकर कहने लगे : 'भगवन, हमे गायन के द्वारा अन्न उत्पन्न करा दीजिए, हम भूखे हैं।' बकदाल्भ्य ने वहीं उनकी प्रतीक्षा की। वे कुत्ते वहां आये और जिस प्रकार कर्म में बहिष्पवमान स्तोत्र से स्तुति-गीत गाने वाले पुरुष आपस में संलग्न होकर भ्रमण करते हैं, उस प्रकार उन्होंने एक दूसरे की पूँछ पकड़कर चक्कर लगाना शुरू किया। अनंतर बैठकर 'हिं हिं' ऐसी आवाज की, 'हम खाते है, हम पीते हैं', ओ देव, वर्षा के कारणभूत वरुण, प्रजापति, सविता यहां अन्न ले आवें। हे अन्नपते, हमारे लिए यहां अन्न ल आओ। यहां लाओ।[१]'

इस पर भाष्य करते समय सायण ने कहा है कि, दाल्भ्य ग्लाव ऋषि के स्वाध्याय से संतुष्ट होकर ही कोई देवता या ऋषि श्वेत श्वान का रूप धारण कर प्रकट हुआ[२]। किन्तु मूल पाठ में कुत्ते को देवता या ऋषि नहीं कहा है।

---

१. छान्दोग्य० अ० १, ख० १२ :

"अथातः शौव उद्गीथस्तद्ध बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः स्वाध्यायमुद् व्राज ॥ १ ॥ तस्मै श्वा श्वेतः प्रादुर्बभूव तमन्ये श्वान उपसमेत्यो चुरन्नं नोभगवानागायत्वशनायाम वा इति ॥ २ ॥ तान् होवाचेहैव मा प्रातरूप समीयातेति तद्ध बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेय प्रतिपालयांचकार ॥ ३ ॥ तेहयथैवेह बहिष्पवमानेन स्तोष्यमाणाः सँरब्धाः सर्पन्तीत्येव मासस्रृपुस्ते ह समुपविश्य हिंचक्रुः ॥ ४ ॥ ॐ ३ मदा ३ मों ३ पिबा ३ मों ३ देवो वरुणः प्रजापतिः सविता २ न्नमिहा हरदन्नपते ३ न्नमिहा २ हरा २ हरो ३ मिति ॥ ५ ॥

२. वही, १.१२.२. सायण :-

"स्वाध्यायेन तोषिता देवतर्षिर्वा श्वरूपं गृहीत्वा श्वा श्वेत संस्तस्मा ऋषभे तदनुग्रहार्थं प्रादुर्बभूव प्रादुश्चकार।"

भाष्यकारों के सामने यही प्रश्न उपस्थित हुआ है कि एक कुत्ता मनुष्य की तरह संभाषणादि व्यवहार कैसे कर सकता है ? अतः देवतारोप करने से ही इस प्रश्न का समाधान हो सकता है। हम देख चुके हैं कि, प्राचीन काल में लोक-साहित्य में प्राणियों को देवता का रूप देना जरूरी समझा जाता था। फिर भी सत्यकाम की कथा की तरह यहां श्वेत श्वान को देवता का रूप स्पष्ट नहीं प्रदान किया गया। अतः इसे हम प्राणियों का ही संभाषण मानेंगे। अतः संकट के समय में कुत्तों ने अपना नेता खोज निकाला है, यह तथ्य नीतिकथा के अंतर्गत ही आ सकता है। यहां तक कि एक दूसरे की पूंछ को मुंह में लेकर एकत्र आ जाना और हिं, हिं आवाज करना कुत्तों का एक जाति स्वभाव है। इस छोटी सी कहानी में वह भी स्पष्टतया वर्णित है। अतः इसे प्राणियों से भिन्न समझना युक्तिसंगत नहीं होगा।

यहां सवाल यह उठता है कि, यदि यह श्वानों की कथा है तो इसे नीति-कथा (fable) ही क्यों न कहा जाय ? भले ही उसका कलेवर लघु रहा हो। प्रो. कीथ ने इसे दृष्टान्त कथा (parable) या ऋषियों की ऐतिहासिक घटना निरूपित किया है। उन्होंने संभावना व्यक्त की है कि, इन ऋषियों ने किसी समय में मुक्ति के लिए कुत्तों के जीवन का अनुकरण करने का मूर्ख प्रयास किया होगा। प्राणियों के पुनर्जन्म-संबंधी विश्वास तो इसमें अवश्य व्यक्त होता है।[१]

ऋषियों ने कुत्तों का अनुकरण करने का 'मूर्ख प्रयास' किया होगा या नहीं इस विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इतना तथ्य अवश्य है कि, मनुष्य के विचारों एवं कार्य के समान ही कुत्तों के विचार एवं कार्य इस कथा में वर्णित हैं। इस प्रकार के मानवीय अर्थ को व्यक्त करने वाली प्राणिकथा को हम प्राचीन नीतिकथा ही मान लेंगे तो कोई आपत्ति नहीं होनी

---

१. A. B. Keith, Classical Sanskrit Literature, Calcutta, 1923 p. 102 :—

"—and the Chandogya Upanisad knows a mysterious Udgith of the dogs which may be a parable or a record of ascetics, who imitated the life of dogs in a crazy effort thus to attain salvation, but in any case shows realistically how ready was Indian thought to ascribe to animals like thoughts and deeds to men, a tendency accentuated by the rising belief in transmigration involving frequent animal rebirths."

चाहिए। यहां हम यह कह सकते है कि, प्राचीन समय में छान्दोग्य में फेबल या नीतिकथा प्रवेश कर गई है। बहुत कुछ संभव है कि, कुत्तों के इस प्रकार के स्वभाव एवं कार्य देखकर ऋषियों ने उनके विषय में कुछ कथाएं गढ़ ली हों। संभवतः उन दिनों लोककथा मे कुत्तों की कई कहानियां प्रचलित रही हों। हम यह देख चुके है कि उपनिषत् काल के पूर्व ही किस प्रकार सरमा ने मनुष्य के समान इन्द्र की दूति का कार्य सफलतापूर्वक किया था।[१] यम के वे चार आंखों वाले दो दूत भी प्रेत पर किस प्रकार अपनी निगाह रखे हुए है।[२] और यहां तो हमे ऐसे ही कुत्तों की एक छोटी सी कहानी मिलती है। क्षुद्र कुत्तों ने अपने लिए अन्न की मांग की है और उनके लिए नेता श्वेत कुत्ते ने उन्हें प्रातःकाल आने को कहा है। इस साम-गीत को 'शौव उद्गीथ' कहा गया है। अर्थात् श्वान सम्बन्धी वह गीत है। इस अत्यन्त प्राचीन श्वानकथा का उपयोग उपनिषद् की आध्यात्म चर्चा के लिए किया गया है। इस प्रकार का प्रयोग छांदोग्य में अन्यत्र भी किया गया है। देवासुर-संग्राम की कथा में अत्यन्त प्राचीन कल्पना-बंध यह है कि, देव एवं असुर आपस मे झगड़ते है। ये दोनों विरोधी पक्ष है। छांदोग्यकार ने देवासुर संग्राम की कथा का उपयोग अपने आध्यात्मिक अर्थ के लिए कर लिया है। देव एवं असुर दोनो मे संघर्ष हुआ।[३] इसमे 'देव' का अर्थ द्योतक, प्रकाशक है, इंद्रादि नहीं, और 'असुर' का अर्थ स्वाभाविक तमोरूप इन्द्रियवृत्तियां है।[४] वास्तव में देव एवं असुरो के संघर्ष की कहानी विश्व मे प्राचीन काल से प्रचलित है। इसी प्रकार की कहानी का यह अपने विषय के अनुसार किया गया उपयोग मात्र है। उपनिषदों मे इस देवासुर संग्राम की तरह प्राणकथा का भी उपयोग उद्गीथ की उपासना के लिए छांदोग्योपनिषद् मे कर लिया गया है।

डा. विन्टरनित्ज का कथन है कि जानश्रुति की कथा में वर्णित दो हंसों के संवाद तथा बैल, हंस आदि के उपदेश 'फेबल' या 'नीतिकथा' नहीं

---

१. ऋ० सं० १.१०८.

२. ऋ० सं० १०.१४. १०-१२.

३. छांदोग्य० १.२.१. "देवासुरा ह वै यत्र संयेतारि उभये प्राजापत्यास्तद्ध देवा उद्गीथमाजह्रुरनेनैनानभिभविष्याम इति ॥ १ ॥"

४. छांदोग्य० १.२.१. सायणाचार्य :—"देवासुरा देवाश्चासुराश्च। देवादीव्यतेर्द्योतनार्थस्य शास्त्रोद्भासिता इन्द्रियवृत्तयः। असुरास्तद्विपरीताः स्वेष्वेवासुषु विष्वग्विषयासु प्राणन-कियासु रमणात्स्वाभावाविक्यस्तम आत्मिका इंद्रियवृत्तय एव।"

है।[1] क्योंकि नीतिकथा का संपूर्ण रूप उसमें व्यक्त नहीं है। उसे तो हम अन-जाने व्यक्त नीतिकथा का एक पूर्व रूप या बीजमात्र मानते हैं। किन्तु उपरोक्त श्वान-कथा में वह अपूर्णता नहीं है। लघुता भले ही हो, किन्तु यह छोटा सी कहानी अपने आप में पूरी है। डॉ० दासगुप्ता[2] के मतानुसार श्वेत श्वान की कथा से 'नीतिकथा' (fable) की उत्पत्ति मानना निरर्थक है। उनका कथन है कि, यह एक व्याजोक्ति या ध्वनिकथा (Satire or allegory) मात्र ही है। बैल आदि का उपदेश या हंसों का संवाद अवश्य ही नीतिकथाओं के अन्तर्गत नहीं आ सकते। किन्तु श्वेत श्वान की कथा की बात उन दो प्रसंगों से कुछ अधिक स्पष्ट है। वह प्राणिकथा है और मानवीय अर्थ को व्यक्त करने वाली भी है। उपनिषत् साहित्य में या तो प्राणिकथा के रूप में प्रचलित लोक-कथा का अंश ही यहां प्रवेश कर गया है, अथवा श्वानों के सूक्ष्म निरीक्षण से प्रभावित ऋषियों ने कुत्तों के स्वभावानुसार वह कहानी कल्पित की है।

भले ही ऋग्वेद का मण्डूकसूक्त या छांदोग्य की यह श्वेत श्वान की छोटी सी कहानी पंचतंत्र की नीतिकथा की सी विकसित एवं परिणत अवस्था में न पहुँची हो। मण्डूकसूक्त को तो एक प्रारंभिक प्रयास भी माना जा सकता है। किन्तु इस कथा मे हमें स्वयं नीतिकथा का ही प्राचीन रूप दिखाई देता है। नीतिकथा की उत्पत्ति के संबंध में हम यहां यही कह सकते हैं कि, उपरोक्त श्वान प्रसंग जैसे कुछ अंश साहित्य में प्रवेश कर गये हैं। उनसे अनुमान किया जा सकता है किस प्रकार लोक-साहित्य में इन दिनों प्राणिकथा लोकप्रिय हो बैठी थी। इसीलिए प्राणिकथा का यह साहित्यिक अवतार उपनिषत् साहित्य में हुआ मानना चाहिए।

यह ठीक है कि, पंचतंत्र की कहानी में भी जिस प्रकार व्यावहारिक नीति को सिद्ध किया जाता है, उस प्रकार की 'नीति' इस श्वानकथा में नहीं है। परंतु किसी न किसी उद्देश्य से यह कथा उपनिषत्कार ने कही है। यह कथा मनोरंजन के लिए ही यहां प्रस्तुत नहीं है। यदि इससे उपहास या व्याजोक्ति (Satire) भी व्यक्त हो रही हो तो हमारे उपरोक्त कथन की इससे पुष्टि हो जाती है। क्योंकि प्राणिसंबंधी नीतिकथा के ये सब गुण हैं। पंचतंत्र की कहानियों में व्याजोक्ति एवं उपहास की सामग्री कम नहीं होती। व्याजोक्ति

---

१. Dr. Winternitz, Geschichte der indischen litteratur, Leipzig, p. 269.

२. Dr. S. N. Dasgupta, History of Sanskrit Literature, Vol. I. p. 85.

(satire) के द्वारा उपहास व्यक्त करने की पंचतंत्र की भी एक विशेषता रही है। उपरोक्त श्वानकथा को 'व्याजोक्ति' मात्र कह देने से काम न चलेगा। वह तो एक विशेषता ही है, स्वरूप नहीं। स्वरूप से वह एक ऐसी प्राणिकथा है जिससे उसके निवेदक का उद्देश्य स्पष्ट या पुष्ट होता हो। छांदोग्योपनिषद् में उद्‌गीथ की उपासना करनी चाहिए, इस सिद्धांत की पुष्टि के लिए ही यह कहानी प्रस्तुत की गई है। किसी न किसी उद्देश्य से ही यह कथा प्रस्तुत की गई है। इस तथ्य को हम भी मान लेंगे कि, यह नीतिकथा उपनिषद् साहित्य में जिस रूप में पाई जाती है वह नीतिकथा का एक प्रारंभिक रूप है। उसका विकसित रूप जातक तथा पंचतंत्र एवं महाभारत की कथाओं में दिखाई देता है। नीतिकथा की मूल विशेषताएं श्वान-कथा में पाई जाती हैं। जैसे, इस कहानी के पात्र पशु हैं और उनका संभाषण एवं कार्य मनुष्यवत् है। यह किसी उद्देश्य से ही दृष्टान्त के रूप में कही गई है। प्राणियों का इसमें स्वभाव भी व्यक्त हुआ है। प्रथम अध्याय में नीतिकथा के स्वरूप को हम देख चुके हैं। उसके अनुसार तो हम इसे केवल 'व्याजोक्ति या ध्वनिकथा' नहीं कह सकते। ध्वनिकथा के पात्र प्राकृतिक अचेतन पदार्थ होते हैं। इस स्थूल भेद को हमें भूलना नहीं चाहिए। यह श्वानकथा प्राकृतिक तथ्यों पर किए गये मानवीकरण से कहीं दूर है। अतः लोककथा के रूप में प्रचलित और किसी उद्देश्य के लिए उपयोग में लाई गई यह श्वान-कथा नीतिकथा का प्राचीन एवं प्रारंभिक रूप ही है।

यह हम स्पष्ट कर चुके हैं कि, छांदोग्य की इस श्वान-कथा को नीतिकथा का प्राचीन एवं प्रारंभिक रूप मान लेने पर भी यह नीतिकथा का कोई विकसित रूप नहीं है। फिर भी नीतिकथा की उत्पत्ति की दृष्टि से इसका बडा महत्व है। इस का यह अर्थ नहीं है कि, इस कथा को देखकर आगे नीतिकथाएं लिखी जाने लगीं। इस प्रारम्भिक रूप का निर्देश करने का तात्पर्य यही है कि, उन दिनों किस प्रकार प्राणिकथा को नीतिकथा के बारे में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति हुई थी। हम इसी प्रवृत्ति को सरमा, मण्डूक आदि के सूक्तों से देख आये हैं। छांदोग्य के काल में इसका रूप बहुत कुछ स्पष्ट हुआ दिखाई देता है। इसी समय में संस्कृत नीतिकथा की उत्पत्ति क्षीण रूप में हुई मान लेना असंगत न होगा।

इस कथा से वैदिक समय की श्वान-प्रतिष्ठा से हम भलीभांति परिचित हो जाते हैं। आगे चलकर महाभारत में हम देखते हैं कि, जनमेजय के यज्ञ में देवशुनी सरमा ने आकर ऋषियों को शाप दिया। इसीलिए छांदोग्य की यह

श्वानकथा ऋषियों के मूर्ख प्रयास (Crazy effort) को व्यक्त करती हो ऐसा नहीं लगता। वस्तुत: वैदिक श्वान प्रतिष्ठा के प्रभाव से ही यहां वह उपस्थित हुई है।

इस छोटी-सी कहानी में कथोपकथन भी है, और वह भी एक कुत्ते का अन्य कुत्तों के साथ। सरमा सूक्त में देवशुनी सरमा का मनुष्यों के साथ संवाद है। किन्तु यहां दोनों पक्ष पशु योनि के हैं इसीलिए छांदोग्य की यह श्वान संबंधी लघुकथा नीतिकथा से भिन्न नहीं है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी इस कथा को पढ़िये तो स्पष्ट होगा कि, श्वेत श्वान सम्मान-प्राप्त तथा उदात्त है। अन्य श्वानों को भाष्य में क्षुद्र ही कहा गया है। क्योंकि वे सामान्य हैं।

एक यह भी संभावना प्रकट की जा सकती है कि, आश्रम के किसी आचार्य या कुलपति को दृष्टि मे रखकर यह श्वान कथा यहां रखी गई हो। उसके शिष्य उन श्वानों के रूप में रखे गये हों। यह एक दूर की सूझ हो सकती है, किन्तु असंभव नहीं है। क्योंकि, विख्यात अंग्रेजी कवि चासर ने अपने 'नन प्रीस्ट हिज टेल' में कुक्कुटराज चांटिक्लीअर (Chantecleare) की कहानी प्रस्तुत करते समय यही दृष्टि रखी थी। चासर[1] ने इस नीति कथा मे बीच बीच मे जो व्यंग कसा है, उसका संकेत उस समय के चर्च के किसी पादरी की ओर था। किन्तु इतना स्पष्ट संकेत इस श्वान कथा मे नहीं है।

इस श्वान-कथा से निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट हो रही हैं। (१) प्राणियो के पात्र मानवेतर प्राणी हैं (२) उनके द्वारा मानववत् संभाषण एवं कार्य हो रहे हैं, (३) कथा-वस्तु भी है, (४) उद्गीथोपासना के उद्देश्य से वह कही गई है (५) प्राचीन काल के मानव-पशु-साहचर्य का प्रभाव भी परिलक्षित होता है, और (६) मानव के बाद श्वान-योनि की प्रतिष्ठा व्यक्त हो रही है। यही तथ्य महाराज युधिष्ठिर के स्वर्गारोहण के समय उनके द्वारा जब साथ मे कुत्ते को ले जाने का आग्रह किया गया तब प्रकट हुआ है। सरमा से लेकर आज के लोकविश्वास (देवता के अनुचर श्वान) तक की परम्परा के बीच मे यह श्वान कथा एक कड़ी है।

उपनिषत् काल मे नीतिकथा ने अपना रूप क्यों प्रकट किया ? कारण यह था कि प्राचीन दैवतकथाओं (myths) का महत्त्व कम हो रहा था। वैदिक देवताओं की सार्वजनीन व्यापकता कम होती गई। देवता सम्प्रदाय विशेष के

---

१. Geoffrey Chaucer, The Nonne Prest His Tale, Canterbury Tales, Editor R. F. Patterson.

लिए ही आराध्य रहे। ब्राह्मण ग्रंथों में दैवतकथाओं की यह स्थिति हुई कि अपने सिद्धान्त की पुष्टि के लिए प्रस्तुत दैवतकथाओं के दृष्टान्त पुरातनकथा के रूप में ही प्रस्तुत किए गये। 'इति' 'ह' 'वै' आदि शब्दों से ब्राह्मणकारों का अभिप्राय स्पष्ट है कि, ये पुरातन कथाएँ हैं। उपनिषद् काल में अध्यात्म-विद्या के अध्ययन का प्रभाव कथाओं पर भी पड़ा। इस समय की कहानियों में कथानक या चरित्र-चित्रण की अपेक्षा उस से व्यक्त आध्यात्मिक अर्थ की ओर ही ध्यान अधिक दिया गया। देव एवं असुरों को सत्व एवं तमोगुण के प्रतीक के रूप में मान लेने पर उनके संघर्ष की कहानी एक 'प्रतीक-कथा' हो बैठी। विश्वोत्पत्ति के विषय को लेकर लिखी गई कहानी भी इसी आध्यात्मिक जिज्ञासा की पूर्ति के लिए प्रस्तुत होने लगी। उनमें परम्परा से प्राप्त प्राचीन कथा के अवशेष उपेक्षित हुए। उपनिषदों में पुरातन कथाओं (Legends) को ब्राह्मणों के प्रभाव से ही ग्रहण किया गया है। फिर भी लोककथा की ओर उपनिषत् काल के कहानीकार उन्मुख हो चले थे। अध्यात्म-विद्या के समर्थन के लिए उनका उपयोग अधिक नहीं हो सका, अतः उपनिषदों में प्राणिकथाएं कम मात्रा में आ सकीं।

अध्यात्म-विद्या का ही यह प्रभाव था कि सर्व जीव में एकात्मसंबंध को प्रतीति होने लगे। इस प्रभाव से पशुपक्षी, मनुष्य आदि भिन्न भिन्न योनि के प्राणियों में समानता देखने की प्रवृत्ति बढ गई। समदर्शी चिंतकों ने इसीलिए कुत्तों की कहानी को अपनाया है। सब प्रणियों में समानता देखने का अभ्यास इतना बढ़ गया था कि छांदोग्य में छोटी-सी श्वानकथा को अपनाने में ऋषियों को अड़चन नहीं पड़ी। इस प्रवृत्ति का भी विकास आगे चल कर जातकों, पंचतन्त्र एवं महाभारत की नीतिकथाओं में हुआ है। पंचतन्त्र तो इस प्रकार की विशेषताओं का स्थिर एवं परिणत रूप प्रकट करता है।

नैतिक विचार

ऋग्वेद में आचार-संबंधी नीति (Moral) की देवता वरुण है। 'ऋत के अनेक अर्थों में सत्य एवं नीति के अर्थ भी अभिप्रेत है[1]। फिर भी ऋग्वेद में 'नीति' पर अधिक बल नहीं दिया गया। ऋग्वेद की सूक्तियों के विषय में हम पहले ही चर्चा कर चुके है। इनसे प्राचीन काल की लोकोक्तियों एवं नीति वचनों का ठीक परिचय मिल जाता है। वैदिक ऋषि जनसाधारण की अपेक्षा अपना स्तर कहीं अधिक ऊँचा समझते होंगे तो आश्चर्य नहीं। किन्तु उन्होंने

---

१. ऋ० सं० २.२८.५; Vide V. S. Ghate, Lectures on the Rgveda, Bomb. 1915, p. 143.

लोगों में प्रचलित मार्मिक उक्तियों को अपनाया है।[१] इससे स्पष्ट है कि लोक-नीति की ऋग्वेद में उपेक्षा नहीं की गई।

ब्राह्मण काल में नीति-विषयक विचार अवश्य प्रकट हुए। ऐतरेय तथा शतपथ ब्राह्मण कालीन नीति विषयक धारणाएं एवं मान्यताएं प्रकट हो चुकी हैं। उनके अतिरिक्त सत्य, अहिंसा आदि नैतिक विचार ब्राह्मणों में प्रकट हुए है।[२] आख्यायिकाओं से सामाजिक, धार्मिक, या राजधर्म-विषयक नीति व्यक्त हुई है। ब्राह्मणों में कुछ वाक्य सत्य संबंधी सिद्धांतों को इस प्रकार प्रकट करते है :

"अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति"[३]

"स वै सत्यमेव वदेत्"[४]

"तस्माद्दीक्षितेन सत्यमेव वदितव्यम्"[५]

छांदोग्य में सत्यकाम जाबाल की कथा भी सत्य के सिद्धांत पर आधृत है। इसके अतिरिक्त शील, संयम तथा नम्रता के निदर्शक अनेक स्थल हैं।[६] शतपथ

---

१. ऋ० सं० १०.११७.१-९ तथा अन्य।

२. देखिए :--

अहिंसा	(१)	श० प० ब्रा०	१.२.३	(२)	श० प० ब्रा०	१.२.५.
	(३)	,,	४.१.४			
सत्य	(४)	,,	७.४.१	(५)	,,	११.३.१
अन्य तत्व	(६)	,,	११.३.३	(७)	,,	३.४.३
	(८)	,,	३.४.३	(९)	,,	२.४.२
	(१०)	,,	११.४.७	(११)	,,	१.६.३
	(१२)	,,	९.५.१	(१३)	,,	२.२.४
	(१४)	,,	२.५.१	(१५)	,,	६.१.१-२
	(१६)	,,	६.४.३	(१७)	,,	१०.४.४
	(१८)	,,	११.४.३	(१९)	,,	१३.४.१
	(२०)	,,	१०.५.३			

Vide Dr. H. R. Karnik's article "Some Moral Tales in the Satapatha Brāhmana," JUB. Vol. VIII Sept. 1939, pt. II, p. 103.

३. श० प० ब्रा० १.१.१.१. ४. वही, १.१.१.२.

५. ऐ० ब्रा० १.१.६.

६. देखिए : Bhaves Chandra Banarji, Aryan Morality in the Brāhmana Period (2nd article) K B. Pathak Commemoration Valume pp. 15-22.

में सुकन्या एवं च्यवन की कथा में भारतीय नारी की शीलवृत्ति का परिचय मिलता है। सुंदरी 'सुकन्या' का विवाह उसके पिता ने बूढ़े एवं बेडव 'च्यवन' के साथ कर दिया। अश्विनीकुमार 'सुकन्या' के प्रेम की अभिलाषा से उसके पास आये तो उसने उत्तर दिया—

"पिता ने मुझे जिसको दी है, उसे मैं जीवित हूं तब तक नहीं छोडूंगी"

यह करारा उत्तर देकर उसने अपने पति को स्वस्थ एवं सुंदर बनाने को अश्विनीकुमारों से प्रार्थना की।[१]

समूचे वैदिक साहित्य में सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक नीति-विचार प्रकट हो चुके है। उनका विकास संस्कृत साहित्य में हुआ है। सती सावित्री की कथा प्रसिद्ध है। नीति-विचार नीति-कथाओं में भी प्रकट किये जाने लगे। पंचतंत्र के पद्यों में इस प्रकार के नीतिवचन रखे गये हैं। नैतिक विचारधारा एवं प्राणिकथा इनके समुचित सामञ्जस्य से ही नीति-कथा का आविर्भाव हुआ। गद्य में कथा और पद्यों में नीति विचार संहत हैं। ये नीति-विचार पहले लोकनीति का रूप धारण किए हुए थे। ब्राह्मण आदि संप्रदायों में उन्हें धार्मिक विचारों में परिणत किया गया। फिर भी लोगों में लौकिक रूप ये नीतिविचार अक्षुण्ण रूप में प्रवाहित थे। पंचतंत्र में ऐसे नीति-विषयों का यथास्थान उपयोग हुआ है। महाभारत में ये ही विचार राजधर्म का अंग बन चुके हैं। किन्तु मूलतः ये लोकनीति के ही अंग थे जिन्हें पंचतंत्र में स्थिरता प्राप्त हुई।

उपनिषत् काल में भी राजनीति-शास्त्र रहा है। नैतिक विचारों में राजधर्म के विचार भी सम्मिलित थे। चाणक्य, उशनस्, कामन्दक आदि आचार्यों ने नीतिशास्त्र को समृद्ध किया है। इसी राजनीति शास्त्र को दंडनीति कहा जाता था। किन्तु इस के पूर्व छांदोग्योपनिषद् में उसे 'एकायन' कहा गया है।[२] शंकराचार्य ने एकायन का अर्थ नीतिशास्त्र दिया है।[३] इस से स्पष्ट है कि मुख्य उपनिषदों के युग मे नीतिशास्त्र एवं लोकनीति के वाक्य लोकप्रिय रहे आये थे। उन्हीं का ग्रहण कर आगे चल कर नीतिकथा के लेखकों ने अपनी कहानियों में कर लिया है।

निष्कर्ष

उपरोक्त ब्राह्मणों, आरण्यकों एवं उपनिषदों में व्यक्त हुए रूपों की चर्चा से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि :—

---

१. श० प० ब्रा० ४.१.५.   २. छांदोग्य० ७. १. २.

३. वही. "एकायनं नीतिशास्त्रम्'

(१) नीति-वचन, लोकोक्ति, आभाणक (Maxims) सुविचार आदि का विकास ऋग्वेद के सूक्तों से हुआ है जो आगे चलकर सुभाषित के रूप में ब्राह्मणों तथा बाद में साहित्य मे वृद्धिगत हुआ है।

(२) ब्राह्मण ग्रंथों में आकर कहानी ने अपना पर्याप्त विकास कर लिया है। उसमें कुछ लौकिक प्रसंग भी आने लगे हैं। कवष की कथा इस तथ्य को स्पष्ट करती है।

(३) अपने सिद्धान्त या अभिप्राय की पुष्टि के लिए एक दृष्टान्त (Parable) के रूप में रख देने की प्रणाली (device) का आविष्कार यजुर्वेद की संहिता तथा ब्राह्मणों में प्रथम हुआ।

(४) ब्राह्मण ग्रन्थों में धार्मिक मन्तव्य ही मुख्य रहा। फिर भी कुछ कथाओं से राजनैतिक तथा लौकिक प्रज्ञा (Political and worldly wisdom) व्यक्त हो गई है। यजुर्वेद में प्रथमतः यह विशेषता प्रकट हुई। ब्राह्मण ग्रंथों में भी यह विशेपता कुछ अधिक मात्रा में प्रकट हुई है।

(५) ब्राह्मण ग्रन्थों में पशु-संबंधी कथाओं के बीज पाये जाते हैं। कहानी में प्राणियों द्वारा मनुष्य के समान संभाषण आदि कार्य करने की घटना ब्राह्मणों में प्रवेश कर चुकी थी। वैसे तो ऋग्वेद में सरमा के रूप में यह घटना प्रकट हो चुकी थी। किन्तु अब ब्राह्मणों में संपूर्ण कथा के रूप में यह घटना पाई जाने लगी। इस प्रकार कहानी के पात्र बनकर पशुओं के मनुष्यवत् व्यवहार करने की घटना प्रथम बार ब्राह्मण-ग्रन्थों में आ गई है।

(६) ब्राह्मणों में गद्य-पद्य-मिश्रित (चम्पू) शैली का आविष्कार हुआ। विवेचन रूप गद्य के बीच-बीच में यज्ञ गाथाएँ आती हैं। जातकों एवं पंचतंत्र में इस शैली का विकास हुआ है।

(७) ब्राह्मणों में यज्ञविधि के समर्थन के लिए अनेक कथाओं का चक्र उपस्थित किया गया। इसके अतिरिक्त कथा में अन्तःकथा का सबसे प्राचीन उदाहरण ऐतरेय ब्राह्मण में मिलता है।

(८) उपनिषत्-काल में एकात्मवाद का उदय हुआ। प्राणि मात्र में समानता देखी जाने लगी। फलस्वरूप उन दिनो तक उपेक्षित प्राणिकथा की ओर ध्यान दिया जाने लगा। छान्दोग्य में श्वानकथा तथा अन्य प्राणि-संबंधी उल्लेख जातक के निकट पूर्वकालीन हैं।

(९) पूरे वैदिक युग में विकास कर रही प्राणि-संबंधी लोककथा साहित्य द्वारा अपनाई जाने लगे ऐसा समय आ गया था। बुद्ध के पूर्वकाल में लोगों में

प्रचलित प्राणिकथा नीतिकथा बन चुकी थी। उसी का ग्रहण बुद्धदेव ने किया। किन्तु उसके पूर्व ही छांदोग्य में उनका प्राचीन एवं प्रारंभिक रूप व्यक्त हो चुका था।

दो धाराएं

पहले हम कह चुके हैं कि, नीतिकथा की उत्पत्ति दो धाराओं का संगम होने पर हुई है। वैदिक साहित्य का नीतिकथा की उत्पत्ति में क्या योगदान रहा होगा इसे हम यहां संक्षेप में प्रस्तुत करेंगे।

प्रथम धारा:—यह धारा वैदिक साहित्य से निकली है। इसमें प्राणि-दृष्टांत, दृष्टान्त-कथा, दैवतकथा, पुरातनकथा, धर्मकथा, प्रतीककथा, सामान्य नीति-विषयक कथा आदि के अंश आये हैं। यजुर्वेद तथा ब्राह्मणों की आख्यायिकाओं में चतुरता, लौकिक आचार और नीति (Policy) भी व्यक्त हो गई है। फिर भी ये नैतिक आख्यान मनुष्य-प्रधान थे।

दूसरी धारा :—भारतवर्ष में अनार्यों का संबंध वन्य जीवन के साथ अधिक रहा है। उससे स्वाभाविक रूप से लोकसाहित्य के प्राचीन अवशेष (survivals) उन्होंने अपनी वाणी में सुरक्षित रक्खे थे। जनसाधारण में प्राणि-विषयक विश्वासों, कल्पनाओं और परम्परा का निर्वाह प्राणिकथा के रूप में होता रहा। यह प्राणिकथा प्रारम्भ में मनोरंजन के लिए कही सुनी जाती थी। किन्तु बाद में वह सदाचरण या सफल जीवन की आकांक्षा से अच्छे की विजय एवं बुरे की पराजय व्यक्त करने लगी।

वैदिक दैवत कथाओं से अनार्यों की यह प्राणिकथा भिन्न थी। जिस समय दोनों जातियों में आर्थिक, सामाजिक, भौगोलिक तथा राजनैतिक कारणों से सामंजस्य अनिवार्य हो गया, तब आर्य-अनार्यों में सांस्कृतिक आदान-प्रदान हुआ। उसी काल में आर्य जन-साधारण की प्राणिकथा से परिचित हुए। समाज के नेता लोग अपनी कहानियों में नीतितत्व को पहले ही अपना चुके थे। यह नीतितत्व की सामग्री उन्हें सुचारु रूप से जीवन व्यतीत करने वाले आर्यों से प्राप्त हुई थी। इस धारा को आर्य-धारा कहा जा सकता है। जब कि, प्राणि-कथा की अनार्य-धारा का परिचय हुआ तब प्राणिकथा के द्वारा नीतितत्व का प्रतिपादन होने लग गया। प्राणि-कथा के चोले में प्राचीन आर्यों के नीतिवचन रख दिये जाने लगे। अपने सिद्धांतों की पुष्टि के लिए अन्य दृष्टांतों के साथ-साथ प्राणिकथा के दृष्टान्त भी दिये जाने लगे। इस प्रकार इन दोनों धाराओं की सामग्री एकत्रित हुई और नीतिकथा में प्राणिकथा, दृष्टान्त-प्रणाली, मानवीय अर्थ, नीति-वचन, राजनैतिक और लौकिक प्रज्ञा आदि अन्यान्य विशेषताएँ

(Characteristics) आकर स्थिर हो गई। स्पष्ट है कि, वैदिक साहित्य से नीतितत्व, सुविचार तथा शिक्षा-दायित्व का योगदान नीतिकथा में हुआ है।

इस एकीकरण का श्रेय किन्हें है? आर्यो एवं अनार्यो की धाराओं से सामग्री लेकर उसे नीतिकथा के रूप में एकत्रित करने का कार्य 'आख्यान-विद्' लोगों ने किया है। इन आख्यानविद् लोगों का उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण में आ चुका है। ये आख्यानविद् सूत, मागध तथा अन्य ब्राह्मण वर्ग के ऋषि थे। प्राचीन कथाओ पर इनका अधिकार था। इन्होंने भारतवर्ष मे प्राचीन समय से अन्यान्य आख्यानों का संग्रह किया। उन्होंने आख्यानों की वृद्धि की और कहानी कह सुनाने का महत्वपूर्ण कार्य भी किया। उनके इस प्रयत्न से प्राणि-संबंधी नीतिकथा को भी बल मिल गया होगा तो आश्चर्य नहीं।

ब्राह्मण ग्रंथों के अध्ययन से यह कहा जा सकता है कि, प्राणिकथा एवं वैदिक नीति-संबंधी कथा का एकीकरण ब्राह्मण काल में हो चुका था। बहुत समय तक इस प्रकार की नीतिकथा मौखिक रूप में ही प्रचलित थी। उसकी लोक-प्रियता बढ़ रही थी। किन्तु उसे साहित्यिक मान्यता बाद में मिली। उपनिषत् साहित्य मे भी उसे मुख्य स्थान न मिल पाया। छांदोग्य में भी प्राणि-संबंधी उल्लेख बहुत अल्प मात्रा में आये है। किन्तु इससे अनुमानतः यह तथ्य स्पष्ट ही है कि, उपनिषत् काल मे प्राणि-संबंधी नीतिकथा का प्रचलन काफी हो चुका था।

संक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि नीतिकथा ब्राह्मण ग्रंथों में, दृष्टांत-कथा (Parable) के रूप में रही है। इसी दृष्टान्त कथा में प्राणिकथा का चमत्कार आकर मिला और रोचक नीतिकथा का जन्म हुआ। यह नया मोड़ उपनिषत् काल में ही मिल चुका था। वैदिक साहित्य के पूर्वार्द्ध मे उसके पूर्व रूप पहले ही प्राप्त हो चुके थे। इसलिए नीतिकथा का स्वागत बाद में होने में देर नही लगी। फलस्वरूप अनेक वर्षो की विकास-परम्परा पंचतंत्र के रूप में प्रकट हुई है।

कहना न होगा कि, ऋग्वेद से लगाकर उपनिषदों के ये स्थल संस्कृत नीति-कथा के विकास के पूर्वार्द्ध को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। छांदोग्य में तो वह शिशु अवस्था मे प्रकट हुई है। किन्तु उसकी विकास-परम्परा का उत्तरार्द्ध जातक, पंचतंत्र एवं महाभारत की नीतिकथाओं में देखा जा सकता है। बुद्धदेव की जातक-कथाएं पालि-भाषा मे संगृहीत है। फिर भी ये कथाएं संस्कृत नीतिकथा का इतिहास प्रस्तुत करती है।

गहरे अध्ययन के लिए वाध्य हुए। इसी अध्ययन एवं चिन्तन के कारण उनके विचारों में परिपक्वता आ गई थी। धर्म की ध्वजा लेकर जनता का शोषण करनेवालों के कृत्यों को उन्होंने "विडाल व्रत" कहा है[१]। अन्य धर्म के प्रति घृणा उत्पन्न करने का ही कार्य उन्होंने नहीं किया। उन्होंने अहिंसा पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया। विचारों में ठोसपन आ गया था। फलस्वरूप उन्हे व्यक्त करने की तीव्र इच्छा होना स्वाभाविक था।

जनसाधारण में रह कर ही गौतम बुद्ध ने उपदेश दिया। ब्राह्मण धर्म की चरमावस्था के समय मे जनसाधारण को उनके धर्म में कोई विशेष स्थान नहीं था। केवल सेवाधर्म ही उनके लिए था। फिर भी जनसाधारण किसी सम्प्रदाय-विशेष से प्रभावित हुए विना नहीं रहता। ब्राह्मणधर्म से प्रभावित किन्तु उसके लाभों से वञ्चित जनसमाज ने जब बुद्ध की वाणी में मानव की पीड़ा एवं करुणा के स्वर सुने तब उनके प्रति आकृष्ट हुआ। जनसाधारण को खुले मानवधर्म का आश्रय मिला जिस मे उन्हे भी कुछ स्थान प्राप्त था। सदियों तक जो खुली हवा उन्हें नसीव नहीं हुई थी वह उन्हे अब मिल गई। जीवन के हर चेत्र में पनपने का अवसर उन्हे दिखाई देने लगा। बुद्ध ने धर्म को सरल बना दिया था। जाति-व्यवस्था से उत्पन्न समस्याओं का हल बुद्ध धर्म ही था। बुद्धदेव ने उनकी पीड़ा का अन्त करने के लिए ब्राह्मणों के जातिवाद, गोत्र-वाद, अभिमान-वाद के विरोध में सिंहनाद किया[२] और उसका प्रभाव जनता पर पड़ा।

बौद्ध कहानियाँ

बुद्धधर्म के इस लोक-सम्पर्क के कारण ही भारतीय नीतिकथा का साहित्यिक जन्म हुआ है। बुद्धदेव को उपदेशक बनकर जनता के बीच अपने विचार प्रकट करने का कार्य करना पड़ा। श्रोताओं को वाणी में यह उपदेश देना उचित था इसलिए पालि भाषा मे बुद्धदेव ने उपदेश वचन कहे। उनमें कुछ कथाओं के दृष्टान्त देकर अपने मन्तव्य एवं सिद्धान्त की पुष्टि उन्होंने की। बुद्धपूर्व काल में जनवाणी में लोककथा नीतिकथा का रूप पहले ही धारण कर चुकी थी। बुद्धदेव ने इस प्रकार की नीतिकथाओं एवं लोककथाओं को अपनाया। उस समय प्राणिकथा जन-सम्पत्ति बन वैठी थी। इसी का संयोजन जातकों में हुआ है। इस अर्थ में जातकीय नीतिकथाएं जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता की कही हुई कहानियाँ रही है। भारतीय नीतिकथा को साहित्य में स्थिर होने के

---

१. विलारवत जातक (१२८)

२. दीघनिकाय, १, ३. (अम्बट्ठ-सुत्त) एवं १, ४.

लिए यह सबसे बड़ा महत्वपूर्ण अवसर आ गया था। भारतवर्ष में ये कहानियां लोक-साहित्य का अंग थीं, इसीलिए जातकों की कई कथाओं के प्रतिरूप हमें पंचतंत्र, वृहत्कथा-साहित्य तथा महाभारत में भी प्राप्त होते हैं।

बुद्धदेव ने जिस प्रकार लोक-जीवन को प्रचार का कार्यक्षेत्र चुना, उस प्रकार उसका माध्यम भी लोक-साहित्य ही रखा। साथ-साथ उन्होंने लोकवाणी को अपना लिया था। लोगों में कई कहानियां जनप्रिय थीं। उन कहानियों में कुछ तथ्य प्रकट करने की क्षमता थी। लौकिक अर्थ, युक्तियां, चतुरता, प्रज्ञा आदि विशेषताएँ पहले ही उनमें विद्यमान थी। इन विशेषताओं को देखकर ही बुद्धदेव ने उसे लोक-धर्म या लोक-नीति का रूप दे डाला। इस प्रकार लोककथा एक बड़े प्रभावशील व्यक्ति के द्वारा अपनाई जाने के कारण नैतिककथा के रूप में प्रकट होने लगी।

बुद्धदेव ने लोककथाओं को अपनाकर प्राचीन समय में साहित्य-सङ्कलन का महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किया। इस प्रकार का कथा-सङ्कलन संस्कृत एवं प्राकृत में हुआ है। बुद्ध के पूर्व ही, ईसा के पूर्व ८वीं शताब्दि के लगभग शौनक ने उस समय की लोकप्रिय वैदिक पुरातन कथाओं का सङ्कलन एवं सम्पादन अपने वृहद्देवता नामक ग्रन्थ में किया। उन का यह कार्य साहित्य-वृद्धि के लिए बड़ा महत्वपूर्ण था। गुणाढ्य की वृहत्कथा तथा सातवाहन की सत्तसई में लोककथा एवं लोक-गीतियों का प्राचीन रूप सङ्कलित हुआ था। बुद्धदेव के द्वारा लोक-कथाओं का ग्रहण भी इसी परम्परा की महत्वपूर्ण कड़ी है।

इन लोककथाओं में प्राणिकथाएँ कम न थीं। सदियों से ये कहानियां लोगों मे प्रचलित थीं। जनता में ये घर-घर कही सुनी जाती थीं। इन्हीं कहानियों को दृष्टान्त के रूप में रखकर न केवल धार्मिक सिद्धान्तों का रहस्य बुद्धदेव ने प्रकट किया, अपितु जीवन के मार्मिक तथ्यों का भी। इन लोककथाओं को अपनाने पर बौद्ध नीतिकथाओं के रूप में ये कहानियां चलती रहीं। उन्हीं कथाओं का संग्रह जातक में हुआ है।

जातक कथाओं में गद्य एवं पद्य दोनों हैं। भगवान् बुद्ध का उपदेश गाथाओं में सुरक्षित हुआ है। सम्भव है, कुछ अन्य आचार्यों के उपदेश-वचन भी बुद्धदेव के नाम पर संग्रहित हो गये हों। वैसे गाथा बहुत प्राचीन लोकगीत की एक विद्या (form) रही है। उसी का ग्रहण बौद्धों ने किया।

इन गाथाओं को समझाने के लिए कथाएं कही गई हैं। नैतिक सिद्धान्त को स्पष्ट एवं पुष्ट करने के लिए बुद्धदेव ने पूर्वजन्म की कथाएं सुनाई हैं। इस प्रकार सिद्धान्त-गाथाएं "विधि" है और कथाएं उसका "अर्थवाद"। भले ही

पिटक साहित्य

बुद्धदेव ने अपने आविर्भाव-काल में बिहार प्रदेश में विचरण (विहार) किया। उस प्रदेश की जनभाषा पालि मागवी थी। अतः उसमें लिखा गया "पाली-तिपिटक" ग्रंथ बुद्धवचनों का सब से अधिक प्रामाणिक संग्रह है[१]। यह सङ्कलन तृतीय बौद्ध धर्म-सम्मेलन के अवसर पर वैशाली में ख्रि. पू. ३ शती में हुआ। इस विषय की चर्चा डा. विंटरनित्ज[२] आदि विद्वानों ने की है। बौद्ध परम्परा के अनुसार बुद्धदेव के निर्वाण के बाद कुछ सप्ताह लौटने पर ही पहली धर्म-सभा जो राजगृह (राजगिर) में हुई थी उसमें यह संकलन हुआ बताया जाता है[3]। विन्टरनित्ज ने इसे असम्भव माना है। किन्तु भरहुत के अभिलेखों में "पंचनेकायिक" "सुत्तन्तिक" "पेटकी" (पिटकों का ज्ञाता) आदि शब्दों का उल्लेख है। ये लेख ई. पू. ३ री शताब्दि में ही अंकित हो चुके थे। इससे स्पष्ट है कि, इस समय तक निकाय, पिटक आदि संज्ञाएं काफी परिचित हो चुकी थीं। कहना न होगा कि, ई. पू. ३ री शती के पूर्व ही संज्ञाओं का संकलन में उपयोग हो गया था। इससे उपरोक्त बौद्ध परम्परा की ही पुष्टि होती है। पहिली धर्म सभा में तिपिटक का संकलन प्रस्तुत हुआ होगा या बुद्धदेव के १०० वर्ष बाद द्वितीय सभा में तो असंभव नहीं लगता, तभी ई. पू. ३री शताब्दी में भरहुत के अभिलेखों में उन्हें स्थान मिल सका।

इसमें तो सन्देह नहीं कि, पालि तिपिटक की गाथाएं बहुत प्राचीन हैं। उनमें प्रयुक्त छन्द तो वाल्मीकि रामायण से भी प्राचीन हैं[४]। डा. विंटरनित्ज के अनुसार तो कुछ गाथाएं वैदिक युग की हैं[५]। इन्हीं गाथाओं को स्पष्ट करने के लिए जातक कथाएं कही गई हैं।

तिपिटक तीन पिटकों का बना हुआ है। इन तीन पिटारों में बुद्धवचन, उनके सम्वाद, भाषण आदि को संकलित कर रक्खा गया है। सुत्तपिटक,

---

१. भरतसिंह उपाध्याय, पालि साहित्य का इतिहास, २००८ हि. सा. सं. अध्याय ३ रा, पृ. १११.

२. Dr. Winternitz, History of Indian Literature, Vol. II, p, 4. 5.

३. विनयपिटक, चुल्लवग्ग IX.

४. Oldenburg, Gurupūjā Koumudi, P.90; Digha-Nikāya, ed. by Rhys Davids and Carpentor, Vol. II, Intro. P. 8 (P. T. S.)

५. Dr. Winternitz, Hist. of Ind. Lit. II P. 123.

विनयपिटक एवं अभिधम्म-पिटक ये वे तीन पिटक हैं। वैसे ही सुत्तपिटक पालि तिपिटक का सब से अधिक महत्वपूर्ण भाग है। बुद्ध के "धम्म" (धर्म) का यथार्थ परिचय कराना ही इस पिटक का विषय है। धम्म एवं विनय की प्रधानता अधिक रही हैं। किन्तु सुत्त-पिटक साहित्य एवं इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यह पाँच भागों में विभक्त है :—

१. दीघ निकाय
२. मज्झिम-निकाय
३. संयुत्त-निकाय
४. अंगुत्तर-निकाय और
५. खुद्दक-निकाय.

१. दीघ-निकाय के तीन भाग हैं : (१) सीलक्खंध-वग्ग, (२) महा-वग्ग और (३) पाथेय या पाटिक वग्ग।

सीलक्खन्ध-वग्ग में अनेक प्रकार की कथाएं मिलती हैं। राजकथा, चोर-कथा, ग्राम, नगर, निगम, जनपद, पनघट, स्त्री और भूतप्रेत आदि की कथाएं यहां प्रस्तुत की गई हैं। इस वग्ग का प्रथम सुत्त (सूत्र) है ब्रह्मजालसुत्त। इसका अर्थ है श्रेष्ठ (ब्रह्म) जालरूपी बुद्ध-उपदेश। जाल से जिस प्रकार मछलियां फिसलकर निकल जाती हैं, उसी प्रकार मिथ्या दृष्टियां भी फिसलती रहती हैं। उन्हें पकड़ने के लिए यह बौद्ध उपदेशरूपी जाल है[१]। इस प्रकार के दृष्टान्त बहुत प्राचीन हैं। हम देख चुके हैं कि, ऋग्वेद ब्राह्मणों में ऐसे दृष्टान्तों से अपना मन्तव्य प्रकट किया गया है उसी का अनुसरण यहां बौद्धों ने किया है। मत्स्यन्याय एवं मत्स्य-दृष्टान्त संस्कृत साहित्य में भी प्रयुक्त हुए हैं।

२. मज्झिम-निकाय मध्यम आकार के सुत्तों का संग्रह है जिसमें महत्व के बुद्धवचन संग्रहित हैं। कुछ वग्गों में बुद्धदेव की कथाएं आगई हैं[२]।

३. संयुत्त-निकाय में छोटे-बड़े सभी प्रकार के सुत्तों का संग्रह है। बुद्धवचन के सुत्त गद्य में है। इससे भी प्राचीन कथा की झलक दिखाई देती है।

४. अंगुत्तर-निकाय में विगत तीन नियमों का ही विषय है। एक, दो आदि संख्या से इसके विभाग किये गये हैं। दुक-निपात में बुद्धदेव का प्राणि-सम्बन्धी निरीक्षण अच्छा व्यक्त हो गया है :

"भिक्षुओं। बिजली कड़कने पर दो ही प्राणी चौंक नहीं पड़ते। कौन से

---

१. दीघ-निकाय, १. १.
२. मज्झिम-निकाय, राज-वग्ग ६.

वे दो प्राणी ? क्षीणास्त्रव भिक्षु एवं मृगराज सिंह। भिक्षुओं, ये ही दो प्राणी बिजली कड़कने पर नहीं चौंक पड़ते।"[१]

५. खुद्दक-निकाय १५ स्वतंत्र ग्रंथों का संग्रह है। आचार्य बुद्धघोष ने निम्न लिखित क्रम से इन ग्रंथों की गणना की है :

(१) खुद्दक पाठ (२) धम्मपद (३) उदान (४) इतिवुत्तक (५) सुत्त निपात (६) विमानवत्थु (७) पेतवत्थु (८) थेर गाथा (९) थेरी गाथा (१०) जातक (११) निद्देस (१२) परिसम्पिदामग्ग (१३) अपदान (१४) बुद्धवंस और (१५) चरिया-पिटक।

दूसरी परम्परा के अनुसार जातक आदि ११ ग्रंथ ही माने गये हैं। कुछ भी हो, ये ग्रंथ महत्वपूर्ण हैं। नीतिकथा की दृष्टि से तो "जातक" ग्रंथ का महत्व अनन्य साधारण है।

खुद्दक-पाठ में नियमों, प्रश्नोत्तरों, निधि, मैत्री आदि के सम्बन्ध में सूत्र है।

धम्मपद[२]

धम्मपद एक अत्यन्त लोकप्रिय बौद्ध ग्रंथ है। इसमें कुल मिलाकर ४२३ गाथाएं हैं। ये गाथाएं यमक-वग्ग, अप्पमादवग्ग आदि २६ वर्गो में विभक्त हैं। ये बुद्ध के उपदेश-वचन ही हैं। गाथाओं एवं सुभाषितों के इतिहास को दृष्टि से धम्मपद की ये गाथाएं महत्वपूर्ण हैं। "हंस जैसे क्षुद्र जलाशय को छोड़कर चले जाते है, वैसे ही अर्हत् घर को छोड़ चले जाते है।"[3] इस प्रकार के सुन्दर वाक्य भी इन गाथाओं में मिलते हैं।

इन गाथाओं में नीति-सम्बन्धी विचार प्रकट किये गये हैं। इनमें भारतीय समाज एवं संस्कृति के मूल तत्वों का प्रतिपादन किया गया है। अतः कुछ गाथाओं की समानता उपनिषद्, महाभारत, गीता, मनुस्मृति इत्यादि ग्रंथों में पाये जाने वाले वाक्यों एवं पद्यों में पाई गई है[४]। इससे यही तथ्य स्पष्ट होगा कि,

---

१. अंगुत्तर-निकाय, दुक-निपात :-

"द्वे मे भिक्खवे असनिया फलन्तिया न सन्तसन्ति। कतमे द्वे ? भिक्खूच खीणासवो, सीहो च मिगराजा। इमे खो भिक्खवे द्वे असनिया फलन्तिया न सन्तसन्तीति।"

२. श्री राहुल सांकृत्यायन तथा भदन्त आनन्द कोसल्यायन के हिंदी अनुवाद द्रष्टव्य हैं। अंग्रेजी अनुवाद श्री मेक्स म्युलर ने किया है।

३. धम्मपद, अर्हन्त वग्ग (वर्ग ७)

४. Dr. B. C. Law, History of Pali Literature, Vol. I, pp. 200-214. (footnotes).

भारतीय समाज की जो विचार-सम्पत्ति थी उनका ग्रहण बुद्ध-वचन के रूप में किया गया है। इस प्रकार का प्रयास स्वयं बुद्धदेव ने भी किया था। ब्राह्मण सम्प्रदाय के द्वारा भुलाये गये मूल सांस्कृतिक तत्व बुद्ध-वाणी में फिर से अनुप्राणित हो उठे। ऐसे ही प्रयत्नों से नीतिवचन समाज की सम्पत्ति बन बैठते हैं।

नीतिकथा में ऐसे नीतिवचन प्रयुक्त होते हैं। महाभारत, पञ्चतंत्र, हितोपदेश आदि में अनेक सार्वजनीन नीतिवचनों का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद के समय से यह परम्परा कायम हो गई थी। धम्मपद उसी के बीच की एक कड़ी है। बौद्धों ने धम्मपद में उन्हें स्थायी रूप दे डाला है। इन वचनों को समझाने के लिए कथा कहने की आवश्यकता पड़ती है।

बुद्धदेव ने अपने आप को हाथी के समान भी निरूपित किया है। "एक हाथी जिस प्रकार रण में उस पर छोड़े हुए बाणों को सह लेता है, उसी प्रकार मुझे भी लोगों की गालियां एवं निन्दा सह लेनी होगी। क्योंकि दुनिया बड़ी बुरी होती है"[१]। इस प्रकार के प्राणि-दृष्टांत इन गाथाओं में पाये जाते हैं। इसीलिए बौद्ध साहित्य में सब जानवरों में अधिक महत्व हाथी को दिया गया दिखाई देता है। बुद्धदेव ने इस प्रकार अपनी तुलना हाथी से कर ली है। अजन्ता की गुफाओं में एवं अन्यत्र भी बौद्ध चित्रों में हाथी का चित्र सर्वत्र अभिलिखित पाया जाता है। कुत्तों के भूंकते रहने पर भी हाथी अपने मार्ग से धीमी चाल से चलता ही जाता है। इस तथ्य को देखकर ही निन्दा को सह कर अपनी साधना में अविचल बुद्धदेव के लिए हाथी का उपमान चुन लिया गया। इससे प्राणि-सम्बन्धी एक तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि, मनुष्य के समान पशुओं में भी स्वभाव से भेद परिलक्षित कर लिया गया था। हाथी उदात्त है, सिंह परोपजीवी नहीं है, कुत्ता रक्षक है, कबूतर कौओं की अपेक्षा सदाशय अधिक है आदि स्वभाव-विषयक धारणाएं अनुभव के आधार पर निश्चित हो चुकी थीं। थेरगाथा में एक और प्राणि-दृष्टान्त आ गया है। किसी भिक्षु को अपने वस्त्रों का गर्व था। उसे सिंह की खाल में छिपे बंदर की उपमा दी गई है[२]। आत्म-संयमी भिक्षु की तुलना अपनी गुहा में बैठे हुए सिंह से की गई है[३]।

इस सब पिटक साहित्य में कथा-साहित्य की दृष्टि से सुत्त पिटक बहुत

---

१. धम्मपद, नागवग्ग, गाथाएं ३२०-३२१.

२. ईसप (Aesob) की कहानियों में सिंह की खाल और गधे की कथा है। यहां गधे की जगह पर बंदर है। किन्तु सीहचम्म जातक (१८९) में गधे की ही कथा है। तंत्राख्यायिक, पंचतंत्र एवं हितोपदेश में गधा ही है।

३. थेरगाथा, ६९२, १०००, १०८०, १०८१.

महत्वपूर्ण है। क्योंकि, इसी में प्राचीन नीतिकथाओं का संग्रह "जातक" संकलित है। बौद्ध साहित्य में न केवल प्राणि-दृष्टान्त ही मिलते हैं, प्रत्युत प्राणि-सम्बन्धी नीतिकथाएँ भी प्रचुर मात्रा में हैं।

जातक[1]

जातक की कहानियां प्रसिद्ध हैं। सीलोन, बर्मा आदि देशों में भी जातक कथाओं की लोकप्रियता कम नहीं है। इनमें कई नीतिकथाएं (fables) भी आ गई हैं। ये कहानियां ईसा के पूर्व पांचवी शताब्दि के पहले से लेकर ईसा के वाद की प्रथम या दूसरी शताब्दि तक रची गई हैं, तथा इनमें से अनेक कहानियां महाभारत और रामायण में विकसित रूप से पाई जाती है[2]। संस्कृत नीतिकथा के विकास में भी इनका काफी योगदान रहा है। अतः जातककथा पर विस्तार

---

१. जातक का हिन्दी अनुवाद भदन्त आनंद कौसल्यायन ने ५ भागों में किया है (हिं० सा० सं० द्वारा प्रकाशित); ईशानचंद्र घोष कृत बंगला अनुवाद; अंग्रेजी अनुवाद के लिए देखिए Cowell's edition, The Jataka. Vol. 6 & Index, 1957 (Pali Text Society); Translations by Chammers and Others; Rhys Davids, Buddhist Birth Stories, London, 1880, Introduction and translation of the Jātakas 1-40; translation in German, Liepzig, 1908; Fanboll's Jataka (in Roman script), Vol. I-VII, London, 1877-1897; सिआमी लिपि में १० भागों में प्रकाशित संस्करण, १९२५, सिंहली लिपि में हेवावितरण निधि के द्वारा प्रकाशित सुन्दर संस्करण, जातक पर विवेचनात्मक साहित्य के लिए देखिए : Dr. Winternitz, History of Indian Literature, II, p. 116 & Footnote 3; Encyclopaedia of Religion and Ethics, Vol. VII p. 491; Rhys Davids, Buddhist India, p. 189; Giager, Pali Literature and Language, p. 30 & footnote 2 & 3; B. C. Law, Pali Literature, Vol. I. pp. 276-277 etc., भरतसिंह उपाध्याय, पालि साहित्य का इतिहास, हिं० सा० सं० प्र० सं० २००८, पृ० २७२ और पद संकेत ३, B C. Law's Geography of Early Buddhism, and its preface by Dr. F. W. Thomas; डा० फिक के ग्रन्थ का अंग्रेजी अनुवाद Dr. Maitra, The Social Organization in North-East India in Buddha's Time, Cal. 1920.

२. जातक, भदंत आनंद कौसल्यायन, प्रथम खंड भूमिका, पृ० २४-२७।

से विचार करना असंगत न होगा। क्योंकि जातककथा संस्कृत नीतिकथा के क्रमिक विकास को प्रस्तुत करती है।

जातक सुत्त-पिटक के खुद्दक-निकाय का दसवां ग्रंथ है। इसमें अनेक कहानियां हैं। कुछ छोटी हैं और कुछ बड़ी। कुछ इतनी बड़ी हैं कि, उनका स्वरूप संक्षिप्त महाकाव्य-का-सा है।

"जातक" का अर्थ है जन्म सम्बन्धी कथाएं। "जन्" धातु से यह शब्द उत्पन्न हुआ है। (जनधातोर्निष्ठान्तो वा भावे क्तः।) जात याने भूत, जातक का अर्थ भूतकथा है। अथवा "जातं जननं जनि" इस अर्थ में पूर्वजन्म की कथाएँ। भगवान बुद्ध ने अपने पूर्वजन्म की घटनाओं का स्मरण कर उन्हें अपने शिष्यों को सुनाया। इसलिए इसे जातक कहते हैं। इन पूर्वजन्म-सम्बन्धी कथाओं का संग्रह "जातक" ग्रंथ में हुआ है। बुद्धत्व को प्राप्त कर लेने के पूर्व बुद्धदेव को कई योनियों में जन्म लेने पड़े। इन सब जन्मों में वे "बोधिसत्व" की अवस्था में रहे। बुद्धतत्व की प्राप्ति के लिए बोधिसत्व की यह साधना थी। "बोधिसत्व" का अर्थ हैं, बोधि के लिए उद्योगशील प्राणी (सत्व)।

इस जन्म-परम्परा में बोधिसत्व ने कभी मनुष्य या देवता की योनि में जन्म लिया तो कभी पशु-पक्षियों की योनि में। बुद्धदेव ने इन सभी जन्मों में उनके साथ घटित कथाएं कहीं। इन कहानियों को कह कर बुद्धदेव ने शिष्यों एवं लोगों को उपदेश दिया। ये सभी कहानियां किसी न किसी नीति या सिद्धान्त की शिक्षा देतीं हैं। अतः इसे स्थूल रूप से शिक्षाप्रद आख्यान या कथाएं (Didactic Tales) कहा जा सकता है। विशेषरूप से इनमें जो पशुपक्षियों के जन्मों से सम्बन्धित कहानियां हैं, उन्हें हम हमारी नीतिकथा की व्याख्या के अनुसार 'नीतिकथा' (Fables) कहेंगे। किन्तु इन प्राणिसम्बन्धी नीतिकथाओं पर विस्तार से विचार करने के पूर्व जातक की शिक्षाप्रद कथाओं पर विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा।

प्रत्येक जातक-कथा के ५ भाग हैं :—

१. पच्चुपन्नवत्थु।
२. अतीतवत्थु।
३. गाथा।
४. वैय्याकरण या अत्थवण्णना और
५. समोधान।

१. "पच्चुपन्नवत्थु" का अर्थ है वर्तमान काल की वस्तु। वर्तमान घटना या कथा। बुद्ध के जीवन काल में घटी हुई घटना या प्रसंग को इस भाग में

उपस्थित किया गया है। गाथा प्रथम प्रस्तुत कर प्रसंगकथा उपस्थित की जाती है। शिष्यों को बुद्धदेव सुनाते हैं।

२. पच्चुपन्न वत्थु में निहित प्रसंग या चर्चा पर बुद्धदेव अपने पूर्वजन्म की कथा दृष्टान्त के रूप में सुनाते हैं। इसे "अतीतवत्थु" कहते हैं। बुद्धदेव के पूर्वजन्म की घटनाइस कथा में होती है। इसलिए इसे "अतीतवत्थु" कहा हैं। जैसे, "पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त राज्य करते थे तब बोधिसत्व सिंह की योनि में पैदा हुए और हिमालय प्रदेश में पर्वतगुफाओं में रहने लगे[1]"। या "बोधिसत्व कुरंग मृग की योनि में उत्पन्न हुए"[2] आदि।

"अतीतवत्थु" जातक का महत्वपूर्ण अंश है। नीतिकथा की दृष्टि से तो उसे बहुत ही महत्वपूर्ण समझना चाहिए। क्योंकि, बुद्धदेव ने पशु-पक्षियों का भी जन्म लिया था। फलस्वरूप अतीतवत्थु में प्राणीकथाएँ (animal tales) भी बड़ी संख्या में आ गई हैं। पशुपक्षियों को इन कहानियों को सुना कर बुद्धदेव ने अपनी गाथा एवं सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, अतः ये सब कथाएँ नीतिकथाएं हो गई हैं।

प्राणिकथा का समावेश "अतीतवत्थु" में ही सम्भव था। क्योंकि, पच्चुप्पन्न वत्थु में तो मानवीय सत्य घटना या प्रसङ्ग पर आधारित कथा है। उस का अनुभव सभी को है। किन्तु शास्ता के द्वारा कथित पूर्वजन्म की कथा में प्राणिकथा के प्रकट होने का अवसर पर्याप्त है। क्योंकि बुद्ध के कई पूर्वजन्म प्राणियों के चोले मे हुए थे। इसीलिए अतीतवत्थु का महत्व अधिक है।

३. गाथाएं जातक के बहुत प्राचीन अंश हैं। वास्तव में गाथा ही जातक है। कथाएं बाद में इन गाथाओं को स्पष्ट एवं पुष्ट करने के लिए कही गई हैं। गाथा जातक का पद्यभाग है और कथाएं गद्य में कही गई हैं। इस गद्य की अपेक्षा गाथाएँ बहुत प्राचीन है। "पच्चुप्पन्नवत्थु" आदि पांचों भाग मिलाकर जो 'जातक' का स्वरूप है, वह वास्तव में 'जातकत्थवण्णना' अर्थात् जातक (गाथा-जातक) की विवेचना है। जातक की वह अर्थकथा या व्याख्या है। ब्राह्मणों मे 'विधि' और 'अर्थवाद' का जो स्थान है, वही जातक में गाथाओं और अर्थकथा का। प्राचीन बुद्ध-वचन इन गाथाओं में समाविष्ट हुए हैं। उन्हीं को व्याख्या प्रसंगकथा, (anecdote), दृष्टान्त-कथा (parable) आदि से की गई है। इस से गाथा को स-सन्दर्भ दृष्टान्त देकर समझाया गया है।

४. गाथा भाग के बाद 'वेय्याकरण' आता है। गाथा के पदों के

---

१. सूकर-जातक (१५३)

२. कुरङ्गमिग-जातक (२१)।

शब्दार्थ और उसकी व्याख्या इस भाग में की गई है। इसे वैय्याकरण या अत्यवण्णना कहते हैं।

५. अन्त में 'समोधान' आता है। इसमें 'अतीत कथा' के पात्रों का बुद्धदेव के जीवन काल में रहे व्यक्तियों के साथ मेल स्थापित किया है। जो कथा पूर्व-जन्म की होगी उसके पात्र वर्तमान जन्म में दिखाये जाते हैं। जैसे, 'उस समय सूअर यह वृद्ध स्थविर था। सिंह तो मैं ही था[1]'। अथवा 'उस समय अटारी पर से शिकार खेलने वाला शिकारी अब का देवदत्त था। और कुरंगमृग तो मैं था ही'[2] आदि।

जातक की गद्य-पद्य मिश्रित रचना

हम कह चुके हैं कि जातक में गाथाएं प्राचीन हैं। भगवान् बुद्ध का उपदेश गाथाओं में है। विद्वानों ने कुछ गाथाओं को वैदिक समय तक प्राचीन माना है[3]। 'जातकट्ठकथा' का आधार ये गाथाएँ हैं। जातक ग्रंथ श्रीलंका में ले जाया गया था। वहां सिंहली में उसका अनुवाद हुआ। जातकट्ठवण्णना के रूप में सिंहली से पुनः पालि में उसका अनुवाद हुआ। गद्य भाग यद्यपि अनुवाद का अनुवाद है, फिर भी धार्मिक विरासत होने के कारण बुद्ध की गाथाएं मूल स्थिति में ही रही। जातक में ये गाथाएं सुरक्षित हैं। यह पालि अनुवाद बुद्धघोष ने ई. स. ४३० में किया था। इस विषय में प्रो० ह्रीस डेविड्स ने चर्चा की है[4]। बुद्धघोष ने गद्यभाग की रचना की होगी या नहीं, सन्देहास्पद है। यह निश्चित है कि पद्यभाग (गाथाएँ) बहुत प्राचीन हैं। ये प्राचीन कथाएं गद्य में रही हों अथवा पद्य में, यह स्पष्ट है कि गाथाओं में प्राचीन कथाओं का अस्तित्व विद्यमान है[5]।

जातक का जो रूप आज हमारे सामने है वह गद्य-पद्य-मिश्रित है। इसे चम्पू-शैली भी कहते हैं। गद्य-पद्य-मिश्रित रचना की परम्परा बहुत प्राचीन रही है। ऋग्वेद के आख्यान सूक्तों में केवल पद्य ही है। गद्यभाग रहा हो या न भी रहा

---

१. सूकर-जातक (१५३)

२. कुरंग-मिग-जातक (२१)

३. Dr. Winternitz, History of Indian Literature, II p. 123. Luders, Festschrift Windisch, p. 238.

४. Prof. Rhys Davids, Buddhist Birth Stories, Vol. I, Intro.

५. The Jataka, Edited by E. B. Cowell, 1957, Preface, Vol. I, p. XI.

हो। किन्तु मौखिक रूप में चलती हुई कथा का तो गद्य में ही व्यवहार होता था यह स्पष्ट है। साहित्य में यह गद्य स्थिर नहीं होने पाया। गद्य गेय न होने के कारण कण्ठस्थ नहीं किया जा सका। ऋग्वेद में पद्य भाग सुरक्षित है। इससे अनुमानतः ऋग्वेद के समय में गद्य-पद्य-मिश्रित साहित्य रहा होगा तो आश्चर्य नहीं।

यदि ऋग्वेद के अनन्तर लेखन-कला का उदय हुआ है, तो इस लेखन-कला के उदय के साथ-साथ गद्य को भी साहित्य में स्थिर होने का अवसर प्राप्त हो गया। यजुर्वेद का गद्य इसका नमूना है। कहानी में गद्य-पद्यों के दोनों रूप लेखन कला के आविर्भाव के पश्चात साहित्य में स्थिर हो सके।

जातक में पाई जाने वाली गद्य-पद्यमिश्रित रचना की प्रणाली बुद्धदेव से पूर्व की है। बुद्धदेव के पूर्व ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञगाथाएं आ चुकी हैं। वहां गद्य में आख्यायिका, विधि-विधानों का स्पष्टीकरण आदि भाष्य निहित हैं। इसी गद्य में बीच-बीच में यज्ञगाथा विद्यमान हैं। ये गाथाएं आख्यानों के अभिन्न अंग नहीं बन पायी थीं। क्योंकि, बीच-बीच में केवल सन्दर्भ के रूप में इन गाथाओं को ब्राह्मणकारों ने उद्धृत किया है। एक और तथ्य भी है : इन गाथाओं में सूक्तियां या नीतिवचन नहीं मिलेंगे। किन्तु प्राचीन कहानी या किसी प्रसंग का अंश इन यज्ञगाथाओं में अवश्य मिलता है। इन गाथाओं को लौकिक नीतिवचन का रूप दिया जाना ब्राह्मणों में आवश्यक नहीं था। इसलिए लौकिक नीति के वचन उद्धृत करने के लिए उन्हें ब्राह्मणों में उपस्थित नहीं किया गया।

ये यज्ञगाथाएं ब्राह्मण काल में ही बहुत प्राचीन हो चुकी थीं। 'तदेषाऽभि यज्ञगाथा गीयते' आदि वाक्यों से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है। इन गाथाओं में प्राचीन आख्यानों का जो अंश कभी-कभी प्रकट हो जाता है उसी का स्पष्टीकरण गद्य में करने की प्रवृत्ति ब्राह्मणकारों की रही है[1]।

जातक मे इसी गाथा का बुद्धकालीन रूप प्रकट हुआ है। गद्य-पद्य-मिश्रित रचना की प्रवृत्ति भी बढ़ गई थी, इसलिए इसी प्रणाली का उपयोग जातक में कर दिया गया है। इस दृष्टि से जातक की यह चम्पू-शैली प्राचीन वैदिक साहित्य से ली हुई विरासत समझनी चाहिये। जातक की कई गाथाओं में भी प्राचीन कथांश पाये जाते हैं। उन्हें वहीं गद्य में दे देने से गाथाएं गद्य का अंग बन गई हैं। फिर भी इन गाथाओं में नीति या लौकिक व्यवहार में उपादेय

---

१ ऐ. ब्रा. पं. ८, अध्याय ३९, खं. ७ :—

"आसन्दीवति धान्यादं रुक्मिणं हरितस्रजम्।
अश्वं बबन्ध सारंगं देवेभ्यो जनमेजय, इति।"

वचन भी प्रवेश कर गये हैं। जब से गाथा बुद्धवचनों का आलम्बन बन गई तब से उसमें लौकिक नीति या व्यवहार कुशलता की शिक्षा सम्मिलित हो गयी। नीतिकथा की दृष्टि से यह सबसे बड़ी महत्वपूर्ण घटना है। बुद्धपूर्व गाथाओं में जो लौकिक सूक्तियाँ रही होंगी उनका रूप वाक्प्रचार, कहावत या लोक-साहित्य के रूप में रहा होगा। ये प्राचीन वचन पालि साहित्य में कथा के रूप में सुरक्षित हैं।

लौकिक गाथा में सुभाषित

हम देख चुके हैं कि भारतवर्ष में सुभाषित किस प्रकार जनता में प्रिय रहे हैं। बुद्ध-काल में भी वे काफी लोकप्रिय हो गये थे। सरभ मिग जातक (४८३) की दसवीं गाथा में कहा है कि, पण्डित लोग गाथाओं एवं सुभाषितों का अर्थ लगा लेते हैं[1]। ऐसे ही सुभाषितों का उपयोग बुद्धवचन में कर लिया होगा तो क्या आश्चर्य ? ये सुभाषित बड़े मार्मिक थे। क्योंकि, इनका रहस्य पण्डित ही समझ पाता था। पण्डित शब्द का अभिप्राय वेदों का पठन करने वाले ब्राह्मण से नहीं है, प्रत्युत किसी भी उक्ति का मर्म समझकर उसका उपयोग करने वाले चतुर व्यक्ति से है। जननेताओं एवं आचार्यों ने उनके मर्म का अनुभव जीवन में कर लिया था। प्रसंग आने पर वे तुरंत उनका उपयोग मार्मिक ढंग से कर लिया करते थे। जन साधारण में कहानी को जोड़कर ऐसे सुभाषित स्पष्ट कर दिये जाते थे। इस महान् कार्य से ही मार्मिक सुभाषित या सूक्तियाँ कहानी की अंग बन गईं और वह जनता की सम्पत्ति हो बैठी।

यह लौकिक अर्थ ब्राह्मणों की यज्ञ-गाथाओं में नहीं आने पाया। उनमें प्राचीन लोककथा के अंश भले ही पाये जाते हों, किन्तु उनका उपयोग ब्राह्मण-संप्रदाय की यज्ञशाखा के लिए किया गया है। बौद्ध आचार्यों ने भी अपनी गाथाएं और कथाएं बौद्धधर्म के लिए कही हैं, फिर भी उन्होंने कथाओं को दैवतकथा के भांडार से नहीं चुना। लोककथा की बहती हुई स्वाभाविक धारा से ही उन्होंने अपनी सामग्री ली। अतः उनके धर्म को लोक-धर्म के स्वरूप को प्राप्त करने में अधिक बल मिला। बौद्धधर्म के प्रारंभ में उसे लोकप्रिय बनाने में ये लोकप्रिय गाथाएं एवं कथाएं काफी सहायक सिद्ध हुईं।

बुद्धदेव ने परम्परा से चली आई लौकिक गाथा को सुभाषितों के रूप में

---

१. न चेवं अहं तत्थ तदा अहोसि
न चापि मे कोचि नं एतदक्खा,
गाथापदानं च सुभासितानं
अत्थं तदानेन्ति जनिन्द धीर ॥ १०

एवं मानव-वंश-विज्ञान (Anthropology) के विद्वानों ने इन अतीत-कथाओं का अध्ययन कर प्राचीन कथा के स्वरूप को स्पष्ट करने का शुभ प्रयास किया है। बेनफे (Benfey) आदि विद्वानों ने तो भारत-मूलकता के सिद्धान्त (Indianist Theory) का आधार इस अतीत कथा से ही लिया है। पश्चिम के विद्वानों ने ब्राह्मणों की यज्ञ-कथाओं पर लोकसाहित्य की दृष्टि से अधिक चर्चा नहीं की। किन्तु जातक की अतीत-कथाओं की इस दृष्टि से काफी चर्चा हो चुकी है। विश्व में सर्वत्र समान रूप से लोककथाओं की उत्पत्ति हुई है। इस सिद्धान्त को मानते हुए भी हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि भारत में सबसे पहले उपनिषदों तथा जातक में लोककथा को नीतिकथा (fable) का साहित्यिक रूप प्राप्त हुआ, अन्यत्र नहीं।

विश्व में इस प्रकार की कथा लोक-साहित्य के रूप में भले ही प्रचलित रही हो, किन्तु बुद्धदेव ने उसे अपनाया और प्रथम बार साहित्यिक रूप भारत में ही मिला। इसकी लोकप्रियता के कारण ही भरहुत की पाषाण-वेष्टनियों पर ई. पू. ३री शताब्दी में ही कुछ जातक-कथाएं अभिलेखों में अंकित हो गईं।

बौद्ध साहित्य का त्रिपिटकीकरण भरहुत के अभिलेख चित्रित होने के पूर्व ही हो चुका था। कुछ जातक कथाओं को उस समय अभिलेखों में चित्रित किया गया। इस से स्पष्ट होता है कि ई. पू. ३ री शताब्दि तक जातक कथाएं कितनी लोकप्रिय बन गई थीं। उनकी लोकप्रियता को देखकर ही उन्हें भरहुत की पाषाण वेष्टनियों पर अंकित किया गया था। उनका मूलाधार लोक-साहित्य था और इसीलिए वे अत्यधिक जनप्रिय रहीं। बौद्धों की कही हुई पूर्वजन्म-कथाएं उस समय में जनता के लिए एकदम अपरिचित नहीं थीं। प्रत्युत वे जनप्रिय थीं, इसीलिए बौद्धों ने उन्हें अपनाया था। बुद्धदेव के पूर्व भी कई लोक-कथाएं प्रचलित थीं इसकी पुष्टि डॉ. विन्टरनिट्ज़ ने भी की है[१]।

इन कथाओं में प्राचीन लोक-साहित्य के मूलतत्व या घटनाएं (incidents) पाई जाती हैं। रूपान्तर-ग्रहण (transformation), जानवरों का मनुष्यवत् व्यवहार, जानवरों की मनुष्य को सहायता, पशु एवं मनुष्य में एकता के सम्बन्ध में प्राचीन लोक-धारणा, हृदय का शरीर से दूर किया जाना, भक्ष्य और भक्षक के आपस में झगड़े आदि के विषय में लोक-विश्वास इत्यादि अनेक घटनाएं (incidents) अतीतवत्थु की कथाओं में व्यक्त हो गई हैं। इसलिए उनके लोककथा के स्वरूप के विषय में कोई सन्देह नहीं है।

---

१. History of Indian Literature, II, p. 121.

अतीत वस्तु की प्राणि-कथा तो प्राचीन लोककथा का सही नमूना है। पशु-पक्षियों की ये कहानियां प्राचीन लोक-विश्वासों को व्यक्त करती हैं।

कुछ प्राणि-कथाएं बौद्धों द्वारा कल्पित भी की गई प्रतीत होती हैं। डॉ. विन्टरनिट्ज ने महिस-जातक (२७८) को बौद्ध-कथा निरूपित किया है[1]। बोधिसत्व एक जन्म में भैंसा बने थे। कोई बंदर झाड़ के नीचे खड़ा इस भैंसे को कष्ट दिया करता था। उस कष्ट को वह भैंसा सह लेता था। इस पर झाड़ ने भैंसे को पूछा कि, बंदर को दण्ड क्यों नहीं देते ? भैंसे ने कहा, 'यह इसी प्रकार का कष्ट दूसरे भैंसे को भी देगा। तब उसे उचित दण्ड मिलेगा ही और मैं कष्ट देने एवं खून के अपराध से भी बच जाऊंगा।' और हुआ भी वैसा ही। बंदर ने एक दूसरे भैंसे को खड़ा पाकर कष्ट देना शुरू किया। तब उस नवागत भैंसे ने सींगों से बंदर को मार डाला। इस कथा में बोधिसत्व ने सहिष्णुता एवं अहिंसा व्रत का पालन तो कर ही लिया और बंदर को दण्ड भी मिल गया। इससे स्पष्ट है कि, यह एक बौद्ध-कथा है। फिर भी इस कथा के मूल में लोक-साहित्य की कोई घटना (incident) का उपयोग बौद्धों ने कर लिया हो तो असम्भव नहीं। बंदर किसी मस्त भैंसे की पीठ एवं गर्दन पर चढ़कर उसे कष्ट पहुंचाता है। इस विषय की कोई घटना (incident) प्राचीन लोककथा का अवश्य अंग रही होगी।

इन कथाओं में बोधिसत्व कभी मुख्य पात्र हैं तो कभी गौण। फिर भी मुख्य गाथा की पुष्टि बोधिसत्व ही करते हैं। चूहा, भैंसा, सिंह, कबूतर आदि की योनि में उत्पन्न बोधिसत्व की चतुर लीला देखकर हम यह कह सकते हैं कि, बुद्धदेव एवं उनके शिष्यों ने इन लोककथाओं का उपयोग जिस ढंग से कर लिया है, वह उनकी पैनी बुद्धि एवं कुशलता का परिचायक है। लोककथाओं का जातकीकरण करने में उनका कौशल प्रकट हुआ है। यह कौशल विशेष रूप से पशुओं की चतुर-कथाओं को नीतिकथा का रूप दिये जाने से और भी स्पष्ट हो गया है।

बौद्धदर्शन में पशु एवं मनुष्य में भिन्नता मानने की कोई प्रवृत्ति नहीं है। सभी प्राणि एक स्तर के हैं। इसीलिए बंदर, हाथी, सिंह, कबूतर आदि की योनि में बोधिसत्व उत्पन्न हुए दिखाकर उनकी कहानियां प्रस्तुत करने में बौद्ध

---

१. History of Indian literature, II, p. 128, देखिए : चरिया-पिटक, २.५.; जातक-माला (३३); अजंता की गुफा में महिस-जातक का चित्र चित्रित है। देखिए : John Griffiths, The Paintings, in the Buddhist Cave-Temples of Ajantā, London, 1896, I, 12f. Figure 27, p. 13.

५. नैतिक या शिक्षाप्रद आख्यान, वर्णन[1];
६. कहावतें या सूक्तियाँ, एवं—
७. धार्मिक पुरातन-कथाएं (Pious Legends)

नीतिकथाएं (Fables)

इनमें से नीतिकथा पर हमें विचार करना है। क्योंकि, इन नीतिकथाओं का प्रभाव संस्कृत नीति-साहित्य पर पड़ा है। ये पशुपक्षी-संबंधी नीतिकथाएं अनेक हैं। जातक में इनका स्वरूप लोककथा, धर्मकथा, नीतिकथा, चतुर-कथा आदि का है। किन्तु नीतिकथा की दृष्टि से इनका महत्व कम नहीं है।

Hist. of Indian Lit. II. pp. 128-129) अर्थात् किसी तथ्य या वस्तु के पीछे इस प्रकार कोई कारण कल्पित किया जाता है। फिर भी ऐसे उदाहरण (सव्वदाढ जातक, २४१) में पशु-पक्षियों के पात्र प्रधान नहीं है। अतः उसे परी-कथा कहा गया होगा। वास्तव में डॉ० विन्टरनिट्ज़ के द्वारा उद्धृत यह कथा (सव्वदाढ जातक) केवल परीकथा का उदाहरण नहीं हो सकता। वह तो प्राचीन लोक-कथा का एक रूप है जिसमें प्राणि-कथा, परीकथा तथा अन्य उत्पत्ति या कारण-सम्बन्धी कथाएँ सम्मिलित थीं। कौए काले होते हैं। इस तथ्य के पीछे लोगों ने अपनी अपनी कल्पना के अनुसार कारण कल्पित कर दिया। ऐसी कारण-कथाएँ लोक-वाणी में प्रचलित थीं। बाद में उनका साहित्य में उपयोग कर लिया गया। उसे कहानीकार ने नया रूप दे डाला, तब उस में नीतिकथा, परीकथा आदि के विभेद हो सके। फिर भी प्राचीन जातक-कथा में जहाँ कहीं पर इस प्रकार का ज्यों का त्यों रूप लोककथा से ले लिया गया है, वहाँ ये पशु-पक्षी पात्र बन कर यदि मुख्य कार्य करते हैं तो, उन्हें नीतिकथा (fable) कहा जा सकता है, गौण होने पर मुख्य मनुष्य-पात्रों के सहायक होने के कारण परीकथा कहना चाहिये। भारतीय परीकथाओं में इस प्रकार पशु-पक्षी मनुष्यों के सहायक हुए हैं। अतः fairy tales को परीकथाएँ कहना चाहिये, न कि 'पशुओं की कथाएँ'। हाँ, चन्द किन्नर जातक (४८७), काकाति जातक (३२७) आदि कथाओं को परीकथा कह सकेंगे।

१. डॉ० विन्टरनिट्ज़:—"Moral narratives." इस से ऐसी मनुष्य-कथा सम्वाद से अभिप्राय है कि, जिस के अन्त में कुछ सीख दी गई हो। इसे शिक्षाप्रद आख्यान कहा जा सकता है। इसमें प्राणिकथा और अन्य विशेषताएं न होने से 'नीतिकथा' या Fable नहीं कह सकते। श्री भरतसिंह उपाध्याय ने इसे 'नैतिक वर्णन' कहा है। "नैतिक कथा या वर्णन" कहने से 'नीतिकथा' का अर्थ उन्हें भी अभिप्रेत नहीं है और वह ठीक ही है।

इन कथाओं में कुछ स्वल्पकाय हैं तो कुछ वृहत्काय। मालुत जातक (१७), खरादिय जातक (१५); सलूक-जातक (२८६); अन्त जातक (२९५); चटुक जातक (३६४); काक जातक (३९५) आदि नीतिकथाएं स्वल्पकाय हैं। कुछ वाक्यों में ये कथाएं समाप्त कर दी गई हैं। आकार में ये कहानियां छोटी होते हुए भी उनमें मार्मिकता और जीवन के गहरे अनुभव को व्यक्त करने की काफी क्षमता है।

मालुत जातक (१७) में कहानी बहुत छोटी है। सिंह और शेर में विवाद चल पड़ा था। एक ने कहा कि, महीने में कृष्णपक्ष में जाड़ा होता है; तो दूसरे ने कहा शुक्लपक्ष में ही जाड़ा होता है। इस झगड़े को बोधिसत्व ने यह कहते हुए निपटाया कि, शुक्लपक्ष हो या कृष्णपक्ष, जब हवा चलती है तब जाड़ा होता है। काक जातक (३९५) में कहानी है कि, कौआ एवं कबूतर किसी बनिये के रसोई घर में रहते थे। वहाँ रसोइये ने कौए को चोरी करते हुए पकड़ा और उसके पंख नोंच कर गर्दन में फूल लगा उसे फेंक दिया। कबूतर ने जब उसकी इस हालत का कारण पूछा तो वह बढ़ी-चढ़ी बातें करने लगा।

दीर्घकाय नीतिकथाएं जातक में कम नहीं हैं। निग्रोध-मिग जातक (१२), सीलवनाग जातक (७२); सच्चंकिर-जातक (७३); अब्भन्तर जातक (२८१); बड्ढकिसूकर जातक (२८३); अलीनचित्त जातक (१५६) आदि कई नीतिकथाएं विस्तारपूर्वक कही गई हैं।

जातक में कुछ अन्य पुरातन आख्यान (Legends) काफी बड़े हैं, जैसे विधुर पण्डित-जातक (५४५), महाउम्मग्ग जातक (५४६); वेस्सन्तर जातक (५४७) आदि। कहीं कहीं पर वर्तमान कथा बड़ी और अतीतकथा छोटी है। जैसे, महासुपिन जातक (७७)। यद्यपि ये नीतिकथाएं नहीं हैं, फिर भी शिक्षाप्रद आख्यानों के अन्तर्गत ये बड़े जातक आ जाते हैं। कुछ जातकों में (७८) वर्तमान एवं अतीतकथाएं समान रूप से बड़ी हैं। ग्रामणि जण्ड जातक (२५७) या वड्ढकि-सूकर जातक (२८३) में तो वर्तमान-कथा छोटी एवं अतीतकथा बड़ी है। यह देखा गया है कि, जब किसी कथा को फिर से कहने का प्रसंग आता है, तब उसे छोटा रूप मिल जाता है। किन्तु अधिकांशतः कथा का विस्तार करने की प्रवृत्ति जातक में कम है।

इसका कारण यह हो सकता है कि, जनसाधारण से पशु-पक्षियों की इन कथाओं को लिया गया उस समय इन का रूप विशेष बड़ा नहीं था। प्राणि-कथा (animal tale) का नीतिकथा में परिवर्तन हो जाने पर उसमें उसके पात्र मनुष्यों के प्रतीक बनकर विचरण करने लगते हैं। इस से अनिवार्य रूप से

किसी सीमा तक उस कहानी में कृत्रिमता तो आती ही है। यदि इस कल्पित-कथा को कोई कहानीकार अधिक विस्तार से कहता है तो वह कहानी सुबोध नहीं रहने पाती। जन-साधारण में ऐसी ही लोककथाएं टिक जाती हैं, जो चाहे बड़ी हों या छोटी, किन्तु रोचक अवश्य हो। जहां लोककथा की रोचकता खटाई में पड़ जाती है वहां वह लोक-साहित्य के प्रवाह से अलग हट जाती है। इसीलिए प्राणि-कथाओं में अधिक विस्तार नहीं दिखाई देता। जहां कहीं इस प्रकार का विस्तार करने का प्रयास किया जाता है वहां वह कथा कृत्रिम एवं अरोचक होती चली जाती है। जन-मानस में सुबोध एवं सरल कहानियां ही पैठ सकती हैं। रामायण-कथा बड़ी होते हुए भी सुगम्य है। इस का एक कारण यह भी है कि, वह मनुष्य-कथा है। किन्तु पशुपक्षियों का उप-न्यास या महाकाव्य लिखा भी गया, तो भी वह रोचक नहीं हो सकता।

जातक में यह तथ्य स्पष्ट हो चुका है। उसमें मनुष्यकथाएं जितनी बड़ी हैं उतनी प्राणि-संबंधी कथाएं नहीं। वेस्संतर जातक (५४७) में बहुत बड़ी मनुष्य-कथा है। किन्तु प्राणि-कथा का विस्तार जातक में नहीं हुआ। क्योंकि, प्राणि-कथा में चरित्र-चित्रण का विस्तार या वर्णन की व्यापकता बहुत कम पाई जाती है। दूसरी बात यह है कि, श्रोता या पाठक को प्राणि-कथा से मनुष्य-कथा का व्यंग्यार्थ लेना पड़ता है। केवल जानवरों की कहानी सुनने की किसे रुचि है? यदि मनुष्यों के प्रति उसकी कोई व्यंजना हो तो अवश्य रुचि हो सकती है। इस प्रकार प्राणि-कथा वाच्यार्थ कथा-वस्तु है। इसलिए इस वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ लेने की स्थिति कथात्मक साहित्य के अन्दर सीमित रहनी चाहिये। इसी तत्व को ध्यान में रखकर जातक की प्राणि-सम्बन्धी कथाएं अधिक विस्तार से नहीं कही गईं।

प्राणि-कथा को शिक्षाप्रद कहानी या नीतिकथा का रूप देते समय धार्मिक नेता अपने उपदेश की गाथाओं को जोड़ देता है और इससे उसका विस्तार मूल लोक-कथा से कुछ बड़ा अवश्य हो जाता है। फिर भी इतनी अंश-वृद्धि से वह कोई दीर्घ-कथा नहीं होने पाती। क्यों कि, मूलकथा को केवल उपदेश के ही लिए लिया जाता है। जितनी आवश्यक होगी उतनी कहानी कह देने से उपदेशक का कार्य हो जाता है। तब स्वयं उपदेशक उस कहानी को बढ़ाने में रुचि नहीं रखता। उसे तो अपने मन्तव्य या उपदेश को ही प्रधान रूप से कहना है। वह उसे कथा के द्वारा रखता है। जितनी कथा पर्याप्त होगी उतनी वह आवश्यक शब्दों के द्वारा वह सुनाता है। इसका उद्देश्य केवल मनोरञ्जन करना ही नहीं, अपितु शिक्षा देना भी है। जातककथाओं के विषय में यह तथ्य बहुत कुछ स्पष्ट

हो जाता है। इसी लिए जातक में प्राणि-सम्बन्धी नीतिकथाएं (fables) अन्य मनुष्यकथाओं की अपेक्षा छोटी है।

पात्रों की दृष्टि से जातक की 'नीतिकथा' के दो मुख्य भेद किये जा सकते हैं :

(१) विशुद्ध नीतिकथा, जिसमें केवल मनुष्येतर प्राणी (पशु-पक्षी आदि) पात्र के रूप में आते हैं।

(२) सम्मिश्र नीतिकथा, जिसमें पशु-पक्षियों के साथ साथ मनुष्य, देवता राक्षस आदि अन्य पात्र भी आ जाते हैं। इनके रहते हुए भी पशु-पक्षी रूप पात्रों की ही नीतिकथा में प्रधानता रहती है।

विशुद्ध नीतिकथा :

इस प्रकार की महत्वपूर्ण कथाएं ये हैं :-

१. सिगाल जातक (१५२) — पशु पात्र
२. दद्दुर-जातक (१७२) — ,,
३. संसुमार-जातक (२०८) — ,,
४. कच्छप-जातक (२१५) — ,,
५. दीपि-जातक (४२६) — ,,
६. विलारवत जातक (१२८)— ,,
७. लक्खण जातक (१०) — ,,
८. मालुत जातक (१७) — ,,
९. नच्च-जातक (३२) —पक्षी पात्र
१०. विनीलक जातक (१६०)— ,, इत्यादि।

इन मे कुछ कथाएं बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। दीपि-जातक (४२६) को ही लीजिए। इस जातक की विशेषता यह है कि, वर्तमानकथा एवं अतीतकथा इन दोनों में पशुसम्बन्धी नीतिकथा दी गई है। जातक में अन्यत्र वर्तमानकथा (पच्चुप्पन्न वत्थु) में बुद्धदेव एवं उन के शिष्यों की प्रसंग-कथा ही कही गई है। उस मे पात्र मनुष्य होते है। किन्तु इस जातक में वर्तमान कथा में भेड़ और चीते की कहानी कही गई है। इसी कहानी को बुद्धदेव ने पूर्वजन्म की कहानी कह कर पुष्ट किया है। यह कहानी भी भेड़ और चीते की ही है। ये दोनों कहानियां इस प्रकार एक ही जातक में रखी गई हैं।

एक समय मोग्गल्लान स्थविर विहार कर रहे थे तब भेड़ें चराने वाले अपनी भेड़ों को गिरिव्रज में छोड़कर खेलते घूमते थे। एक भेड़ अपने साथ की भेड़ों को न देख सकने के कारण पीछे रह गई। एक चीते ने उसे देख लिया।

वह उसे दबाने के लिए गिरिव्रज के एकमात्र निर्गमन-द्वार पर खड़ा हुआ। भेड़ समझ गई। उसने सोचा, आज भागने से काम न चलेगा। मुझे पौरुष दिखाना चाहिये। वह सींग उठाकर वेग से चीते के सामने उछली तो चीता काँप गया। चीते ने दाँव लगाना चाहा, किन्तु वह उस की पकड़ में न आकर जल्दी से भाग गई और भेड़ों में जा मिली। स्थविर ने उस की यह करतूत देखी और तथागत से निवेदन किया। शास्ता ने कहा, 'मोग्गल्लान, इस समय तो वह चीता उसे नहीं पकड़ सका, किन्तु पहले उसे चिल्लाती हुई को मारकर खा गया था।' मोग्गल्लान की प्रार्थना पर शास्ता ने अपने पूर्व जन्म की कथा सुनाई (वर्तमान कथा) :

पूर्वजन्म की कथा: भेड़ और चीते की भेंट वैसी ही हुई थी। शास्ता किसी तपस्वी के जन्म में थे, वे उन्हें देख रहे थे। उस समय भेड़ ने चीते को देखकर सोचा कि मधुर वार्तालाप से इस के मन में कोमल भाव उत्पन्न कर जान बचानी चाहिए। इसलिए उस ने पहली गाथा कही:

'मामा, तुम कुशल तो हो ? क्या तुम सुखी तो हो ना ? माँ ने भी तुम्हारी कुशलवार्ता पूछी है। हम सब तुम्हारे सुख की कामना करते हैं।'[1] चीता भाप गया कि, 'मामा' कहकर यह मुझे ठगना चाहती है। किन्तु वह नहीं जानती कि, मैं कितना कठोर हूँ।' यह सोचकर चीते ने गाथा कही :

'हे भेड़, तुम मेरी पूँछ को नीचे रखकर ऊपर से कूद गई हो। अब मुझे मामा बनाकर छुटकारा चाहती हो ?[2], भेड़ ने कहा, 'मामा, ऐसा न कहो' और उसने तीसरी गाथा कही :

'तुम तो सामने खड़े हो और मैं तो तुम्हारे सामने से आ रही हूं। तुम्हारी पूंछ पीछे की ओर है। मैंने तुम्हारी पूंछ कैसे लांघी ?'[3] इस पर चीते ने कहा,

---

१. दीपि जातक (४२६) :-

'खमनीयं यापनीयं कच्चि मातुल ते सुखं,
सुखं ते अम्मा अवच, सुखकामाहि ते मयं ॥१॥

२. वही, गाथा २ :—

'नंसुट्ठमे अवकम्म हेट्ठमित्वान एळिकि,
सज्ज मातुल वादेन मुंचितव्वा नु मंजसि ॥'

३. वही, गाथा ३ :—

'पुरत्थामुखो निसिन्नोस अहं ते मुखमागता,
पच्छतो तुम्ह नङ्गुट्ठ, कथं खोहं अवक्कमिं ॥'

'भेड़, क्या कहती हो ? ऐसा कोई स्थल नहीं है जहां मेरी पूंछ न हो,' और चीते ने चौथी गाथा कही :

'जहां तक समुद्र और पर्वत सहित चारो द्वीप फैले हुए हैं, वहां तक मेरी पूंछ है। उसे तूने कैसे टाला होगा।'[१] यह सुनकर जब भेड़ ने देखा कि, यह पापी मधुर-भाषा में नहीं फंसता, तो उसने दुष्ट शत्रु मानकर स्पष्ट रूप से पांचवी गाथा कही :

'मेरे माता-पिता और भाइयों ने पहले ही कहा था कि, दुष्ट की पूँछ लम्बी होती है। मैं आकाश मार्ग से आई हूं।'[२] इस पर चीते ने कहा, 'ठीक है, तुम आकाश मार्ग से आई हो तो तुमने मेरा भोजन नष्ट कर दिया।' और चीते ने छठी गाथा कही :

'हे भेड़, तुझे आकाश से आती देखकर मृगों का झुण्ड भाग गया। मेरा भोजन तूने नष्ट कर दिया।'[3] इस पर भेड़ और कुछ न कह सकी। मृत्यु के भय से विलाप करती हुई कहने लगी, 'मामा ! ऐसा भयंकर कर्म न कर। मुझे जीवदान दे।' किन्तु चीते ने उस रोती बिलखती हुई को कंधे से पकड़ लिया और मार कर खा डाला। इस पर दो और अभिसम्बुद्ध गाथाएं दी गई हैं :

"इस प्रकार उस खून पीने वाले ने विलाप करती हुई भेड़ का गला घोंट डाला। दुष्ट के लिए सुभाषित वेकार है। दुष्ट के लिए न न्याय है, न धर्म है और न सुभाषित ही। दुष्ट से तो पराक्रम ही करना चाहिए। वह सभ्य व्यवहार से प्रसन्न नहीं होता।"[४]

---

१. वही, गाथा ४ :—
'यावता चतुरो दीपा ससमुद्दा सपब्बता,
तावता मयूह नङ्गुट्ठं कथं खोत्वं विवज्जयी ॥'

२. वही, गाथा ५ :—
"पुब्बे व मेतं अक्खंसु माता पिता च भातरो,
दीघं दुट्ठस्स दङ्गुट्ठं सम्हि वेहासागता ॥"

३. वही, गाथा ६ :—
"तञ्च दिस्वान आयंति अन्तलिक्खिस्मं एलिकि,
मिगसंघो पलायित्थ भक्खो मे नासितो तया ॥"

४. वही, गाथा ७ ८ :—
इच्चेव विलपन्तिया एलिकिया रूहंघसो,
गलकं अन्वामद्दी नत्थि दुट्ठे सुभासितं ॥
नेव दुटठे नयो अत्थि न धम्मो न सुभासितं,
निक्कमं दुट्ठे युञ्जेथ, सो च सब्भि न रज्जति ॥'

वंध (Motif) की समानता होने पर भी कथाओं के समान रूप (Parallels) सर्वत्र पाये जाते हैं और उन का कोई एक ही उत्पत्ति-केन्द्र नहीं होता। यह लोक-साहित्यिक सिद्धान्त सम्यक प्रतीत होता है। फिर भी इस कथा में तो अन्य देशों की लोक-कथाओं से इतनी समानता परिलक्षित होती है कि, केवल कल्पना-वंध (Motif) की ही वह समानता है यह नहीं कह सकते। दूसरा तथ्य यह है कि, ये विदेशी साहित्य में पाये जाने वाले समान रूप (Parallels) आधुनिक काल में लोककथा की अवस्था में पाये गये हैं। किन्तु भारत में यह कहानी संसुमार जातक तथा तंत्राख्यायिका में अपना साहित्यिक रूप प्राचीन काल में ही धारण कर चुकी है। जहाँ इतने प्राचीन साहित्य में सुरक्षित प्राचीनतम लोककथा का संकेत स्पष्ट मिलता हो वहाँ यही कहना चाहिए कि, भारतीय लोक-समाज में यह कथा मूल रूप से प्रचलित रही थी और सम्प्रसारण (Diffusion) के सिद्धान्त के अनुसार वह विदेश में गई। भारत की इस कहानी के समान रूप (Parallels) चीन, जापान, रूस आदि देशों में पाये जाते हैं। इस से स्पष्ट है कि, एशिया में इस की उत्पत्ति हुई है और एशिया में चीन और अफ्रिका को अपने कथासाहित्य एवं व्यापार से प्रभावित करने वाला मध्य केन्द्र भारतवर्ष रहा है। यह कथा उसी प्राचीन भारतवर्ष की आन्तरराष्ट्रीय सांस्कृतिक संबंधों की एक कड़ी है। जातक में यह कहानी तीन स्थानों पर पाई जाती है। जातक में कुछ कथाओं की बारबार आवृत्ति हुई है। संसुमार जातक की कथा से यह लगता है कि, भारत वर्ष में बुद्ध-समय में यह कथा काफी जनप्रिय थी। उसी लोकप्रियता के कारण तंत्राख्यायिका एवं पंचतंत्र में उसका संग्रह किया गया है।[1]

London 1957. Vol II p. 110) में दी गई है, जिस में कहा है कि, मत्स्यराज को सियार के कलेजे की आवश्यकता पड़ी। एक मत्स्य ने एक सियार को अपनी पीठ पर बिठाया। बीच में उसे मार ने का इरादा स्पष्ट कर ने पर उस सियार ने अपना कलेजा झाड़ पर टंगा हुआ बतलाया। उस ने स्पष्ट किया कि कलेजे के बिना मत्स्यों के राजा के पास जाने से वे बिगड़ पड़ेंगे। तब मत्स्य ने उसे किनारे पर ला छोड़ा, तो कूद कर सियार ने कहा, 'तू मूर्ख है। कहीं प्राणियों का कलेजा उनसे अलग हो सकता है ?' और भाग गया।

· E. Steere, Swahili Tales, 1870.

चीनी समान रूप के लिए देखिए, Beal, Romantic Legend, p. 231; देखिए-- इसी ग्रन्थ में परिशिष्ट २।

१. तंत्राख्यायिका एवं पंचतंत्र के ४थे तंत्र में मुख्यकथा (Frame-tale)

कच्छप जातक (२१५)[1] भी बहुत लोकप्रिय कथा रही है। यह कहानी जितनी शिक्षाप्रद है उतनी ही मनोरंजक भी। बोधिसत्व राजा के अमात्य थे तब बहुत बोलने वाले राजा को सबक सिखाने के लिए वे अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। उस समय हंसे बच्चों की एक कछुवे से मित्रता हुई। एक दिन हंस-बच्चों ने कछुवे से हिमालय प्रदेश के रमणीय सरोवर में चलने को कहा, तब वह तैयार हो गया। किन्तु ले चलने के पहले उन्होंने उसे आगाह कर दिया कि, उसे चुप रहना चाहिए। उसने 'हां' कहा। तब हंस-बच्चों ने एक युक्ति की। एक लकड़ी के दोनों सिरों को उन्होंने अपने मुंह से पकड़ लिया और उस लकड़ी को बीच में पकड़ने को कछुवे से कहा। इस प्रकार वे तीनों आकाश-मार्ग से जा रहे थे कि उन्हें देख नीचे गाँव के लड़कों ने कुछ शोर मचाया। इस पर आदत के कारण कछुवे से न रहा गया। उसने 'दुष्ट मित्रों' आदि कहने की इच्छा से मुँह खोला, तो वह लकड़ी से छूट गया और नीचे राजप्रसाद के आंगन में आ गिरा। अमात्य तथा राजा वहाँ आये। पूछे जाने पर अवसर को पहचान कर बोधिसत्व ने राजा को कहा, 'महाराज, जो वाचाल होते हैं, जिनके बोलने की कोई सीमा नहीं होती वे इस प्रकार दुखी होते हैं।' यह कह कर गाथा सुनाई।

दृष्टान्त के रूप में धार्मिक नेताओं द्वारा कहानी कह कर उपदेश देने की प्रथा प्राचीन काल में काफी रही है। उसी का अनुसरण यहाँ किया गया है।

महाउक्कुस जातक (४८६) में चील, उक्कुसराज, सिंह तथा कछुवे की मैत्री की कथा कही है। बिलारवत जातक (१२८) में कहानी है कि, एक सियार धार्मिक बनकर चूहों को खाता था। चूहों के राजा बोधिसत्व ने उसे पहचान लिया और कहा : 'इस प्रकार धर्म के नाम पर लोगों को ठगना विड़ाल-व्रत है।' यह कहकर उसे मार डाला।

कुक्कुट जातक (३८३) में मुर्गे को झाड़ पर देख बिल्ली ने उसे अपने पास बुलाया। बिल्ली ने मुर्गे से कहा कि वह उसकी पत्नी बनना चाहती है। मुर्गे ने उसे पहचान लिया था। वह झाड़ से नहीं उतरा। इस कथा को पढ़कर अंग्रेजी कवि चॉसर (Chaucer 1340-1400) द्वारा लिखित काव्य 'दि नन् प्रिस्ट हिज टेल' में कही हुई कहानी याद आ जाती है। चँटिक्लीयर नामक मुर्गे को एक सियार ने उसकी प्रशंसा कर पकड़ लिया था। किन्तु मुर्गे ने उसे

---

१. धम्मपद, पृ० ४१८, काष्ठ भ्रष्ट-कच्छप कथा, पंचतंत्र, १.१३, देखिए Benfey's Panchatantra, I. p. 239; देखिए परिशिष्ट २ क्रमांक ४।

कुछ कहने को बाध्य किया तब उसके मुंह से छूटकर मुर्गा झाड़ पर जा बैठा, बाद में सियार ने उसे फिर से बुलाया किन्तु वह फिर नहीं फंसा।[1]

सम्मिश्र नीतिकथा :

सम्मिश्र नीतिकथाएं कम नहीं है। कुरंगमिग जातक (२०६)[2] में हिरण कठफोड़ा पक्षी, कछुआ और शिकारी की कहानी है। हिरण शिकारी के जाल में फंस गया। उसे उसके मित्र कछुवे ने जाल को अपने दांतों से काट कर छुडाया था। किन्तु शिकारी ने कछुवे को पकड़ लिया तब हिरण ने शिकारी को चकमा देकर कछुवे की मुक्ति की। इस कार्य में उनके तीसरे मित्र कठफोड़े की भी सहायता उन्हें मिली। इसमें शिकारी का पात्र गौण है। मुख्य पात्र तो हिरण आदि पशु है। इस प्रकार के गौण मनुष्य पात्र पंचतंत्र की कुछ नीतिकथाओं में पाये जाते हैं। किन्तु वहां भी वे गौण रहे हैं। हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि, पंचतंत्र में जहां कहीं केवल मनुष्य-कथा ही आ गई है वहां वह उन दिनों की लोकप्रिय लोककथा का ही परिणाम समझना चाहिये। वस्तुतः पंचतंत्र में भी पशु-पक्षी पात्र मुख्य हैं, और अन्य मनुष्य-पात्र गौण।

कुछ कथाओं में पशु-पक्षियों के साथ देवताओं का भी ग्रहण हुआ है। जैसे बोधिसत्व ने वृक्ष-देवता का जन्म लिया उस समय की कथा।[3] काकजातक (१४६) में बोधिसत्व समुद्र-देवता के जन्म में निर्दिष्ट हैं। उनके साथ कौओं ने संघर्ष करने का निष्फल प्रयास किया।

राजनैतिक तथा लौकिक प्रज्ञा :

'जातक' एक धर्मग्रंथ अवश्य है। किन्तु भगवान् बुद्धदेव ने अपने सिद्धांत का उपदेश देने का माध्यम लोक-कथा को चुन लेने के कारण जातक-कथाओं में कुछ ऐसा नीतितत्व व्यक्त होता है जिसे बुद्ध धर्म की ही वस्तु समझना असंगत होगा। इन कथाओं से लौकिक प्रज्ञा (Worldly wisdom) का भी हमें भलीभांति परिचय होता है। यह प्रज्ञा व्यवहार में सफल होने की कुंजी है। मनुष्यमात्र के लिए वह ग्राह्य है क्योंकि वह शाश्वत एवं सार्वभौम तत्व है। जातक में कुछ पारमिताओं का उपदेश मिलता है फिर भी कई कथाओं का सार तत्व केवल बौद्धों के लिए ही उपादेय नहीं है। वस्तुतः लोकनीति को व्यक्त करने

---

१. Chacuer's The None Prest His Tale, Edited by R. F. Patternson; देखिए—चतुमट्ठ जातक (१८७)।

२. Cunningham's "Stup of Bharhut" p. 67, pp. XXVII. 9; देखिए परिशिष्ट २, चित्राङ्कन क्रमांक ५; परि० २ क्र० २३।

३. कोटिसिम्बलि जातक (४१२) Cowell's ed. III pp. 240-41.

वाली कथाओं को अपनाने से जातक में लौकिक प्रज्ञा (Worldly wisdom) के दर्शन होते हैं।

मनुष्य के लिए प्रतिदिन के व्यवहार में ये कहानियां उपयोगी शिक्षा देती हैं। बुद्धदेव ने उसे अपने धर्म के प्रचार के लिए अपनाया। अतः एक ओर उसका रूप धार्मिक है तो दूसरी ओर उनका रूप लौकिक है। लौकिक विषय की कथा को कह देने वाले धार्मिक नेता का धर्म-विचार उस कथा में आ जाता है। अपने धर्म-विचारों का आधार मुख्य रूप से बुद्धदेव ने लोकनीति ही रखा था।

इस लौकिक नीति के साथ राजनैतिक प्रज्ञा (Political wisdom) का भी उपदेश बुद्धदेव की जातक कथाओं में मिलता है। श्री हर्टेल को बौद्ध कथाओं की अपेक्षा जैन-कथाओं में अधिक व्यापकता दिखाई दी है।[१] उनका कथन है कि, नीतिकथाएँ अर्थशास्त्र का अंग रही हैं किन्तु बुद्धदेव अर्थशास्त्र का अध्ययन एक पाप समझते थे। नीतिकथाओं का तो उन्होंने उपयोग किया है। किन्तु इन कथाओं को अपनाते समय उन्होंने अपने धार्मिक सिद्धान्त उनमें भर दिये। फलस्वरूप इन कहानियों के प्रधान अंग 'नीति' (Policy) में कुछ परिवर्तन हो गया है। अपने सिद्धान्तों का उपदेश करने के लिए बौद्धों ने कथाओं को भी तोड़-मरोड़ कर अपनाया है।[२] पंचतंत्र का बौद्ध संस्करण नहीं मिलता यह कोई संयोग की बात नहीं है। जैन संस्करण पंचाख्यान या पंचाख्यानक में जैनियों ने पुरानी 'नीति' कथाओं को ही प्रस्तुत किया है। जैन नीतिकथाएँ न केवल जैनियों मे, अपितु सारे संसार मे लोकप्रिय हो सकी हैं। इसका कारण यही है कि, बौद्धों के समान जैनियों ने पुरानी अर्थशास्त्रीय नीतिकथाओं को तोड़-मरोड़ कर हमारे सामने प्रस्तुत नहीं किया। यद्यपि जातकों में कहानी तत्व को क्षति पहुँच गई हैं, फिर भी उसे भी विदेश में लोकप्रियता अवश्य प्राप्त हुई।

---

१. Dr. Hertal, On the Literature of the Svetambaras of Gujarat, Leipzig 1922, pp. 11. f., 3, 6f.

२. Dr. A. N. Upadhye, Brhat Kathākośa, Introduction, vide, Dr. Hertel's paper : "Die Erzahlungs literature der jaina', (Geist des Ostens I, 178 ff) and Ein attindisches Narrenuch' (Ber. d. Dgl. Sachs. Gesellschaft der Wissens-chaftin, pp. h. k., 64 (1912), Heft. I)

इन लेखों के विषय की जानकारी डॉ० उपाध्ये द्वारा सम्पादित बृहत्कथा कोष (पृ० ११५) के पद संकेतों से मुझे मिल सकी। मैं ऋणी हूँ।

श्री हर्टेल के उपरोक्त कथन से एक तथ्य अवश्य स्पष्ट है कि, भारतीय अर्थशास्त्र द्वारा परिपुष्ट प्राचीन 'नीति' कथाओं को भी बौद्धों ने अपना लिया किन्तु उन्होंने नीति-सिद्धान्तों की जगह पर अपने धर्म-सिद्धान्त रख दिये। जो कथा धर्मातीत (Secular) थी उसे धर्मकथा का रूप दे डाला है। जैन-पंचाख्यानक के कर्ता पूर्णभद्र ने पंचतंत्र की नीतिकथाओं को अपनाकर उन्हें धर्मकथा का रूप नहीं दिया।

इस तथ्य को मानते हुए भी हम कह सकते हैं कि, जातक कथाओं में यह नीतिशास्त्र-सम्मत 'नीति' अनायास ही आ गई है। भले ही वह धर्मकथा रही हो, किन्तु उससे राजनैतिक प्रज्ञा (Political wisdom) का भी आभास मिल जाता है। दीपि-जातक (४२६) की भेड़ एवं चीते की कथा से यह नीति तत्व व्यक्त हो रहा है। साम, दण्ड आदि राजनीति की युक्ति-प्रयुक्तियों का प्रयोग इस कथा में है। यह बात अवश्य है कि, जातक में लौकिक नीतिकथा का वह विशुद्ध रूप नहीं मिलता जो पंचतंत्र में विद्यमान है। इसका कारण यह है कि, भारतीय नीतिकथाओं का उपयोग अपने अपने सिद्धान्तों के लिए कर लेने की प्रवृत्ति रही है। बौद्धों ने अपने धर्म-प्रचार का साधन उन्हें बना डाला। फलस्वरूप वह धर्मकथा बन गई। किन्तु धर्मकथा का यह रूप बाहरी रूप है। मूलतः जातक कथाओं में लोककथा का आभास हमें मिलता है। वास्तव में जिसे अपने मन्तव्य या सिद्धान्त को स्पष्ट करने की आवश्यकता हुई, उसने इन कथाओं को अपना रूप दे डाला है। मूल रूप से तो वह लोककथा के अक्षय भांडार में विद्यमान थी। इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि, इसी लोककथा के भांडार से अर्थशास्त्र के आचार्यों ने भी अपने सिद्धान्तों के अनुरूप उन्हें रूप दे डाला था। जिस प्रकार बौद्धों ने लोककथा को अपनाकर उसे अपने धार्मिक उपदेश का साधन या माध्यम (Medium) बना डाला, उसी प्रकार प्राचीन भारतीय अर्थशास्त्र या नीतिशास्त्र के आचार्यों ने भी राजनीति-विषयक सिद्धान्तों एवं उपायों के समर्थन के लिए लोककथा को ही माध्यम चुना। इस कारण उनकी लोक-कथाएँ नीतिकथा का रूप धारण कर सकीं। उनसे राजनैतिक प्रज्ञा व्यक्त होने लगी। मूलतः यह मनोरंजन-प्रधान कथा रही है। उसमें अब अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तों एवं उपायों के अनुसार परिवर्तन कर अपना कार्य सम्पन्न कर लिया गया है। अर्थशास्त्र के आचार्यों ने भी मूल लोककथा में परिवर्तन अवश्य किया होगा। केवल बौद्धों ने ही किया ऐसी बात नहीं।

तंत्राख्यायिका या पंचतंत्र का मूल संस्करण प्राचीन काल में अवश्य रहा

होगा। यह मूलरूप जातक-पूर्व समय में था या जातक के बाद में यह विवाद का विषय है। मूल पंचतंत्र से जातक कथाएं ली गई होंगी तब ही श्री हर्टेल का कथन तथ्यपूर्ण हो सकता है। किन्तु यदि जातक के बाद में मूल पंचतंत्रकार ने जातक से नीतिकथाएं ली हो तो जातक कथाओं को नीतिकथा की विकास-श्रृंखला की एक कड़ी मान लेना होगा। जातक में ये 'नीति कथाएं' अर्ध-विकसित रूप में पाई जाती हैं और उनका संपूर्ण विकास लौकिक साहित्य के पंचतंत्र में हो गया है।

बेनफे का मत है कि पंचतंत्र की कथाएं जातक से ली गई हैं।[१] क्योंकि जातक की कुछ कथाएं पंचतंत्र में पाई जाती हैं। किन्तु यह भी सम्भव है कि, पंचतंत्र के मूल संस्करण से जातक की कथाएँ ली गई हों।[२] लोककथा ने प्रारम्भ में लौकिक साहित्य का ही रूप लिया होगा यही युक्तिसंगत जाता है।

एक बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि, जातक या तंत्राख्यायिका की कथाओं का मूल रूप प्राचीन लोककथा है। बाद में जातक में मूल पंचतंत्र से या उससे जातक में 'नीति' कथाएँ ली गई। श्री हर्टेल का मत है कि, तंत्राख्यायिका आज के पंचतंत्र का प्राचीन संस्करण (recention) है, उससे भी प्राचीन मूल रूप का पता नहीं लगता। तंत्राख्यायिका से भी जातक की कई कथाएं अधिक प्राचीन अवश्य हैं। जातक में न केवल नीतिकथाएं (fable) ही हैं, अपितु उस में परी-कथाएं, पुरातन कथाएं, दृष्टान्त कथाएं, लोकप्रिय कथाएं (fairy tales, legends, parables, popular tales) आदि कई प्रकार की कहानियाँ संग्रहित हैं। इससे स्पष्ट है कि, प्राचीन लोककथा से जातक कथाओं का निकट संबंध रहा है। लोककथाओं से ही ये अन्यान्य रूप जातक में आ गये हैं। तंत्राख्यायिका या पंचतंत्र में केवल व्यावहारिक एवं राजनीति-विषयक प्रज्ञा (wisdom) को व्यक्त करने वाली नीतिकथाएं (fable) हैं। इससे स्पष्ट है कि, तंत्राख्यायिका या पंचतंत्र एक परिष्कृत कथा-संग्रह है। इसीलिए पंचतंत्र जातक की अपेक्षा मूल लोक-कथाओं से दूर है। बुद्धदेव के समय की धार्मिक एवं आर्थिक स्थिति को देखने पर भी कहा जा सकता है कि, जातक का लोक साहित्य से निकट संबंध रहा है। अतः नीतिकथा का प्राचीनतम रूप हमें जातक कथाओं में दिखाई देता है। पंचतंत्र के मूल संस्करण के अभाव में यही कहा जा सकता है।

---

१. Benfey, Panchatantra, I Introduction.

२. Hertel, WZKM 16, P. 269; Dr. S. N. Das gupta, History of Sanskrit Literature, 1947, Vol. I. Editor's Notes, p. 702 Footnote.

अतः स्पष्ट है कि पंचतंत्र की कथाओं का स्वरूप लौकिक (secular) है और उनकी मूल लोककथाएं भी लौकिक ही थीं। किन्तु यह विशेषता जातक कथाओं में नहीं आने पाई। मूल लोककथा लौकिक (secular) रही है और उसे धार्मिक नेता के द्वारा अपनाने के कारण धार्मिक रूप मिल गया है। फलतः उसमे सर्वजनग्राह्यता पंचतंत्र की अपेक्षा कम है। पंचतंत्र की कथाएं लोक-कथा का सच्चा विकसित रूप है। क्योंकि, मूल लोककथा की लौकिकता, उसका सार्वभौम रूप, सर्वजनग्राह्यता, चमत्कार, मनोहारिता आदि सभी गुण पंचतंत्र की नीतिकथाओं में दिखलाई देते हैं, उस मात्रा में जातक कथाओं में नहीं आने पाये।

फिर भी जातक में प्राणियों की चतुर कथाओं की कमी नहीं है। सुनख जातक (२४२) उस चतुर कुत्ते की कहानी है जिसने चमड़े की रस्सी काट कर अपनी मुक्ति कर ली। सुंसमार-जातक (२०८) में मगर की पीठ पर बैठकर नदी के उस पार जाने वाले बन्दर ने संकट में युक्ति से काम लिया। मगर को उसने कहा कि, उनका कलेजा यदि पेट में होता तो इस झाड़ से उस झाड़ पर कूदते हुए वह चूर्ण-विचूर्ण हो जाता। अतः वह गूलर के वृक्ष पर लटका हुआ होता है। इस कथा का नीतिसार है, संकट आने पर बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह युक्ति से काम ले। यह लौकिक प्रज्ञा (Worldly wisdom) का ही निदर्शन है। मगर को बन्दर ने जो गाथा कही उस में इसी प्रज्ञा की ओर संकेत है : 'तेरा शरीर ही बड़ा है, लेकिन प्रज्ञा उस के समान नहीं है।[1] इस से स्पष्ट है कि बुद्धदेव इस प्रकार की प्रज्ञा को जीवन में बड़ा उपादेय तत्व मानते थे।

कुटि दूसक जातक (३२१) में एक बन्दर की कहानी है। एक बंदर झाड़ की शाखा पर ठंड से सिकुड़ कर बैठा था। पास में ही एक पक्षी अपने घोंसले के अन्दर बैठा था। भीतर से पक्षी ने बंदर से कहा, 'मनुष्य के समान तुम्हारे भी अवयव हैं, तो फिर अपना घर क्यों नहीं बना लेते' ? बंदर ने कहा 'मनुष्य के पास बुद्धि होती है, बंदरों के पास नहीं होती।' पक्षी ने उसे प्रयत्न करने का उपदेश दिया और कुटिया बनाने को कहा। इस पर बंदर चिढ़ गया। उसने पक्षी के घोंसले को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।[2]

---

१. जातक. २. भदन्त आनंद कौसल्यायन कृत हिंदी अनुवाद पृ. ३३१.
"महती वत ते बोन्दि न च पंञा तदूपिका, इति.

२. इस कथा का समान रूप देखिए : पं० तं० १. १८. वानर-चटक दम्पति कथा.

नीतिसार स्पष्ट है कि, मूर्ख से वाद-विवाद करना व्यर्थ है। वह अच्छे सुझाव का स्वागत नहीं करता।

एक कछुवे ने जाल में फंसे हिरण को जाल काट कर छुड़ाया (२०६)। उसी प्रकार एक मत्स्य ने भी बड़ी युक्ति से आलसी एवं लोभी साथियों को मछुओं के जाल से छुड़ाया (मितचिन्ती जातक, ११४)।

सकुणग्घि-जातक में बटेर और बाज की कहानी है। बाज ने बटेर को पकड़ा तब बटेर रो कर कहने लगा, 'अच्छा होता यदि मुझे मेरे पैतृक स्थान में आकर पकड़ते। इस पर बाज ने उसके पैतृक स्थान खेत में पुनः पकड़ने के लिए उसे छोड़ दिया। जब वह बटेर पर फिर से झपटा तब बटेर मिट्टी के ढेले में छिप गया। फलस्वरूप बाज की छाती के दो टुकड़े हो गये। इससे स्पष्ट है कि, शक्ति से युक्ति ही श्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त गोध-जातक (१४१), दीपि-जातक (४२६), गुण-जातक (१५७) आदि कई नीतिकथाओं से लौकिक नीति का उपदेश दिया गया है। कलायमुट्ठि-जातक (१७६) में एक बंदर की क्षुद्र लीला से बड़ा मार्मिक नीतिसार व्यक्त हुआ है। गिरे हुए मटर की खोज के लिए मूर्ख बंदर ने अपने हाथ के सभी मटर खो दिए। थोड़े से लाभ के लोभ में पड़कर मनुष्य अपनी बड़ी हानि कर लेता है। एक और मार्मिक उपदेश कच्छप जातक (१७८) में दिया गया है: वर्षा के अभाव में मत्स्य आदि सभी प्राणी तालाब छोड़कर नदी में जाते है। तब एक मूर्ख कछुवे ने कहा, 'मैं इसी तालाब में पैदा हुआ और बढ़ा, मैं यहीं रहूँगा।' जन्मभूमि के इस वृथा मोह के कारण वास्तविकता को भुलाकर वह वहीं रहा और ग्रीष्म में तालाब सूखने पर कुम्हार की कुदाली से व्यर्थ मारा गया। मरते समय तड़पती आवाज में उसने गाथा कही : 'जहाँ मनुष्य जीवित रहेगा वहीं वह जावे। घर में मरने वाला न बने।' कितनी सीधी किन्तु मार्मिक उक्ति है। किसी ने ठीक ही कहा है कि, अपना घर जो छोड़ नहीं सकता वह विश्वविजय क्या करेगा ?

प्राचीन अर्थशास्त्र या नीतिशास्त्र के प्रति बौद्धों की रुचि न रही हो, किन्तु 'नीति' या 'राजनीति' का उपदेश देने की घटना जातक में भी आई है। कौए द्वारा राजा को उपदेश देने की रोचक घटना काक-जातक (२४०) में वर्णित है। नकुल-जातक (१६५) में एक कहानी है, जिसमें सांप और नेवले में बोधिसत्व ने मित्रता करा दी। उस पर नेवले ने बोधिसत्व को एक गाथा सुनाई है जिसमें कहा है : 'शत्रु से सतर्क रहना चाहिए। मित्र पर भी

चाहते थे। उसी प्रकार दीपिजातक (४२६) में भेड़ ने खून के प्यासे चीते को देख उसे 'मामा' 'मामा' कहना प्रारंभ कर दिया।

वक-कर्कटक-कथा, करटक-दमनक-कथा आदि पंचतंत्र की कुछ नीतिकथाएं क्रमशः वक-जातक (३८) संधि-भेद-जातक (३४६) आदि में पाई जाती हैं। लोककथा की धारा सवल एवं अक्षुण्ण प्रवाहित थी, इसीलिए नीतिकथाओं के समानरूप साहित्य में प्रकट हुए हैं।

बौद्धों के कारण लोककथा में परिवर्तन

बुद्ध-पूर्वकाल में प्राणिकथा को साहित्यिक सम्मान नहीं मिल पाया था। ई० पू० ६ ठी शताब्दी में जो प्राणि-कथा का रूप प्रचलित था उस ओर बुद्धदेव का ध्यान गया। क्योंकि वह भी एक जनप्रिय लोककथा थी। अन्य मनुष्य-कथाओं, पुरातन आख्यानों, परीकथाओं के साथ-साथ पशु-पक्षियों की कहानियाँ लोगों में वहुत प्रिय थीं। उन्हें बुद्धदेव ने काफी महत्व दिया है।

बुद्ध-पूर्ववैदिक युग में प्राणिकथा लोकवाणी में प्रचलित थी। उसकी लोकप्रियता उपनिषद् काल तक काफी बढ़ गई थी। छान्दोग्योपनिषद् में प्राप्त श्वान-कथा से लगता है कि, उस समय के पशु-मानव मे अन्तर आत्म-विद्या के प्रभाव से कम होता जा रहा था। बुद्धदेव के समय में भूतदया के अन्तर्गत सभी प्राणी समान रूप से आ गये तब प्राणिकथा को आगे आने का अवसर प्राप्त हुआ।

अनेक प्राचीन विश्वासों में एक प्राणी दूसरे प्राणी का रूप धारण कर लेने की घटना (incident of transformation) एवं पुनर्जन्म सम्वन्धी कल्पना (Transmigration) प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। यह घटना एवं कल्पना जातक कथाओं का मूलाधार है। बुद्धदेव स्वयं अपनी पूर्वजन्म की कहानी सुनाते हैं। क्षुद्र प्राणी को भी पूर्वजन्म का स्मरण है।[1] एक कथा में शक्र स्वयं तोता वन जाते हैं[2] मनुष्य पशु या पक्षी का रूप धारण कर लेता है यह कल्पना वहुत प्राचीन है। उपकारी पशु की भी कल्पना जातक मे आ चुकी है। वब्बू जातक (१३७) में एक चुहिया वोधिसत्व को रोज कार्षापण देकर उसे मास देती रही। इस घटना में उपकारी प्राणी का रूप स्पष्ट है। प्राणि-सबंधी परीकथा मे यह एक विशेषता रहती है। किसी वस्तु की उत्पत्ति या कारण के विषय में भी लोक कल्पना रहा करती है। सस-जातक (३१६) मे चंद्र पर कलंक कैसे हुआ इसका कारण दिया गया है। खरगोश का कठोर व्रत देखकर शक्र ने चन्द्र पर

---

१. सुवण्ण हंस-जातक (१३६)।

२. जातक (३९३)।

उसका चिन्ह रख दिया। काक-जातक (१४०) में कौए की चर्बी क्यों नहीं होती इसका कारण कहानी में दिखाया गया है।

किन्तु लोककथा को अपनाते समय कुछ परिवर्तन भी कर दिये गये हैं। लोक-विश्वास या कोई घटना का उपयोग कर लिया गया है और उसे अपने प्रतिपाद्य के अनुसार रख दिया है। इससे नीतिकथा पर कहीं-कहीं बौद्ध प्रभाव अधिक दिखाई देने लगता है। कहीं-कहीं पर लोककथा की कथावस्तु में आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी कर दिये गये हैं। कुटि-दूसक जातक (३२१) में वही कहानी है जिसमें बंदर ठंड के कारण सिकुड़ रहा है और, अपने घोंसले में बैठकर पक्षी ने उसे कुटिया बनवाने का उपदेश दिया। इससे चिढ़कर वन्दर ने घोंसला नष्ट कर दिया। पक्षी उड़कर चला गया। वास्तव में इस लोककथा का अन्त दुःखपूर्ण ही रहा होगा। मूलकथा में वन्दर ने उस पक्षी को ही मार डाला होगा। किन्तु चूंकि जातक में वह पक्षी बोधिसत्व का ही था, इसलिए यह स्वाभाविक था कि, बौद्धों ने उसका अन्त न कर उसे उड़ा दिया। इस प्रकार के परिवर्तन हुए हैं। फिर भी इस कथा में लौकिक नीति का सारतत्व है : 'दुष्ट से वाद-विवाद करना व्यर्थ है।'

कहीं-कहीं पर तो पशु-पक्षियों की केवल काल्पनिक कथा गढ़कर उसे पूर्व-जन्म-कथा का रूप दे डाला गया है। ऐसी कहानियां बाद में जोड़ दी गई हैं। तित्तिर-जातक (४३८) में कुछ अंश बौद्धों ने जोड़ दिये हैं, ऐसा प्रतीत होता है।

सस-जातक (३१६) में खरगोश की योनि में बोधिसत्व उत्पन्न हुए हैं। अतः खरगोश उदात्त स्वभाव का दिखाया गया है।

एक सुन्दर नीतिकथा गुण-जातक (१५७) में है। इस कहानी में दलदल में फंसे सिंह को सियार युक्ति से निकालता है। अतः दोनों मित्र बन जाते हैं। यह एक प्राचीन लोककथा रही है। फिर भी बौद्धों ने उसे बढ़ाया है, ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि, बोधिसत्व सिंह बने थे, इसलिए बौद्धों ने सिंह का चरित्र-चित्रण उदात्त दिखाया है। इस कहानी का सिंह सियार को दिये हुए अपने वचन का पालन करता है। मित्रता का निर्वाह अन्त तक करता है। कहानी में सिंह और सियार की पत्नियां आपस में लड़ती हैं। इस पर सियार सिंह के सहवास को छोड़ना चाहता है, किन्तु सिंह ने अपनी सिंहनी को समझाया और अपने वचन का पालन किया। मनुष्य की गृह-व्यवस्था सामने रखकर ही यहां पशु की कहानी कही गई है। सिंह एवं सियार की पत्नियों में आपस में झगड़ा होता है इसे देखकर मनुष्य की कथा व्यंजित हो जाती है।

तब उसकी मानसिक स्थिति, लोभवृत्ति एवं दम्भ का परिचय भलीभांति हो जाता है। वह जब चोरी से खाद्य पदार्थों के पास जाता तब 'क्या खाऊं और क्या न खाऊं' यह द्वंद्व उस के मन में उत्पन्न होता है। जातककार ने पक्षियों में कौए को हीन समझ कर उसे लोभी मनुष्य का प्रतीक (Symbol) चुना है। कबूतर बोधिसत्व का अंश है, अतः वह उदात्त है। कौए को दण्ड मिला, किन्तु कबूतर को वहां रहना ठीक नहीं लगा। वह अन्यत्र चल दिया।

प्राचीन समय से ही सियार के कपटी एवं धूर्त स्वभाव का परिचय हो गया था। जातक कथाओं में सियार की कपट-लीला एवं चतुरता के कर्म दिखाये जा चुके हैं। सिगाल जातक (११३) में सियार धूर्त, स्वार्थी एवं अपकारकर्त्ता दिखाया गया है।

चरित्र चित्रण करते समय यह ध्यान में रखा गया है कि, बोधिसत्व ने चाहे सिंह या चूहे का जन्म लिया हो, वह उदात्त एवं चतुर हैं। जहाँ बौद्धों को उदात्त नायक नहीं मिले वहां भी उन्होंने बोधिसत्व के रूप में उदात्त नायक की सृष्टि कर दी है। हम कह चुके हैं कि, गुण-जातक (१५७) की कथा में ऐसे ही सिंह का उदात्त चरित्र है जो अन्त तक सियार का कृतज्ञ रहा। क्योंकि सियार ने उसे दलदल से बाहर निकाला था। संभव है, मूल लोककथा से सिंह ने दलदल से बाहर निकलते ही उस सियार को खा डाला होगा। जानवर अपने स्वभाव पर ही जाते हैं। ठीक ही कहा है : बुभुक्षितः किं न करोति पापम्!' किन्तु जातक में वह बोधिसत्व का अंश है अतः उसने अन्त तक सियार के साथ मित्रता का व्यहार किया।

वंदर तो स्वभावतः चंचल होते हैं। किन्तु महाकपि जातक (४०७) के अनुसार बोधिसत्व ने वंदर का रूप धारण किया था। इस वंदर ने अपने प्राणों की परवाह न कर साथियों के प्राण बचाये हैं। अपने अतिथि के लिए आत्म-समर्पण करने वाले प्राणी भी जातक कथा में हैं। खरगोश एक साधारण जानवर ठहरा। किन्तु बोधिसत्व का अंश होने के कारण अतिथि-सत्कार के लिए उसने अपने आपको अग्नि में झोंक दिया।[१]

बोधिसत्व प्रज्ञावान् हैं। उन्होंने सिंह का जन्म लिया था। तब खरगोश के कारण भागने वाले सभी जानवरों को भय का कारण पूछा और उन्हें अन्ततः निर्भय किया। सारे प्राणी गतानुगतिक होते हैं। एक डर गया तो सभी डर कर

---

१. इसी प्रकार का कल्पना बंध (motif) महाभारत के कपोताख्यान में भी दिखाई देता है जहाँ कपोत अपने अतिथि व्याध के सामने अपने आपको अग्नि में समर्पित कर देता है। देखिए म० भा० आपद्धर्म-पर्व अ० १४३-१४६।

भागने लगते हैं। किन्तु जिसमें प्रज्ञा (wisdom) होती है वह सब की जान बचाता है।[१] चूहे में भी यह प्रज्ञा थी, इसीलिए हिंसक सियार के ढोंग का रहस्योद्घाटन चूहे ने किया है।[२]

प्राणियों का सूक्ष्म निरीक्षण भी वर्णन में प्रकट हो चुका हैं। मोर का वर्णन हुबहू हुआ है।[3] सरभ-मिग-जातक (४८३) में बहेलियों के बाण को किस प्रकार सरभ जाति के हिरन धोखा देकर टालते हैं इसका यथार्थ वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा ऐतिहासिक परिस्थितियाँ

इन नीतिकथाओं से प्राचीन समय की धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा ऐतिहासिक गतिविधि का परिचय हमें मिलता है। वस्तुत: जातक बौद्ध धर्म-कथाओं का संग्रह ग्रंथ है। इस ग्रंथ में बोधिसत्व के कार्य कर्म-सिद्धान्त के अनुसार वर्णित है। बौद्ध पारमिताओं का आचरण बोधिसत्व का मुख्य कार्य है। इस कर्म-सिद्धान्त का अनुसरण अनेक जन्मों में किया गया है और अन्तत: बोधि-सत्व बुद्धत्व को प्राप्त कर गये। अर्थात् बोधिसत्व की कथाएं धर्मप्रधान अवश्य हैं। पुनर्जन्म की परम्परा में उनकी साधना निहित है।

बुद्धदेव के लिएं धार्मिक प्रचार की अत्यंत आवश्कता थी। यद्यपि जैन आदि अन्य अवैदिक धर्मो का वेद विरोधी आन्दोलन विद्यमान था, तथापि जैन धर्म के आचार्य 'वीतराग' की अवस्था में पहुंचने में अधिक विश्वास रखते थे। लोगों में प्रथमत: बुद्धदेव ने आकर नया विद्रोह खड़ा किया था उसे अशोक ने राष्ट्रधर्म बना डाला।

ब्राह्मण-धर्म का विरोध बौद्धों ने अवश्य किया हैं। फिर भी हम यह नहीं कह सकते कि, जातकीय नीतिकथाओं में सभी ब्राह्मणों को लोभी या पाखंडी कहा हो। गोध-जातक (३२५) के अनुसार हम कह सकते है कि, कुछ तपस्वी हिंसाकर्म में काफी बढ़ गये थे। बिलारवत जातक (१२८) की गाथा का संकेत ढोंगी ब्राह्मणों की ओर ही है। क्योंकि वे धर्म की आड़ में लोगों को ठगा करते थे। किन्तु यह निंदा दुष्ट ब्राह्मणों की ही हैं। अच्छे ब्राह्मणों के प्रति जातककार ने आदर भी प्रकट किया है। उरग जातक (१५४) में गरुड ने गाथा में कहा है: "मैं ब्राम्हण वर्ण का आदर करता हूं, इसलिए भूखा होता हुआ भी उसे

---

१. दद्दभ जातक (३२२) की अंतिम गाथा।

२. बिलारवत जातक (१२८)।

३. मोर जातक (४९१); देखिए Fousboll, Ten Jatakas, p. 116.

से निकट संबंध था, पुष्टि ही होती है। लोक-व्यवहार में उसे अश्लील न समझा जाता हो। किन्तु लोककथा को साहित्यक रूप मिल जाता है तब उसमें कुछ अवांछनीय अंश रह जाते हैं। वे ही पाठक के परिष्कृत मन मे जुगुप्सा उत्पन्न कर देते है। सिगाल-जातक (१४८) में कहा है कि, मांस का लोभी सियार हाथी की गुदा के मार्ग से उसके पेट में प्रवेश कर गया और वहां कैद हो गया। ऐसे अन्य स्थल भी हैं।[1] किन्तु वे अधिक नहीं हैं।

गाथाओं का विवेचन :—

गाथाओं के विषय में हम चर्चा कर चुके हैं। यहां हम उनकी अन्यान्य विशेषताओं पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे तो असंगत न होगा। नीतिकथाओं की इन प्राचीन गाथाओं को निम्न प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है :—

१. लौकिक उपदेश-विषयक,

२. मार्मिक संवाद,

३. कथात्मक,

४. दृष्टान्त, उपमा आदि से युक्त,

५. ब्राह्मणों के विषय में कही हुई गाथाएं।

(१) बिलारवत जातक (१२८), सिगाल जातक (१५२), आदि गाथाओं मे लौकिक उपदेश भरा पड़ा है। पारलौकिक लाभ का प्रलोभन देकर बुद्धदेव ने जनसमाज को कभी गुमराह नहीं किया। ऐहिक जीवन को इन गाथाओं में प्रधानता मिली है। हम देख चुके हैं कि इनमें से ऐसे सिद्धान्तों का उपदेश दिया गया है जो किसी धर्म को मानने वाले व्यक्ति को उपादेय सिद्ध होते हों। जैसे : 'जो मनुष्य बिना विचारे जल्दबाजी में काम कर बैठता है उसके वे काम ही उसे दुख देते हैं। जैसे मुंह में डाला हुअ गर्म भोजन।[2]' बौद्ध पारमिताओं का उपदेश भी बोधिसत्व के कार्य प्रस्तुत करके ही किया गया है। उनका स्वरूप भी लोकधर्म से भिन्न नहीं है।

(२) कुछ गाथाओं में सम्वाद आ गये हैं। इससे स्पष्ट है कि, मूल जातक गाथात्मक ही था। श्रीलंका में जो अनुवाद किया गया, उसमें गद्य-भाग में कहानी का अंश एवं पद्य-भाग में अन्य अंश रखे गये होंगे। बाद में सिंहली

---

१. दुब्ब मिय मक्कट जातक (१७४), कपि जातक (४०४) आदि।

२. जातक, खं० २, भदंत आनंद कौसल्यायन कृत अनुवाद, पृ० १४७, पालिगाथा:-

"असमे क्खितकम्मन्तं तुरिता भिनिपातिनं,
सानि कम्मानि तप्पन्ति उण्हं वज्झोहितं मुखे॥"

भाषा से पालि में अनुवाद गद्य-पद्य-मिश्रित रूप से हुआ है। किन्तु प्राचीन गाथाओं को श्रीलंका मे भी सुरक्षित रखा गया था। उसी कारण से कुछ गाथाओं मे कहानी के कथोपकथन सुरक्षित अवस्था में मिलते हैं। काक जातक (३९५) में कबूतर और कौओ में मार्मिक सम्वाद हुआ, वह गाथाओं में सुरक्षित है। उसी प्रकार दीपि-जातक की भेड़ और चीते का कथोपकथन गाथाओं में ही प्राय: रखा गया है।

(३) कुछ गाथाओं में कथा का सारांश रख दिया है। एक-दो गाथाओं में कहानी का सार भर देने की प्रणाली रही है। तक्कारिय जातक (४८१) की दूसरी 'अतीत-कथा' की गाथाओं में कहानी का सारांश रख दिया गया है। कहा है, 'जो पक्षी स्वयं युद्ध न करता हुआ युद्ध करने वाले मेढ़ों के बीच में जाकर गिरा, वह मेढ़ों के सिरों में वहीं पिस गया,'[1] इस गाथा में पूरी कहानी व्यर्थ हो चुकी है। कहीं-कहीं पर पूरी कथा तो नहीं, किन्तु उसका महत्वपूर्ण अंश गाथा में रख दिया गया है। सीहचम्म-जातक (१८९) मे सिंह की खाल पहने गधे ने चिल्लाना शुरू किया तब लोगों ने उसे पीटा। तब बनिये ने गाथा सुनाई है। इस गाथा को कथा से दूर नहीं हटाया जा सकता।

(४) सुन्दर दृष्टान्त, उपमा आदि से युक्त वाक्यों का प्रयोग भी गाथाओं में हुआ है। कभी-कभी गद्य में कही हुई कथा को पुष्टि के लिए गाथा में दृष्टान्त दिये गये हैं। मय्हक-जातक (३९०) के गद्यभाग में कहानी है कि, बोधिसत्व, जो करोड़पति थे, अपनी सम्पत्ति एवं पुत्र को छोटे भाई को सौंप कर तपस्वी बन गये थे। किन्तु छोटे भाई ने बढ़ रहे भतीजे को मार डाला। बोधिसत्व ने आकर पुत्र के विषय में पूछा तो उसने कहा कि, वह पानी में डूब कर मर गया। इस पर बोधिसत्व ने उसे कहा, 'तुम्हीं ने उसे मारा है।' बाद में गाथा भाग में उन्होंने 'मय्हक' पक्षी का दृष्टान्त दिया जो 'मेरा' 'मेरा' यह रट लगाता रहता है। दूसरे पक्षी फल खाते रहते हैं। इसकी रट चालू रहती है, 'मेरा' 'मेरा'। उसी प्रकार धन का लोभी मनुष्य, 'यह मेरा, यह मेरा' कहता कहता ही रहता है, किन्तु उधर एक दिन उसका धन राजा या लुटेरे लूट लेते

---

१. वही खं० ४, पृ४५७, गाथा ४ :—

यो युज्झमानानं अयज्झमानो,
मेण्डतर मच्चुपती कुलिको,
सो पिसितो मेण्ड सिरेहि तत्थ,
अयं पि हत्थो अह तादिसोव ॥४॥

आता रहता है। बौद्धों ने भी यही अनुभव किया होगा तो आश्चर्य नहीं। बिल्ला घरेलू प्राणी है। इसलिए स्त्रियों और बच्चों को उसकी प्रवृत्तियां ज्ञात थीं। इसीलिए कुछ परिवर्तन के साथ बौद्धों ने भी उसके स्वभाव को दुहराया है। मनुस्मृति एवं विष्णुपुराण में भी बैडालव्रत की चर्चा है।[1]

इससे स्पष्ट है कि, बौद्धों ने परम्परा से प्राप्त वस्त्वर्थ को ही अपनाया। इसीलिए जातक की गाथाएं बौद्ध धर्म की सीमा से घिरी हुई नहीं दिखाई देतीं। बुद्धदेव ने सर्वजनहिताय उनका ग्रहण किया था। जैसा कि हमने देखा है यज्ञीय गाथाओं मे यह सार्वजनीन विशेषता अधिक नहीं पाई जाती। ये गाथाएं केवल यज्ञधर्म का प्रतिपादन करने वाले भाष्यग्रंथों का अंग बन कर सीमित क्षेत्र में रह गईं। सर्वजन-हिताय ब्राह्मणकारों ने अपनी गाथाएँ नहीं रखी। अतः लोक-गाथाओं में जो सुभाषित एवं लौकिक आख्यान भरे पड़े थे, उन्हें भाष्य में स्थान देने की ब्राह्मणकारों को आवश्यकता नहीं पड़ी। यह कार्य प्रथम बार बुद्धदेव ने किया।

जातककारों में सभी प्रकार के लोग थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि सभी वर्णों के लोग बुद्ध की ध्वजा के नीचे एकत्रित हुए थे। इसलिए बौद्ध गुण-कथा' में विविध रूप प्रकट हो गये हैं।

निवेदन शैली (Style of narration)

अतीतकथा का प्रारम्भ ब्रह्मदत्त नाम के राजा से होता है। प्राचीन लोक-कथा से ही यह नाम यहां लिया गया है। क्योंकि, हिन्दू, बौद्ध एवं जैन साहित्य में ब्रह्मदत्त को समान रूप से अपनाया गया है।

निवेदन-शैली मार्मिक एवं चंद वाक्यों में गहरे अनुभव को व्यक्त करने में सक्षम है। कथोपकथन भी जहाँ आवश्यक प्रतीत हुए वहीं रखे गये हैं। अधिकतर सम्वाद गद्य-भाग में आते हैं, पद्यभाग में कम। सम्वाद सम्पूर्ण प्रतीत होते हैं। प्रथमतः बोधिसत्व ने किस योनि में जन्म लिया इसे स्पष्ट किया गया है। किन्तु मितचिन्ती जातक (११५) में पूर्वजम्म का उल्लेख प्रारम्भ में नहीं है। सुन्दर दार्शनिक सम्वाद नपे-तुले शब्दों में महामोर जातक (४९१) में रख दिया गया है। वर्णन शैली की सूक्ष्मता मोर के वर्णन में प्रकट हो चुकी है। एक सुन्दर उपमा भी इसी जातक में है: 'उसका शरीर सामान लादने की गाड़ी के समान था।'

कथा-रचना की प्रणाली

किसी एक सिद्धान्त को लेकर कथाओं का चक्र उपस्थित करने तथा कथा के

---

१. मनुस्मृति, अ० ४, पद्य १९५, विष्णुपुराण, ९३.८.

भीतर दूसरी कथा कहने को प्रणाली की चर्चा पिछले अध्याय में हम कर चुके हैं। इस प्रकार की प्रणाली सम्पूर्ण भारतीय रही है। इसका प्रथम सूत्रपात ब्राह्मणों की आख्यायिकाओं के रूप में हो चुका था। कथा में छोटी कथा कहने का भी पहला उदाहरण ऐतरेय ब्राह्मण की एक आख्यायिका में परिलक्षित कर चुके हैं। इसी प्रणाली का उत्तरोत्तर विकास होता गया। इसे पश्चिम के विद्वानों ने Emboxment of tales निरूपित किया है। इस प्रणाली (device) का परिचय जातक की कथाओं में भी हमें मिलता है।

बुद्धदेव ने अपनी पूर्व-जन्म की घटनाओं से सत्य, अहिंसा, उदारता, परोपकार, शान्ति, दया आदि सिद्धान्तों की पुष्टि की है। लौकिक प्रज्ञा (Worldly wisdom) के अन्यान्य उदाहरण हमें इन बिखरी हुई नीति-कथाओं (fables) में मिलते हैं।

इससे स्पष्ट है कि एक सिद्धान्त एवं अनेक कहानियां जातक में प्रस्तुत की गई हैं। तक्कारिय जातक (४८१) इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसमें एक सिद्धान्त निहित है। 'बहुत बोलनेवाला आदमी इसी प्रकार शोक तथा वध को प्राप्त होता है।'[1] इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिए दो कथाएँ कही गई हैं। पहली 'अतीत-कथा' में उस आचार्य की कहानी है जिसने अपनी पत्नी को उसी के जार को मारने का इरादा बतला दिया। इससे उस कुलटा से सूचना मिलते ही जार भाग गया और स्वयं आचार्य अपने वध का ही कारण बना। तब बोधिसत्व ने यह कह कर कि, अधिक बोलने का यही फल होता है, एक और अतीत कथा सुनाई।

द्वितीय 'अतीत-कथा' में ही अन्य पाँच उपकथाएँ कही गई हैं। इसलिए कथा के भीतर और उपकथाएँ कहने की प्राचीन प्रणाली का यह स्पष्ट उदाहरण है। ये उपकथायें इस प्रकार हैं:—

(१) वेश्या की कथा,
(२) दो भेड़ें एवं पक्षी की कथा,
(३) ग्वालों की कथा,
(४) बकरी की कथा और
(५) किन्नर कथा।

ये पाँच उपकथाएं मिलकर दूसरी 'अतीतकथा' बनी है। एक उपकथा समाप्त होते ही गाथा में कहा गया है: 'यह भी वैसी ही घटना हुई' आदि

---

१. जातक (श्री कौसल्यायन कृत हिन्दी अनुवाद) खंड ४, पृष्ठ ४५१ गाथा २री।

और यह कहकर दूसरी उपकथा का प्रारंभ हो गया है। इन पाँचों उपाख्यानों में दूसरी एवं चौथी उपकथा ही प्राणि-सम्बन्धी नीतिकथाएं (beast-fables) हैं।

दूसरी उपकथा में दो भेड़ें एवं एक पक्षी की मार्मिक कहानी हैं। दोनों भेड़ें आपस में लड़ने लगे तो उनको बचाने के लिए एक पक्षी ने कहा, 'मामा, युद्ध न करो।' किन्तु उसकी कौन सुनता है? पक्षी ने उनके पीठ एवं सिर पर बैठकर बारंबार कहा, फिर भी वे दोनों लड़ते रहे। इस पर पक्षी ने कहा, 'मुझे मारो, फिर लड़ो।' और वह दोनों के बीच में पड़ा तो बुरी तरह पिस गया। इस प्रकार अपनी करनी से ही पक्षी मारा गया।

चौथी उपकथा यह है : बकरी को चुराकर चोरों ने उसका मुंह बांध दिया और जंगल में रख दिया। दूसरे दिन उसे मारकर खाने की इच्छा से वहां गये तो आयुध साथ में रखना भूल गये। बिना आयुध के उसे मारकर मांस क्या मिलता? अतः चोरों ने उसे पुण्यवान् समझकर छोड़ दिया और वे चल दिये। वहीं बांस फोड़ने वाले किसी व्यक्ति ने अपनी कटार झाड़ में फंसा रखी थी। बकरी ने मुक्ति की खुशी में उसको अपनी लात से गिरा दिया। आवाज सुनकर चोर वहां आए और कटार एवं बकरी को देखकर प्रसन्न हुए। तब वे कटार से उसे मारकर खा गये। वह बकरी भी अपने ही कारण मारी गई।

इस प्रकार एक सिद्धान्त के लिए ये दो नीतिकथाएँ एक ही जातक में प्रस्तुत की गई है। एक अतीत कथा के भीतर ५ उपकथाओं का पाया जाना भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। यही कथा-चक्र, अन्तःकथा मञ्जूषा की रचना-प्रणाली या device of emboxment भारतीय कथाओं की मौलिक विशेषता रही है। पश्चिम के विद्वानों ने भी इस प्रणाली को मूलतः भारतीय माना है। कथाओं के सम्प्रसारण (diffision) के कारण यह प्रणाली भी कथाओं के साथ-साथ पश्चिम की ओर गई। अरेबियन नाइट्स में इसी प्रणाली को अपनाया गया है। कथा के भीतर उपकथा रखने की प्रणाली (device) का उदय ऐतरेय ब्राह्मण में, अर्द्ध विकास जातक में तथा सम्पूर्ण विकास पंचतंत्र में हुआ है। क्योंकि, पंचतंत्र के प्रत्येक तंत्र में एक कथा से दूसरी कथा निकली हुई है। इस दृष्टि से जातकीय नीतिकथा इस विकास-परम्परा की बीच की कड़ी है।

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि, प्राणिकथाओं के अतिरिक्त जातक में अन्य मनुष्य-कथाएं भी आ चुकी हैं। उनमें किसी न किसी नीति की शिक्षा दी गई है। अतः उन्हें शिक्षाप्रद आख्यान (moral tales) के अन्तर्गत रखना श्रेयस्कर होगा। शिक्षाप्रद आख्यानों की परम्परा में इन कथाओं का महत्वपूर्ण योगदान

रहा है। परिभाषा के अनुसार इनको 'फेबल्' के अन्तर्गत व्यवस्था नहीं हो सकी है। फिर भी ये भी शिक्षाप्रद आख्यान नीतिकथा के विकास में सहायक सिद्ध हुए हैं। इनकी भाषा भी सीधी-सादी और बिना सँवारी मिलती है। लगता है कि, लोककथा की भाषा ज्यों की त्यों रख दी गई हो।

ये कथाएँ पालि भाषा एवं साहित्य में प्रकट हुई हैं। किन्तु जहाँ से ये ली गई वह लोककथा का भांडार भारतीय जनता की सार्वजनिक सम्पत्ति थी। इसलिए हिन्दुओं ने भी पंचतंत्र एवं महाभारत में इसी प्रकार की अनेक नीति-कथाएँ अपना ली हैं। जातक-सम्बन्धी इस चर्चा से यही स्पष्ट हुआ कि, भाषा, शैली और विषय की दृष्टि से पालि ग्रंथ उपनिषदों के बहुत पास के हैं और जातक का संस्कृत कथाओं पर काफी प्रभाव पड़ा है। जातक से संस्कृत नीति-कथा को बल मिला है।

अर्थकथा-साहित्य में नीतिकथा

धम्मपद-अट्ठकथा—[१] अर्थकथा का अर्थ बौद्ध ग्रंथों की व्याख्या है। इस व्याख्या-साहित्य में धम्मपद-अट्ठकथा का महत्व अधिक है। इसमें भी बौद्ध कथाओं को स्थान मिल चुका है। इस व्याख्या एवं चर्चा का स्वरूप ब्राह्मण ग्रंथों के अर्थवाद से अधिक भिन्न नहीं है।

इसमें कुछ प्राणिकथाएँ भी ली गई हैं। यहाँ भी पशु-पक्षी मनुष्य के समान बोलते एवं कार्य करते हैं।[२] लोक-विश्वासों का प्रभाव प्राचीन साहित्य में पड़ा है। अर्थकथा-साहित्य में मूल ग्रंथ में अंकित स्थलों का अनुसरण किया है। यहाँ भी वही हुआ।

हाथी की कथा[3] का महत्व अधिक है। वैसे निग्रोध-मिग जातक का भी उल्लेख आ गया है।[४] धम्मपदट्ठकथा एवं मिलिन्द पन्ह में भी कुछ ऐसी जातक कथाएं उद्धृत की गई हैं जो जातक में नहीं मिलती[५] जातकट्ठकथा जातक की

---

१. Vide E. W. Burbingame's edition, Buddhist Legends, (Dhammapada Commentary) into 2 parts Harvard University, 1921.

२. On Talking Birds in Hindu Fictions, in Festschrift fur Eanst Windisch, pp. 349-361.

३. Burbingame, Buddhist Legends, pt. I, p. 179.

४. वही pt. II, p. 359.

५. Dr. Winternitz, History of Indian Literature, II, p. 115 Footnote.

व्याख्या है। इसमें जातक में स्थित गाथा भाग की अर्थकथा प्रस्तुत है। इसके तथा धम्मपदट्ठकथा के रचयिता आचार्य बुद्धघोष के होने में डॉ. गायगार ने संदेह प्रकट किया है। इस अट्ठकथा में लोक-विश्वासों की झलक अधिक मिलती है। जातक-कथाओं के विकास में इस ग्रंथ का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसके अतिरिक्त दिव्यावदान में मेण्डक की कथा द्रष्टव्य है।[१]

संस्कृत में बौद्ध नीतिकथाएं

जातक माला[२] :—

जातक-माला संस्कृत में लिखा गया बौद्ध ग्रंथ है। इसके रचयिता आर्यशूर नामक बौद्ध विद्वान् हैं। इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि, इसमें प्रथमतः बौद्ध नीतिकथा का संस्कृत रूप हमारे सामने आता है। चूंकि, संस्कृत नीतिकथा की सविशेष चर्चा हमारा लक्ष्य है, हमें जातक-माला में निहित नीतिकथाओं का भी अनुशीलन प्रस्तुत करना आवश्यक प्रतीत होता है।

आर्यशूर बुद्धघोष (१ शताब्दी) के बाद और चौथी शताब्दी के पूर्व ही गये हैं। उनकी कृति का चीनी भाषा में अनुवाद ई० स० ४३४ में हुआ था। उन्होंने उस समय की काव्यशैली में जातक-माला लिखी है। जातक एवं चरिया-पिटक की कथाएं इसका मूलाधार है। आर्यशूर ने उनमें से कई कथाओं को काव्यशैली में लिखकर संस्कृत साहित्य की अभिवृद्धि की है। जातक एवं चरिया-पिटक के प्रभाव के कारण जातक-माला में कुछ प्राणिसंबंधी नीतिकथाएं (beast-fables) भी संग्रहित हो गई हैं। इन्हीं नीतिकथाओं में हमें बौद्ध नीतिकथा का संस्कृत एवं काव्यमय रूप दिखाई देता है।

जातक-माला में बोधिसत्त्व की ही कहानियां हैं। कवि ने श्रद्धापूर्वक ये कथाएं कही हैं। अतः उनका स्वरूप धर्म-कथा का ही है। फिर भी जातकीय कथा की-सी लौकिक प्रज्ञा (Worldly wisdom) भी इन नीतिकथाओं से प्रकट हो गई है।

जातक-माला में कुल ३४ 'जातक' हैं। हेमचन्द्र ने अभिधानचिंतामणि में

---

१. Divyavadan Chapters IX-X, pp. 123-135.

२. The Jātaka Māla, Edited by Dr. H. Kern, 1891; दूसरा एक हिन्दी संस्करण: श्री सूर्यनारायण चौधरी द्वारा सम्पादित एवं अनूदित 'जातक माला' (१ से २० जातक, १९५२; Speyer's English translation Sacred Books of the Buddhists, 1895, Oxford.

बुद्धदेव को 'चतुस्त्रिंशज्जातकज्ञ' कहा है[1] इनमें से प्राणिसंबंधी नीतिकथाओं को उद्धृत कर पालि जातक एवं चरियापिटक की कथाओं के समान-रूपों का निर्देश आगे दिया गया है :—

नीतिकथाएं (fables) : जातक-माला के समान रूप (Parallels)

क्रमांक	जातक-माला	पालि जातक	चरियापिटक
१	व्याघ्री जातकम् (१)	–	–
२	शश-जातकम् (६)	सस जातक (३१६)	सस-पण्डित जातक(१०)
३	मत्स्य-जातकम् (१५)	मच्छ जातक (७५)	मच्छराज-जातक (३०)
४	हंस-जातकम् (२२)	हंस-जातक (५०२)	–
५	महाकपि-जातकम् (२४)	–	–
६	शरभ-जातकम् (२५)	सरभ-जातक (४८३)	–
७	रुरु-जातकम् (२६)	रुरु-जातक (४८२)	–
८	महाकपि-जातकम् (२७)	महाकपि जातक (४०७)	कपिराज जातक (२७)
९	हस्ति-जातकम् (३०)	–	–
१०	महिष-जातकम् (३३)	महिस-जातक (२७८)	महिस जातक (१५)
११	शतपत्र-जातकम् (३४)	जव-सकुन जातक(३०८)	–

विशेष:—हमने यहां जातकमाला की नीतिकथाओं (fables) एवं उनके समान रूपों (Parallels) को ही लिया है। अन्य जातक एवं उन के समान रूपों के लिए देखिए : Dr. Kern's The Jataka Mala, 1891, Preface, pp. VIII-IX.

जातक-माला में आर्यशूर ने दयादि पारमिताओं के निदर्शन के लिए एक-एक नीतिकथा प्रस्तुत की हैं। उनका उद्देश्य भगवान् बुद्ध के प्रति श्रद्धा बढ़ाना है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि, 'बुद्धे भगवति परः प्रसादः कार्यः'।[2]

व्याघ्री-जातक (१) में बुद्धदेव का प्राणि-मात्र में दयाभाव दिखाने के लिए बोधिसत्व की कहानी कही गई है। क्षुधा से पीड़ित एवं सद्यःप्रसूता एक व्याघ्री

१. Dr. H Kern, The Jataka Mala, Pref. p. VI, Note 2; देखिए : सूर्यनारायण चौधरी कृत हिन्दी अनुवाद, जातक-माला, भूमिका पृ० ३ का पदसंकेत।

२. वही, पृ. १. (H. Kern's edition).

भी चम्पू-शैली का उपयोग किया है, किन्तु काव्यशैली का नहीं। आर्यशूर की जातकमाला संस्कृत साहित्य का प्राचीन चम्पू-काव्य है।

चम्पू-शैली के विषय में जातकमाला के २० जातकों के अनुवाद-कर्ता श्री सूर्यनारायण चौधरी ने अपनी भूमिका में विचार व्यक्त किया है: 'इस प्रणाली की उत्पत्ति का बीज पालि-जातकों में निहित है।'[1] किन्तु यह कथन तथ्यपूर्ण नहीं प्रतीत होता। वास्तव में बुद्धदेव के पूर्व ही ब्राह्मणों में इस प्रणाली का प्राचीन नमूना सुरक्षित है। हम पिछले पृष्ठों पर देख चुके हैं कि, गद्य-पद्य मिश्रित रचना की प्रणाली पूर्णतया वैदिक समय की देन है, पालि जातक पर भी वैदिक साहित्य की इस विशेषता का प्रभाव हुआ है। ब्राह्मणों में पाये जाने वाले गद्यांश एवं यज्ञ-गाथाएं चम्पू शैली के बहुत प्राचीन बीज-तत्व हैं। इस विषय में मतामत हो सकते हैं कि, ऋग्वेद के मंत्र रूप पद्य टिक गये, किन्तु गद्य भाग काल के गाल में समा गये हैं। अतः ऋग्वेद मूलतः गद्य-पद्य की शैली में कहा गया था। किन्तु ब्राह्मणों में गद्य-पद्य मिश्रित रचना के उदाहरण स्पष्ट दिखाये गये हैं।

इस तथ्य को हम भी मानते हैं कि, आर्यशूर के सामने पालि-जातक का नमूना था। इसलिए जातक की गद्य-पद्य-मिश्रित रचना को देखकर ही आर्यशूर ने चम्पूशैली को अपनाया होगा तो आश्चर्य नहीं। किन्तु इस प्रणाली की उत्पत्ति के बीज पालि जातकों में नहीं, अपितु ब्राह्मण-साहित्य में निहित हैं, इतना ही हमें कहना है। पंचतंत्र के प्राचीनतम संस्करण पर इसी वैदिक प्रणाली का प्रभाव पड़ा होगा और पालि जातक के द्वारा अपनाई गई होने से इस प्रणाली की लोकप्रियता और भी सिद्ध हो गई। उसी का विकसित रूप पंचतंत्र मे हम पाते है। इसी प्रणाली का काव्यमय रूप जातकमाला में प्रकट हुआ है जो चम्पू-काव्य की परम्परा में महत्वपूर्ण है।

वर्णन शैली

यहां अलंकार एवं वर्णन की कमी नहीं है। वैदर्भी रीति का प्रयोग हुआ है। काव्य में शाक्य मुनि की जातक-कथाओं को प्रस्तुत करने का प्रयोजन कवि ने प्रथम पद्य में ही स्पष्ट किया है:

> "पूर्वप्रजन्मसु मुनेश्चरितद्भुतानि
>
> भक्त्या स्वकाव्यकुसुमांजलिनार्चयिष्ये।"

कवि ने शश-जातक (६) में खरगोश की कहानी कही है। किन्तु कथानक की अपेक्षा काव्यमयी शैली में खरगोश का परिचय देने में कवि की रुचि अधिक

---

१. जातक-माला १९५२, भूमिका पृ० ४.

दिखाई देती है। "बोधिसत्व अरण्य में खरगोश की योनि में उत्पन्न हुए इतना मात्र पालि जातक में लिखा जाता। किन्तु इस तथ्य को जातक-माला के कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

"कस्मिंश्चदरण्यायतनप्रदेशे मनोज्ञवीरुत्तृणतरुगहननिचिते पुष्पफलवती वैडूर्य-नीलशुचिवाहिन्या सरिता विभूषितपर्यन्ते मृदुशाद्वलास्तरणमुखसंस्पर्शदर्शनीय-धरणीतले तपस्विजनविरचिते बोधिसत्वः शशो बभूव।"[१]

कहीं-कहीं पर तो इससे भी बड़ा गद्य-वाक्य देकर कहानी का प्रारम्भ किया गया है :

"बोधिसत्वः किल सालबकुलहिन्तालतमालनक्तमालविदुलनिचुलक्षुपबहुले शिंशपातिनिशशमीपलाशशाककुशवंशशरवणगहने कदम्बसर्जार्जुनधवखादिरकुटजनिचिते विविधवल्लीप्रतानावगुण्ठितबहुतरुविटपे रुरुपृषतसृभरमरगजगवयमहिषहरिणन्यंकुवराहद्वीपितरक्षृव्याघ्रवृकसिंहर्क्षादिमृगविचरिते मनुष्यसंपातविरहिते महत्यरण्यवनप्रदेशे तप्तकांचनोज्ज्वलवर्णः सुकुमाररोमा नानाविधपद्मरागेन्द्रनीलमरकतवैडूर्यरुचिरवर्णबिन्दुविद्योतितविचित्रगात्रः स्निग्धाभिनीलविमलविपुलनयनो मणिमयैरिवापुरुषप्रभैर्विषणिक्षुरप्रदेशैः परमदर्शनीयरूपो रत्नाकर इव पादचारी रुरुमृगो बभूव।"[२]

इस वर्णन में वैदर्भी रीति की कोमल-कान्त-पदावली है और शब्द विन्यास में संश्लेष है। गद्य में सरल किन्तु लम्बे वाक्य हैं। फिर भी काव्य-शैली के कारण कहीं पर अस्वाभाविकता नहीं आने दी है। बाणभट्ट की अपेक्षा आर्यशूर की गद्य शैली बहुत सरल एवं सुन्दर लगती है। बाण की-सी क्लिष्टता यहां नहीं आने पाई है। अरण्य एवं रुरुमृग के लिए विशेषण अधिक अवश्य प्रस्तुत किये गये हैं। किन्तु उनसे काव्य-चमत्कार का अच्छा रूप प्रकट हो रहा है। विशेषणों के द्वारा वाक्य बड़े होने की स्थिति बाण की कादम्बरी में भी पाई जाती है। वह जातक-माला में प्रकट हुई तत्कालीन गद्यशैली का वृद्धिगत रूप था। बाण की अलंकारों की भरमार, लम्बे और प्रौढ़ गद्य-वाक्य एवं कल्पना की सुन्दरता जातकमाला में नहीं है। वह तो बाण-पूर्व समय की सुन्दर एवं सरल गद्य-रचना का प्राचीन रूप प्रकट कर रही है।

तथागत की पूर्व-जन्म-सम्बन्धी कथाओं में प्राणि-कथा भी आ चुकी थीं। इसलिये आर्यशूर ने भी उसे अपनाया है। अन्यथा कवि-स्वभाव के आर्यशूर रस-विहिन प्राणि-प्रसंगों को न चुनते। कवि में श्रद्धावान् अन्तःकरण भी था।

---

१. जातकमाला, पृ० २७ (H. Kern's edition)

२. वही, पृ० १६७.

हो गया है । नायक में लौकिक बुद्धिमानी नहीं दिखाई देती, प्रत्युत उसको अति मानवीय (super human) शक्ति का ही चमत्कार दिखाई देता है । इसलिए प्राणियों की मार्मिक गतिविधियां भी नहीं दिखाई देतीं जो पालि-जातक या पंचतंत्र की कथाओं में व्यक्त हो गई है ।

महाकपि-जातक (२४) में उल्लेख है कि, संकट में पड़े दीन मनुष्य से बन्दर ने मनुष्य वाणी में कुछ कहा । जातककार या पंचतंत्रकार को इस प्रकार का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं पड़ी । क्योंकि, प्राचीन समय में लोककथा में एक मनुष्य-वाणी में बोलता हो तो उसमें कोई अस्वाभाविकता प्रतीत नहीं होती थी । हम देख चुके हैं कि, पशुओं का मनुष्यवत् व्यवहार एक प्राचीन लोक-धारणा का अंग था । अतः जातक या पंचतंत्र में यह स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं थी । किन्तु आर्यशूर को बोधिसत्व रूप जानवर में आधिदैविक (devine) शक्ति का आध्यारोप करना था । अतः वंदर की मनुष्य-वाणी के विषय में उल्लेख कर दिया गया । रघुवंश में दिलीपव्याघ्रसम्वाद में व्याघ्र ने भी मनुष्यवाणी का ही प्रयोग किया है ।

जातकमाला की नीतिकथा में लौकिक चतुरता का चमत्कार नहीं दिखाई देता । फिर भी सरस एवं मधुर वर्णनशैली से आर्यशूर ने नीरसता नहीं आने दी यह अवश्य मानना पड़ेगा । कालिदास एवं अश्वघोष की शैली से वे प्रभावित हुए हैं । कुछ पद्यों की रचना तो उन्हें महाकवि की संज्ञा देने में सहायक सिद्ध होगी । सरोवर का यह वर्णन उन्होंने कितने सरल एवं सरस ढंग से किया है[3] ।

"द्रुमैः कुसुमसंछन्नैश्चलात्किसलयोज्ज्वलैः ।
तत्प्रेक्षार्थमिवोत्पन्नैः कृततीरपरिग्रहम् ॥ ८ ॥
निहसद्भिरिवाम्भोजैस्तरंगोत्कम्पकम्पिभिः ।
विलोक्यमानाकुलितभ्रमद्भ्रमरसंकुलम् ॥ ९ ॥
ज्योत्स्नासंवाहनोन्निद्रैर्विचित्रकुमुदैः क्वचित् ।
तरुच्छायापरिच्छिन्नैश्चन्द्रिकाशकलैरिव ॥ १० ॥"

आदि पद्यों में सरोवर का जीता-जगता एवं सुन्दर चित्र खींच कर, अंतिम पद्य में इसी वर्णन में चार चांद लगा दिये हैं :

"ताराणां चन्द्रताराणां सामान्यमिव दर्पणम् ।
मुदितद्विजसंकीर्णं तद्रुतप्रतिनादितम् ॥ १६ ॥"

---

१. जा० मा० पृ० १७५.

२. रघुवंश सर्ग २.

३. जा० मा०, हंस-जातकम् (२२), पृ० १२९-१३० पद्य ८-१६.

यहाँ रुद्रदामन के शिलालेख, अश्वघोष एवं कालिदास के काव्यों में व्यक्त वर्णन शैली का बहुत कुछ साम्य है। ईसा की प्रथम तीन-चार शताब्दियों में संस्कृत काव्यशैली का यही रूप रहा है।

उनकी सानुप्रास कोमलकान्त-पदावली भी द्रष्टव्य है :

"यन्मानसादभ्यधिकं बभूव तैस्तैरवस्थातिशयैः सरस्तत्।
अतश्चिरं तद्गतमानसानां न मानसे मानसमास तेषाम्॥"[1]

किन्तु सभी पद्य काव्य-कला के परिचायक नहीं हैं। कहीं-कहीं पर उपदेश के रूखे वचन भी हैं :

"श्रद्धा धर्मः सतामेष यत्सखा मित्रमापदि।
न त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोर्धर्ममनुस्मरन्॥"[2]

कहानी-कला

जातकमाला को पढ़ने पर एक तथ्य स्पष्ट हो जाता है। वह यह कि, कवि ने अपनी प्रतिभा का परिचय तो दिया है, किन्तु उनकी काव्यशैली 'नीतिकथा' की मनोहारिता में कुछ बाधा उत्पन्न कर देती है। काव्य के लिए यह शैली उपयुक्त अवश्य हो सकती है। किन्तु अत्यधिक वर्णन-शैली से कथाग्रंथ की कथा प्रभावहीन हो जाती है। इसीलिए पंचतंत्र को नीतिशास्त्र का ग्रंथ समझ कर कथाएं लिखी गई है। कथा-संग्रह का ग्रंथ होने पर भी उसे सरस बनाने की अपेक्षा नीति-प्रचार का माध्यम मात्र बनाना था। फिर भी उसमें कहानीकार का कौशल भलीभांति प्रकट होता गया। यह कौशल जातक-माला में नहीं दिखाई देता। शतपत्र-जातक (३४) में कठफोडा पक्षी एवं सिंह की कथा है जो पालि जनसकुण-जातक[3] में आ चुकी है। मूल कहानी के अनुसार सिंह के गले में हड्डी अटक गई तब उसे कठफोड़े ने उस के मुँह में खड़ी लकड़ी फंसा कर निकाल लिया और वह झट से वृक्ष पर जा बैठा। इस में पक्षी की सतर्कता सराहनीय है। अन्यथा सिंह उसे खा जाता। किन्तु इसी प्रसंग को जातकमाला में इस मार्मिक ढंग से प्रस्तुत नहीं किया। आर्यशूर ने दयाशील कठफोडे ने सिंह के मुँह से हड्डी निकाली इतना ही कहा है। पक्षी सतर्क हो कर उड़ा नहीं जो अस्वाभाविक-सा लगता है।

आर्यशूर ने मूल कथा को बढ़ाने का प्रयास भी किया है, जो कथाकौशल की दृष्टि से अवांछनीय ही कहा जावेगा। उपरोक्त कथा में ही कठफोडा उपकार

---

१. जा० मा०, हंस जातकम् (२२), पद्य २१, पृ० १३२.
२. वही, हंस जातकम् (२२) पद्य ३५, पृ० १३४.
३. पालि जातक (३०८)

को भूल जाने वाले सिंह की बात सुनकर विरक्त हृदय से उड़ जाता है। यहीं पालि जातक में मूल कथा समाप्त होती है और कहानी वास्तव में यहीं समाप्त होनी चाहिए। किन्तु जातक-माला में वनदेवता एवं पक्षी का संवाद खड़ा कर उपदेश एवं सुभाषित की और खैरात कर दी गई है। इससे वह न तो सरस एवं निर्दोष काव्य रहने पाया है और न मार्मिक कथाओं का संग्रह ही।

अशुद्ध पाठ

जातकमाला के सम्पादक श्री कर्ण (H. Kern) को ग्रन्थ की पाण्डु-लिपियों में कुछ अशुद्धियां मिलीं। इन अशुद्धियों को देखकर उनकी यह धारणा हो गई कि पाण्डुलिपि के लेखकों ने मूल संस्कृत शुद्ध पाठों को अशुद्ध रूप में लिपिबद्ध किया है, फलस्वरूप अपाणिनीय रूप मिलते हैं।[1] किन्तु इधर कुछ समय पूर्व श्री एजर्टन् (Edgerton) महोदय ने इस पर नया प्रकाश डाला है। उन्होंने दिखा दिया है कि, प्राचीन बौद्ध संस्कृत ग्रन्थों की भाषा "हाइब्रिड संस्कृत" थीं। उसीमें मूल ग्रन्थ लिखे गये थे। उलटे लिपिकारों ने उसे पाणि-नीय संस्कृत में लाने की चेष्टा की है। बौद्धों के लिए 'हाइब्रिड संस्कृत' ही प्रचलित थी।[2]

एक पद्य का पाठ है :

'केन हतोऽस्मीति ददर्श नान्यं
तमेव तु ह्रीतमुखं ददर्श।"[3]

मूल पाठ 'केनाहतोऽस्मीति' रहा होगा। अन्यथा वृत्त भंग होता है। अथवा महिष-जातक (३३) के एक पद्य में—

'स धर्मसंज्ञोऽपि तु कर्मलेशान्' आदि पाठ मिलता है।[4] यहां धर्मसंज्ञी तथा अपि की संधि हाइब्रिड संस्कृत के अनुसार ही मान लेनी चाहिये।

लोकप्रियता

जातकमाला की कथाएं भी बौद्धों में लोकप्रिय रही हैं। हेमचन्द्र ने अभिधान-चिन्तामणि कोष में बुद्धदेव के अन्य नामों में 'चतुस्त्रिंशज्जातक' नाम भी दिया है। हंस-जातक, सस-जातक, महाकपि-जातक और महिष-जातक में जो प्राणि-सम्बन्धी नीतिकथाएँ हैं वे अन्य मानव-कथाओं के साथ अजन्ता की पत्थर की दीवारों पर

---

१. H. Kern, The Jataka-Mala, Preface, p. VII.

२. Dr. Edgerton : Hybrid Sanskrit Dictionary.

३. जा० मा० महाकपि जातकम् (२४), पद्य २३, दूसरा चरण, पृ० १५६.

४. वही, महिष-जातकम् (३३), पद्य २, पृ० २३२.

चित्रित की गई है। अजन्ता में जातक-माला के कुछ पद्य भी उद्धृत किये गये हैं। इससे सिद्ध है कि, पाँचवीं शती में ही जातक-माला की लोक-प्रियता काफी बढ़ चुकी थी। चीनी यात्री इ-त्सिंग (I-Tsing) ने इसीलिए इसे उस समय का एक लोकप्रिय ग्रन्थ निरूपित किया है।

जैन नीतिकथा का परिचय[1]

भारतवर्ष में वेदों को अस्वीकार करने वाली विचारधारा की तीन मुख्य प्रवृतियां थीं—बौद्ध, जैन एवं चार्वाक्। ये प्राचीन समय में एक ही विचार प्रवाह के तीन रूप रहे हैं। जैन एवं बौद्ध धर्मों में तो जीवन-विषयक दर्शन एवं कर्म-सिद्धान्त की समानता रही है।

अतः बौद्धों के समान जैनों का भी प्राचीन साहित्य इस देश के धार्मिक एवं साहित्यिक इतिहास का महत्वपूर्ण अध्याय है। अर्धमागधी एवं संस्कृत में जैनों का जो साहित्य प्राप्त होता है उसमें कथा-कहानियाँ प्रचुर मात्रा में हैं। इस कथा-साहित्य में संस्कृत नीतिकथा के विकास की दृष्टि से जैन नीतिकथाओं के कुछ स्थलों का दिग्दर्शन मात्र करा देना आवश्यक प्रतीत होता है।

भगवान महावीर चौबीस तीर्थङ्करों मे अन्तिम तीर्थङ्कर हैं। इससे जैनों के प्रथम तीर्थङ्कर कितने प्राचीन हो सकते हैं इसका अनुमान किया जा सकता है।

शिक्षा-प्रद आख्यान

जैनों एवं बौद्धों ने भारतीय लोककथाओं से ही अपनी उपकथाएं ली हैं। उन्हीं के द्वारा आचार्यों ने अपने अपने ग्रंथों में धर्म का प्रचार किया। जैनों की कथा-कहानी को अपनाने की दृष्टि बौद्धों की दृष्टि से भिन्न नहीं है। प्राचीन जैन आचार्यों ने भी उपदेश के लिए कहानी का उपयोग कर लिया। यह उपयोग दृष्टान्त प्रणाली के रूप में हुआ। अतः जैनों के साहित्य में अनेक दृष्टान्त कथाएं (Parables) भरी पड़ी हैं।

शिक्षाप्रद आख्यान तीर्थङ्करों की जीवनी में कई मिलते हैं। उसमें भी उपमा, दृष्टान्त एवं संवाद के रूप में कहानियां प्रकट हो चुकी हैं। कभी-कभी किसी तथ्य या सिद्धांत का स्पष्टीकरण करने के लिए कथाएं कही गई हैं। उदाहरण के लिए किसी कथा को कहकर अपने मन्तव्य की पुष्टि करने की वैदिक प्रवृत्ति रही है। उसीका अनुसरण बौद्धों की तरह जैनों ने भी किया है।

---

१. जैन साहित्य में निहित कथाओं के लिए डा० विंटरनित्ज के हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर का द्वितीय भाग (पृ० ४२४-५६५) देखिये।

कुंजी है प्रज्ञा, जिसे जैनों ने भी अपना लिया।[1] ये कथाएं रोचक भी हैं एवं नीति की शिक्षा भी इन के द्वारा मार्मिक ढंग से दी गई है।

प्राणि-संबंधी नीतिकथाएं भी लोककथा-भंडार से जैनों ने ली हैं। बृहत्कल्प-भाष्यवृत्ति में 'घंटीवाला गीदड़' एक सुन्दर नीतिकथा है। जातक की सींहचम्म जातक (१८९) एवं पंचतंत्र की वाचाल-रासभ-कथा[2] से इस जैन कथा की तुलना की जा सकती है। न केवल भारतीय कथाओं में ही, अपितु विदेशी कथाओं में भी इसके समानरूप मिलते हैं। मूलतः भारतीय लोककथा होने के कारण ही देश-विदेश में इस प्रकार के समान रूप मिला करते हैं। इस घन्टी-वाले गीदड़ की जैन कथा इस प्रकार है :

एक बार किसानों के खेत में ईख की काफी फसल हुई। खेत में गीदड़ ईख खा न डाले इसलिए किसानों ने खेत के चारों ओर खाई खुदवा दी। एक दिन उसमें गीदड़ गिर पड़ा तो किसान ने उसे निकलवा कर उसके कान और पूंछ काट ली। उसे व्याघ्र की खाल पहिना कर गले में एक घन्टी बांध दी और छोड़ दिया। छूटते ही गीदड जंगल की ओर भाग गया। रास्ते मे इस अद्‌भुत प्राणी को देख भेड़िये, व्याघ्र और चीते डर गये और वे भागने लगे। आगे रास्ते में एक सिंह बैठा था। उसने सब प्राणियों से भागने का कारण पूछा तो उन्होंने उस भयंकर जानवर की बात कही। इतने में वह घंटी वाला गीदड़ भी वहां से गुजरा। सिंह ने गौर से देखा तो उसने गीदड़ को पहचान लिया। सिंह से क्रुद्ध होकर उसे खूब फटकारा और वहीं दबोच कर मार डाला।[3]

इस जैन कहानी को पढ़ने पर बौद्ध सींह-चम्म जातक (१८९) की कथा की याद आ जाती है। क्योंकि, उक्त जातक में गधे को सिंह की खाल पहना कर छोड़ दिया गया है। उससे गधे को खेत में चरने की सुविधा हो गई। इस युक्ति का जैनों ने उपयोग कर लिया है। गीदड़ पर व्याघ्र की खाल पहिना देने से 'जंगल के सब पशु दूर भाग जाते हैं। किन्तु एक और बौद्ध कथा का कल्पना

---

१. यहां आर. शाम शास्त्री द्वारा सम्पादित कौटिल्य अर्थशास्त्र के द्वितीय संस्करण की संस्कृत भूमिका द्रष्टव्य है, जिस में सम्पादक ने जैन कथाओं को अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों के (५. ५.) सन्दर्भ में उद्‌धृत किया है।

२. प० त० ४. ७

३. बृहत्कल्पभाष्य वृत्ति, पीठिका, पृ० २२१ हिन्दी अनुवाद के लिए देखिए, डा० जगदीशचन्द्र जैन, दो हजार वर्ष पुरानी कहानियां, १९४६, कथा १४ पृ० ६३; पंचतंत्र में घंटीवाला ऊंट भी सिंह द्वारा मारा गया है। देखिए पं० तं० ५, कथा ९ घण्टोष्ट्र कथा।

बंध (motif) घन्टी वाले 'गीदड़ की कथा' में पाया जाता है। वह बौद्ध कथा दद्दभ जातक (३२२) है।[१] जिसमें एक खरगोश वृक्ष का पत्ता गिरने पर उस आवाज से डर कर भागने लगा। उसे भागता देख कर अन्य खरगोश, हिरण, सूअर, साभर, भैंसा, बैल, गेंडा, शेर, सिंह और हाथी भी उसके पीछे डर से भागने लगे। तब रास्ते में सिंह (बोधिसत्व) ने उनसे कारण पूछा। उन्होंने डर का कारण बताया कि पृथ्वी का अन्त होने का क्षण आ चुका है। इसलिए वे भाग रहे हैं। इस पर सिंह ने उनको रहस्य का पता लगाकर कहा कि, वास्तव मे वृक्ष का पत्ता नीचे गिरने से डरपोक खरगोश भाग खड़ा हुआ, और कुछ नहीं। घन्टी वाले गीदड़ की कथा में भी सिंह ने ही डरे हुए सभी पशुओं को निर्भय किया है।

इस प्रकार उपरोक्त एक ही जैन कथा में दो कल्पना-बंध उपयोग में लाये गये हैं। पहला कल्पना बंध है किसी पशु पर सिंह की खाल पहिना देने से लोग और पशु डरते हैं। दूसरा कल्पना-बंद्ध (Motif) है : एक को भागता हुआ देख सभी भागते हैं। निडर एवं प्रज्ञावान् सिंह ने उन्हें निर्भय किया। अतः स्पष्ट है कि, यह कथा बौद्धों की जातककथा से प्रभावित है। जैनों ने इस प्रकार के कल्पना बंधों की लोकप्रियता का पहले ही अनुभव कर लिया होगा। इसीलिए उसका उपयोग स्वतंत्र रूप से उन्होंने भी कर लिया। यह कथा प्राकृत में संस्कृत नीति कथा के समान रूप को प्रस्तुत कर रही है।[२] नीतिकथा की विकास परम्परा में ये समान रूप महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं।

गीदड़ भारतीय नीतिकथा में कई बार आ चुका है। भारतीय लोककथाओं मे चतुरता एवं कपट के लिए वह प्रसिद्ध रहा है। किन्तु कभी-कभी अधिक लोभ करने के कारण भी उसे जान से हाथ धोना पड़ता है। 'आवश्यक चूर्णि' में ऐसे ही लालची गीदड़ की कहानी कही गई है[3]। एक भील ने जंगल में हाथी को मारा, तो हाथी नीचे गिर पड़ा। तब धनुष को वहीं रखकर भील उसके पास दांत और मोती निकालने के लिए पहुँचा। किन्तु हाथी गिरने से एक सर्प घायल हुआ था, उसने भील को काट लिया। इससे वह भी वहीं मर गया। इतने मे एक गीदड़ वहां आया। उसने जब देखा कि, मृत हाथी, भील,

---

१. Vide, Cowell's Jātaka, 1957, III, p. 49-52; Tibetan Tales, XXII-p. 296, The plight of Beasts.

२. भयंकर शब्द सुन कर भागने वाले पशुओं का प्रसंग पंचतंत्र की चण्डरव-शृगाल कथा में देखिए : (पं० तं० १ कथा १०)।

३. आवश्यक चूर्णि, पृ. १६८-९.

जैन कथाएं प्राकृत, संस्कृत एवं अपभ्रंश में लिखे गये ग्रंथों में बिखरी हुई हैं। इनमें धर्मकथाओं को कल्पित-कथा का भी रूप देने का प्रयास किया गया है। सिद्धर्षिकृत 'उपमितिभवप्रपञ्चना कथा' एक बड़ी ध्वनिकथा (allegroy) है। कल्पित कथा का आलोचनात्मक तथा उपहास भरा रूप हरिभद्र सूरिकृत धूर्ताख्यान[1] में पाया जाता है। इन कथाओं में लोक-कथा के अंश एवं जैनों ने दूसरे धर्मों पर की हुई आलोचना की सामग्री प्रस्तुत है।

जैनों की कहानियों का भांडार, कथाकोश-साहित्य में भरा पड़ा है। इनमें अनेक लोककथाएं धर्मकथा, आख्यायिका, नीतिकथा, शिक्षाप्रद कहानियां आदि के रूप में विद्यमान हैं। उदाहरणों एवं दृष्टान्तों के लिए इन छोटी-बड़ी कहानियों की जैनों को आवश्यकता थी। उनका नीति का पाठ देने का कार्य इन कथाओं के माध्यम से होता था। इन्हो कहानियों के अनेक संग्रह कथाकोश, कथारत्नाकर, कथार्णव, कथावलि आदि नाम से प्रसिद्ध हैं[2]।

जैन साहित्य में कथा-कोश-साहित्य पर पंचतंत्र का प्रभाव परिलक्षित होता है। राजशेखर मलधारी कृत 'कथा-संग्रह' में शैली एवं विषय की दृष्टि से पंचतंत्र की समानता देखी जा सकती है। हेमविजय (संवत १६५७) द्वारा लिखित 'कथारत्नाकर'[3] में भर्तृहरि के शतक और पंचतंत्र आदि से अनेक सूक्तियां ली गई हैं। इनमें अनेक कथाएं पंचतंत्र की कहानियों से समानता रखती हैं। पंचतंत्र की-सी लोकोक्तियां भी कथाओं के साथ मिश्रित हैं[4]।

स्वयं पंचतंत्र के जैन संस्करण भी प्राप्त होते हैं। एक संस्करण वह है जिसे उसके सम्पादक श्री कोसेगार्टन् ने Textus simplicier निरूपित किया है श्री हर्टेल एवं श्री एजर्टन के अनुसार इसके लेखक कोई अज्ञात जैन व्यक्ति थे। हर्टेल ने इनका समय ९०० ई० से ११९९ ई० तक का माना है। पंचतंत्र की कुछ कथाओं का इसमें रूपान्तर हो गया है।

---

१. श्रीजिन विजय मुनिजी द्वारा सम्पादित, भा. वि. भ. बं. द्वारा प्रकाशित १९४४.

२. जैन कथाकोश-साहित्य की विस्तारपूर्वक जानकारी के लिए देखिए: डा. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये द्वारा सम्पादित, श्री हरिषेणाचार्य-रचित बृहत्कथा कोश, भारतीय विद्या भवन, बंबई, संवत् १९९९ में संपादक. की 'भूमिका' (Introduction) pp. 39-47.

३. जर्मन में डा. हर्टेल का अनुवाद (Munchen, 1920)

४. History of Indian Literature, Vol. II, P. 545.

पूर्णभद्र का पंचतंत्र

दूसरा जैन संस्करण 'पंचाख्यानक' है।[1] यह जैन मुनि पूर्णभद्र द्वारा ११९९ ई० में रचित पंचतंत्र का दूसरा जैन संस्करण है। श्री एजर्टन का कथन है कि, तंत्राख्यायिक एवं Textus simplicier को सामने रख कर पूर्णभद्र ने 'पंचाख्यानक' की रचना की है। तंत्राख्यायिक एवं Textus Simplicier के लेखकों ने भी मूल तंत्राख्यायिक (Ur Tantrākhyāyikā) तथा Ur-Textus simplicier से अपनी कथाएँ ली हैं।[2]

इस जैन संस्करण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि, जैनों ने पंचतंत्र की कथाओं के लौकिक पक्ष को ठेस नहीं पहुँचने दी। बौद्धों ने लोक कथा को धर्म-कथा का रूप दे डाला था। भले ही अनजाने ही नीतिविषयक तत्व उसमें भी व्यक्त हो गये हों। किन्तु जैनों ने नीति-कथा को अपनी नीति (Policy) के साथ साथ अपना लिया है। उसे जैन धर्मकथा बनाने का आग्रह नहीं दिखाई देता। प्रत्युत नीतिशास्त्र के रूप में ही जैनों ने 'पंचतंत्र' को अपनाया है। इस दृष्टि से जैनों ने लोक-कथा एवं लौकिक प्रज्ञा (Worldly Wisdom) को व्यक्त करने वाली नीतिकथा को अपनाकर अपना लोककथानुराग प्रकट किया है।

तंत्राख्यायिक में संग्रहीत एवं अन्य लोकप्रिय प्राणिकथाओं को जैनों ने अपनाया। क्योंकि, जैन दर्शन के कर्म-सिद्धान्त के अनुसार सभी प्राणियों के प्रति जैनो का व्यवहार समभाव का रहा है। अतः नीतिकथा मे भले ही पशुपक्षियों का कथानक हो। उसे अपने उपदेश के लिए इन्होंने उपयुक्त मान लिया। जैनों ने अपने सिद्धान्तों का उपदेश भी अन्यत्र कथाओं के द्वारा दिया है। किन्तु साथ साथ लौकिक आचार एवं व्यवहार मे कुशलता, चतुरता, प्रज्ञा आदि ऐहिक गुणों का दृष्टान्त प्रस्तुत करने के लिए भी उन्होने नीतिकथा को अपनाया। ऐसी नीतिकथाएँ किसी धर्म सम्प्रदाय से आबद्ध नहीं होतीं। जैनों ने इन कथाओं की ओर ध्यान दिया। 'पंचाख्यानक' इसका साक्षी है। इससे जैनों के मन एवं मस्तिष्क की स्वतंत्रता ज्ञात हो रही है।

---

१. Dr. Winternitz : History of Indian Literature, II, p. 545.

२. The Panch atantra Reconstructed, by Franklin Edgerton Vol. 2., 1924. Chapt. II, pp. 27-39.

वनमाला थी। राजप्रासाद के गोपुर द्वार में एक खोह थी, उस में एक उल्लू रहा करता था। एक दिन वह गंगा किनारे हंसों के पास गया तो वहां एक वृद्ध हंस से उल्लू की मित्रता हो गई। उल्लू ने अपना परिचय दिया 'मैं राजा हूँ।' तब उस हंस ने बड़े प्रेम से उसे मृणाल खंड दिये। एक रात को उल्लू ने हंस को अपने निवास स्थान पर चलने का आग्रह किया। हंस उसके साथ गया। दोनों उस गोपुर द्वार पर आये तब राजा प्रजापाल दिग्विजय के लिए प्रस्थान कर रहा था। तब उल्लू ने हंस से कहा,

'मित्र, क्या इस राजा को मैं रोक दूं?'

आश्चर्य से प्रभावित हो हंस ने 'हां' कहा, तब उल्लू ने राजा को दाहिनी बाजू में जाकर कर्णकर्कश चीत्कार ध्वनि की। राजा अपनी सेना के साथ रुक गया। एक क्षण के बाद उल्लू हंस के साथ राजा की बांई ओर हो गया और उसने मधुर ध्वनि की। तब राजा चल दिया। कुछ समय के बाद उल्लू हंस के साथ राजा की दाहिनी बाजू में होकर चिल्लाया तो राज बिगड़ पड़ा। उसने उस पर बाण छोडा, किन्तु वह हंस को लगा। उल्लू भाग गया। इस प्रकार निर्दोष हंस दुष्ट उल्लू की संगति के कारण व्यर्थ मारा गया। मनुष्य तपस्या, ज्ञान, संयम, दीक्षा आदि से गुणवान होते हुए भी दुर्जन की संगति से स्वयं दोष का भागी बन जाता है। अंत में पद्य है:-

"अकालचर्या विषमैस्तु गोष्ठीं कुमित्रसेवां न कदापि कुर्यात्।
पश्याण्डजं पद्मवने प्रसूतं धनुर्विमुक्तेन हतं शरेण॥[1]

यह कथा जैन संस्कृत नीतिकथा (fable) का एक अच्छा नमूना है। अनुष्टुप् छन्द के २७ पद्यों में कहानी एवं नीतिवाक्य आ गये हैं। उपरोक्त अन्तिम २८ वें पद्य में उपजाति छन्द है। इसमें कथा के साररूप दृष्टान्त का उल्लेख कर नीति-वचन को रखा है।

कहानी मार्मिक है। हंस ने नीच के साथ मित्रता की उसका फल उसे मिल गया। हरिषेण के बृहत्कथाकोश में सब कथाएं एक दूसरी से स्वतंत्र हैं। एक कहानी से दूसरी कहानी पात्रों के संवादों के बीच प्रारंभ नहीं होती। किन्तु किसी एक सिद्धान्त या तथ्य को सिद्ध करने के लिए अनेक कथाएं कहने की प्रणाली को अपनाया गया है। नीतिसार है कि, मनुष्य सोच समझकर किसी के साथ मित्रता करे। अन्यथा दुष्ट की संगति के कारण उसे हानि उठानी पड़ेगी।

मनुष्य की संगति या मित्रता में उपरोक्त सिद्धान्त श्री हरिषेण ने रखा एवं

---

१. वही, पद्य २८, पृ० ५२.

उसके लिए चार कथानक प्रस्तुत किये हैं उनमें धूक संगत हंस कथानकम् (.३२) एक है। ये चार कथानक इस प्रकार हैं :-

१. मृतसंसर्ग नष्ट कथानकम् (३०)
२. कलालमित्र-संगति-शिवभूति कथानकम् (३१)
३. धूक-संगत हंस कथानकम् (३२) और
४. हरिषेण श्री समागम कथानकम् (३३)

हम वैदिक एवं बौद्ध साहित्य में देख चुके हैं कि, एक सिद्धान्त के लिए अनेक कहानियां प्रस्तुत कर उसको पुष्टि करने की प्रणाली प्राचीन है। उसका अनुकरण बृहत्कथाकोश में भी हुआ है। कथा में कथा कहने की प्रणाली भी जैनों ने अपनाई है। कथा-कोश-साहित्य में कहीं कहीं तो कहानी के अन्दर कहानी इस प्रकार गुंथी गई है कि, सावधान पाठक को ही अन्यान्य कथाओं के परस्पर सम्बन्ध का ज्ञान हो सकता है। अन्यथा एक कथा का प्रारम्भ होने पर उपकथा-चक्र के अन्त में पुनः मूलकथा का सूत्र उसके ध्यान में आना कठिन है। 'विवागसुयम्' नामक ग्रंथ में विभाग किये गये हैं। उनमें प्रथम भाग में कुल १० कथाएं रख दी हैं। इस प्रणाली का पंचतंत्र की रचना-प्रणाली से मेल बैठता है। एक तंत्र में अनेक कहानियाँ कह कर उस तंत्र में स्वीकृत किसी सिद्धान्त की पुष्टि की जाती है। जैनों के साहित्य में एक सिद्धान्त एवं अनेक कथाएं, कथा के भीतर अन्तर कथा और ग्रंथ के एक भाग में कुछ कथाओं को कथा-मंजूषा (Emboxment of stories) के रूप में रख देना ये सभी रूप अपनाये गये हैं।

हरिषेण ने बृहत्कथा कोश मे एक सिद्धान्त के लिए अनेक कथाओं को रखा है। किन्तु, एक कथा से दूसरी कथा का प्रारम्भ नहीं होता। कथाएं स्वतन्त्र है। उनका प्रयोजन जैन दर्शन के सिद्धान्त एवं सामान्य लौकिक नीति का प्रतिपादन करना है।

हरिषेण मध्ययुगीन ग्रन्थकार हैं। ये सौराष्ट्र में वधवन के समीप रहने वाले थे। बृहत्कथाकोश की रचना का काल ,१५ अक्टूबर ९३१ से १३ मार्च ९३२ का माना गया है।[१]

'बृहत्कथाकोश' की भाषा जैनों द्वारा अपनाई गई मध्ययुगीन संस्कृत है। जिसका नमूना उपरोक्त पद्य में हम देख चुके हैं।

बौद्ध एवं जैन नीतिकथाओं का तुलनात्मक विवेचन

जैन मुनियों ने भी पूर्वजन्म-कथाएं कह कर उपदेश दिया है। बौद्ध जातक

---

१. देखिए वही, "Harisena, the Author" : "His Place and Date" pp. 117-122.

की तरह जैनों की भी जातक कथाएं है। जैन मुनि ऋषभ की पूर्वजन्म कथाएं (पूर्वभवाः) जातक कथाओं से भिन्न नहीं है।[१] श्वेताम्बरों में मुनि केवली द्वारा कही हुई पूर्वजन्म-कथाओं का स्वरूप यही रहा है।

डॉ. हर्टेल ने उन को तुलना बौद्ध जातक कथाओं से की है और उन्हें बौद्ध कथाओं से श्रेष्ठ माना है।[२] उन का कथन है कि, बौद्ध जातक में कई अर्थहीन कथाएं प्रस्तुत की गई है। बौद्ध भिक्षुओं को बोधिसत्व के लिए लोकप्रिय कहानियों में जान बूझकर परिवर्तन करने पड़े। फलस्वरूप ऐसी कहानियां नीरस बन गई हैं। मूल कथाओं का चमत्कार नष्ट हो गया है एवं इन कथाओं का विकास मनोवैज्ञानिक यथार्थता के ठीक विपरीत हुआ है। बौद्धों ने अर्थशास्त्र की 'नीति'-कथाओं (Niti-tales) को नहीं अपनाया। इस संबंध मे चर्चा करते हुए श्री हर्टेल ने कहा है: पंचतंत्र में अनेक संस्करणों में बौद्धों का पंचतंत्र नहीं मिलता, यह कोई दैवसंयोग की बात नहीं है। वरन, जैन संस्करण पंचाख्यान या पंचाख्यानक ने पुराने नीतिशास्त्र की कथाओं को देश-विदेश में लोकप्रिय बनाया है। जैन पंचतंत्र पास के देशों में भी जनप्रिय हो बैठा।[३]

---

१. Jain Jatakas, Ed. Banarasidas Jain, Lahore, 1925.

२. Dr. Hertel, On the Litereture of the Svetāmbara of Gujarat, Liepzig 1922, pp. 11, 3.6.

३. Dr. Hertel, op. cit. : "Most of these popular tales are ingenious, or funny, or interesting in some other respect, but they are not edifying. Hence the Buddha monks, whose Jātakas must be edifying and must contain a role worthy of the Bodhisatta, are forced to alter the popular stories they use for their purposes, and the lamentable consequence generally is that such a Jātaka becomes a rather dull story, from which all the wit of its original has disappeared, and its development is often contrary to all psychological probability." ...."The Buddha monks take over into their collections of stories a great many of such Niti—tales; but in accordance with their principle, they are compelled to alter the very points, and consequently even the most essential stories themselves. It is not mere chance that amongst the innu-

बौद्धों ने नीतिशास्त्र की उपेक्षा अवश्य की। किन्तु इस से यह निष्कर्ष कदापि नहीं निकाला जा सकता कि बौद्ध जातकों में नीतिशास्त्र का कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। वास्तव में हम देख चुके हैं कि, कुल जातक कथाओं में पात्रों ने अपनी राजनैतिक प्रज्ञा का परिचय भलीभांति दिया है। दीपि-जातक (४२६) उस का स्पष्ट उदाहरण है। बौद्धों ने नीतिशास्त्र के द्वारा प्रभावित पंचतंत्र को क्यों नहीं अपनाया इसे समझने का हमें प्रयास करना चाहिए। बौद्धों ने अपनी कथाएं सीधे मूल पंचतंत्र से ली थीं या नहीं इस का उत्तर निश्चित रूप से देना कठिन है। कुछ विद्वानों ने संभावना प्रकट की है कि, बौद्धों ने मूल पंचतंत्र से, जो आज अप्राप्य है, अपनी कुछ कथाएं ली हैं।[1] बेनफे का मत है कि, पंचतंत्र की उत्पत्ति बौद्ध जातकों से हुई है। किन्तु केवल कुछ कथाओं के समान रूपों को देखकर हम इस निर्णय पर नहीं पहुँच सकते। वास्तव में जातक कोई एक ही काल में लिखी गई कथाओं का संग्रह नहीं है। बौद्धों ने बाद मे भी उसमें कुछ कथाएं जोड़ दी हैं। मूल पंचतंत्र को देख कर कुछ लोकप्रिय नीतिकथाओं को उन्होंने अपने मत की पुष्टि के लिए अपनाया है। किन्तु स्वयं बुद्ध देव ने जातक के लिए लोककथाओं से ही सामग्री चुनी थी।

बुद्धदेव के जीवन-काल में लोककथाओं का प्रभाव जन-मानसपर जितना था उतना नीतिशास्त्र या उन के दृष्टान्तों का नहीं था। बुद्धदेव का प्रयोजन लोगों को अर्थशास्त्र के सिद्धान्त समझाना न था। उन्हें अपने नव-स्थापित धर्म की प्रतिष्ठा करना था। इसीलिए जनप्रिय लोककथाओं को उन्होंने अपनाया था।

नीतिशास्त्र या अर्थशास्त्र के आचार्यों ने भी उसी अक्षय लोककथा भांडार

---

merable recensions of the Panchatantra there is not even one of the Buddha origin, whereas the Jain recensions, called Panchākhyānaka made this old niti work, popular all over India, including Indo-China and Indonesia," etc.

इसके अतिरिक्त श्री हर्टेल द्वारा की हुई मार्मिक चर्चा से कुछ अंश डा० ए० एन० उपाध्ये ने उद्धृत किये हैं, देखिए :

Dr. A. N. Upadhye's edition of Harisena's Brhat-Kathākośa, B. V. B., Introduction, vii—"Orientalists on the Jaina Narrative Literature."

१. S. N. Dasgupta : History of Sanskrit Literature, Calcutta.

से अपनी सामग्री जुटाई थी। तंत्राख्यायिक या मूल पंचतंत्र में जो नीतिशास्त्र की कथाएं समाविष्ट हुई थीं, उन का एवं जातकों का मूलाधार लोककथा साहित्य ही था। बुद्धदेव के बाद मे पंचतंत्र के अन्यान्य संस्करण लोकप्रिय बने। जातकों के उतने संस्करण इसलिए नहीं हो सके कि, जातककथाएं बौद्ध सम्प्रदाय की सीमा के अन्दर रह गई थीं। मूल लोककथा का सार्वभौम रूप जाकर उसने बौद्ध सम्प्रदाय के धर्म-ग्रन्थ का रूप धारण कर लिया था। प्रारम्भ में ही बौद्ध विहारों मे तथा बौद्ध प्रचार के कारण विदेशों में जातक कथाएं बहुत लोकप्रिय अवश्य हुईं। किन्तु जब बौद्ध धर्म का अस्त भारतवर्ष में हो रहा था, तब जातकों का भी महत्व कम होता गया। फलस्वरूप हिन्दू धर्म के उत्थान के बाद बौद्ध धर्मग्रंथ के रूप में ही जातक कथाएं रहीं। किन्तु इस से पंचतंत्र की स्थिति भिन्न थी। पंचतंत्र किसी धर्म-विशेष का पोषक ग्रंथ कभी नहीं रहा। उसका विषय नीति-शास्त्र ही रहा है। इसलिए जैनों ने भी उसे अपना लिया। पंचतंत्र के अन्यान्य संस्करण निकल कर उसकी लोकप्रियता में चार चांद लग गये, तभी जैनों ने उसे अपनाया है। बुद्धदेव के बाद मूल पंचतंत्र के ये संस्करण जनप्रिय हुए। जैनों ने अपनी टीकाओं मे ऐसी कहानियां अपनाईं। अज्ञात जैन कवि का Textus Simplicier या पंचाख्यानक और पूर्णभद्र मुनि का' 'पंचाख्यानक' नामक पंचतंत्र ईसा की ९ वीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी के अन्त तक की रचनाएं हैं। इस से पूर्व बुद्धदेव का ई. पू. ६ ठी. शताब्दि का काल है। दोनों रचना-काल मे बड़ा अन्तर पड़ा है। इसे देखते हुए बौद्धो ने पंचतन्त्र का संस्करण प्रस्तुत न किया हो तो बौद्धों को इस दोष के भागी नहीं ठहराया जा सकता। इस से एक तथ्य और भी स्पष्ट हो जाता है कि, बुद्धदेव के पूर्व मूल पंचतंत्र रहा भी हो तो भी वह उतना लोकप्रिय ग्रंथ नहीं बन पाया होगा, जितना कि वह बुद्धदेव के बाद में हुआ। श्री हर्टेल के अनुसार तो तंत्राख्यायिक का रचना-काल ई० पू० २ री शताब्दि है, जब कि मूल पंचतंत्र की संभावना मात्र की गई है। यदि ऐसा मूल संस्करण तीन सौ वर्ष पूर्व भी रहा होगा तो, ई० पू० ५ वी शताब्दी मे उस का होना असंभव नहीं। क्योंकि, उस समय में तो जातकों मे रूपान्तरित होने के पूर्व लोककथा बहुत लोकप्रिय हो चुकी थी। जैनों ने पंचतंत्र के संस्करण निकाले, तब पंचतंत्र की लोकप्रियता सर्वत्र थी। किन्तु बुद्धदेव के समय में उसकी लोकिप्रियता का कोई प्रमाण नहीं मिलता। इसलिए पंचतंत्र के बौद्ध संस्करण प्राप्त नहीं होते।

प्राचीन लौकिक शास्त्र के अन्तर्गत अर्थशास्त्र एवं नीतिशास्त्र ने अपना विकास कर लिया है। अर्थशास्त्र मे राजाओं के कर्तव्य एवं अन्य सिद्धान्तों

की चर्चा मुख्य हो बैठी और नीतिशास्त्र में लोक-व्यवहार तथा राजनीति में निपुणता की प्राप्ति के लिए उपादेय सिद्धान्तों की चर्चा। अतः भले ही राजनैतिक मामलों से दूर रहने वाले बौद्ध अर्थ-शास्त्रीय सिद्धान्तों में रुचि न रखते हों, फिर भी सामान्य जनता के लिए उपादेय नीतिशास्त्र को तो उन्होंने अपना ही लिया है। जातक की कई गाथाओं में लौकिक आचार-विचारों तथा सदाचार की नीति का उपदेश दिया गया है। यह उपदेश राजा-प्रजा, अमीर-गरीब, स्वामी-दास सभी को उपयुक्त हैं। बुद्ध-कालीन नीतिशास्त्र एवं अर्थशास्त्र का प्रभाव जातक पर अनजाने ही पड़ा है।

हम यह देख चुके हैं कि प्रज्ञावाद का ही वह प्रभाव था जिससे बौद्ध एवं जैन साहित्य समान रूप से प्रभावित रहा। प्रज्ञावाद वैदिक साहित्य की देन है जिससे किसी भी सम्प्रदाय के अनुगामी प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाये। जिस किसी तथ्य या तत्व का लौकिक जीवन से सीधा सम्बन्ध रहता है, उसे अनजाने ही सब लोग अपना लेते हैं। क्योंकि वह परम्परा से प्राप्त लौकिक तत्व है जो कि किसी भी उपदेष्टा या निवेदक के लिए उपादेय प्रतीत होता है। जैनों ने इस प्रज्ञा का लौकिक रूप बिगाड़ा नहीं यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। धार्मिक प्रचार की अपेक्षा उनमें उत्तम शिक्षा देने का ही उद्देश्य अधिक तीव्र था।

जैनों की नीतिकथाएँ श्रेष्ट इसलिए हैं कि, ९ वीं शताब्दि तक उन्हें पंचतंत्र, तंत्राख्यायिक जैसे संस्करणों से परिष्कृत नीतिकथाएं प्राप्त हो चुकी थी। उन परिष्कृत नीतिकथाओं को लेकर ग्रंथ-रचना कर देने से जैनों की कथाएं श्रेष्ठ सिद्ध हुई। बौद्धों ने अपने समय में लोककथा को परिष्कृत रूप देने की अपेक्षा उसे साहित्यिक स्थिरता प्रदान करने का महान् कार्य किया है। कालभेद को ध्यान में रखकर ही दोनों के कार्य का मूल्य आँकना चाहिए।

नीतिकथा का जातकीकरण जैनों ने किया। किन्तु वह उनकी मौलिक कल्पना नहीं है। बौद्धों की जातक कथाओं का ही यह परिणाम है। यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि, जैन कथा-साहित्य भी काफी प्राचीन है। जैनों ने भी लोककथाओं को अपनाया है। किन्तु जहां तक नीतिकथा का जातकीकरण करने का प्रश्न है, उसे हम बौद्ध प्रभाव का परिणाम ही मानेंगे। क्योंकि, ये पूर्वजन्म-कथाएं जैन मुनि ऋषभ एवं केवली के द्वारा कही गई हैं। इससे स्पष्ट है कि, बुद्धदेव के बाद की ही ये जैन जातक कथाएं हैं। कर्म सिद्धान्त एवं पुनर्जन्म पर विश्वास के दोनों तत्व बौद्ध एवं जैन धर्मों में समान रूप से माने गये हैं। इन सिद्धान्तों के अनुसार पूर्वजन्म की कथाओं को दोनों ने अपना लिया।

श्री हर्टेल के अनुसार जैन जातककथा में वर्तमान कथा को महत्व अधिक है। जैनों ने बौद्धों से कहीं अधिक अप्रत्यक्ष प्रणाली का प्रयोग किया है। जिन-देव भविष्य में किसी कहानी के पात्र नहीं होते।

जैन कथाएं अपने आप में स्वतंत्र है। तत्कालीन समाज की गति-विधियां एवं आचार उनमे प्रतिबिम्बित हुए हैं। मुनि केवली ने जो कथाएं कही है उनमें मनुष्य के सत् एवं असत् दोनों पक्षों का दर्शन पाठक को होता है। मूल लोककथा में भी ये दोनों पक्ष विद्यमान थे। केवलों ने उन्हें ज्यों के त्यों रूप में अपना लिया हैं। जैन कथा मे लोककथा का सच्चा रूप उतर पड़ा है इसका कारण यह है कि, जैनों के कर्म सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य की जैसी करनी होगी वैसा फल वह भोगेगा। मनुष्य बुरे कर्म करेगा तो उसे यातनाओं को भोगना पड़ेगा। अच्छे कर्म करने पर सुख मिलेगा। इस सिद्धान्त के कारण लोककथा में अच्छे और बुरे पात्रों के जो कर्म थे, उन्हें केवली आदि जैन मुनियों ने अविकल रूप में ले लिया। जीवन के दो पक्ष सत् एवं असत् हैं, ये दोनों पक्ष लोककथा में प्रति-बिम्ति होते हैं। जैनो ने यही उनका स्वाभाविक रूप अपनी नीति-कथाओं में लाकर छोड़ा है। जैन कथा में जीवन के ठेठ दोनों पक्ष प्रतिबिम्बित हो उठे हैं। अत: वह बौद्ध जातक कथा की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक है। लोक-साहित्य का दर्शन बौद्ध ग्रंथों की अपेक्षा जैन कथाओं में अधिक होता है।[1] इस तथ्य को हमे सीमित रूप में ही मानना पड़ेगा। जहाँ तक पात्रों के चरित्र चित्रण का प्रश्न है, इस तथ्य को स्वीकार कर लेंगे।

इधर कुछ जैन विद्यानुरागियों ने भी जैन कथा साहित्य पर अपने विचार प्रकट किये हैं। कुछ लेखों में तो जैन कथाओं की विदेशयात्रा की भी चर्चा की गई है।[2] फिर भी जैन कथाओं के विदेश-गमन के विषय में उनका

---

१. Dr. Hertel, op. cit:-

"The consiquence of this fact is that no story telling Jain monk is obliged to alter any story handed down to him, and that from this reason, Jain stories are much more reliable sources of folklore than the stories handed down in the books of the Buddhas. See Dr. Upadhye's edition of Brhat Katha Kosha, p. 116.

(१) डा. जगदीशचन्द्र जैन, दो हजार वर्ष पुरानी कहानियां, (काशी ज्ञानपीठ, काशी द्वारा प्रकाशित) की भूमिका, लेख : 'जैन साहित्य और कहानी', वर्णी अभिनंदन ग्रथ, सागर १६४६; ब्र. प. चंदाबाई अभिनन्दन ग्रंथ मे

विवेचन प्रामाणिक नहीं हो सका है। प्रत्युत ऐसे विवेचन में जैन कथाओं की अपेक्षा जातक कथाओं एवं पंचतंत्र की कथाओं के विदेश-गमन की ही उन लेखों से पुष्टि की गई दिखाई देती है। वास्तव में जैन कथा भारत के बाहर 'जैन साहित्य' के रूप में प्राचीन काल में नहीं गई थी। जिस लोककथा के अक्षम भंडार से सभी आचार्यों ने कहानियों को अपनाया था उन्हीं का ग्रहण जैनों ने भी किया था। फलतः भारतीय लोक-कथा का विदेशगमन होने के कारण ही विदेशों में पाई जाने वाली कथाओं में जैन कथाओं की समानता दिखाई देती है। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि, बुद्धकाल में जिसप्रकार जातक-कथाएं तथा मध्य युग में पंचतंत्र के अनुवाद के रूप में अन्य नीतिकथाएं यूरोप में प्रवेश कर गई थीं, उसी प्रकार जैन कथाएं भी विदेश गई थी। जैनकथाओं का प्राचीन काल में विदेश-गमन प्रमाण-सिद्ध नहीं है। वास्तव में जिस भारतीय कथासञ्चय से सम्राट अशोक के पूर्व ही भारतीय नीतिकथा का विदेश में निर्गमन हुआ, वह किसी सम्प्रदाय-विशेष की वस्तु नहीं थी। वह जनसम्पत्ति थी और इसी लिए देश की सीमा लांघ कर विदेश में जा सकी।

प्राचीन भारतीय लोककथाओं का विदेश में निर्गमन हुआ और उन्हीं का संग्रह अन्यान्य देशी कथाग्रंथों में भी हुआ। इसी लिए जातक (निग्रोध मिग जातक), पंचतंत्र (१ ८.), कथा सरित्सागर (५.३११), शुक्र सप्तति (३१) तथा व्यवहारभाष्यवृत्ति[1] में एक ही कहानी मिलती है जिसमें छोटे से खरगोश ने अपनी युक्ति से सिंह को भी मृत्यु के घाट उतार दिया और सब प्राणियों का भय दूर किया। इसी प्रकार की कहानी मलाया के जंगलवासियों में भी प्रचलित है।[2] अतः स्पष्ट है कि सर्वत्र पाई जाने वाली लोककथा का सम्प्रसारण (diffusion) परिस्थिति के अनुसार होता रहता है। ऐसी कहानियों को ही अन्य लोगों की तरह जैनियों ने अपनाया है।

भगवान् महावीर के विषय की कुछ कहानियाँ अत्यन्त प्राचीन अवश्य है।

प्रकाशित दो लेख: (१) श्री, बच्चा, 'जैन धर्म और नैतिक कहानियां,' (पृ० ४६७), एवं (२) श्रीमती मोहनी शर्मा, "जैन लोककथा-साहित्य", (पृ० ४२३) इस लेख में लेखिका ने श्री हर्टेल द्वारा लिखित लेख का ही पुनः हिन्दी में अवतरण मात्र कर दिया है।

१. उद्देश ३, पृ० ७ (अ), हिन्दी अनुवाद, डा. जैन, दो हजार वर्ष पुरानी कहानियां, पृ० ४६.

२. W. Skeat, Fables and Folk-tales, Cambridge, 1901. Story No. 12. p. 28.

जैन सम्प्रदाय में इन कथाओं की कमी न रही होगी, किन्तु पंचतंत्र में पाई जाने वाली पशु-पक्षी-सम्बन्धी नीतिकथाएँ जैन ग्रंथों में जहाँ जहाँ पाई जाती है, वहाँ वे प्राचीन काल से ही जैन समाज में प्रचलित रही थी इसका प्रमाण नहीं मिलता। बहुत कुछ सम्भव तो यही है कि, पंचतंत्र की परम्परा से प्रभावित होकर ही जैन नीतिकथाओं की सृष्टि की गई है। जातकों को देखकर भी जैनियों ने अपने प्राचीन कथा-साहित्य में इन नीतिकथाओं को जोड़ दिया था। इसीलिए उनके समान रूप हमें सर्वत्र मिलते हैं। हम यह कई बार स्पष्ट कर चुके है कि, ये कहानियां किसी एक सम्प्रदाय या जमात की बपौती नहीं थीं। वह समूचे लोक-समाज की सार्वभौम सम्पत्ति (Common Property) थी। जैन कथाओं से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। श्री हर्टेल का यह कथन युक्तिसंगत है कि, जैनों ने लोककथाओं को सही लौकिक अर्थ में अपनाया है। उन्हें अधिक तोड़ मोड़ कर विकृत बनाने की चेष्टा उन्होंने नहीं की। लोककथा में निहित चमत्कार को आंच न आने पाई। संस्कृत नीतिकथा पर बौद्धों की कथाओं का अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ा है तो जैनों ने स्वयं संस्कृत नीतिकथा की रचना भी की है। बौद्धों में आर्यशूर ने संस्कृत में नीतिकथा को रचना अवश्य की है, किन्तु वहां उनकी काव्यशैली की रचना में लोककथा की मौलिकता का अन्त हो चुका है। इस प्रकार की बात जैनों की कथाओं में नहीं आने पाई यही सबसे बड़ी विशेषता जैन नीतिकथाओं की रही है। इससे संस्कृत नीतिकथा को आगे बढ़ने में बल मिला है।

जैनों ने न केवल लोककथाओं को ही अपनाया, अपितु कुछ मौलिक कथाओं की भी सृष्टि की है। कहानी को साहित्यिक शैली का चोला पहनाने का कार्य भी जैन कवियों ने किया है।

'यशस्तिलक' में सोमदेव ने साहित्यिक शैली में नैतिक कहानियां प्रस्तुत की है। जैन साहित्य में शिक्षाप्रद आख्यान एवं नीतिकथाएं रोचक ढंग से कही गई है। इतना अवश्य है, कि, बौद्धों की जातक कथाओं में भारतीय प्राचीन नीतिकथा का दर्शन हमें होता है तो जैन संस्कृत नीतिकथाओं का मध्य-युगीन रूप हमारे सामने आता है। अतः स्पष्ट है कि संस्कृत नीतिकथा के विकास में दोनों सम्प्रदाय पोषक ही सिद्ध हुए है।

———

६ महाभारत में नीतिकथा

महाभारत भारतीय कथाओं के इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण ग्रंथ है। महाभारत न केवल इतिहास, धर्मशास्त्र, या पुराण है, अपितु प्राचीन भारतीय कथाओं का भी वह विशाल संकलन है। वैदिक दैवतकथाओं एवं पुरातन कथाओं का विकास महाभारत में हो गया है। महाभारत का कथा-साहित्य इतने विविध अंगों से भरा है कि, प्राचीन भारत की संस्कृति एवं सभ्यता का इतिहास उससे ज्ञात हो सकता है। कई 'आख्यानविद्' लोगों का योगदान महाभारत में हुआ है।

इन कथाओं में नैतिक तत्व काफी विकसित होकर महाभारत में स्थिर हुए हैं। *शिक्षाप्रद आख्यानों का संग्रह इस विशाल ग्रंथ में होता गया।* समाज में जो जो आख्यान शिक्षाप्रद एवं रोचक थे, उनका संग्रह होने लगा। प्रसंग एवं विषय देखकर आख्यानों में वृद्धि की गई। फलस्वरूप महाभारत न केवल एक पुराण रहा, अपितु भारतीय पुरातन कथाओं का ज्ञानकोष बन गया।[१] इसीलिए हमें महाभारत के आख्यान, उपाख्यान, वृत्तान्त, सम्वाद आदि अंगों में कई प्रकार की कहानियां बिखरी हुई मिलती हैं। उनसे उस समय की सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियां प्रतिबिम्बित हो उठी हैं। इसीलिए तो उनका महत्व अत्यधिक है।

इस विशाल कथा-साहित्य में नीतिथाएं (Fable) भी मिलती हैं। संस्कृत नीतिकथा के विकास-परम्परा की ये कड़ियां हैं। संस्कृत नीतिकथाओं में अनेक मोड़ परिलक्षित हुए हैं। वैदिक साहित्य में उसका आभास मिल चुका है। जातक एवं पंचतंत्र मे नीतिकथा ने स्थिरता प्राप्त कर ली थी। तंत्राख्यायिक या उससे भी प्राचीन मूल पंचतंत्र के रूप में प्राचीनतम नीतिकथाओं का संग्रह हो चुका था। महाभारत के पूर्व ही जातक एवं पंचतंत्र में लोककथा नीतिकथा

---

१. Cassall's Encyclopaedia of Literature, vol. 1, pt. 1, p. 361 :—" So much overlaid with didactic matter that it is an encyclopaedia of Inbian legendary lore rather than an epic."

का रूप धारण कर चुकी थी। महाभारत की नीतिकथाएं पंचतंत्र एवं जातक की कथाओं से मेल खाती है। भारतवर्ष में एक ऐसा समय आ चुका है जिसमें नीतिकथाएं लोकप्रियता के शिखर पहुंच गई थी। उसी समय महाभारत में भी उनका ग्रहण हो गया।

महाभारत एक आर्ष महाकाव्य (Archaic Epic) है। वैदिक संहिताओं की दैवतकथाएं एवं अन्य पुराणों में विकास कर चुकी हैं। स्वयं महाभारत में शौनक द्वारा इस बात की पुष्टि की गई है :

पुराणमखिलं तात पिता तेऽधीतवान् पुरा।
कच्चित्त्वमपि तत्सर्वमधीषे लोमहर्षणे॥
पुराणे हि कथा दिव्या आदिवंशाश्च धीमताम्।
कथ्यन्ते ये पुरास्माभिः श्रुताः पूर्वं पितुस्तव॥[1]

ये 'दिव्य कथाएं' और 'आदिवंश' वैदिक दैवतकथाओं एवं पुरातन कथाओं से भिन्न नहीं है। इससे स्पष्ट है कि, ऋग्वेद के समय से लगाकर महाभारत के समय तक किस प्रकार वैदिक आख्यानों की परम्परा अक्षुण्ण रूप मे चल रही थी। यह परम्परा मौखिक रूप में थी। वृहत् स्वरूप की इसी परम्परा से ऋग्वेद से महाभारत तक के साहित्य में कथाएं और उपकथाएं ली गई हैं। कुछ आख्यान इतने लम्बे एवं प्रभावकारी हो गये कि, उन्होंने पुराणों एवं महाकाव्यों का रूप धारण कर लिया और कुछेक छोटे आख्यान प्रबंध काव्य के अंग बनकर रह गये। कुछ तो ऐसी भी लघुकाय कथाएं ली गई जो जनमानस पर अपना अधिकार प्रस्थापित कर चुकी थीं। ऐसी कहानियां लोककथा के अक्षय भंडार से समय समय पर ग्रहण की गई है। महाभारत में इन सभी छोटी बड़ी कहानियों का यथोचित सन्निवेश हो चुका है। वैदिक परम्परा से प्राप्त कथाओं का बड़े अच्छे ढंग से उपयोग कर लिया गया है। ऋग्वेद की सरमा का वृत्तान्त, गरुड के द्वारा अमृत लाया जाना, उसे सुपर्ण संज्ञा की प्राप्ति होना आदि कई वृत्तान्त वैदिक परम्परा का विकास प्रस्तुत करती हैं।[2] महाभारत ने उन वैदिक वृत्तान्तों का विकसित रूप हमारे सामने रख छोड़ा है। महाभारत के पूर्व एक ग्रन्थ के रूप में वैदिक कथाओं का इतना विशाल संकलन नहीं हुआ था।

महाभारत में लोक साहित्य

महाभारत जीवित लोककथाओं का संग्रह है। उसके संग्राहक थे वे सूत और

---

१. म. भा. आदिपर्व, पौलोम पर्व, अध्याय ४, १-२. (भांडारकर इंस्टिट्यूट में श्री सुकथनकर द्वारा संशोधित आदि पर्व, पृ० ९४-९५.)

२. आदिपर्व, अध्याय ३२, ३३.

अन्य ऋषिवर्ग जिन्हें ऐतरेय ब्राह्मण में आख्यानविद् कहा गया है ।[1] महर्षि व्यास एवं तत्समान अन्य अधिकारी व्यक्तियों ने सूतों द्वारा संकलित सामग्री को साहित्यिक रूप दे दिया हैं । पुराने आख्यानों, गाथाओं एवं प्रशस्तियों का संकलन करनेवाले घराने प्राचीन भारत में विद्यमान थे । इनमें सूत प्रमुख थे । इनके मौखिक साहित्य को महाभारत के संकलनकर्ता एवं संवर्द्धकों ने स्थायी रूप दिया है । अतएव महाभारत में वैदिक दैवतकथाओं के साथ साथ कई लौकिक कथाएं भी मिलती है । दैवतकथाओं के साथ साथ पुरातन कथाओं एवं लोककथाओं का भी समादर महाभारत में हुआ है ।

महाभारत में लोक-साहित्य की प्राणि-सम्बन्धी घटनाएं (incidents) और विश्वास (beliefs) कई स्थलों पर प्रकट हुए हैं । किसी पशु या पक्षी की विशेषता को देखकर उसकी कारण-कथा गढ़ने में प्राचीन लोक-समाज की प्रवृत्ति रही है । जैसे कौवे काले क्यों होते हैं इस बात को लेकर कहानी कही जाती हैं । महाभारत में सापों की दो जिव्हाएं क्यों होती है इसकी कारण-कथा कही हैं ।[2]

प्राचीन लोककथा का ही यह प्रभाव है कि, महाभारत में सर्प-कथा सर्वत्र पाई जाती है । जनमेजय के सर्प-यज्ञ की कथा के रूपान्तर विदेशी कथाओं में भी देखे गये हैं ।[3] या तो प्राचीनतम भारत-यूरोपीय आर्य समाज में प्रचलित सर्प-कथा का यह रूप होगा या सर्पों की पीड़ा से ऊब कर उनसे छुटकारा पाने का प्राचीन काल में मनुष्य ने जो प्रयास किया था, उसी का सर्वत्र पाया जाने वाला यह रूप हो । देश-विदेश में सर्वत्र सर्प-भय से मुक्ति पाने का प्रयास हुआ अवश्य होगा । उसी के परिणाम-स्वरूप सर्प-कथा बन पड़ी जिसका महाभारत की जनमेजय की सर्पयज्ञ-कथा में रूपान्तर हो गया है ।

पश्चिम के विद्वानों ने ऋग्वेद के संवादों को 'आख्यान-सूक्त' निरूपित किया है और उसे गद्य-पद्य मिश्रित रचना का शेष बचा हुआ पद्यांश मान लिया है ।[4]

---

१. ऐ. ब्रा. पंचिका ३, अ. १३, ख. १:—
"तदेतत् सोपर्णमित्याख्यानविद आचक्षते, इति ।"

२. म. भा. आदिपर्व, आस्तिक पर्व, अध्याय ३४.

३. Vide Dr. Winternitz's article, Eng. transl. by Utgikar in Journal of Bombay Branch Royal Asiatic Society, II, pp. 115–134.

४. Oldenburgh, "Das altindische Ākhyāna", ZDMG, 37 (1883) p. 54 ff. "Ākhyāna hymnen in Rgveda", ZDMG, 39 (1885), p. 52 ff; Die Literature des alten Indian", p. 46.

ये सूक्त महाभारत एवं अन्य पुराणों के मूलाधार है। यद्यपि इन आख्यान-सूक्तों को श्री मेक्समुलर, लेन्ही, हर्टल, श्रोड़र आदि विद्वानों ने नाटकीय संवाद निरूपित किया है[१] फिर भी इस विवाद से एक तथ्य अबाधित हो रहा है। वह यह कि, ऋग्वेद के समय में गाथा, नाराशंसी, आख्यान, लोक-कथाएं आदि कई प्रकार के अंगों से मौखिक साहित्य भरा पड़ा था। उस समय के आख्यानों, पुरातन कथाओं और दैवतकथाओं का बहुत कम अंश ऋग्वेद में सुरक्षित है। अथर्ववेद में पुराण साहित्य का उल्लेख है। छांदोग्योपनिषद् में भी पुराण एवं इतिहास का स्पष्ट उल्लेख है।[२] एक ओर तो गाथा-नाराशंसी और दूसरी ओर इतिहास पुराणात्मक साहित्य ऋग्वेद के समय से ही चला आ रहा था। ब्राह्मण-काल में यज्ञ-विषयक आख्यायिकाओं का, उपनिषत्-काल में ब्रह्म-विद्या का, बौद्ध युग में शिक्षाप्रद आख्यानों का तथा सूत्र काल में स्मृतियों, पौराणिक आख्यानों, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र एवं नीतिशास्त्र का विकास हो गया था। इन सभी तत्वों का कालानुक्रम से महाभारत में संग्रह होता गया। फलस्वरूप महाभारत एक भारतीय सभ्यता एवं लोक-साहित्य का ज्ञानकोष हो गया है। वैदिक नाराशंसी के अन्तर्गत दानस्तुति, प्रशंसात्मक काव्य और वीरचरितों का समावेश होता था। सूतों ने इसकी वृद्धि की। इसी इतिहास का पुराणात्मक रूप महाभारत में प्रकट हुआ है। इसीलिए महाभारत में ही उसे इतिहास-पुराण, काव्य और आख्यान भी निरूपित किया गया है।[३]

इससे स्पष्ट है कि, इतिहास-पुराण की परम्परा प्राचीन है। इसका स्वरूप लोकसाहित्य से भिन्न न था। वैदिक युग में लोकसाहित्य उपेक्षित था, किन्तु अब महाभारत-जैसे बृहत्काय संग्रह में उसे स्थान मिलता गया।

नीतिशास्त्र का प्रभाव

महाभारत के समय में लौकिक अर्थ या वस्तु की ओर भी ध्यान दिया गया है। ऐहिक जीवन में सफल होने की कुंजी नीतिशास्त्र एवं अर्थशास्त्र के आचार्यों

---

१. Levi, Le Theater Indien, p. 301; Hertel, Indische Marchen pp. 344, 367 f. L. von Schroder, Myisterium and mimus in Rgveda, Leipzig, 1908.

२. अथर्ववेद, ११.७.२४ :—

"ऋचः सामानि छंदांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवादिविश्रितः॥"

३. म० भा० ७.१२.२३.

ने समाज को देना प्रारम्भ कर दिया था। नीतिशास्त्र एवं अर्थशास्त्र का प्रभाव महाभारत पर काफी पड़ा है। उसी का यह परिणाम था कि, महाभारत में जहां राजधर्म का उपदेश दिये जाने का प्रसंग आया वहां नीतिकथा का भी उपयोग कर लिया गया है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ जीवन के लक्ष्य बन चुके थे। इसी से धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र एवं मोक्षशास्त्र का ग्रहण महाभारत में हो गया। उसमें अर्थशास्त्र का प्रभाव भी कम न था। अर्थशास्त्र को ही वार्ताशास्त्र कहा गया है। नीतिशास्त्र में राजनीति एवं व्यवहार-नीति आ जाती है। मोक्ष शास्त्र को 'आन्वीक्षिकी' संज्ञा दी गई है।

महाभारत में कणिक, विदुर तथा भीष्म ने राजनीति का उपदेश दिया है। धृतराष्ट्र एवं युधिष्ठिर उस उपदेश को ग्रहण करते हैं। ये सब राजा लोग आचार्यों से उपदेश देने की प्रार्थना करते हैं। आचार्यों ने बड़े अच्छे ढंग से उन्हें दृष्टान्त देकर राजनीति का पाठ दिया है। ऐसे प्रसंग में राजनीति एवं व्यवहार नीति (Political and worldly wisdom) का विवेचन बड़ा अनूठा हो उठा है।

महाभारत-कालीन नीतिशास्त्र की परम्परा इस प्रकार रही है : यह सर्वश्रेष्ठ शास्त्र निर्माण कर भगवान् ब्रह्मदेव ने इंद्रप्रभृति देवों को कहा, "जनता के कल्याण और धर्मादि त्रिवर्ग की स्थापना के लिए मैंने अपनी बुद्धि से सरस्वती का नवनीत रूप नीतिशास्त्र ज्ञान निर्माण किया है।" इस शास्त्र से दण्ड किया जाता है, अतः दण्डनीति नाम से विख्यात होकर वह त्रिभुवन में व्याप्त होगा। इसमें षाड्गुण्य इस प्रकार है, १. संधि, २. यान, ३. परिगृह्यासन, ४. द्वैधीभाव, ५. अन्य नृपाश्रय और ६. विगृह्यासन। धर्म, अर्थ और काम इस दण्डनीति मे आ जाते हैं। प्रथम इसका भगवान् शंकर ने ग्रहण किया। भगवान् शंकर के नीतिशास्त्र को "वैशालाक्ष" कहा जाता है। भगवान् का यह नीतिशास्त्र १० हजार अध्यायों में वर्णित है। शंकरोक्त शास्त्र का संक्षेप इन्द्र ने ५ हजार अध्यायों में किया। इस शास्त्र को "बहुदन्तक" कहते हैं। बृहस्पति ने ३ हजार अध्यायों में उसका संक्षेप किया, उसे "बार्हस्पत्य शास्त्र" कहते हैं। शुक्र ने एक हजार अध्याय में उसका भी संक्षेप कर दिया है। ऋषियों ने लोगों की आयु कम होती हुई देख यह संक्षेप किया है।

नीतिशास्त्र के आचार्यो ने अपने नीतिशास्त्र को भी ब्रह्मदेव से उद्भूत मान लिया है। हमारे वेदों का आविष्कार ब्रह्मदेव से हुआ माना गया है। अन्य शास्त्र भी ब्रह्मदेव, शंकर आदि देवताओं से निकले हुए मान लेने की प्रवृत्ति शास्त्रकारों की रही है। आज के तर्कप्रधान वातावरण में हम इसे सही अर्थ में नहीं मान सकते। फिर भी इससे एक तथ्य अवश्य निकलता है। वह यह

कि, नीतिशास्त्र एक अत्यंत प्राचीन शास्त्र है। महाभारत के समय में ही उसकी उत्पत्ति ब्रह्मदेव से मानी जाती थी। महाभारत में कई जगह पर 'पुराने इतिहास' या 'दृष्टान्त' का उल्लेख है। शान्तिपर्व में एक श्वान-दृष्टान्त कहा गया है।[१] उसके प्रारम्भ में ही भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा है: 'इस विषय में सज्जन लोग संसार में किस प्रकार का आचरण करते हैं इसे दिखाने के लिए दृष्टान्त नामक पुराना इतिहास कहा जाता है। इसी कथा की तरह दूसरी एक और कथा मैंने तपोवन में सुनी थी। यह कथा ऋषियों ने जमदग्नि के पुत्र राम को कही थी।'

भीष्म के इस कथन से निम्न प्रकार के महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकट होते हैं:

(१) दृष्टान्त-प्रणाली महाभारत काल में ही प्राचीन हो चुकी थी।

(२) तपोवन में इस प्रकार की नीतिकथाएं कही सुनी जातीं थीं।

(३) प्राणिकथा ने नीतिकथा का रूप महाभारत के पूर्व ही धारण कर लिया था।

(४) वैदिक परम्परा में भी नीतिकथा का प्रचलन था। बौद्धों ने भी उसे अपनाया हो, किन्तु वह किसी सम्प्रदाय-विशेष की वस्तु नहीं थी।

(५) इन दृष्टान्तों की परम्परा की प्राचीनता सिद्ध हो जाने पर नीतिशास्त्र की भी प्राचीनता सिद्ध हो जाती है। क्योंकि, ये दृष्टान्त प्राचीन नीतिशास्त्र के अंग बन कर ही प्रथम साहित्य एवं सभ्य समाज में सम्मानित हुए थे।

भारतीय नीतिशास्त्र महाभारत से प्राचीन है। छान्दोग्योपनिषद् में अन्य विद्याओं के साथ 'एकायन' का भी उल्लेख है। 'एकायन' का अर्थ श्री शंकराचार्य ने अपने भाष्य में 'एकायनं नीतिशास्त्रम्' किया है।[२] महाभारत में भी 'एकायन' शब्द का प्रयोग हुआ है।[3] अर्जुन मिश्र ने उसका अर्थ 'युद्ध विषयम्' दिया है।

---

१. शान्ति पर्व, अध्याय ११६.

२. छान्दोग्योपनिषत् अ०. ७. खं० १. २:–

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पंचमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षात्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद् भगवोऽध्येमि ॥ २ ॥
(आनंदाश्रम संस्कृत सेरीज, १८६० पृ० ३६४.)

१. म. भा. (BORI.) कर्णपर्व, १६५४, पी. एल. वैद्य, ८. २६. ३१:

"श्वभ्रे ते पतता चक्रमिति मे ब्राह्मणोऽब्रवत्।
युद्धयमानस्य संग्रामे प्राप्तस्यैकायने कथम्॥"

vide, critical notes, 29 p. 686.

चतुर्भुज का भाष्य है: 'अप्रतिकार्य:' (Inevitable)। किन्तु महाभारत के पूर्व ही छान्दोग्य में अन्य विद्याओं के साथ 'एकायन' शब्द का प्रयोग हो चुका है। इससे स्पष्ट है कि, एकायन कोई 'विद्या' अवश्य है और वह विद्या नीतिशास्त्र से भिन्न नहीं है। एकायनं का अर्थ राजनीति है। अतः शंकराचार्य ने भाष्य में लिया हुआ अर्थ ही समीचीन जान पड़ता है। महाभारत में जिस प्रसंग पर 'एकायन' शब्द का प्रयोग हुआ, वह नीतिशास्त्र के अर्थ को दृढता-पूर्वक व्यक्त नहीं कर रहा है। फिर भी 'युद्ध विषय' के साथ एकायनं का संबंध अर्जुन मिश्र ने स्पष्ट कर दिया है। युद्ध-विषय राजनीति का ही एक अंग है। महाभारत मे ही युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा है कि शत्रुओं से घेर लिये जाने पर बुद्धिमान राजा को क्या करना चाहिए। तब भीष्म ने राजधर्म का उपदेश देते हुए उसे चूहे की कहानी कही है जिसने अपनी जान मार्जार, नकुल एवं उल्लू से युक्ति से बचा ली।[1] इससे स्पष्ट है कि, युद्ध-विषयक कर्तव्याकर्तव्य का उपदेश राजधर्म का अंग था। अतः महाभारत में जो एकायन शब्द का प्रयोग हुआ है वह उस समय युद्ध विषयक अर्थ में सीमित हो गया। किन्तु छान्दोग्य में 'एकायन' के उल्लेख से इतना तथ्य अवश्य स्पष्ट है कि, उपनिषत् काल में ही नीतिशास्त्र अन्य विद्याओं के समान प्रचलित हो चुकी थी। उसके पूर्ववर्ती संहिता-साहित्य एवं ब्राह्मणों की कुछ आख्यायिकाओं में राजनीति-विषयक चतुरता को देखने पर इस बात की पुष्टि हो जाती है कि, वैदिक समय मे भी राजनीति-शास्त्र बन चुका था। महाभारत में राजधर्म के रूप में उसी परम्परा का निर्वाह किया गया है। उत्तर वैदिक काल में जिसे 'एकायनं' कहा जाता था उसी का व्यवहार बाद में नीतिशात्र, अर्थशास्त्र, राजधर्म-शास्त्र आदि शब्दो से होने लगा। महाभारत के शान्तिपर्व में प्राचीन भारतीय नीतिशास्त्र का रूप स्पष्ट हो जाता है। महाभारत कालीन दण्डनीति तथा प्रजा शासन शास्त्र के नियम हमें भली भांति ज्ञात होते हैं। मनुष्य का इतिकर्तव्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हैं। राज्य के छह अंग होते हैं। शत्रु से साम, दान, दण्ड, भेद तथा उपदेश से व्यवहार करना श्रेयस्कर है। पञ्चवर्ग में अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, बल तथा कोश आते हैं। इनके अतिरिक्त रथ आदि सैन्याङ्गों, उपायों, शत्रु, मित्र एवं उदासीन लोगों, व्यूहों तथा युद्ध-विद्याओं का वर्णन मिलता है। राजा किस प्रकार आचारण करे और अपना राज्य सुरक्षित रखे, इस विषय मे बड़ा विचार किया गया है। उद्योग पर्व में विदुर नीति प्रसिद्ध है। इसमें विदुर ने धृतराष्ट्र को राजधर्म का उपदेश किया है।[2]

---

१. शान्तिपर्व, आपद्धधर्म, अध्याय १३८ 'मार्जार मूषक सम्वाद'।
२. उ० प०, प्रजागरपर्व, अ० ३३-४०।

महाभारत के समय में इस नीतिशास्त्र का प्रभाव काफी बढ़ गया था। इसलिए उसे महाभारत में स्थान मिल गया। कणिक, विदुर और भीष्म के द्वारा दिए हुए उपदेश में उस नीतिशास्त्र की सामग्री का उपयोग कर लिया गया है। नीतिशास्त्र के साथ उसके दोनों अंग अपना लिए गये है। एक तो नीतिवचनों का उपदेश और दूसरा दृष्टान्त। इन दृष्टान्तों में अन्यान्य कहानियां कही गई हैं। विशेष रूप से नीतिशास्त्र की दृष्टान्तरूप नीतिकथाएं (fables) महाभारत में प्रवेश कर गई है। इस प्रकार नीतिशास्त्र का समावेश कर लेने से महाभारत मे नीतिकथाएं (fables) भी उसके अभिन्न अंग के रूप में संग्रहित की गई है।

महाभारत में प्राचीन और नवीन अंश

विद्वानों का मत है कि आज महाभारत जो इतने बृहत् स्वरूप में प्राप्त है, वह मूलतः इतना बड़ा नहीं था। समय समय पर इस साहित्य में वृद्धि एवं प्रक्षेप किये गये है। डा. विन्टरनित्स के अनुसार महाभारत में निम्नलिखित अंश बाद में मिलाये गये है :

(१) महाभारत के पात्रों से संबंधित या असंबंधित पुरातन कथा की वस्तु पुराने कथा-भंडार से ली गई।

(२) ब्राह्मणों की दैवतकथाएं, पुरातन कथाएं एवं ब्राह्मणों का महत्व बढ़ाने वाला शिक्षाप्रद साहित्य मिलाया गया। इस शिक्षाप्रद साहित्य में ब्राह्मणों का दर्शन, नीति-विचार (ethecs) और धर्मशास्त्र आदि आ चुके हैं।

(३) जगत् की उत्पत्ति, वंशावलियां, भूगोल संबंधी विवरण जो कि पुराणों में पाया जाता है और कुछ लौकिक कथाएं।

(४) विष्णु एवं बाद में शिव के संबंध में दैवतकथाएं,

(५) नीतिकथाएं (fables), दृष्टान्त कथाएं और अन्य नीति-प्रतिपादक कहानियां;

(६) वैराग्यपूर्ण कविता (ascetic poetry)

(७) गद्यखण्ड, (कभी पूरे या कभी अधूरे गद्य में ब्राह्मणों की कथाएं और शिक्षाप्रद आख्यान)।[1]

उपरोक्त कथन के अनुसार नीतिकथाएँ (fables) महाभारत के मूल ग्रंथ में नहीं थी। वास्तव में मूल भारत एक वीरचरित्रात्मक ग्रंथ था। भारतीय युद्ध

---

१. Dr. Winternitz, History of Indian Literature, 1. p. 321; A.D. Pusalkar, Studies in the Epics and Puranas of India, Bharatiya Vibya Bhawan; Bombay 1955, Introduction.

युद्ध के पश्चात् इसका ग्रयन हुआ था। भरत लोगों का युद्ध-वर्णन उसमें मुख्य रूप से था। किन्तु बाद में साहित्य के अन्यान्य अंग उसमें जोड़ दिये गये। डा. विन्टरनित्ज यह दिखा चुके हैं कि, महाभारत कोई एक व्यक्ति और एक समय की रचना नहीं है। वह उस युग का एक समूचा साहित्य (A Whole-literature) है।[१] होपकिन्स का मत है कि, महाभारत में संस्कृति के दो भिन्न रूप प्रस्तुत हुए हैं।[२] इसीलिए एक ही ग्रंथ में परस्पर-विरोधी रूप (contradictions) पाये जाते हैं।

दि ग्रेट एपिक् आव इंडिया में होपकिन्स ने महाभारत की उत्पत्ति, विकास एवं समय पर विस्तारपूर्वक विश्लेषण किया है। उन्होंने महाभारत की उत्पत्ति 'नाराशंसी गाथा' से मानी है और उसमें आज के बृहत्स्वरूप की जो वृद्धि हुई उसे निम्न प्रकार से दिखाया है :

४०० खि. पू.—'भारत' संग्रह था, जिसे पाण्डवों के बारे में कोई जानकारी न थी।

४००-२०० खि. पू०—महाभारत की कथा का आविर्भाव हुआ जिसमें पांडव नायक और कृष्ण उपदेवता है।

३०० ख्रि० पू० से १०० या २०० ख्रि० वर्ष—कृष्ण अब पूरे देवता बन गये थे। उपदेशात्मक साहित्य का प्रवेश हुआ। नई कहानियां जोड़ दी गई।

२००-४०० ख्रिस्त वर्ष—आरम्भिक भाग और बाद के पर्व जोड़ दिए गये हैं।

होपकिन्स का कथन है कि, 'महाभारत आज के रूप में जितना है उतना (अथवा नीति-शिक्षा के अंश को छोड़कर बचा हुआ रूप) अलेक्झांडर के आक्रमण के बाद में रचा गया या संकलित हुआ है। नीति-शिक्षात्मक सब अंश बाद में जोड़े गये हैं। ख्रिस्त पूर्व प्रथम शताब्दि के लगभग महाभारत कृष्ण-विषयक भक्ति का ग्रन्थ नहीं हो पाया था। महाभारत प्रत्यक्ष रूप से दूसरी शताब्दि में पूर्ण हुआ। संपूर्ण महाकाव्य को लेकर उस का रचना-काल प्राप्त करना सम्भव नही, फिर भी स्थूल रूप से कहा जा सकता है कि ख्रि० पू० २ री शताब्दि में महाभारत विद्यमान था।[३]

---

१. Dr. Winternitz, History of Indian Literature. 1. pp. 316-326 f.

२. Hopkins, JAOS, X111, pp. 57-372. (two different stages of culture are represented)

३. Hopkins, The Grest Eqic of India, p. 239:
"That the epic in its present form or even from its

इससे स्पष्ट हो जाता है कि, महाभारत में जहाँ कहीं प्राणिविषयक नीतिकथा (fable) आती है वह मूल 'भारत' नामक ग्रंथ में नहीं थी। वह बाद में जोड़ दी गई है। ये नीतिकथाएं किस समय महाभारत में प्रवेश कर गई इसे हम देखेंगे।

होपकिन्स द्वारा निर्दिष्ट किये हुए कालानुक्रम के अनुसार ख्रि० पू० ३०० वर्ष से १०० या २०० ख्रि० वर्ष तक के काल में कृष्ण संपूर्ण देवावतार बन बैठे हैं इसी काल में शिक्षाप्रद साहित्य महाभारत में जोड़ दिया गया हैं और नई कथाएं भी प्रवेश कर गई हैं।

डा. विन्टरनित्ज के अनुसार महाभारत को ई० पू० ४ थी शताद्वि के बाद एवं ईस्वी ४ थी शताब्दि के पूर्व आज का वृहत् स्वरूप प्राप्त हुआ है।[१] होपकिन्स के द्वारा निर्दिष्ट काल से इस काल की सीमा कुछ लम्बी हैं। किन्तु हम यह तो कह सकेंगे कि भगवान् बुद्धदेव के पश्चात् ही महाभारत को आज का वृहत्स्वरूप प्राप्त हुआ है। मूल 'भारत' ग्रंथ बुद्धपूर्व युग में भी रहा हो तो आश्चर्य नहीं। किन्तु उसमें प्रक्षेप बुद्धदेव के अनन्तर ही हुआ है। संस्कृत नीतिकथा ने भी महाभारत में बुद्धदेव के पूर्व नीतिकथा का अवतार हो चुका था। सूतों ने भी उसे अपना लिया हो तो असंभव नहीं। किन्तु सूतों ने बुद्धदेव के पूर्व उसे साहित्यिक रूप प्रदान नहीं किया था। भारत ग्रन्थ की अभिवृद्धि बुद्धदेव के पश्चात् हुई है, अतः नीतिकथाएं भी उनके बाद ही संग्रहित हुई, भले ही वे नीतिकथाएं मौखिक रूप से वैदिक परम्परा में चलती रही हों।

किन्तु जोसेफ डालमन ने अपनी स्वतंत्र प्रक्रिया महाभारत के विषय में प्रस्तुत की है। उनका कथन है कि, महाभारत बौद्ध जातकों से पूर्व की रचना

---

didactic matter was composed, or compiled after the invasion of Alexander; that all the didactic matter was inserted later on; that the Mahabharata was not essentially a book of Krsnaite belief until somewhere near the first centuary B. C ; that the epic was practically completed about 200 A D.; that no date can be found tc cover the entirc Epic, although broadly speaking, it can be said to have existed in the second century B. C."

१. History of Indian Literature, I, p. 465 "Vhe Mahabharata cannot have received its present form earlier than the 4th ceetury B. C. and later than the 4th Centuary A.D."

है। जातकों में प्रतिबिम्बित संस्कृति इस पूरे काव्य से व्यक्त हो रही है। महाभारत एक ही कवि की रचना है। उसने पुरातन कथाओं एवं शिक्षाप्रद तत्वों (didactic elements) को बड़े कलात्मक ढंग से महाभारत में जोड़ दिया है। यह सब उस कवि ने धर्मशास्त्र को जनता में लोकप्रिय बनाने के लिए किया। कौरव और पांडव का झगड़ा प्रमाणसिद्ध नहीं है, किन्तु ये दोनों दल धर्म एवं अधर्म के प्रतीक के रूप में खड़े किये गये हैं। धर्म और अधर्म पर यह मानवीकरण प्रस्तुत किया गया है।[१]

श्री पुसालकर ने इसे अत्युक्ति निरूपित किया है।[२] फिक् महाशय ने तो कहा है कि, जातक एवं महाभारत-मनुस्मृति में प्रस्तुत संस्कृति के बीच कुछ सदियां अवश्य बीत चुकी हैं।[3] लेवी के अनुसार भी शिक्षाप्रद आख्यान बाद में जोड़े गये हैं और भागवत धर्म के कवि ने कृष्ण की महत्ता बढ़ाने के लिए भगवद्गीता की सृष्टि कर दी है।

अधिकांश विद्वानों ने महाभारत को एक लम्बे कालावधि का समूचा साहित्य माना है और उसमें पाई जाने वाली असंगतियों को देखते हुए यह मत ठीक भी जान पड़ता है। हम आज निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि कौरव और पाण्डव धर्म और अधर्म के रूपक खड़े किये गये हैं। इस प्रकार को छद्मकथा (Allegory) रही होगी या नहीं, कह नहीं सकते। 'जय' तथा 'भारत' नाम से इतना अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि मूल रूप से यह काव्य वीरगाथात्मक रहा है। उसी में कालानुसार अंश जोड़े गये है। वैष्णव धर्म का भारतवर्ष में जब अधिक प्रचार होता रहा, तब उसने महाभारत साहित्य को भी अपना साधन बना डाला। इधर कुछ आख्यान दैवतकथाओं के रूप में जोड़ दिये तो उधर उपदेशों के अंग के रूप में नैतिक कहानियों को भी अपनाया गया।

ब्राह्मणधर्म के विरोध में खड़े हुए बौद्ध धर्म ने लौकिक जीवन एवं विषय की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट कर लिया था। लौकिक आचार एवं विचारों को समाज की सुव्यवस्था के काम में लाना था। वैदिक युग में सामाजिक व्यवस्था

---

१ Joseph Dahlmann, Das Mahabharata : Epos and Reschtsbuch, Bombay 1895; Genesis des Mahabharata, Berlin, 1899.

२ A. D. Pusalkar, Stndies in the Epics and Puranas, Bhartiya Vidya Bhavan, Bombay, 1955, p. XXX (Intro).

३. Fick, Die Soziak Gliederng in Nord Ostlichen Indien zu Buddha's zeit, pp. 173, 4.

का भार इतना तीव्र न था। वेदोत्तर काल में ही लौकिक सुख एवं समाज की सुव्यवस्था की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। यह ठीक है कि, ग्रामणी आदि शब्दों से ज्ञात होता है कि ऋग्वेद के समय में ग्राम-प्रशासन तक में सुव्यवस्था थी। किन्तु आर्यों का समाज ही सीमित था। इसीलिए सुव्यवस्था सम्बन्धी समस्याएं अधिक नहीं थीं। बाद में वे बढ़ गईं। इसीलिए धर्मशास्त्र की रचना करनी पड़ी। समाज की सुव्यवस्था के लिए बढ़ते हुए समाज को नीतिबन्धनों में आबद्ध करने की आवश्यकता पड़ी। महाभारत उस सामाजिक और नैतिक विचारों की हलचल का द्योतन कर रहा है।

कालगति के अनुसार महाभारत में अन्यान्य शास्त्रों के अंश जोड़ दिये जाने लगे। महाभारत को ज्ञानकोष (encyclopaebia) बनाने के प्रयत्न हुए। अतएव उसे आज का बृहत्स्वरूप प्राप्त हुआ।

हम यह देख चुके हैं कि, सूतों एवं अन्य 'आख्यानविद्' लोगों ने प्राचीनतम कथाओं का संग्रह कर रखा था। किन्तु उन्हीं के हाथों उसकी वृद्धि हुई होती तो आज का इतना बृहत् स्वरूप महाभारत को प्राप्त न होता और न इतनी विविधता ही उसमें आने पाती।

आख्यानों एवं पुरातन कथाओं की वृद्धि करने में सूतों की तरह भृगुओं का भी काफ़ी हाथ रहा है। भृगु ने महाभारत की वृद्धि की इस तथ्य को महाभारत के विद्वान संपादक स्व० सुकथनकर ने बड़े अच्छे ढंग से स्पष्ट कर दिया है।[1] आवश्यकतानुसार ही भृगुओं के द्वारा महाभारत का सम्बर्द्धन हो गया है। आदि पर्व में शौनक ने भी कहा है:

'भृगुवंशात् प्रभृत्यैव त्वया मे कीर्तितं महत्।
आख्यानमखिलं तात सौते प्रीतोऽस्मि तेन ते ॥

इससे भी उपरोक्त कथन की पुष्टि होती है। डॉ. दाण्डेकरजी का कथन है कि, प्राचीन भारतवर्ष में दो परम्पराएं रही हैं। एक मंत्र-परम्परा एवं दूसरी सूत-परम्परा। इस दूसरी परम्परा में सूतों ने 'जय' ग्रंथ की रचना की थी, जिसमें भारत-युद्ध का वीर-रसात्मक इतिहास वर्णित था। बाद में श्रीकृष्ण को

---

1. Sukthankar, Epic Studies, VI : The Brgus and the Bharata; ABORI (Annals) XVII, pp. 1-76; देखिए :-

श्री वासुदेव शरण अग्रवाल, ना० प्र० प० काशी, श्रावण १९९७ में प्रकाशित लेख : भृगुवंश और भारत, पृ० १०५-१६२; Weller, ABORI, XVII, pp. 296-320 : "Who were the Bhruguids."

२. म० भा० आदि पर्व, अंशावतार पर्व, अध्याय ५६,१.

महत्ता बढ़ जाने पर 'जय' का रूपान्तर 'भारत' में हुआ और इस इतिहास ग्रंथ को 'पुराण' का रूप मिल गया। इसी के बाद जब ब्राह्मणों के द्वारा धर्म एवं नीति के तत्व (Religio-ethical elements) जोड़ दिये गये तब वह 'महाभारत' हुआ। यह कार्य भार्गवों ने किया। भार्गवों ने सूत-परम्परा से ऐतिहासिक आख्यान लिये एवं कृष्णभक्ति से धर्मनीति को अपनाया। इस सामग्री से उन्होंने 'भारत' को महाभारत का रूप दिया है।[1]

'आख्यानविद्' लोगों का जहां उल्लेख उत्तर वैदिक साहित्य मिलता है वहां आख्यान का legends से तात्पर्य है[2]। सूत भले हो आख्यानविद् रहे होंगे, किन्तु प्राणिकथा के वाहक वे थे या नहीं यह स्पष्ट नहीं है। सूत-परम्परा मे एक तथ्य अवश्य रहा है। सूत लोक-साहित्य के भी संवाहक रहे हैं। सम्भवतः लोककथाओं में प्राचीन लोकप्रचलित प्राणिकथाएं भी उनके संग्रह में चली आ रही थी। फिर भी महत्व का तथ्य तो यह है कि भृगुओं ने महाभारत को वैष्णव रूप मे ढाल दिया है, और उसी काल मे, पञ्चतंत्र-साहित्य वैष्णवों के हाथ में था। विष्णुशर्मा यह नाम भी इस तथ्य को पुष्टि कर रहा है।

यहां हमें यही कहना है कि, महाभारत में सभी लोगों का योगदान रहा है। क्षत्रियों एवं ब्राह्मणों ने महाभारत की वृद्धि की है। साथ-साथ सूत-परम्परा 'ज़य' ग्रंथ तक ही सीमित नहीं थी। महाभारत की वृद्धि करने में उसका भी योगदान रहा हो तो आश्चर्य नहीं।

नीतिकथाओं का प्रवेश महाभारत में किन महानुभावों के द्वारा हुआ यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। फिर भी यह स्पष्ट है कि सूतों एवं भार्गवों ने यह अंश जोड़ा और नीतिकथाएं महाभारत का अभिन्न अंग बन गईं। भार्गवों के साथ-साथ सूतों का भी योगदान रहा है। सूतों का साहित्य वीररसात्मक था। भार्गवों ने उसे ही लेकर महाभारत की वृद्धि की। धर्म एवं नीति के तत्वों को अपनाने वाले भार्गवों ने धर्मवचन एवं नीतिकथाओं को भी अपनाया। भार्गवों के पूर्व ही नीतिशास्त्र अपना प्रभाव समाज पर दिखा चुका था। राजधर्म के रूप में नीति-शास्त्र को भार्गवों ने अपना लिया और महाभारत में उसे स्थान दे दिया। सूतों ने लोककथाओं का संग्रह पहले से ही कर लिया था। उसमें भी कुछ

---

१. Dr. R. N. Dandekar's article: "The Mahābhārata, origin and growth, "University of Ceylon Review, XII, pp. 65-85.

२. ऐ. ब्रा. ७. १८. १० "शुनःशेपाख्यानम्"; ३. २५. १ सौपर्णाख्यानम् श. प. ब्रा. ३. ६. ७.

प्राणिकथाएँ रही होंगी। किन्तु उन्हें मान्यता नहीं मिली थी। नीतिशास्त्र के आचार्यों ने जब से प्राणिकथाओं को अपने सिद्धान्तों की पुष्टि करने के लिए अपनाना प्रारम्भ कर दिया, तब से उनका स्तर ऊंचा उठ गया। समाज में ऐसी नीतिकथाएं पहले ही अपनाई जा चुकी थीं। उनका यह प्रभाव देखकर महाभारत में संस्कृत नीतिकथा को साहित्यिक रूप मिल गया। नीतिशास्त्र का प्रभाव भार्गवों पर पड़ा और महाभारत में नीतिशास्त्र के साथ-साथ उनकी दृष्टान्त-कथाओं का भी ग्रहण हो गया। इन दृष्टान्त-कथाओं में प्राणि-संबधी कथाएं भी थीं। उनका भी संग्रह हो गया। लौकिक आख्यानों का संग्रह करने वाले सूतों के लिये ये नीतिकथाएं अपरिचित नहीं थीं। सम्भव है, ब्राह्मणों के द्वारा नीतिशास्त्र का प्रभाव ग्रहण करने के कारण जब नीतिकथा महाभारत में प्रवेश कर गई उसके पूर्व सूतों ने अपने कथा-संकीर्तन में उसे पहिले ही अपना लिया होगा। सभी वर्णों को नीतिकथा अपरिचित साहित्य न था। क्योंकि उसका स्वरूप वर्णातीत था। उसमें ऐसी नीति का पाठ मिलता था जो हर व्यक्ति और जाति के लिए उपादेय सिद्ध होता था। महाभारत में जितनी नीतिकथाएं मिलती हैं, उनका कोई एक ही लेखक नहीं है। हम देख चुके हैं कि महाभारत में ये कथाएं किस प्रकार बाद में जोड़ दी गईं। मूल पंचतंत्र के प्रभाव के कारण ही ये नीति-कथाएं नीतिशास्त्र का प्रधान अंग बन बैठी थीं। प्रारम्भ में मूल पंचतंत्र के प्रभाव से भी नीतिकथाएं महाभारत में जोड़ दी गई हों तो आश्चर्य नहीं। पंचतंत्र और महाभारत की समान नीतिकथाओं में जहां कुछ परिवर्तन परिलक्षित होते हों वहां हम यही मान लेंगे कि, महाभारत में भी प्राचीन नीतिकथा का परम्परागत रूप व्यक्त हो सका है। पंचतंत्र के प्राचीन संस्करण तंत्राख्यायिक (ख्रि० पू० २०० वर्ष) के बाद की ही ये नीतिकथाएं हो सकती हैं।

कणिक-नीति के अन्दर चतुर सियार की कहानी को ही लीजिए। यह कथा पंचतंत्र में भी मिलती है[१]। उसे तथा अन्य कुछ कथाओं को नीतिशास्त्र से प्रभावित मानना उचित होगा। तंत्राख्यायिक का समय ई० पू० २०० वर्ष है।[२] इस तंत्राख्यायिक के भी पूर्व मूल पंचतंत्र की कल्पना डा० एजर्टन द्वारा की गई है। साथ-साथ यह भी ध्यान रखना होगा कि, लगभग ई० पू० प्रथम शताब्दि में महाभारत से नीतिकथाओं ने प्रवेश किया है, जैसा कि हम प्रारम्भ में दिखा चुके हैं। अतः स्पष्ट है कि, यह मूल पंचतंत्र का ही प्रभाव था। महाभारत को ज्ञानकोष

---

१. प० त० ४.१०.

२. Dr. Hertel, The Panchatantra (Jain recension), Preface, p. XIII.

का रूप दिया जा रहा था, तब राज-समाजों तथा जनमानस में पंचतंत्र तथा नीतिशास्त्र का प्रभाव पर्याप्त बढ़ चुका था। इसी कारण उनका प्रवेश महाभारत में हो गया। फिर भी कुछ नीतिकथाएं ऐसी हैं जिन्हें हम पंचतंत्र में नहीं पाते। उदाहरण के लिए कपोताख्यान को ही लीजिए। इसमें एक कबूतर ने अतिथि के लिए आत्म-समर्पण कर दिया है। यह कथा पंचतंत्र में नहीं मिलती। नीतिशास्त्र के अनुसार अपने आपको अग्नि में समर्पण कर देने वाला कबूतर मूर्ख है।। यह तो बौद्ध विचारधारा का प्रभाव हो सकता है कि, एक पक्षी अतिथि की क्षुधा-शान्ति के लिए अपना प्राण त्याग दे। यहां हम कह सकते हैं कि, ब्राह्मण-धर्म को अपेक्षा बौद्ध धर्म के कारण ही ऐसे प्राणी उदात्त चरित्र का परिचय देने लगे हैं। नीतिकथा में ऐसे उदात्त चरित्र वाले पशुपक्षी बोधिसत्व ने प्राणि योनि में जन्म लेने के कारण ही नीतिकथा में आ सके हैं।

महाभारत में नीतिकथाओं को अपनाते समय सामने कोई ग्रंथ नहीं रखा गया। उन्हें यहां भी लोककथा की अक्षयधारा से ही अपनाया गया है। जनमानस में पंचतंत्र की कथाएं प्रिय हो बैठी थीं। इसीलिए वे भी महाभारत में आ गईं। किन्तु अधिकतर नीतिकथाएं नीतिशास्त्र के साथ-साथ महाभारत में प्रवेश कर गई हैं।

महाभारत के पूर्व भारतीय नीतिकथा अपना रूप स्पष्ट कर चुकी थी। इतना ही नहीं, वह एक ऐसे लौकिक नीतिशास्त्र का अभिन्न अंग बन चुकी थी कि, उनका संग्रह करना महाभारतकारों के लिए अत्यावश्यक हो गया था।

महाभारत के पूर्व भगवान् बुद्धदेव की जातक-कथाएं भी लोकप्रिय थीं। क्योंकि वे लोक-कथाओं से ही ली गई थीं।

किन्तु इस तथ्य को नहीं भुलाया जा सकता कि, वैष्णव धर्म एवं सम्प्रदाय का प्रवेश महाभारत में होने पर ही ये नीतिकथाएं प्रवेश कर गई थीं। क्योंकि, पंचतंत्र पर भी वैष्णव प्रभाव परिलक्षित होता है। ब्राह्मणों की बुद्धि-कुशलता तथा उपदेश देने की प्रवृत्ति भी उसमें उतर पड़ी है।

वैदिक साहित्य एवं महाभारत के बीच के काल में बुद्धदेव ने 'लोक-नीति' को प्रबल रूप दे डाला था। उसके समकक्ष ही मूल पंचतंत्र ने भी अपना रूप प्रकट किया था। मूल पंचतंत्र एवं जातकों के बाद नीतिकथा की लोकप्रियता बढ़ गई। ई० पू० तीसरी से पहली शती तक का यह काल था। इस काल में कौटिल्य के अर्थशास्त्र का प्रभाव बढ़ा है। तंत्राख्यायिक की लोकप्रियता बढ़ी, भरहुत की पाषाण वेष्टिनियों पर नीतिकथाएं अंकित हुईं और महाभारत में नीतिकथाओं ने प्रवेश किया। सारांश में यह काल नीतिकथा के लिए बड़ा

हो अनुकूल था । पंचतंत्र के पहलवी अनुवाद[१] में भी महाभारत का प्रभाव परिलक्षित हो सकता है ।[२] इस अनुवाद के मूल संस्करण पर महाभारत का प्रभाव था या नहीं यह नहीं कहा जा सकता । किन्तु एक बात अवश्य है कि, पंचतंत्र का यह संस्करण उन्हीं वैष्णवों के हाथ में था जिनकी परम्परा में महाभारत को वैष्णव रूप मिला था । पंचतंत्र के लेखक का 'विष्णुशर्मा' नाम भी इस तथ्य को पुष्ट करता है ।

हम यह कह चुके हैं कि, महाभारत पर भारतीय नीतिशास्त्र का प्रभाव पड़ा है । शान्तिपर्व में 'राजधर्म' के रूप में हमें उसका स्पष्ट रूप दिखाई देता है । भारतीय 'अर्थशास्त्र' एवं 'धर्मशास्त्र' का ही यह प्रभाव था कि, राजाओं के लिए कुछ 'धर्म' (duties) कहे गये थे, उनका ग्रहण महाभारतकार ने किया है । आपस्तम्ब धर्मसूत्र में भी राजधर्म का उपदेश दिया गया है । भीष्म ने वृहस्पति, विशालाक्ष, शुक्र, इन्द्र, मनु, भारद्वाज और गौरशिरा की परंपरा का उल्लेख किया है और उन्हें 'राजधर्म के प्रणेता' कहा है ।[3] कौटिल्य ने सात आचार्यों के नामों का उल्लेख किया है[४] । शान्तिपर्व में दंडनीति को ही राजधर्म कहा गया है । प्रो० एजर्टन द्वारा पुनःरचित पंचतंत्र[५] के शोधपूर्ण संस्करण के पहले ही पद्य में मनु, वाचस्पति, शुक्र, पराशर, उनके पुत्र व्यास तथा चाणक्य का स्मरण किया गया हैं ।[६] राजनैतिक प्रज्ञा (political wisdom) की महत्ता महाभारत में मान ली गई है । सभापर्व में जरासंघ को मारने की अनुमति देते हुए युधिष्ठिर ने कहा हैं :

> एवं प्रज्ञानयबलं क्रियोपायसमन्वितम् ।
> पुरस्कुर्वीत कार्येषु कृष्णं कार्यार्थसिद्धये ॥
> नयो जयो बलं चैव विक्रमे सिद्धिमेष्यति ।[७]

---

१. Karataka and Damanaka, Pahlars translation by Burzoe under the patronage of King Chosrn Anosharwan (531-579 A. D.)

२. Edgerton F. : The Panchatantra Reconstructed, AOS, Vol. 2. Chapt II, p. 40.

३. म० भा० शा० प० अ. ५८, श्लोक १-३.

४. कौटलीयं अर्थशास्त्रम् ५. ५-तथा १. ८.

५. ६९. ५६

६. Ibid, Vol. I. p. 271.

७. म० भा० सभापर्व, जरासंघ पर्व, अ० २०, श्लोक १९-२०.

यहां 'प्रज्ञा' से तात्पर्य राजनैतिक प्रज्ञा से ही है। 'जय' और 'वल' के पूर्व नय' (Line of policy) को रखकर महाभारतकार ने नीतिशास्त्र की उपादेयता को मान लिया है। महाभारत की नीतिकथाओं की पृष्ठभूमि इस प्रकार परिलक्षित होती है।

प्राचीन नीतिकथा के संकेत-स्थल

महाभारत में प्राप्त नीतिकथाओं की हम यथावसर चर्चा करेंगे ही। किन्तु उसके पूर्व यहां प्राचीन नीतिकथाओं के संकेत-स्थलों के विषय में कुछ कहना आवश्यक है। महाभारत में कहीं-कहीं पर ऐसे उल्लेख आये हैं जिनसे प्राचीन नीतिकथाओं का संकेत हमें मिल सकता है। अधिकतर दृष्टान्तों से ही ये संकेत व्यक्त हो गये हैं। पूरी कथा न देकर केवल दृष्टान्त देने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि, महाभारत के पूर्वकाल से ही उन नीतिकथाओं का काफी प्रसार हो चुका था। उन्हें पर्याप्त लोक-प्रियता मिल चुकी थी। इसीलिए उनका सांकेतिक उल्लेखमात्र पर्याप्त माना गया। अन्यथा उनका निदर्शन पूरी कथा देकर विस्तारपूर्वक किया जाता।

ऐसे स्थल महाभारत के प्राचीन अंश के अंग भी हो सकते है। संभवतः लोकवाणी में प्रचलित ऐसी नीतिकथाओं का उल्लेखमात्र पर्याप्त समझा गया। बाद में पूरी नीतिकथा को अपनाने का कार्य हुआ। क्योंकि, वनपर्व में तथा अन्यत्र नीतिकथाएं बाद में जोड़ दी गई हैं, फिर भी ऐसे दृष्टान्त वाक्य भी बाद में जोड़े गये हैं यह नहीं कहा जा सकता। यह माना जा सकता है कि, 'भारत' ग्रन्थ को 'महाभारत' का रूप दिया जा रहा था तभी ऐसे दृष्टान्त भी प्रवेश कर गये थे। ये इतने प्राचीन अंश नहीं होंगे जितने कि वीरगाथात्मक अंश। वास्तव में ये दृष्टान्त वाक्य महाभारत में अनजाने ही प्रवेश कर गये हैं। प्रवाहमयी शैली में लिखे गये महाभारत में ऐसे सांकेतिक स्थल आ गये हों तो आश्चर्य नहीं। महाभारत मूलतः निवेदन-प्रधान (narrative) साहित्य रहा है। इसीलिए आवश्यकतानुसार बीच-बीच में अपने कथन में स्पष्टता लाने के लिए दृष्टान्तों का उपयोग महाभारतकार ने किया है। इन्ही दृष्टान्तों में कुछ प्राणि-संबंधो दृष्टान्त भी हैं। ऐसे ही दृष्टान्त प्राचीनतम नीतिकथाओं की ओर संकेत करते हैं। इस प्रकार के दो स्थल हम यहां उद्धृत करना चाहेंगे :

(१) भेड़ एवं शस्त्र की कथा का संकेत :—

प्रसंग यह हैं कि, दुर्योधन ने द्रौपदी को द्यूत में जीत लिया था। उसने उसे दासी बनाने की बात विदुर के समक्ष कही। तब विदुर ने उसे कड़ी

फटकार सुना दी है। उसने कहा कि पाण्डवों के बारे में तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए। तुम क्षुद्र पशु हो जो शेरों को चिढ़ा रहे हो। मनुष्य को किसी के मर्म पर आघात करने वाले शब्द नहीं कहने चाहिए। यह कहकर उसने दृष्टान्त दिया है :—

"अजो हि शस्त्रमखनत् किलैकः
शस्त्रे विपन्ने पद्भिरपास्य भूमिम्।
निकृन्तनं स्वस्य कण्ठस्य घोरं
तद्वद्वैरं मा खनीः पाण्डुपुत्रैः ॥[1]

इसमें विदुर कहते हैं :-एक भेड़ा था। उसने अपने पैरों से जमीन में गड़े हुए शस्त्र को खोद निकाला। वही शस्त्र भेड़ का गला काटने का कारण बना। इसलिए हे दुर्योधन ! पाण्डवों के साथ शत्रुता न करो (यदि स्वयं तुमने उनसे शत्रुता मोल ली तो वही तुम्हारे नाश का कारण बन जावेगी)

उपरोक्त पद्य में 'किल' पद महत्वपूर्ण है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि, ग्रंथकार को किसी प्राचीन एवं लोक-विख्यात कथा को ओर ही संकेत करना है। दूसरा 'एकः' पद भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इस पद में कहानी कहने का ढंग व्यक्त हो रहा है। किसी भी कहानी का प्रारंभ "एक भेड़ा था" जैसा होता है। यद्यपि संपूर्ण कथा यहां नहीं दी गई है, फिर भी "एक भेड़ा था" कह कर किसी प्राचीन लोकप्रिय कथा की ओर संकेत कर दिया है।

यह प्राचीन कथा कौन सी है ? ऐतरेय ब्राह्मण में हम देख चुके है कि यज्ञीय पशु यूप को शस्त्र समझ कर डर गये थे। यज्ञ से वे दूर हट गये थे। तब देवताओं ने यूप को नीचे गिराकर अलग ढंग से गाड़ दिया जिससे पशु निडर होकर यज्ञ में सम्मिलित हो सकें।[2]

किन्तु इस कहानी से पशु एवं शस्त्र का ब्राह्मण-कालीन भय-संबंध ही

---

१. S. K. Belwalkar Mbh. cr. ed. BORI, सभापर्व, द्यूतपर्व. II. 59.9.; बम्बई संस्करण में सभापर्व, ६६. ८ पर यही पद्य कुछ पाठभेद के साथ दिया गया है :–

"अजो हि शस्त्रमगिलत् किलैकः
शस्त्रे विपन्ने शिरस्यास्य भूमौ ॥" तथा चतुर्थ चरण में 'खनी' : के स्थान पर 'कृथा' है। 'भेड़ एवं शस्त्र की कथा' के संदर्भ में देखिए :

Edgertion, JAOS , 59 pp. 366–8 : "The Goat and the Knife."

२. ऐ. ब्रा. २. ६. ३.

स्पष्ट हो रहा हैं। ब्राह्मणकालीन लोककथा में शस्त्र से पशुओं के डरने का कल्पना-बंध मुख्य रूप से रहा होगा। दोनों में यह भय-संबन्ध केवल मस्तिष्क की उपज नहीं थी। लोगों में शस्त्र के द्वारा पशु के कट मरने की घटना देखी जा चुकी थी। फिर भी किसी पशु ने शस्त्र को खोद कर उससे अपना गला कटवा लेने का कल्पना-बंध उपरोक्त ब्राह्मण-कथा से स्पष्ट नहीं होता, भले ही ब्राह्मण-काल में वैसी कथा रही भी हो।

इस प्रकार का स्पष्ट रूप जातक-कथा में अवश्य मिलता है। जातक में भेड़ और शस्त्र की कथा की चर्चा हम कर चुके हैं।[1] कहानी है: चोरों ने एक भेड़ चुराई थी। जंगल में उसका मुँह बाँध कर वे उसे बांसों के झुंड में छोड़ गये थे। अगले दिन उसे मारकर खाने के लिए वहाँ गये, किन्तु साथ में शस्त्र लाना भूल गये थे। तब आयुध के बिना मार नहीं सके तो उन्होंने उसे छोड़ दिया। वहां पर किसी बांसफोड़े ने अपनी कटार बासों में लगा रखी थी। उन्मुक्त होकर उछल कूद करने वाली भेड़ की टांग लगकर वह कटार नीचे गिर पड़ी। तब चोरों ने आवाज सुनी। वहां उसी कटार से वे भेंड़ को मारकर खा गये।

अपनी ही करनी से भेंड़ ने शस्त्र को गिराया और वही शस्त्र उसकी मौत का कारण बना।

हमारा स्पष्ट मत हैं कि, महाभारत में विदुर ने जो 'भड़ और शस्त्र' का दृष्टान्त दिया है उसका संकेत उपरोक्त जातककथा की ओर है। बुद्धदेव के पूर्व ही यह कहानी लोकप्रिय लोककथा रह चुकी थी। ब्राह्मण-काल में इसका अस्पष्ट संकेत मिल गया था। किन्तु जातक में वह कथा स्पष्ट रूप से प्रकट हो गई है। यह कहानी ब्राह्मण-काल से महाभारत के काल तक लोककथा की अखण्ड धारा में प्रवाहित थी। महाभारत के समय में तो लोग इस कहानी से इतने परिचित हो गये थे कि, महाभारतकार ने उसका केवल दृष्टान्त-वाक्य से ही उल्लेख करना पर्याप्त मान लिया।

उपरोक्त जातककथा एवं महाभारत की कथा में पर्याप्त समानता है। दोनों मे काल भेद के कारण थोड़ा सा अन्तर अवश्य दिखाई देता है। जातक के अनुसार चोरों का वृत्तान्त एवं भेड़ द्वारा बांस में रखे हुए शस्त्र को गिराये जाने की घटना अधिक है। महाभारत में वही भेड़ अपने पैरों के द्वारा भूमि से शस्त्र खोदती है।

---

१. तक्कारिय जातक (४८१, में अतीतकथा (२) में ४ थी लघु नीतिकथा; पतञ्जलि-महाभाष्य में अजाकृपाणीय न्याय।

महाभारत का उपरोक्त दृष्टान्त जिस पद्य में है उसके दो पाठभेद भी दृष्टव्य हैं। श्री वेलवलकर द्वारा सम्पादित महाभारत के सभापर्व[१] में जो पाठ स्वीकृत है उसे हम उपर दे चुके हैं। किन्तु महाभारत के बम्बई वाले संस्करण के अनुसार पाठ है :

"भेड़े ने शस्त्र को निगल लिया तब उसके सिर के साथ वह शस्त्र भूमि पर गिरा" आदि।[२]

जातककथा को सामने रखकर हम इन दोनों पाठों में से किसी एक को प्राचीन लोककथा के निकट की वस्तु मान लेंगे तो असंगत न होगा। जातककथा के अनुसार भेड़ ने अपने पैरों से शस्त्र गिराया है, किन्तु वह उसके सिर पर नहीं गिरा। उसकी आवाज सुनकर चोर वहां आये और उन्होंने शस्त्र से भेड़ को मारा।

महाभारत के संशोधित संस्करण (BORI) में 'अपने पैरों से भेड़ ने शस्त्र जमीन से निकाला है।' और जातक में भी 'अपने ही पैरों से भेड़ ने शस्त्र झाड़ से गिराया है'। अत: श्री वेलवलकर द्वारा संपादित (BORI) संस्करण का पाठ जातककथा के निकट है। उपरोक्त जातककथा में दी गई गाथा में भी महाभारत के पद्य की समानता द्रष्टव्य है। गाथा है :—

"अजा यथा वेलु गुम्बस्मिं बद्धा, अवेक्खिपन्ती असिकज्झगञ्छि।
तेनेव तस्सा गलकावकन्तं अयंपि अत्थो अहु तादिसो व॥"[३]

इसके तृतीय चरण के साथ महाभारत के पद्य का यह चरण मिलाइये :—
"तेनेव तस्सा गलकावकन्तं" (जा०)
"निकृन्तनं स्वस्य कण्ठस्य घोरं" (म० भा०)

विशेष बात यह है कि महाभारत के इस पद्य के तृतीय चरण में कोई पाठभेद नहीं है।

किन्तु इतने साम्य से भी हम यह नहीं कहना चाहते कि, महाभारतकार ने जातक-कथा को सामने रखकर ही विदुर के मुख से यह दृष्टान्त-पद्य कहलवाया है। हमें केवल इतना ही दिखा देना है कि, जातक के समय में 'भेड़ और शस्त्र'

---

१. M. Bh. cr. ed. BORT. II. 59. 9, Poona.

२ सभापर्व, २. ६६ ७.

"अजो हि शस्त्रमगिलत् किलैकः।
शस्त्रे विपन्ने शिरस्यस्य भूमौ॥

एवं चतुर्थ चरण में 'खनीः' के स्थानपर 'कृथाः' पाठ है।

३. तक्कारिय जातक (४८१) की गाथा ६.

की कथा जनवाणी में काफी प्रचलित थी। उसी की ओर महाभारतकार का संकेत है। ऐतरेय ब्राह्मण की आख्यायिका से इस के प्राचीन कल्पना-बंध की गंध आ जाती है। जातक के समय में उस कथा ने अपना पूरा विकास कर लिया था। महाभारत में जब 'विदुरनीति' का अंश जोड़ दिया गया, तब इस कथा को काफी लोकप्रियता प्राप्त हो चुकी थी। इसी कारण से उसका उल्लेख मात्र कर दिया गया।

महाभारत पर जातक कथाओं का प्रभाव पड़ा है।[१] बुद्धदेव के समय की लोककथाओं की जो धारा प्रवाहित थी उसका भी महाभारत की नीति-कथाओं पर प्रभाव पड़ा है। मूल पंचतंत्र में संग्रहित नीतिकथा का भी ग्रहण उसमें हुआ होगा तो आश्चर्य नहीं। सर्वोत्तम साहित्य के अंश महाभारत में सम्मिलित कर लिये गये तब इन ग्रन्थों एवं लोककथाओं का प्रभाव महाभारत पर पड़ा।

श्रृङ्गाल-कथा की पुनर्रचना (reconstruction)

महाभारत में एक और दृष्टान्त है जिससे हमें प्राचीन श्रृगाल-कथा का संकेत मिलता है। यह दृष्टान्त शान्तिपर्व में मंकिगीता में दिया गया है।[२] इस दृष्टान्त की विशेषता यह है कि, नीतिकथा में ही इस का निर्देश हुआ है। महाराज युधिष्ठिर को भीष्म ने मंकि नामक निरीह मनुष्य द्वारा कही हुई प्राचीन इतिहास-कथा (इतिहासः पुरातनः) सुनाई। इस नीतिकथा की चर्चा हम यथावसर करेंगे ही। यहां हमें उस दृष्टान्त की ओर ध्यान देना है जिससे प्राचीन नीतिकथा का संकेत मिल रहा है।

मंकि के दोनों बैल ऊंट पर सवार हो गये तब ऊंट खड़ा हो गया और पीठ पर इन बैलों को लेकर तेजी से जाने लगा। इस प्रकार बिगड़े ऊंट के द्वारा घसीटे जाने वाले दोनों बैलों को देख मंकि ने अपने भाग्य को कोसा और कहा—

"उद्यम्योद्यम्य मे दम्यौ विषमेणैव गच्छति।
उत्क्षिप्य काकतालीयमुन्माथेनेव जम्बुकः॥"[३]

मंकि के दुर्भाग्य से उसके पालतू बैल भी टेढ़े रास्ते से गये, अतः उसकी

---

१. R. Otto Franke, Vienna Oriental Journal, Vienna, Vol. XX No.- 4 : "Jataka-Mahabharata-Parellelen" pp. 317-372; भरतसिंह उपाध्याय कृत पा० सा० का इति० में 'जातक' विषय पर लेखन।

२. S. K. Belwalkar, Mbh. (cr. ed.) शान्तिपर्व, मोक्षधर्मपर्व, १२.१७१.११४.

३. Ibid. 12. 171. 11, p. 9ˆ4 (cr. ed.)

हानि हुई। इसके लिए उसने एक सियार की उपमा उपरोक्त पद्य में दी है। जम्बुक की तरह ये बैल भी इस दशा को पहुंचे हैं। इस संदर्भ में 'उत्क्षिप्य काकतालीयमुन्माथेनेव जम्बुकः' इस चरण की महाभारत के टीकाकारों ने की हुई व्याख्याएं द्रष्टव्य हैं :

(१) अर्जुनमिश्रः—"उन्मथ्येन कूटयन्त्रेण। यथा कश्चिज्जम्बुको हतः।' इसके अतिरिक्त–"यथा, उन्माथमध्यपतितो जम्बुकस्तमादायैव गच्छति" इति। समीक्षा : सियार की उपमा से अर्जुनमिश्र ने जिस कथा का संकेत प्रकट कर दिया है, वह यह है : किसी कूटयन्त्र में 'अव्यापारेषु व्यापार' करने के कारण सियार उस यन्त्र की मार से मर गया। यह कल्पना-बन्ध प्राचीन है। कीलोत्पाटन करने वाले बन्दर की कथा पंचतंत्र में मिलती है।[1] अर्जुनमिश्र की व्याख्या के प्रथम-वाक्य के अनुसार 'कीलोत्पाटी वानर' की कथा का संकेत मिल रहा है। इस कथा के अनुसार एक बंदर ने बढ़ई द्वारा आधी काटी हुई लकडी में से कील निकाल लेने से उसका वृषण उसमें फंस गया और वह मर गया। संभवतः अर्जुनमिश्र के ध्यान में पंचतंत्र की यह वानर-कथा रही होगी। किन्तु इसी व्याख्याकार का दूसरा वाक्य है : 'यंत्र में पड़ा हुआ सियार उस यंत्र को भी लेकर चल देता है।" इस से साम्य रखने वाला एक कल्पना-बंध वह है जिस के अनुसार जाल में फँसे कपोत अपने साथियों के साथ जाल को भी लेकर उड़ गये। फिर भी किसी विशिष्ट कथा की ओर निश्चित रूप से अर्जुनमिश्र संकेत प्रकट नहीं कर पाये हैं। फिर भी महाभारत का संकेत 'कीलोत्पाटी वानर' की कथा की ओर यहां दिखाई देता है। इतना अवश्य है कि, वानर और जम्बुक में भिन्नता है।

(२ परमानन्द :—"उन्माथेन स्फुटयन्त्रेण जम्बुकमिवोत्क्षिप्य" इति। समीक्षा : परमानंद के अनुसार किसी जम्बुक की उसी कथा का संकेत मिलता है जिसमें वह जम्बुक यंत्र के कारण उछाल दिया गया हो। किन्तु यहाँ कथा-सन्दर्भ स्पष्ट नहीं है। स्वयं टीकाकार इस कथा से अपरिचित दिखाई देते हैं। वास्तव में इस प्रकार की किसी कथा की ओर यहां संकेत नहीं मिलता।

(३) विद्यासागर :—"तालवृन्तासन्नपतता काकेन यदृच्छया पातितं तत्फलं काकतालीयम्। तच्चाधःस्थित-जम्बुकोपरि पतितम्। ततो यथा जम्बुको बभ्रामेत्यर्थ : उन्माथेनेव क्वचित् पाठः। 'उन्माथः कूटयंत्रं स्यात् पाशयंत्रं क्वचिद् भवेत्'। दुष्टमृगवधार्थं कल्पित-यन्त्रे जम्बुको मृतो यथेत्यर्थः" इति। समीक्षा :— विद्यासागर ने काकतालीय' पद को 'जम्बुकोपमा' के साथ संयुक्त देखकर

---

१. पं० तं० १. १.

मनगढ़न्त कहानी का ही संकेत दिया है। उनकी कथा है : कौए ने तालवृक्ष से फल गिराया और वह जम्बुक पर पड़ा। तब जम्बुक वहां से भागा। किन्तु 'काकतालीयम्' शब्द के व्युत्पत्तिलभ्य (यौगिक) अर्थ को यहां कहानी के सन्दर्भ में प्रस्तुत करने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। वास्तव में 'संयोग' रूप रूढ अर्थ में ही यहां 'काकतालीयम्' पद का प्रयोग हुआ है। इसलिए 'जम्बुकोपमा' को इस पद से स्वतंत्र रखना श्रेयस्कर होगा। कौए के द्वारा गिराये गये फल से आहत सियार के भाग जाने का कल्पना-बंध पंचतंत्र या जातक जैसे प्राचीन ग्रंथों में नहीं दिखाई देता। अतः स्पष्ट है कि, विद्यासागर ने 'काकतालीय' का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ लेकर उसका सम्बन्ध जम्बुक-कथा से जोड़ दिया है। वास्तव में कौए और जम्बुक की यह फलसम्बन्धिनी कथा अप्रमाणिक ही है।

विद्यासागर ने 'उन्माथेन' पाठ की ओर भी ध्यान दिया है। इस पद का अर्थ अन्य टीकाकारों की तरह उन्होंने भी 'कूटयंत्र' ही लिया है। इस यंत्र के द्वारा जम्बुक के मारे जाने की घटना का यहां संकेत उन्होंने प्रकट किया है। अर्जुनमिश्र ने भी इसी घटना को उद्धृत किया हैं जो हमारे मत से 'कीलोत्पाटीवानर' की कथा से साम्य रखती है। फिर भी पाठभेद के कारण विद्यासागर किसी निश्चित कथा का निर्देश नहीं कर सके हैं।

(४) नीलकण्ठ :—'मेषयोर्युध्यतोः परस्परशिरःसंघट्ट उन्माथस्तेन दैवान्मध्ये प्रविष्टो जम्बुकोऽतिपीडनान्ममार' इति।

समीक्षा : नीलकण्ठ की व्याख्या की उपेक्षा नहीं का जा सकती। क्योंकि, *उन्होंने 'उन्माथ' का अर्थ 'परस्परशिरःसंघट्ट' दिया है और तदनुसार एक ऐसी* प्राचीन नीतिकथा का संकेत प्रकट किया है जो प्रामाणिक भी है। लड़ने वाले दो जानवरों के बीच में पड़ने के कारण तीसरा जानवर कुचल जाता है। इस विषय का कल्पना-बंध बहुत प्राचीन है। जातक में इस प्रकार की एक नीतिकथा है जिसकी हम चर्चा कर चुके है।[१] इस कथा में दो भेड़ झगड़े के कारण सिर टकरा रहे थे। उनमें सुलह स्थापित करने के लिए एक पक्षी उनके बीच में पड़ा तो बेचारा पिस गया। बुद्ध-काल से भी पूर्व यह कहानी लोककथा के रूप में अवश्य प्रचलित रही होगी। संभव है, दो भेड़ों या बैलों में झगड़ा कराने वाले चतुर सियार की कथा भी प्राचीन भारत में प्रचलित रही होगी। ऐसे कार्य में सियार का कुछ स्वार्थ ही होता था। दोनों में से किसी न किसी की मृत्यु होगी और सियार का काम बन जावेगा। बौद्धों ने लड़ने वाले दो भेड़ों के

१. तक्कारिय जाकत (४८१) की अतीत कथा २, उपकथा २।

'ष्ठिर ने अपने भक्त कुत्ते को छोड़कर स्वर्ग को जाने से इन्कार कर दिया[१]। वेदकालीन श्वान-प्रतिष्ठा का ही यह परम्परागत रूप है। ऋग्वेद की सरमा महाभारत में जनमेजय के यज्ञ में प्रकट हुई है। यम के अनुचर दो 'सारमेय' श्वान थे। महाभारत में धर्मराज का अनुचर भी एक कुत्ता है। वह अन्य चारों पाण्डवों के शरीरपात के बाद भी युधिष्ठिर का अनुसरण कर सका और स्वर्ग में पहुँच गया था। वैशम्पायन ने कहा है कि, वह श्वानरूप-धारी धर्म था। उसने अपना रूप प्रकट किया। यह श्वान पर किया हुआ देवतारोप बाद की वस्तु है। 'श्वान' को धर्म का प्रतीक माना जाने लगा। किन्तु यह अध्यारोप भी वैदिक श्वान-प्रतिष्ठा का ही प्रतिफलन है।

महाभारत के पूर्व पंचतंत्र की स्थिति

हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि, शिक्षाप्रद साहित्य एवं नीतिकथाओं को महाभारत में बाद में जोड़ा गया है। वह समय स्थूल रूप से ख्रि० पू० ३०० से लगाकर ख्रिस्ताब्द २०० तक का है जिसमें नीतिकथा का महाभारत में प्रक्षेप हुआ था। ख्रि० पू० २०० में ही 'तंत्राख्यायिक' के अस्तित्व की संभावना डा. हर्टेल ने प्रकट की है। तंत्राख्यायिक में नीतिकथाएं नीतिशास्त्र का अंग बन चुकी थीं। इसके पूर्व जातक एवं मूल पंचतंत्र (Ur-Panchatantra) में प्राणिकथा नीतिकथा का रूप धारण कर चुकी थी। इससे स्पष्ट है कि, महाभारत में नीतिकथाएं मूल पंचतंत्र, जातक और तंत्राख्यायिक के प्रभाव से ही अपनाई गई हैं। पंचतंत्र के जो बाद के संस्करण हैं उनसे कहीं पूर्व ही महाभारत में नीतिकथा प्रवेश कर चुकी थी। अब हम महाभारत की नीतिकथाओं का आलोचनात्मक विवेचन करेंगे जिससे संस्कृत नीतिकथा के महाभारतकालीन रूप का हमें परिचय प्राप्त हो सकेगा।

नीतिकथाएं

१—आदिपर्व

(१) कुत्ते की कहानी :—

'परीक्षित का पुत्र जनमेजय अपने तीनों भाइयों के साथ कुरुक्षेत्र में बड़ा यज्ञ कर रहा था। वे लोग वहां बैठे थे कि इतने में एक कुत्ता वहाँ आया। जनमेजय के भाईयों ने उसे मारा, तो चिल्लाता हुआ माँ के पास पहुँचा। उसे रोता हुआ देख माँ ने पूछा, 'तुम क्यों रोते हो? तुम्हें किसने मारा है?' इस प्रकार पूछे जाने पर उसने उत्तर दिया, 'जनमेजय के भाइयों ने मुझे मारा है।' मां ने उससे कहा, तुमने वहां जरूर कोई

---

१. म० भा०, महाप्रस्थानिक पर्व, अध्याय ३.

न कोई अपराध किया होगा, जिसके कारण तुम्हें मार पड़ी है। इस पर उसने फिर से कहा, 'मैंने कुछ भी अपराध नहीं किया। होमद्रव्य को न मैंने देखा और न छुआ।' यह सुनकर पुत्र के दु:ख से पीडित उसकी मां सरमा यज्ञ में पहुँची। वहाँ अपने बंधुओं के साथ जनमेजय दीर्घकाल तक चलने वाला यज्ञ कर रहा था। सरमा ने क्रोध में आकर कहा, 'मेरे इस लड़के ने तुम्हारा कुछ भी अपराध नहीं किया, उसने हविर्द्रव्य की ओर देखा तक नहीं और न इसे छुआ ही। फिर क्यों इसे तुमने मारा?' इस पर वे कुछ भी न बोले। तब उसने कहा, 'चूंकि बिना किसी कारण तुमने उसे मारा है, तुम्हें आकस्मिक भय प्राप्त होगा।' देवशुनी सरमा ने जब यह कहा, तब जनमेजय डर गया और उसे बड़ा दुख हुआ।[1]

कुत्ते की इस कथा में कुत्ते की मां का नाम सरमा है और उसे 'देवशुनी' कहा गया है।[2] ऋग्वेद के सरमा-पणि-सम्वाद[3] की चर्चा हम कर चुके हैं। उसी सरमा का महाभारतीय रूप उपरोक्त कथा में व्यक्त हुआ है।

महाभारत काल की इस कथा में सरमा को क्रोध आया है। क्योंकि, जनमेजय के भाइयों ने उसके पुत्र को मार भगाया था। वैदिक साहित्य में सरमा अपनी सन्तान के लिए इन्द्र से अन्न और दूध मांगती है। कुतिया का

---

१. आदिपर्व, पौष्य पर्व, अध्याय ३. १-६ (BORI cr. ed. by Sukthankar, p, 63) 1927.

"जनमेजयः पारिक्षितः सहभ्रातृभिः कुरुक्षेत्रे दीर्घसत्रमुपास्ते। तस्य भ्रातरस्त्रयः श्रुतसेनो उग्रसेनो भीमसेन इति। तेषु तत्सत्रमुपासीनेषु तत्र श्वाभ्यागच्छत् सारमेयः ॥ १॥

"जनमेजयस्य भ्रातृभिरभिहतो रोरूयमाणो मातु : समीपमुपागच्छत् ॥ २ ॥

तं माता रोरूयमाणमुवाच। किंरोदिषि। केनास्यभिहत इति ॥ ३ ॥

स एवमुक्तो मातरं प्रत्युवाच। जनमेजयस्य भ्रातृभिरभिहतोऽस्मीति ॥ ४ ॥

तं माता प्रत्युवाच। व्यक्तं त्वया तत्रापराद्धं येनास्यभिहत इति ॥ ५ ॥

स तां पुनरुवाच। नापराध्यामि किंचित् नावेक्षे हवींषि नावलिह इति ॥६॥

तच्छ्रुत्वा तस्य माता सरमा पुत्रशोकार्ता तत्सत्रमुपागच्छद्यत्र स जनमेजयः सह भ्रातृभिर्दीर्घसत्रमुपास्ते ॥ ७ ॥

स तया क्रुद्धया तत्रोक्तः अयं मे पुत्रो न किंचिदपराध्यति किमर्थमभिहत इति। यस्मादयमभिहतोऽनपकारी तस्माददृष्टं त्वा भयभागमिष्यतीति ॥ ८ ॥

जनमेजय एवमुक्तो देवशुन्या सरमया भृशं संभ्रान्तो विषण्णश्चासीत् ॥ ९ ॥

२. "जनमेजय एवमुक्तो देवशुन्या सरमया" आदि।

३. ऋ० सं० १०.१०८.

सन्तान-प्रेम यहाँ भी दिखाई देता है। उसी का महाभारतकालीन यह रूप है कि, उसने यज्ञ में जाकर राजा को भी जवाब पूछा है।

इस से स्पष्ट है कि महाभारत-काल में सरमा को 'देवशुनी' ही समझा जाता था। यास्क एवं कात्यायन ने भी उसे देवशुनी कहा है। महाभारत-काल में सरमा को निश्चित रूप से 'देवशुनी' मान लिया गया था।

एक कुतिया होते हुए भी सरमा ने जनमेजय को शाप दिया है। वैदिक युग में सरमा का महत्व कम न था। महाभारत काल में उसका गौरव और भी बढ़ गया है।

इस सारमेय-कथा से महाभारतकार ने कोई नीतितत्व निकाल कर हमारे सामने प्रस्तुत नहीं किया है। किन्तु इने-गिने शब्दों में सरमा के स्वभाव का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। सरमा ने अपने रोते हुए लड़के को पहले ही पूछ लिया था कि उसने कोई अपराध तो नहीं किया ? जब उसे विश्वास हो गया कि, वह निर्दोष था और फिर भी उसे मार पड़ी, तब वह यज्ञ में गई। वहां उसने स्पष्ट शब्दों में राजा पर अभियोग लगाया कि उसके लड़के ने यज्ञद्रव्य को देखा तक नहीं, फिर उसे क्यों मारा ! किन्तु इसका जवाब उन यज्ञ-कर्ताओं के पास कहां था ? उन्हें मौन देखकर वह क्रुद्ध हुई और उसने अभिशाप दिया। इससे यही नीतिसार निकलता है कि, बिना अपराध के किसी को दुःख पहुचाने पर अनर्थ होता है। चाहे वह क्षुद्रप्राणी भी क्यों न हो।

वैदिक समय से ही हम देख पाते हैं कि, कुत्ते एवं यम का सम्बन्ध अटूट है। हम देख चुके हैं कि, यम के अनुचर दो श्वान हैं। उन्हें 'सारमेय' कहा गया है। ऋग्वेद में सरमा इन्द्र की दूती है। उसे वैदिक टीकाकारों ने कुतिया माना है। यदि वह कुतिया है तो इन्द्र ने अपने शत्रुओं—पणियों को आगामी संकट या मृत्युदण्ड की सूचना देने के लिए ही सरमा को अपनी दूती बना कर उन को ओर प्रेषित किया है। इन्द्र का यह कौशल है कि, उसने देवशुनी को ही दूति के रूप में चुना और भेजा। महाभारत से हमें ज्ञात होता है कि, युधिष्ठिर धर्मपुत्र है। स्वर्गगमन के समय में युधिष्ठिर के साथ एक कुत्ता था, जिसे देवेन्द्र अपने स्वर्ग में लेने से इन्कार कर रहे थे। उन के अनुसार कुत्ते को स्वर्ग में प्रतिबन्ध था। इसका क्या कारण हो सकता है ! धर्मराज यम की प्रतिष्ठा स्वर्ग में नहीं थी। कारण स्पष्ट है। अजर-अमर देवों की बस्ती स्वर्ग में मृत्यु के देवता यम की भला क्या प्रतिष्ठा हो सकती है ! और यम की ही जहां प्रतिष्ठा नहीं थी, वहां उनके अनुचर कुत्तों को भी कोई स्थान नहीं था। यम का साम्राज्य तो मृत्यु-लोक में है, यद्यपि उसका निवास भले ही स्वर्ग में रहा हो।

युधिष्ठिर को धर्म अर्थात् यम का पुत्र माना गया है। अपने पुत्र के आग्रह पर यम को भी स्वर्ग में गौरव मिला है। किन्तु एक तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि, युधिष्ठिर ने कुत्ते को ही साथ में ले जाने का आग्रह किया था। उस समय वह आग्रह यम के लिए नहीं था। यम ने तो अपना रूप बाद में प्रकट किया है। वास्तव में कुत्ते की स्वामिपरायणता से प्रभावित हो कर ही युधिष्ठिर ने उसे स्वर्ग में साथ ले जाने का आग्रह किया है। यह प्राचीनतम श्वानप्रतिष्ठा का ही परम्परागत रूप है। वैदिक जन 'श्व' से परिचित होने के बाद ही अश्व (अ-श्व) से परिचित हुए होंगे तो आश्चर्य नहीं। भाष्यकाल में श्वान प्रतिष्ठा का रूप हम देख चुके है, यद्यपि कुत्तों को बहुत महत्वपूर्ण स्थान भले ही न दिया गया हो।

कुत्ते की कथा में जनमेजय को सरमा ने शाप दिया है—'तुम्हें आकस्मिक भय प्राप्त होगा।' यह सुनकर जनमेजय बहुत दुखी हुआ। यह आकस्मिक भय मृत्यु के अतिरिक्त क्या हो सकता है? कितना भी श्रेष्ठ सांसारिक मनुष्य हो, उसे मृत्यु का भय होता ही है। सरमा यम से सम्बन्धित है। उसके दो लड़के सारमेयौ यम के अनुचर हैं। इससे स्पष्ट है कि, कुत्ते का यम के साथ प्राचीन काल से अटूट सम्बन्ध माना गया है।

लोकविश्वास भी इस तथ्य की पुष्टि करता है। रात के सन्नाटे में कोई कुत्ता यदि रोने की आवाज निकालता है, तो लोग भय से आक्रान्त हो कर किसी की मृत्यु की आशंका व्यक्त करते हैं। इसके पीछे भी वही परम्परागत विश्वास है कि, यम अपने कुत्तों को प्रथम भेजता है। सम्भवतः, इसी लिए कुत्ते का यज्ञ आदि शुभ कार्यों में प्रवेश निषिद्ध था।

यह कथा गद्य में सुरक्षित है। महाभारतकालीन गद्य का यह प्राचीन नमूना है। अत्यन्त सरल एवं छोटे वाक्यों में यह कहानी कही गई है। संभव है यज्ञ प्रसंगों पर यह कथा प्राचीन समय से ही कही सुनी जाती हो।

(२) गज और कच्छप की कथा:[१]

गरुड अमृत लाने के लिए जा रहा है। उसे भूख लगी है। तब कश्यप ने उसे पास के सरोवर में युद्ध करने वाले कछुवे और हाथी को मार कर खाने की सलाह दी। यह हाथी और कछुआ पूर्वजन्म में सुप्रतीक और विभावसू नाम के दो भाई थे जो धन का बंटवारा करने के लिए झगड़ते थे। झगड़ते हुए उन्होंने एक दूसरे को अभिशाप दिया, इसीलिए वे हाथी और कच्छप बनकर उस सरोवर में झगड़ते थे।

---

१. म. भा. आस्तिकपर्व, अध्याय २९. १३-३१.

विशुद्ध नीतिकथा का यह रूप नहीं है। मूलतः हाथी और कछुवे की कोई प्राणिकथा रही होगी, उसे ही यहां दैवतकथा का रूप दिया गया है। पूर्वजन्म की घटना का हाथी और कछुवे के वर्तमान युद्ध से संबंध दिखाया जा चुका है। अतः वह प्राणिकथा नहीं रहने पाई। इस प्राणिसंबंधी दैवतकथा से प्राचीन काल की नीतिकथा की अवश्य जानकारी मिल सकती है। इससे एक नीतिसार यह लिया जा सकता है कि, दोनों का झगडा तीसरे के लिए लाभदायक सिद्ध होता है। हाथी और कछुआ जब तक झगड़ेंगे तब तक गरुड़ उन्हें मारकर खा ले यह कश्यप की सलाह इसी अर्थ से समीचीन दिखाई देती है।

यह एक प्राचीन भारतीय कल्पना-बन्ध रहा है कि, कोई जलचर प्राणी किसी स्थलचर और बलशाली प्राणी को भी अपने जलक्षेत्र में आने पर ग्रस लेता है। गजेन्द्र मोक्ष की दैवतकथा भी उसीसे निकली हुई है। मगर के द्वारा पानी में की गई शेर की शिकार प्राचीन नीतिकथा का विषय बन चुकी थी। उसी मूल कल्पनाबंध का महाभारत-कालीन रूप गज और कच्छप के वृतान्त में प्रकट हुआ है।

(३) कणिक नीति में जम्बुक-कथा

पाण्डवों के बल और यश को बढ़ते हुए देखकर धृतराष्ट्र ने 'मंत्र और राजशास्त्रार्थ' के ज्ञाता मंत्रिश्रेष्ठ कणिक[1] को बुलाकर कहा, 'हे ब्राह्मण श्रेष्ठ, मुझे संधि-विग्रह के विषय में निश्चित सलाह दो। मैं तुम्हारे वचन के अनुसार कार्य करूँगा।' तब प्रसन्न चित्त से कणिक ने उसे स्पष्ट शब्दों में राजशास्त्र का उपदेश दिया। उसने कहा, "महाराज, मैं जो कुछ कहूँगा उसे सुनो, नाराज न होना। हमेशा दण्डधारी रहकर पौरुष से काम लेना चाहिए।[2] अपने छिद्रों को न रखकर दूसरे के छिद्रों का अन्वेषण करना चाहिए। नित्य दण्ड करने से भी जनता उत्तेजित हो जाती है। इसलिए राजनीति से ही सब कार्य करना चाहिए। दूसरा व्यक्ति अपना दोष-छिद्र न देख पावे, स्वयं परछिद्रान्वेषी अवश्य हो,

---

१. कणिक, या कर्णिक? डा. सुकथंकर ने कणिक पाठ लिया है। कर्णिक बम्बई संस्करण का पाठ है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में राजशास्त्र के सात आचार्यों में कणिक का भी उल्लेख किया है।

२. राजनीति के इस सिद्धान्त का उपदेश जातक की निम्नलिखित गाथा में भी दिया गया है:—

(नेव दुट्ठे नयो अत्थि न धम्मो न सुभासितं।)
निक्कमं दुट्ठे युञ्जेथ, सोत्र सम्भिन्य रज्जति ॥
(जा० ४२६ गा० ८)

एक कछुआ जिस प्रकार अपने अंग पेट में छिपा लेता है उस प्रकार अपने छिद्र को छिपा लेना चाहिए। अपकारी पर कभी उपकार न करे। कटा हुआ कांटा भी बहुत देर तक रक्त के बहाने का कारण हो जाता है। अपकारी शत्रु का वध ही करना चाहिए।" इत्यादि.

इस पर धृतराष्ट्र ने पूछा कि साम, दाम, भेद या दण्ड से शत्रु को किस प्रकार मारना चाहिए? कणिक ने कहा, राजन्, पहले वन में रहने वाले 'नीतिशास्त्रार्थ' के पंडित जम्बुक की कथा सुनिये :[१]

एक चतुर सियार था। वह कृतप्रज्ञ एवं बड़ा स्वार्थपंडित था। व्याघ्र, चूहा, भेड़िया और नेवला उसके मित्र थे। वह वन मे उनके साथ रहा करता था। उन्होंने एक बड़े बलवान् मृग को वन में देखा। उसे वे पकड़ न सके। अतः आपस में उन्होने विचार किया। सियार ने व्याघ्र से कहा, 'तुम इसे मारने का कई बार प्रयास कर चुके हो किन्तु वह हाथ न आया। अतः वह जब सो जायगा तब चूहा उसके पैरों को काटेगा। बाद में व्याघ्र उसे पकड़ लेगा। फिर हम सभी लोग उसे खा जावेंगे।'

---

३. म. भा. आदिपर्व, सम्भवपर्व, अध्याय १४०.

Dr. Sukthankar (cr. ed.) BORI, Appendix I, pp. 931-32 (L 51-103.)

"श्रृणु राजन् यथावृत्तं वने निवसतः पुरा।
जम्बुकस्य महाराज नीतिशास्त्रार्थदर्शिनः॥
अथ कश्चित् कृतप्रज्ञः श्रृगालः स्वार्थपण्डितः।
सखिभिर्न्यवसत् सार्धं व्याघ्राखुवृकबभ्रुभिः॥
तेऽपश्यन् विपिने तस्मिन् बलिनं मृगयूथपम्।
अशक्ता ग्रहणे तस्य ततो मन्त्रममन्त्रयन्॥

जंबुक उवाच—असकृद्यातितो ह्येष हन्तुं व्याघ्र वने त्वया।
युवा वै जवसम्पन्नो बुद्धिशाली न शक्यते॥
मूषिकोऽस्य शयानस्य चरणौ भक्षयत्वया।
अथैनं भक्षितः पादैर्व्याघ्रो गृह्णातु वै ततः॥
ततो वै भक्षयिष्यामः सर्वे मुदितमानसाः।

कणिक उवाच—जम्बुकस्य तु तद्वाक्यं तथा चक्रुः समाहिताः॥
मूषिकाभक्षितैः पादैर्मृगं व्याघ्रोऽवधीत्तदा।
दृष्ट्वा विचेष्टमानं तु भूमौ मृगकलेवरम्।

सियार की इस सलाह के अनुसार सभी ने अपना काम किया। चूहे ने मृग के पैरों को काट खाया था इसलिए मृग तेजी से भाग न सका और व्याघ्र ने उसे

स्नात्वागच्छत भद्रं वो रक्षामीत्याह जम्बुकः ॥
शृगालवचनात्तेऽपि गताः सर्वे नदीं ततः।
स चिन्तापरमो भूत्वा तस्थौ तत्रैव जम्बुकः ॥
अथाजगाम पूर्वं तु स्नात्वा व्याघ्रो महाबलः।
ददर्श जम्बुकं चैव चिन्ताकुलितमानसम् ॥
व्याघ्र उवाच—किं शोचसि महाप्राज्ञ त्वं नो बुद्धिमतां वरः।
अशित्वा पिशितान्यद्य विहरिष्यामहे वयम् ॥
जम्बुक उवाच—शृणु मे त्वं महाबाहो यद्वाक्यं मूषिकोऽब्रवीत्।
धिग्बलं मृगराजस्य मयाद्यायं मृगो हतः ॥
मद्बाहुबलमाश्रित्य तृप्तिमद्य गमिष्यति।
गर्जमानस्य तस्यैवमतो भक्ष्यं न रोचये ॥
व्याघ्र उवाच—ब्रवीति यदि सह्येवंकाले ह्यस्मिन् प्रबोधितः।
स्वबाहुबलमाश्रित्य हनिष्येऽहं वनेचरान् ॥
खादिष्ये तत्र मांसानि इत्युक्त्वा प्रस्थितो वनम्।
एतस्मिन्नेव काले तु मूषिकोऽप्याजगाम ह ॥
तमागतमभिप्रेक्ष्य शृगालोऽप्यब्रवीद्वचः।
जम्बुक उवाच—शृणु मूषिक भद्रं ते नकुलो यदिहाब्रवीत् ॥
मृगमांसेन खादेयं गरमेतन्न रोचते।
मूषिकं भक्षयिष्यामि तद्भवाननुमन्यताम् ॥
तच्छ्रुत्वा मूषिको वाक्यं संत्रस्तः प्राद्रवद् भयात्।
ततः स्नात्वा स वै तत्र आजगाम वृको नृप ॥
तमागतमिदं वाक्यमब्रवीज्जम्बुकस्तदा।
"मृगराजो हि संक्रुद्धो न ते साधु भविष्यति ॥
सकलत्रस्त्विहाऽऽयाति कुरुष्व यदनन्तरम्।"
एवं संचोदितस्तेन जम्बुकेन तदा वृकः ॥
वृकावलुम्पनं कृत्वा प्रयातः पिशिताशनः।
एतस्मिन्नेव काले तु नकुलोऽप्याजगामह ॥
तमुवाच महाराज नकुलं जम्बुको वने।
"स्वबाहुबलमाश्रित्य निर्जितास्तेऽन्यतो गताः ॥
मम दत्वा नियुद्धं त्वं भुंक्ष्व मांसं यथेप्सितम्।

पकड़ कर मारा। उसे मरा पड़ा देख सियार ने कहा, 'सब नहाकर आओ, तब तक में इसकी रक्षा करूँगा। यह सुनकर सभी स्नान के लिए चले गये। तब चिन्तित होकर सियार वहीं खड़ा रहा। स्नान करके वहां पहले शेर आया तब उसने उसकी चिन्ता का कारण पूछा। तब सियार बोला, 'चूहा कहता है कि, मैंने ही मृग को मारा है। किन्तु मेरे बाहुबल से ही आज व्याघ्र की तृप्ति होगी।' यह सुनकर व्याघ्र ने कहा 'हम दूसरे के शिकार को हाथ नहीं लगाते। हम कहीं और दूसरा प्राणी मार लेंगे।' और वह चल दिया। उसी समय चूहा भी आया। तब चूहे को सियार ने कहा, 'नेवला इस मृग के मांस को पसंद नहीं करता, क्योंकि वह दूषित है। वह तो अब तुम्हें ही मार खाने को सोच रहा है।' यह सुनते ही चूहा डर कर भाग गया। बाद में भेड़िया वहां आया। सियार ने उसे कहा कि, व्याघ्र बहुत नाराज हो गया है। वह अपनी पत्नी को लेकर यहाँ आ रहा है। अब तुम्हारा भविष्य ठीक नहीं है।' यह सुन कर भेड़िया भी चलता बना। फिर नेवला आया। तब उस सियार ने उसे ललकारा, 'मैंने सभी प्राणियों को भगा दिया हैं। अब तुम बाहुयुद्ध कर के ही इस मृग का मांस खाओ।' नेवले ने कहा, 'यदि तुमने व्याघ्र और भेड़िये जैसे प्राणियों को जीत लिया है तो तुम वास्तव में वीर हो। तुम्हारे साथ कौन युद्ध करे।' इतना कहकर वह भी चलता बना।

इस प्रकार सब प्राणी चले गये तब प्रसन्नचित्त होकर अकेले सियार ने मंत्रणा के बल पर वह मांस खाया।

इस प्रकार का आचरण कर के राजा को सुख प्राप्त करना चाहिए। डरपोक को डर दिखाकर शक्तिहीन करना चाहिए और शूर को हाथ जोड़कर अपना बना लेना चाहिए। लोभी को द्रव्य देकर और समानबल या शक्तिहीन व्यक्ति को अपनी वीरता से जीत लेना चाहिए।

नकुल उवाच—"मृगराजो वृकश्चैव बुद्धिमानपि मूषिकः ।।
निर्जिता यत्त्वया वीरास्तस्माद्वीरतरो भवान् ।
न त्वयास्युत्सहे योद्धुमित्युक्त्वा सोऽप्युपागमत् ।।

कणिक उवाच—एवं तेषु प्रयातेषु जम्बुको हृष्टमानसः ।
खादति स्म तदा मांसमेकः सन्मन्त्रनिश्चयात् ।।
एवं समाचरन्नित्यं सुखमेधति भूमिपः ।
भयेन भेदयेद् भीरुं शूरमंजलिकर्मणा ।।
लुब्धमर्थप्रदानेन समं न्यूनं तथौजसा ।
एवं ते कथितं राजन् शृणु चाप्यपरं तथा ।।

यह कहानी बड़ी मार्मिक है और इसका नीतिसार है मनुष्य को बड़े के साथ आदर से, डरपोक को डराकर, बराबरी के या शक्तिहीन व्यक्ति के साथ बाहुबल से पेश आकर अपना स्वार्थ पूरा कर लेना चाहिए।

ठीक इसी प्रकार की कहानी पंचतंत्र में भी आ चुकी है।[१] वहां सियार, सिंह, व्याघ्र और चीते की कथा है। इसमें सियार ने सिंह, व्याघ्र और चीते को अपने बुद्धिबल से भगा दिया है और अकेला ही अपना भोजन प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार की कथा जैन साहित्य में भी मिलती है।[२] इस में सियार मरे हुए हाथी को अकेला ही खाना चाहता है। तब उसने सिंह को नम्रता से, व्याघ्र को डराकर, कौए को थोड़ा सा मांस का टुकड़ा देकर तथा दूसरे सियार को पद-प्रहार कर भगा दिया है।

इन तीनों नीतिकथाओं का सारतत्व एक ही है। महाभारत की जम्बुक-कथा के अन्त मे कहा है :—

"भयेन भेदयेद्भीरुं शूरमंजलिकर्मणा।
लुब्धमर्थप्रदानेन समं न्यूनं तथौजसा॥"[३]

यह नीतितत्व पंचतंत्र के निम्नलिखित पद्य मे व्यक्त हुआ है :—

"उत्तमं प्राणिपातेन शूरं भेदेन योजयेत्।
नीचमल्पप्रदानेन समशक्तिं पराक्रमैः॥"[४]

यही पद्य जैन कथा 'गीदड़ की राजनीति' में भी मिलता है।

हम देख चुके हैं कि, पंचतंत्र के प्रभाव से ही जैनों ने कथा 'गीदड़ की राजनीति' और उपरोक्त पद्य को अपनाया है। महाभारत में भी तंत्राख्यायिक या मूलपंचतंत्र के प्रभाव से यह कथा अपना ली गई है। जो थोड़ा बहुत परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है उसका कारण यह है कि, महाभारत में नीतिकथा का प्रवेश हो रहा था उस समय लोगों में भी पंचतंत्र की नीतिकथाएं कही सुनी जाती थी। इसीलिए मूल ग्रन्थ की कथा में और लोकवाणी में प्रचलित कथा में थोड़ा परिवर्तन हो गया है।

---

१. पं० तं० ४, कथा १०.

२. दशवैकालिक चूर्णि, पृ० १०४-५ गीदड़ की राजनीति (३१) डा० जगदीशचन्द्र जैन द्वारा हिन्दीकथानुवाद, दो हजार वर्ष पुरानी कहानियां, पृष्ठ १०५.

३. म. भा० वही, पद्य ५०-५१ (पद्य ५०) का द्वितीय चरण और पद्य (५१) का प्रथम चरण। सम्भव है दोनों चरण एक ही पद्य के रहे होंगे।

४. पं० तं० ४. १०. पद्य ७० एवं ७६.

इस जम्बुक-कथा का समान रूप जातक में नहीं मिलता। केवल पंचतंत्र में ही वह कहानी है। जातक के पूर्व भी यह कहानी रही थी या नहीं इस विषय में संदेह प्रकट किया जा सकता है। किन्तु तंत्राख्यायिक एवं पंचतंत्र के आधार-भूत मूलग्रन्थ की प्राचीनता जातक से अधिक हो सकती है। जातककार का दृष्टिकोण किसी कथा को अपनाते समय भिन्न था। मुख्य रूप से किसी राज-नीति का पाठ या उपदेश देने के लिए, जातककार ने प्राणिकथाओं को नहीं अपनाया था। वह विशेषता तो अनजाने हो व्यक्त हो गई है। किन्तु क्षमा, दम, क्षान्ति आदि पारमिताओं का उपदेश देने के उद्देश्य से ही जातककार ने उन्हें अपनाया था। यहां यह ध्यान देने योग्य बात है कि सियार पंचतंत्र एवं महाभारत की नीतिकथाओं में चतुर एवं राजशास्त्रार्थ का पंडित दिखाया गया है। किन्तु जातक मे उसकी बुद्धि-चतुरता का कोई परिचय हमें नहीं मिलता। जातक में सियार को ढोंगी, कपटी एवं लोभी दिखाया है। बिलारवत-जातक (१२८); अग्गिक जातक (१२९), सिगाल जातक (११३) आदि इस बात के साक्षी हैं। विरोचन जातक (१४३ में तो सिंह के पराक्रम की नकल करने वाले सियार का उपहास किया गया है। गुणजातक (१५७) में सियार ने सिंह को दलदल से निकाल कर अच्छा कार्य अवश्य किया है। किन्तु ऐसा नहीं दिखाई देता कि, सियार ने वह कार्य युक्ति या बुद्धि के बल पर किया हो।

बात यह है कि, राजनीति की चतुरता एवं किसी को कपट या संधि, भेद, विग्रह आदि उपायो से पराजित करने की नीति का समर्थन बुद्धदेव नहीं करना चाहते थे। बुद्धदेव और अन्य बौद्ध भी राजनीति के दावपेंच से दूर रहना ही मनुष्य के लिए श्रेयस्कर मानते थे। भारतीय नीतिशास्त्रकारों ने सियार को राजनीति का पंडित एवं चतुर दिखाया है। किन्तु बौद्धो ने उसकी चतुरता का कोई निर्देशन प्रस्तुत नही किया। ब्राह्मणों ने राजनीति के शास्त्र को काफी महत्व दे रखा था। राजाओं की सभा-मण्डली में ब्राह्मणों का नीतिशास्त्र के कारण आदर भी होता था। ब्राह्मण-धर्म के विरोधी बुद्धदेव ने उस नीतिशास्त्र की विचारधारा का ही परित्याग कर दिया। दूसरे को धोखा देकर बेईमानी से राज्य का सुख प्राप्त करने के षड्यन्त्रों में स्व-राज्य को त्यागने वाले बुद्धदेव कैसे विश्वास कर सकते थे?

किन्तु बौद्धो द्वारा उपेक्षित रहने पर भी नीतिशास्त्र पनपता रहा। महाभारत इसका साक्षी है। नीतिशास्त्र को अपनाकर महाभारतकार ने उसे सम्मानित किया। नीतिकथाओं के सियार जैसे चतुर एवं नीतिशास्त्र-निपुण पशुओं को महाभारतकार ने भी उसी रूप में अपनाया जिस रूप में पंचतंत्र तथा अन्य नीतिशास्त्रीय ग्रंथो के दृष्टान्तों में उनका चरित्रचित्रण किया गया था।

वास्तव में प्रज्ञावाद को सभी ने अपना लिया था। जातक की अपेक्षा महाभारत-पंचतंत्र में वह अधिक है। यही कारण है कि जातक में उपरोक्त धूर्त जम्बुक की कथा का समान रूप नहीं मिलता।

स्व० सुकथनकरजी ने महाभारत में 'कणिक नीति' को प्रक्षिप्त अंश माना है।[१] इसीलिए उन्होंने उसे आदिपर्व से निकाल कर अपने संस्करण के परिशिष्ट में उद्धृत कर दिया है। 'कणिक-नीति' बाद में जोड दी गई है इस कथन की पुष्टि के लिए डॉ. सुकथनकर ने निम्नलिखित कारण दिये हैं :

(१) शान्तिपर्व में भारद्वाज ने इसी प्रकार का उपदेश शत्रुन्जय को दिया है।[२]

(२) क्षेमेंद्र की 'भारत-मंजरी' में 'कणिक नीति' नहीं मिलती।

(३) महाभारत के तेलगु अनुवाद तथा जावानीज संहिता में यह अंश नहीं मिलता।

(४) देवबोध की टीका में भी इसका अभाव है, तथा—

(५) काश्मीरी पाण्डुलिपि (शारदा) में भी यह अंश नहीं है।

इस पर श्री सी. व्ही. वैद्य का कथन है कि, शान्तिपर्व में यह अंश होने के कारण काश्मीरी पाण्डुलीपिकार ने आदिपर्व में उसे छोड़ दिया है। इसीलिए काश्मीरी क्षेमेन्द्र ने भी अपनी 'भारत-मंजरी' में उसका ग्रहण नहीं किया। तेलगु अनुवाद नहीं हुआ। इसीलिए तेलंगाना से जावा में गई प्रति में 'कणिक नीति' नहीं थी।[3]

श्री. पी. पी. सुब्रह्मण्य शास्त्री ने मद्रास की नई एवं विशुद्ध संहिता प्रकाशित की उसमें कणिकनीति मिलता है। इस आधार पर श्री वैद्य कणिक-नीति को आदिपर्व से अलग किये जाने के पक्ष में नहीं हैं।

यहाँ हमें यही कहना है कि, महाभारत में कई जगह पर पुनरुक्तियां आती है। नीति के उपदेश आदिपर्व एवं शान्तिपर्व दोनों में मिलते है। इसे पुनर्लेखन ही कहा जा सकता है। आदिपर्व की 'कणिक नीति' के दो अंश हैं। एक में उपदेश है और दूसरे में नीतिकथा (fable) है। शान्ति-पर्व में यही उपदेश भारद्वाज ने राजा शत्रुन्जय को सुनाया है।[४] दोनों उपदेश

---

१. Sukthankar's cr. ed. Adiparva, 1933, p. 574 and Appendix I p. 929.

२. म० भा० १२. १४०.

३. श्री वैद्य द्वारा संपादित सार्थ महाभारत, भाग २, उपोद्घात (मराठी), पृ. ५. ६.

४. म० भा०, अ० १२ १४०.

एक ही है। किन्तु शान्तिपर्व में भारद्वाज ने उपदेश के साथ-साथ जम्बुक को नीतिकथा नहीं सुनाई। आदिपर्व में यह कथा दी गई है।

स्व० सुकथनकरजी ने आदिपर्व से कणिकनीति को हटाकर परिशिष्ट में रख दिया है, क्योंकि वह काश्मीरी (शारदा) पाण्डुलिपि में नहीं मिलती। किन्तु अन्य संस्करणों में कणिकनीति आदिपर्व में मिलती है।

वास्तव में जैसा कि हम देख चुके हैं, नीतिकथाएं एवं नीतिशास्त्र के उपदेश महाभारत में बाद में जोड़ दिये गये अंश हैं। संभव है, आदिपर्व में उपदेश और नीतिकथा से युक्त कणिकनीति को अपना लेने के उपरान्त शान्ति-पर्व में केवल उपदेश को ही दुहराया हो। यदि जम्बुक कथा को भी दुहराया जाता तो पाठक को यह बात खटकती। इसीलिए एक ही कहानी दुबारा दो भिन्न वक्ताओं के द्वारा सुनाने की गलती नहीं की गई। उपदेश के वचन बारंबार आ सकते हैं। कहानी यदि पुनः कही जाती है तो उसका कोई प्रभाव नहीं रहने पाता। महाभारत में नीति-विषयक अंश जोड़नेवालों ने इस रहस्य को ध्यान में रखकर ही महाभारत की वृद्धि की है।

(४) शार्ङ्गक-जरिता-सम्वाद[१]

इस सम्वाद में एक पक्षिकथा सुरक्षित है। कहानी है :—

खाण्डव वन जलने लगा, तब जरिता नामक पक्षिणी एवं उसके बच्चे शार्ंगक भयभीत हो गये। जरिता ने विलाप किया :

अयमग्निर्दहन् कक्षमित आयाति भीषणः।
जगत्सन्दीपयन् भीमो मम दुःखविवर्धनः। ३॥
हते च मां कर्षयन्ति शिशवो मन्दचेतसः।
अबर्हैश्चरणैर्हीनाः पूर्वेषां नः परायणम् ॥
त्रासयंश्चायमायाति लेलिहानो महीरुहान् ॥४॥
अशक्तिमत्वाच्च सुता न शक्ताः सरणे मम।
आदाय च न शक्नोमि पुत्रान्तरितुमन्यतः ॥५॥
न च त्यक्तुमहं शक्ता हृदयं दूयतीव मे।
कं तु जह्यामहं पुत्रं कमादाय व्रजाम्यहम् ॥६॥
किं नु मे स्यात् कृतं कृत्वा मन्यध्वं पुत्रकाः कथम्।
चिन्तयाना विमोक्षं वो नाधिगच्छामि किंचन।
छादयित्वाच वो गात्रैः करिष्ये मरणं सह ॥७॥

---

१. आदिपर्व, २२१, २२२ (BORI cr. ed. Sukthankar) pp. 863-867.

परिवारो कुलं हीदं ज्येष्ठत्वेन प्रतिष्ठितम् ।
सारिसृक्वः प्रजायेत पितॄणां कुलवर्धनः ॥८॥ इ०

पक्षिणी का अपने नन्हे मुन्नों को बचाने के लिए किया हुआ यह करुणा-पूर्ण विलाप मन पर प्रभाव करता है। वह कहती है : 'बच्चों, मैं अपने परों में तुम्हें छिपा लूंगी और तुम्हारे साथ ही जल मरूंगी।' साहित्य की दृष्टि से इस नीतिकथा का यह अंश बहुत ही सरस एवं सुन्दर बन पड़ा है। अपने बच्चों को उसने चूहों के बिल में घुसने को कहा। उसने कहा, 'मैं उस बिल का द्वार मिट्टी से बन्द कर दूंगी।'

इस पर शार्ङ्गक मां को कहने लगे, 'अभी तो हमारे पंख भी नहीं आये। हम मांस के पिण्ड मात्र हैं। हमें बिल में चूहे खा जायेंगे। इससे तो आग से मृत्यु आना अच्छा।'

इस पर जरिता ने कहा, 'उस बिल से चूहा बाहर निकला था, तब बाज पक्षी उसे पकड़ कर ले गया है। तुम्हें डरने का कारण नहीं है। किन्तु शार्ङ्गक पक्षी बिल में घुसने के लिए तैयार नहीं हुए। उन्हें दूसरे चूहों का भी तो भय था। मां को उन्होंने उड़ जाने को कहा। जरिता ने उन्हें बहुत कुछ समझाया किन्तु वे चूहों के बिल में नहीं गये। अन्त में निराश हो कर जरिता वहां से उड़कर दूसरे स्थान को चली गई।

यह 'शार्ङ्गकोपाख्यान' मां और बच्चों के इस मार्मिक संवाद से महत्वपूर्ण हो गया है। पक्षियों की मां भी संकट में किस प्रकार अपने बच्चों के लिए रो पड़ी है, उसका चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है।

यह नीतिकथा भी दैवतवाद से प्रभावित है। ऋषि मन्दपाल के पुत्र शार्ङ्गक थे। ये पक्षी थे। मनुष्य के द्वारा पक्षी का जो जनन-सम्बन्ध है, वह पुराने दैवतवाद का एक रूप मात्र है। किन्तु जहां तक पक्षिणी और उसके बच्चों का सम्वाद है, हमें उसमें प्राचीन पक्षी-कथा का बोध हो जाता है।

२. वनपर्व

मनु और मत्स्य की कथा

ब्राह्मणों की कथाओं पर चर्चा करते समय शतपथ ब्राह्मण की मनु एवं मत्स्य की कथा पर विचार हम कर चुके हैं।[१] उसी कथा का यह महा-भारतीय रूप है। मत्स्यावतार की मूल कल्पना शतपथ की कथा में व्यक्त हो चुकी है। उसी का कुछ विकसित रूप हमें महाभारत की कथा में दिखाई देता

१. श. प. ब्रा. १, १-६; देखिए प्रस्तुत ग्रंथ के अध्याय ४ में 'मत्स्यावतार की मूलकथा।'

है। दोनों में काल-भेद से कुछ परिवर्तन अवश्य हुए हैं, किन्तु मूल कथानक वही है।

इस कहानी से स्पष्ट हो जाता है कि, महाभारत का ब्राह्मण ग्रंथों के साथ सीधा सम्पर्क था। वैदिक कथाओं की परम्परा में महाभारत एक ऐसा केन्द्र है जिसमें प्राचीन कथाओं का संग्रह हो गया। इन कथाओं में मनु एवं मत्स्य की कथा भी आ गई है। मत्स्यावतार की कल्पना का पूर्व रूप हमें इस कथा मे दिखाई देता है। पूराणों में इसी का अवतार कथा में रूपान्तर हो गया है। मत्स्य का अवतार लेकर भगवान विष्णु ने पृथ्वी की रक्षा की। इस अवतार कथा की अपेक्षा महाभारत की मनु एवं मत्स्य की कथा शतपथ की आख्यायिका के अधिक निकट है। ब्राह्मण ग्रंथों की रचना के बाद जातकों में बौद्धों की नैतिकथाएं अवश्य प्रकट हुई हैं। किन्तु वैदिक कथा-साहित्य का विकास जातक में न होकर महाभारत में हुआ है। यह स्वाभाविक भी था। इस दृष्टि से ब्राह्मण ग्रंथों एवं महाभारत आदि पुराणों का परस्पर सम्बन्ध अधिक दृढ़ रहा है।

उपरोक्त कथा में मत्स्य मनु को कहता है कि 'बड़े मत्स्य छोटे मत्स्यों को खा डालते हैं।' इस प्राणि-विषयक तथ्य को लोग भलीभाँति समझ चुके थे। इसीलिए उसे 'मात्स्यन्याय' का रूप दिया गया था। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में इस मात्स्यन्याय का उल्लेख किया है :-

अप्रणीतो हि मात्स्यन्यायमुद्भावयति ।
बलीयानबलं हि ग्रसते दण्डधराभावे ॥[१]

किन्तु इस 'मात्स्यन्याय' की ओर शतपथ मे कोई संकेत नहीं है। शतपथ का मत्स्य आप से ही मनु के चुलुक में आ जाता है। महाभारत का मत्स्य अपनी जाति मे बड़े छोटों को निगल जाते हैं, इस तथ्य को सामने रख रहा है। यहां मात्स्यन्याय को ओर स्पष्ट संकेत है। इससे यही कहा जा सकता है कि, ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद महाभारत काल में इस तथ्य को न्याय का रूप मिला है। कौटिल्य का समय भी महाभारत के वृद्धि-काल से दूर नहीं है।

---

१. कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, ed. J. Jolly, Vol 1., 1923, Chapt. 4. p 6. आधुनिक रशियन कहानीकार श्री सालोगाव ने भी 'टू फिशेस' में इसी मात्स्यन्याय का उपयोग किया है। उनका प्रतिपाद्य आशय (theme) है, उच्च श्रेणी का वर्ग निम्न श्रेणी के वर्ग का शोषण करता है। इसे दिखाने के लिए बड़ा मत्स्य छोटे मत्स्य को खा लेता है। यहां उसी प्राचीन घटना एवं न्याय का आधुनिक साम्यवाद की पुष्टि के लिए उपयोग किया गया है।

कौओं ने उपहास कर कहा, सौ प्रकार से उडाने भरनेवाले कौए को एक प्रकार की उड़ान भरने वाला यह हंस क्या जीत सकेगा।

बाद में दोनों अंतरिक्ष में उड़े। कौआ अपनी एक सौ एक प्रकार की चालें दिखाने लगा, किन्तु हंस एक ही गति से उड़ने लगा। कौए के गतिवैचित्र्य को देख सब कौए हंस का उपहास करने लगे। जब कौआ आगे निकलता तब वे आनंद से विभोर हो उठते। हंस ने अपनी मंद गति एक सी रखी थी। इसलिए वह कुछ समय तक पीछे उड़ रहा था। इस दृश्य को देख कौए हंसों को कहने लगे, 'देख लो, हंस पीछे रह गया।' आकाशगामी हंस ने उनकी यह चिल्लाहट सुनी और पश्चिम की ओर वह तीव्र गति से जाने लगा। कौआ भी उस ओर गया। किन्तु जब उसने देखा कि, विश्राम के लिए समुद्र पर कोई पेड़ या द्वीप नहीं है, वह घबरा गया। उस भयंकर सागर को उसने देखा। हंस समझ गया कि, कौए को उसके साथ उड़ते नहीं बनता। वह कौए के लिए मार्ग में ठहर गया, तब थका मांदा कौआ उसके समीप पहुंचा। यह समझ कर कि अब यह कौआ पानी में डूब कर मर जाएगा, हंस ने अपने सज्जनव्रत को ध्यान में रखकर उसे कहा,

'अब तक कई प्रकार के उड़ानें तुमने दिखायीं। अब यह तो बताओ, यह कौन सी उड़ान है? इस उड़ान को क्या कहते हैं? अब तो तुम अपने पैरों एवं चोंच से पानी उड़ा रहे हो। इसे कौन सी गति कहते हैं? डरो नहीं, शीघ्र आओ, मैं तुम्हारे लिए यहां रुका हुआ हूं।'

शल्य ने कर्ण से कहा, हंस के ये शब्द उसने सुने तब पानी पर छटपटाता हुआ वह निराश कौआ हंस से कहने लगा, 'हम कौओं में शक्ति कहां? हम केवल कांव-कांव करते घूमते हैं। मैं आपकी शरण में आया हूं। मुझे जीवनदान देकर किनारे पर छोड़ दीजिए।'

इतना कहने के बाद वह कौआ समुद्र में गिर पड़ा। अब वह जीवित न रहेगा यह देख हंस ने उसे कहा, 'अब अपनी प्रशंसा का तुम्हें स्मरण करना चाहिए।' इस पर कौए ने कहा, 'मुझे बचाओ। मैं किसी का अपमान नहीं करूंगा।' उसे मरता हुआ देख हंस ने अपने पैरों से उसको उठाया और पीठ पर बिठा कर किनारे पर ला छोडा। बाद में वह हंस दूसरे देश को चला गया। उच्छिष्ट-पुष्ट कौए की घमंड उसने उतार दी तब अपने बल एवं वीरता का गर्व छोड़कर वह कौआ शान्त एवं विवेकशील बन गया।

शल्य ने कहा, 'हे कर्ण, उस कौए की भांति तुम भी धृतराष्ट्र के जूठे अन्न पर पले हो, अतः तुम भी उन्मत्त होकर अपने से श्रेष्ठ लोगों का अपमान कर रहे हो।'

शल्य ने यह मार्मिक दृष्टान्त सुनाकर कर्ण को निष्प्रभ कर दिया। इस नीतिकथा का दृष्टान्त देने से शल्य के कथन की अच्छी पुष्टि हो गई।

इसमें हंस सज्जन लोगों का प्रतीक है तो कौवा आत्मश्लाघा करने वाले नीच लोगों का। हंस की ही अन्त में जीत हुई। शल्य ने अन्त मे स्पष्ट शब्दों में कर्ण की तुलना उच्छिष्ट-पुष्ट कौए से की है। यहाँ दृष्टान्त-सार स्पष्ट है कि कर्ण तुम्हारी घमंड भी इस कौए जैसी है जो अर्जुन जैसे हंस के सामने नहीं टिक सकती।

लोगों में पहले ही प्रचलित उस नीतिकथा का सार यह था कि 'नीच लोग घमंड में आकर श्रेष्ठ लोगों से स्पर्धा करते हैं तब उनकी फजीहत होती है।' महाभारतकार ने शल्य-कर्ण-सम्वाद में इसी कथा का उपयोग कर लिया है।

महाभारत में उसे अपनाते समय लोककथा के वे तत्व भी आ गये हैं जो किसी नीतिकथा में चेतना अर्पित करते हैं। सबसे मुख्य तत्व है विनोद का। जब कौवा प्रारम्भ में मन्द गति से चलने वाले हंस से आगे निकल जाता है तब कौए नाचने लगते है। कोई वृक्ष पर बैठता है तो कोई नीचे उतर आता है। क्षुद्रों की इस तुच्छ लीला को देख किसे विनोद का अनुभव नहीं होगा? जब कौआ समुद्र की सतह पर पानी से छटपटाने लगा तब उसे हंस ने पूछा है 'मित्र यह कौन सी गति है'? हंस की पृच्छा में मार्मिक उपहास एवं व्याजोक्ति है जो नीतिकथा की एक मुख्य विशेषता रही है।

इसलिए कहानी-कला की दृष्टि से इसे विशुद्ध नीतिकथा कहें तो अत्युक्ति न होगी। प्रारम्भ में धनी वैश्य का जो परिचय कहानीकार ने दिया है वह प्रस्तुत हंस-काक-कथा में अनुपयुक्त लगता है। उसे एकाध वाक्यों में कहा जा सकता था। किन्तु वास्तव में वैश्य के यहां धन, धान्य आदि प्रचुर मात्रा में था और वह यज्ञ, याग आदि भी किया करता था, दानी था आदि कहने से तात्पर्य यही है कि कौआ उनके अन्न पर दिनों दिन पुष्ट होता गया, यह तथ्य हमें स्वाभाविक लगे। इस विषय में कहानीकार ने वैश्य की धनधान्य से पूर्णता का परिचय कुछ विस्तार से अवश्य दिया है फिर भी वह सर्वथा असंगत नहीं है।

कर्णपर्व के विद्वान संपादक डॉ० पी. एल्. वैद्य ने "हंसकाकीयोपाख्यान' को 'टेक्स्ट' में ही स्थान दिया है। कणिक नीति को जिस प्रकार आदिपर्व के सम्पादक स्व० सुकथनकर ने परिशिष्ट में रखा है, उस प्रकार की कोई बात इस कथा के विषय में नहीं है। किन्तु कर्णपर्व की भूमिका में उन्होंने अपने विचार प्रकट किये हैं। उनका कथन है :

यह मैं स्पष्ट कर चुका हूँ कि, मूल कर्णपर्व में संभवतः दो ही वृत्तान्त थे।

कल्पना नहीं। मुझे तो इहलोक एवं परलोक में जो श्रेयस्कर होगा उसी का आचरण करने की इच्छा है।'

उसके इस विशुद्धाचरण एवं पांडित्य को देखकर पराक्रमशील व्याघ्र ने उसे अपना मंत्री नियुक्त किया। व्याघ्र ने उसे अपने पास रहने और अभीष्ट वस्तु ग्रहण करने को कहा। व्याघ्र ने कहा, 'मैं कड़े स्वभाव का अवश्य हूं किन्तु सरल स्वभाव से व्यवहार कर मुझसे तुम लाभ उठा सकोगे।'

सियार ने कहा, 'मृगराज, मेरे बारे मे आपने जो कुछ कहा वह आप को उचित दिखाई देता है। धर्म और अर्थ में निपुण तथा पवित्र चरित्र के मंत्री की खोज में आप हो। अमात्य के बिना राजा को क्या सुरक्षा? अमात्य भी दुष्ट एवं अत्याचारी होगा तो सुरक्षा असंभव है। आपसे प्रेम करने वाले, नीति के जानकार, सहयोग करने वाले, जिनके आपस में आप्तसंबंध न हो, शत्रु को जीतने की इच्छा रखने वाले, लोभ न रखने वाले तथा अनेक गुणों से युक्त व्यक्ति को अमात्य बना कर सम्मानित कीजिए। महाराज, सन्तोष मुझे अच्छा लगता है। धन सम्पत्ति की मुझे आवश्यकता नहीं। मेरा स्वभाव अन्य सहयोगियों के स्वभाव से मेल नहीं खाएगा। वे लोग नहीं चाहेंगे कि, मैं आपका मंत्री बना रहूं। मैं शुद्ध आचरण से चलने वाला हूं, मैंने कभी सेवा नहीं की। लोग राजा के साथ रहने वालों की बुराई राजा के पास जाकर किया करते हैं। किन्तु स्वतंत्र रहने वाले लोग निर्भय होते हैं। राजा जिसे बुलाता है वह डर जाता है। किन्तु यह डर अरण्य में फल-मूल खाकर रहने वाले प्राणी में नहीं होता। वही सच्ची शान्ति है। अपराधियों की अपेक्षा राजा के सेवकों की ही अधिक मृत्यु हुई है। इसलिए यह निश्चय कर लो कि मेरे लोगों का सम्मान हो, मेरी सलाह आपको ग्राह्य होगी। मैं अन्य अमात्यों से मंत्रणा नहीं करूंगा। अपने ज्ञातिबांधव के विषय में मुझे न पूछो। अमात्यों को पीड़ा न हो और मेरे जो लोग होंगे उन्हें क्रोध में आकर सजा न दी जाने।'

व्याघ्र ने यह सब मंजूर कर लिया, तब सियार अमात्य हुआ। यह देख अन्य अमात्य इस पर जलने लगे। वे चाहने लगे कि, यह सियार भी उनके ही जैसा दुष्ट व्यवहार करे। अब उन्हें पूर्ववत् स्वतंत्रता नहीं रही थी। कुछ प्राणियों ने एक षड्यन्त्र रचा। व्याघ्र को मांस प्रिय था। उसे उन्होंने सियार के घर में लाकर रख दिया। सियार सब समझ रहा था, किन्तु उसने सब सह लिया। क्योंकि व्याघ्र के वचन का उसे स्मरण था।

जब व्याघ्र को भूख लगी तब उसे इच्छित मांस नहीं मिला। उसके पूछने पर धूर्त प्राणियों ने उसे कहा, अपने आपको सदाचारी समझने वाले मंत्री सियार ने ही वह मांस चुराया है। यह सुनते ही व्याघ्र क्रोध से लाल

पड़ गया। प्राणियों ने मंत्री सियार की काफी निंदा की और व्याघ्र को ले जाकर सियार के घर में पड़ा मांस दिखला दिया। क्रोध में आकर व्याघ्र ने उसका वध करने का आदेश दिया।

इस पर व्याघ्र की माता ने उसे समझाया कि, यह सब षडयन्त्र है। बुरे लोग अच्छे लोगों का द्वेष करते हैं। मंत्री सियार निर्दोष है। इसके बाद सियार के शत्रु-समुदाय में से एक व्यक्ति आगे आया और उसने उस षड्यंत्र की जानकारी दे दी। तब व्याघ्र ने सियार को गले लगा लिया और प्राणदण्ड से मुक्त कर दिया।

इस अपमान से दुखी होकर सियार ने अनशन करना चाहा। व्याघ्र ने उसका सम्मान किया और अनशन न करने की प्रार्थना की। तब सियार ने उसे उपदेश दिया और कहा, मुझे अब आपके पास नहीं रहना चाहिए। उसने धर्म, अर्थ और काम से युक्त भाषण किया और वह अरण्य में चला गया। व्याघ्र के अनुरोध की ओर ध्यान न देकर उस बुद्धिमान सियार ने अनशन किया और वह स्वर्ग को पहुँच गया।

सियार और व्याघ्र की मूलकथा लोगों में प्रचलित रही होगी। मूल कथा के अनुसार बुद्धिमान् एवं निर्दोष सियार को कपट से उसके साथियों ने मौत के घाट उतारा होगा। किन्तु यहां सियार पूर्व जन्म में राजा था। इस जन्म में वह सियार होते हुए भी सदाचरणी और अमांसभक्षी है। संतोष उसके मन में है। बौद्धों ने सियारों को कपटी और लोभी बतलाया है और पंचतंत्र में भी सियार का स्वभाव धूर्त, स्वार्थ-परायण और धोखेबाज दिखाया गया है। किन्तु व्याघ्र और सियार की इस कथा में सियार का आचरण सदाचरणी ऋषि का-सा है। स्पष्ट है कि सदाचरण और त्याग का महत्व बढ़ाने के लिए सियार के उदात्त चरित्र को ब्राह्मणों ने प्रस्तुत किया है।

इसीलिए यह नीतिकथा स्वाभाविक नहीं लगती। व्याघ्र और सियार के स्वभाव में कुछ कृत्रिमता का आभास हमें होता है। बीच बीच में सियार के मुख से उच्च गुणों का आदर्शवाद व्यक्त हो रहा है। व्याघ्र से अपमानित होने पर उसने अपना देह-त्याग कर दिया। इसमें सियार की परम्परागत चतुरता एवं नीतिनिपुणता की अपेक्षा, उसके शान्त दान्त स्वभाव का ही परिचय हमें अधिक मिलता है। असत्य, हिंसा, स्तेय तथा छल कपट से दूर रहने वाला सियार अन्त में तपस्वी की तरह अपना देहत्याग करता है। यद्यपि वह नीतिशास्त्र का ज्ञाता है, फिर भी कपटी के साथ कपट करने की बुद्धि उसे नहीं होती। शठं प्रति शाठ्यम् यह नीतिवाक्य उसे सम्मत नहीं है। इस अर्थ

में, वह बौद्ध विचारों से प्रभावित है। पूर्वजन्म के कर्म के कारण दूसरे जन्म में उसे सियार का जन्म प्राप्त हुआ। इस घटना के पीछे जातक का प्रभाव परिलक्षित होता है। बौद्ध दर्शन के अनुसार कर्म सिद्धान्त और पुनर्जन्म होने पर उसका संस्कार आदि तत्व इस शृगालकथा में भी दिखाई देता है। क्षुद्र प्राणी होते हुए भी उसका चरित्र उदात्त दिखाने का जो भरसक प्रयास किया गया है वह भी संभवतः जातकीय नीतिकथा के प्रभाव से। क्योंकि बन्दर आदि क्षुद्र प्राणियों में जन्म लेकर भी बोधिसत्व परोपकार दया, क्षान्ति, अहिंसा आदि गुणों के आदर्श का परिपालन करते हुए दिखाई देते हैं। यहां भी सियार होते हुए भी वह फल-मूल भक्षी है। अमात्य है किन्तु धूर्त नहीं है, अतः बौद्ध नीतिकथा से यह सियार की कथा बहुत काफी समानता रखती है। किन्तु यह प्रभाव अनजाने हो इस कथा पर पड़ा होगा। ब्राह्मणों ने उस नीतिकथा को अपनाया होगा जो पहले ही बौद्ध प्रभाव से जनता में लोकप्रिय हो चुकी हो।

महाभारत में अन्यत्र सियार धूर्त एवं कपटी बनकर विचरण कर रहे हैं। किन्तु इसी कथा मे वह उदात्त चरित्र का तपस्वी है। इससे स्पष्ट है कि लोककथा से मूल रूप में यह कथा महाभारत में नहीं आ सकी। संभव है, नीतिशास्त्र के प्रतिपादन के लिए किसी आचार्य ने ही इस प्रकार की कहानी गढ़ ली जो महाभारत में प्रवेश कर गयी है।

(२) उष्ट्रग्रीवोपाख्यान[1]

व्याघ्र-गोमायु-संवाद के बाद ही उष्ट्रग्रीवोपाख्यान आता है। इसमें आलस्यजन्य दोष का परिहार राजा को करना चाहिए यह उपदेश देकर आलसी ऊंट का दृष्टान्त दिया गया है। इस ऊंट को पूर्व जन्म का स्मरण है। वह सदाचारी था। उसने तपस्या की तब ब्रह्मदेव प्रसन्न हुए। भगवान् ने वर मांगने को कहा तो उस ऊंट ने कहा, 'मेरी ग्रीवा सौ योजन लम्बी कर दीजिए। क्योंकि मैं चरने जाऊंगा। भगवान ने उसकी ग्रीवा लम्बी कर दी। अब ऊंट आलसी बन गया और अपनी ग्रीवा को दूर तक फैलाकर चरने लगा। जब जोर की हवा छूटी, तब उस पशु ने अपनी ग्रीवा और मस्तक को किसी गुहा के भीतर रखा। बाद में काफी जलवृष्टि हुई। जल-सम्पात से पीड़ित, क्षुधित, तथा ठण्ड से सिकुड़े हुए एक सियार ने अपनी पत्नी के साथ उस गुहा में प्रवेश किया। उसे लगा कि वहां प्रचुर मात्रा में मांस पड़ा है। वह ऊंट की ग्रीवा को खाने लगा तब ऊंट को पता चला कि, उसकी ग्रीवा को कोई खा रहा है। किन्तु वह कुछ भी कर नहीं पाया कि सियार ने उसकी ग्रीवा खा डाली। आंधी और

---

१. म० भा० शान्तिपर्व, राजधर्म पर्व, अध्याय ११२.

वर्षा बन्द हुई और सियार गुहा से निकल कर अन्यत्र चला गया। आलसी ऊंट को व्यर्थ ही जान चली गई।

इस कहानी का सारतत्व स्पष्ट है। आलसी आदमी का नाश अवश्यम्भावी है। भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा 'तुम्हें भी आलस्य को छोड़ कर इन्द्रिय-निग्रह एवं उद्योग करना चाहिये'।

ऊँट की यह कहानी मूलतः भारतीय रही होगी या नहीं यह एक प्रश्न अवश्य है। श्री मोइर बुसी का कथन है कि, भेड़ और भेडियों की कहानियां हों तो उन्हे गड़रियों का साहित्य कहा जा सकता है। गड़रियों की ये कहानियां प्राचीन ग्रीस या सीरिया से निकली थी। जंगली बन्दरों और हाथियों की कहानी हो तो वह भारतीय कहानी होगी। ऊँट जैसे जानवर की कहानी अरबदेश की हो सकती है। बुलबुल पक्षी की कहानी फारस से निकली होगी।[१]

वास्तव में भारतवर्ष में भेड़, भेड़िया आदि प्राणी भी काफी प्राचीन समय से ज्ञात रहे हैं। ऋग्वेद में 'वृक' का उल्लेख हो चुका है। गड़रियों की पशुपालन-संस्कृति केवल सीरिया-ग्रीस तक ही सीमित थी यह नहीं कहा जा सकता। किन्तु जहां तक ऊंट का प्रश्न है यह कहा जा सकता है कि, अरबदेश से यह प्राणी भारतवर्ष में आया था। इससे उष्ट्र-संबंधी कहानियां मूलतः अरबदेशीय रही होंगी। महाभारत के काल में भारतीयों का कन्दहार और उसके समीपवर्ती देशों से तो सम्पर्क था ही, किन्तु उससे पूर्व ही अरब से हमारे व्यापारिक संबंध स्थापित हो चुके थे। बावेरु जातक (३३१) से सिद्ध है कि हमारा बेबिलोनिया से काफी संबंध रहा है। महाभारत में म्लेच्छों का उल्लेख है। ये लोग अरब, फारस, सीरिया आदि देशों के थे। अतः संभव है, प्रारंभ में उष्ट्रादि की कथाएं अरबदेश से भारतवर्ष मे आ गई हों। महाभारत की उष्ट्रकथा सम्भवतः भारतवर्ष मे गढ़ी गई हो तो आश्चर्य नहीं। क्योंकि उस समय तक भारतवर्ष में ऊंट काफी परिचित हो चुका था।

पंचतंत्र में उष्ट्र-कथा आ चुकी है।[२] महाभारत में भी अन्यत्र उष्ट्र-संबंधी वृत्तान्त (events) आ गये हैं।[३] इससे स्पष्ट है कि, अतिप्राचीन काल में भले ही उष्ट्रसम्बन्धी नीतिकथा भारतवर्ष में आई हो, किन्तु प्राचीन काल में वह भारतीय हो चुकी थी। उष्ट्र की ग्रीवा, उसके खाद्य पदार्थ, उसका तेजी से

---

१. G. Moir Bussey, "Fables", London 1842, p VII. Introduction.

२. पं० तं०, १. १६ (सिंह श्रृगाल कथा), ३. ६ उष्ट्रोष्ट्रकथा।

३. म० भा० शान्तिपर्व, मोक्षधर्म पर्व, १७७.

चलना आदि विशेषताओं का आवश्यक रूप से उल्लेख होने लगा था। ऊंट भारतीय नीतिकथाकार के लिए अपरिचित नहीं था। पंचतंत्र एवं महाभारत में उसकी कथाएं मिलती हैं।

इस उष्ट्रकथा पर भी दैवतवाद का प्रभाव पड़ा है। प्रारंभ में उष्ट्र के पूर्व जन्म के स्मरण की बात कही गई है। बाद में उसकी तपस्या और भगवान् का प्रसन्न होना आदि बातें भारतीय अवतारवाद तथा दैवतवाद के प्रभाव को व्यक्त कर रही हैं। मूलतः नीतिकथा केवल ऊंट की लम्बी ग्रीवा के विषय में रही होगी। दैवतवाद के पोषक ब्राह्मणों ने अपनी इच्छा के अनुसार उसे वरदान का रूप दे डाला है। अतः वह विशुद्ध लौकिक नीतिकथा नहीं रहने पाई। यह बात अवश्य है कि, दैतवाद स्वयं लोक-विश्वासों में जम चुका था। अतः उसका महाभारत काल में प्रभावशील होना स्वाभाविक था। वह युग का प्रभाव था कि, नीतिकथाएं महाभारत में दैवतकथा की सी कुछ धार्मिक पुट लिए हुए हैं।

फिर भी इस कथा का उद्देश्य पूर्णतया लौकिक है। पितामह भीष्म ने स्पष्ट शब्दों में राजा से कहा है —

"मैं तुम्हें कर्तव्य के विषय में मुख्य सिद्धान्त अर्थात् राजा इहलोक में किस प्रकार व्यवहार करे और उसे सुखी होने के लिए क्या करना चाहिए इस बारे मे कहूंगा।" इसीलिए ऊंट का दृष्टान्त उन्होंने सुनाया है।

(३) नदी-समुद्र-संवाद[1]

राजधर्म पर्व मे समुद्र और नदियों का स्वल्प-सा संवाद संग्रहीत हुआ है। महाराज युधिष्ठिर ने पितामह भीष्म से पूछा कि, 'राजा के शत्रु हो गये हों और उसके पास प्रतिकार करने की पर्याप्त शक्ति न हो, तो उसे क्या करना चाहिए ?'

इस पर भीष्म ने यह प्राचीन संवाद राजा को सुनाया है। नदियो के पति समुद्र को आशंका हुई तब उसने नदियों को पूछा, 'तुम बड़े-बड़े वृक्षों को उनके मूल और शाखाओं के साथ उखाड़कर यहां हमेशा लाती हो। किन्तु इनमें वेंत कहीं नहीं दिखाई देती। वह तो आकार से छोटी एवं दुबली भी होती है। क्या तुम उसे तुच्छ समझकर नहीं लातीं ? या तुम्हारा कुछ कार्य उसने किया है ?'

तब भागीरथी ने समुद्र को उत्तर दिया, 'ये वृक्ष केवल एक ही स्थान पर खड़े रहकर अपना स्थान नहीं छोड़ते। इसलिए जब उनकी स्थिति हमारे सामने प्रतिरोधक होती है, तब उन्हें स्थान का परित्याग करना पड़ता है।

---

१. म० भा०, १२, ११३.

वेंत को वैसा स्थान-त्याग नहीं करना पड़ता। क्योंकि, हमारे आवेगको देखकर वेंत नम्र हो जाती है। वैसे अन्य वृक्ष नम्र नहीं होते इसलिए हमारी बाढ़ आ जाने के बाद वेंत पूर्ववत् खड़ी हो जाती है। वायु और जल के आवेग को देखकर जो वृक्ष और वनस्पतियां नम्र हो जाती हैं और उन्नत हो जाती हैं उनकी पराजय कभी नहीं होती।'

भीष्म ने राजा से कहा, 'शत्रु प्रबल हो और उसका प्रतिकार नहीं हो सकता हो, उसे पहले जो सह नहीं लेता वह नष्ट हो जाता है। चतुर मनुष्य अपने तथा शत्रु के सामर्थ्य तथा असामर्थ्य को देख लेता है। इसलिए उसकी पराजय नहीं होती। बुद्धिशील व्यक्ति को चाहिए कि, वह 'वैतसी वृत्ति' का पालन करे। यही बुद्धिमानों का लक्षण है।'

यह अचेतन पदार्थों की कहानी है। इस दृष्टि से इसे एक ध्वनिकथा (allegory) भी कहा जा सकता है। किन्तु राजधर्म के प्रकरण में नीति का प्रतिपादन करने के लिए कही हुई यह कथा है, और कभी कभी इस प्रकार की नीतिकथा मे अचेतन पदार्थ भी पात्र बन कर आ सकते हैं। प्राचीन समय में नीतिकथा एवं ध्वनिकथा दृष्टान्त कथा के रूप में रह चुकी है। इसीलिए यहाँ नदी और समुद्र का संवाद उपेक्षणीय नहीं है।

ऋग्वेद मे ऋषि विश्वामित्र और नदियों का संवाद सुरक्षित है।[१] नदियों का सम्भाषण वैदिक कल्पना-बन्ध का विषय है। उसी का यहां समुद्र और नदी के संवाद के रूप मे विकास हुआ है। बड़े-बड़े वृक्ष नदी की बाढ़ में वह जाते है किन्तु वेंत के दुर्बल पौधे टिक जाते हैं। इसका रहस्य प्राकृतिक निरीक्षण करने वालों ने ढूंढ़ निकाला था। उसमे मानवीय अर्थ को ही व्यक्त किया गया है। वेंत नम्र हो जाती है, किन्तु बड़े-बड़े वृक्ष नदी की बाढ़ का प्रतिरोध करते है, अतः वे टिक नहीं पाते। इस प्राकृतिक तथ्य को देखकर ही जो समय को पहचानकर इस प्रकार नम्र हो जाते हैं उनके कार्य का वैतसी वृत्ति कहने लगे। इसी 'वैतसी वृत्ति' का परिचय रघुराज के सामने नम्र होकर अपनी रक्षा करने वाले सुम्ह देश के लोगों ने दिया है।[२]

इस मार्मिक दृष्टान्त से कथाकार ने लौकिक व्यवहार मे उपादेय सिद्धान्त को प्रस्तुत किया है। इससे यही सारतत्व निकलता है कि, समय के अनुसार आदमी को व्यवहार करना चाहिए।

---

१. ऋ० सं० ३.३३. १-१३

२. रघुवंश, ४. ३५.

(४) श्वान दृष्टान्त[१]

यह एक श्वानसंबंधी लघुकथा है। एक ऋषि अरण्य में रहा करता था। उसकी तपस्या का प्रभाव कम न था। उसके पास एक कुत्ता हमेशा उसके साथ रहा करता था। वह भी शान्त स्वभाव का होकर फल-मूल खाया करता था।

एक दिन उस अरण्य में एक भयंकर चीता आया। उस कुत्ते को मारकर खाने की उसकी इच्छा हुई। कुत्ता डर गया। उसने रक्षा के लिए ऋषि की प्रार्थना की। तब ऋषि ने उस कुत्ते को चीता बना दिया। चीते ने देखा कि यह चीता ही है तो वह चला गया। बाद में वहां एक व्याघ्र आया, तब भय से पुनः चीता बना कुत्ता ऋषि के पास गया। ऋषि ने उसे व्याघ्र बना दिया। अब अरण्य में वह प्राणियों को मार कर खाने लगा। बाद में एक मदोन्मत्त हाथी वहां आया तो व्याघ्र बना हुआ कुत्ता डर गया। ऋषि ने उसका हाथी में रूपान्तर कर दिया। किन्तु समय बीतने पर एक सिंह उस अरण्य में आया। उससे डरे हुए उस हाथी को ऋषि ने सिंह बना दिया। किन्तु शरभ नामक भयंकर प्राणी जब वहां आया तो वह सिंह डर गया। ऋषि ने उसे शरभ का रूप दे डाला तो शरभ वहां से चल दिया।

अब वह शरभ रक्त की पिपासा के कारण ऋषि को ही मारने की इच्छा करने लगा। ऋषि ने तपस्या के बल से यह जान लिया, तब उसने उसे पुनः श्वान बनाकर उसे भगा दिया।

यह कहानी भीष्म ने युधिष्ठिर से कही है। प्रारम्भ में भीष्म ने कहा है, यह एक 'प्राचीन इतिहास' है। इस प्रकार की कहानी तपोवन में ऋषियों ने परशुराम को कही थी। उसी कथा को भीष्म युधिष्ठिर को सुना रहे हैं। स्पष्ट है कि, महाभारत काल में ही यह कहानी काफी प्राचीन हो चुकी थी। हम देख चुके हैं कि, पूर्व वैदिक समय से ही आख्यान-साहित्य 'इतिहास' के रूप में विद्यमान था। इस साहित्य में प्राचीन समय से ही श्वानसंबंधी कहानियां प्रचलित रही हैं। उसी का यह महाभारतकालीन रूप है।

भीष्म का उपदेश है कि, योग्यता देखकर ही राजा को किसी भृत्य को ऊंचे पद पर स्थापित करना चाहिए।

एक प्राणी अपना रूप छोड़कर दूसरा रूप धारण करे यह एक प्राचीन लोक-विश्वास का ही रूप है। यहां ऋषि की तपस्या के प्रभाव से वह रूपान्तर-ग्रहण दिखाया गया है।

---

१. म० भा०, शां० प०, राजधर्म पर्व, ११६-११७.

(५) मत्स्योपाख्यान[१]

भीष्म ने कहा है कि, अनागत-विधाता और प्रत्युत्पन्नमति दोनों ही अपना उत्कर्ष कर सकते हैं। किन्तु आलसी मनुष्य का नाश होता है। इसके दृष्टान्त के रूप मे तीन मत्स्यों की जो कहानी कही गई है, वह विचारणीय है: -

एक बड़े तालाब मे तीन मत्स्य रहा करते थे। तीनों मित्र थे। उनमे से एक मत्स्य मे दूरदृष्टि थी। दूसरे मत्स्य मे संकट आते ही उपाय सोचकर अपनी मुक्ति करने की बुद्धि थी। किन्तु तीसरा आलसी था।

एक दिन मत्स्य-जीवी लोग उस तालाब पर आए और उन्होने उस के किनारे की जमीन मे छिद्र किये, जिसमे सब पानी बह जाने लगा। इस संकट को देखते ही अनागतविधाता मत्स्य ने अपने साथियों को उस तालाब को छोडने की सलाह दी किन्तु आलसी मत्स्य ने उत्तर में कहा, 'इतनी जल्दी ही क्या है ?' प्रत्युत्पन्नमति मत्स्य ने कहा, 'प्रसंग आने पर मै अपनी नीति से काम लूंगा।' यह सुनकर बुद्धिशील मत्स्य वहां से निकल कर दूसरे तालाब मे चला गया।

तालाब का पानी निकल जाने पर मत्स्य जीवी लोगों ने उसमे जाल बिछाया तब उसमे अनेक मत्स्य आ फँसे। उनमे वह आलसी मत्स्य भी था। वे लोग जब जाल को ऊपर निकालने लगे तब प्रत्युत्पन्नमति मत्स्य ने अन्य मत्स्यों मे घुसकर जाल को ऊपर लाने वाली डोरी को इस तरह मुंह से पकड़ लिया मानो वह भी जाल मे ही फंस गया हो। बाद मे जब बड़े जलाशय मे जाकर वे लोग जाल को धोने लगे तब अवसर को पहचानने वाला वह मत्स्य शीघ्र डोर छोड़कर पानी मे चला गया किन्तु आलसी मत्स्य को जाल में ही फँसे रहने के कारण मृत्यु हो गई।

पालि जातक में इस कथा का समान रूप मिलता है।[२] पंचतंत्र मे भी यह कहानी मिलती है।[३] यह मत्स्योपाख्यान बहुत प्राचीन है। उसका मूलाधार प्राचीन काल की कोई लोककथा ही रही होगी।

जातक के अनुसार जंगल की नदी मे रहने वाले तीन (अति विचार करने वाला, विचारशील, एवं विचारहीन) मत्स्य मनुष्य की बस्ती जहाँ थी वहाँ आये। विचारशील ने दोनों को वापिस चलने को कहा, किन्तु उन्होंने नहीं माना। फलतः दोनो धीवरों के जाल मे फँस गये। विचारशील मत्स्य दूर

---

१. म० भा०, १२. १३७.

२. मितचिंति–जातक (११४)

३. पं० त० १.१४ (अनागत विघातादि मत्स्यत्रय कथा)

से देख रहा था। उसने एक युक्ति की। जाल के पास जा कर वहाँ से उछल कर भाग गया जिससे धीवरों को लगा कि, जाल के धागे टूट जाने से मत्स्य भाग गये हैं। उन्होने जाल को वहीं छोड़ा तो उस जाल को दूर ले जाकर उन मत्स्यों की मुक्ति की :

पंचतंत्र में ये ही तीन मत्स्य (अनागतविधाता, प्रत्युत्पन्नमति एवं यद्भविष्य) जलाशय मे रहते थे। मत्स्यजीवी लोगों का संभाषण सुनकर अनागतविधाता ने अपने साथियों को जलाशय को छोड़ने की सलाह दी। प्रत्युत्पन्नमति को यह बात पसंद थी। किन्तु 'यद्भविष्य' ने कहा कि, 'मैं न जाऊँगा।' इस पर दोनों मत्स्य अपने परिवार के साथ दूसरे जलाशय में निकल गये। किन्तु वहीं रहने से यद्भविष्य की मृत्यु हुई।

ये तीनो रूप समान होते हुए भी उनमे कुछ परिवर्तन अवश्य हो गये हैं। महाभारत की कथा मे अनागतविधाता एवं प्रत्युत्पन्नमति के नाम पंचतंत्र की कथा में भी पाये जाते है। जातक मे अतिविचारशील और विचारहीन मत्स्यों की पराजय दिखाई गई है। विचारशील मत्स्य स्वयं बोधिसत्व ही है। इसीलिए केवल वे ही जाल मे नहीं फंसते। अपने साथियों की मुक्ति भी वे करते है। वास्तव में मूल कथा में जातककार ने यह परिवर्तन बोधिसत्व के चरित्र की उदात्तता को बनाये रखने के लिए ही किया है। पंचतंत्र की कथा के अनुसार प्रत्युत्पन्नमति भी जलाशय छोड़ जाता है। जाल में फंसता है एकमात्र यद्भविष्य नामक मत्स्य। महाभारत को उपरोक्त कथा में भी आलसी मत्स्य को मृत्यु हुई है और प्रत्युत्पन्नमति अपनी मुक्ति के बल पर संकट से मुक्ति पा सका है। किन्तु पंचतंत्र की कथा मे यही प्रत्युत्पन्नमति 'अनागतविधाता' नामक मत्स्य की सलाह मानकर उसका अनुसरण मात्र करता है। संकट में युक्ति से काम लेने की उसकी कोई घटना नहीं है। वास्तव मे उसके नाम से तो स्पष्ट है कि, अवसर आने पर युक्ति से वह मुक्त हो जाता है। अतः महाभारत की कथा मे प्रत्युत्पन्नमति का नाम यथार्थ है। फिर भी तीनों मे एक ही कल्पना-बंध है।

यह नहीं कहा जा सकता कि, महाभारतकार ने जातक कथा या पंचतंत्र को सामने रखकर ही यह कहानी महाभारत में ली है। संभव है, इन दोनों का अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव इस कथा पर पड़ा हो। महाभारत के समय तीन मत्स्यों की यह कथा अत्यधिक लोकप्रिय लोककथा के रूप में प्रचलित रही होगी और वही रूप महाभारत में प्रवेश कर गया। इसीलिए इस कहानी के रूपों में अन्तर दिखाई देता है। वह लोककथा कभी पंचतंत्र एवं जातक में भी प्रकट हुई थी और बाद मे वह इतनी लोकप्रिय बन गई थी कि, महाभारतकार ने भी उसे अपना लिया।

शतपथ ब्राह्मण की मनु एवं मत्स्य की कथा में हम देख चुके हैं कि, मत्स्य-विषयक कहानियां भारतवर्ष में कितने प्राचीन समय से प्रचलित थी। मत्स्य-विषयक ये आख्यान लोगों में विकसित होकर अपने अन्यान्य रूप प्रकट कर चुके हैं[1]। जातक, पंचतंत्र एवं महाभारत की उपरोक्त समान कथा के पात्रों के नाम उनके कार्य एवं स्वभाव के अनुसार रखे गये हैं। इससे स्पष्ट है कि, प्राचीन मत्स्यकथा का यह परिष्कृत रूप साहित्य में अपनाया गया है।

(६) मार्जार-मूषक-संवाद[2]

इस संवाद का हम उल्लेख कर चुके हैं। एक पलित नामक मेधावी चूहा विशाल वट वृक्ष के तले बिल में रहा करता था। उसी वृक्ष की शाखा पर लोमश नाम का मार्जार रहा करता था। वहा किसी चांडाल ने कूट-यंत्र लगा रखा था। एक दिन वह मार्जार उस यंत्र मे फँस गया। तब चूहा निर्भय होकर घूमने लगा। किन्तु उस पर नेवले की दृष्टि पड़ी। ऊपर से उल्लू भी उसे ताक रहा था। इस प्रकार मार्जार, नेवला और उल्लू के बीच चूहा फँस गया था। किन्तु उसने विचार किया और बुद्धि से काम लिया। उसने मार्जार से कहा कि मैं तुम्हें संकट से दूर करूँगा। किन्तु अभी मैं तुमसे सहायता लेना चाहता हूँ। उसने मार्जार की गोद में शरण ली। यह विरोध देखकर सब प्राणी अचम्भे में पड़ गये। इधर चूहा यन्त्र के पाश तोड़ रहा था। उधर नेवला और उल्लू निराश होकर चल दिये। चूहे ने आखिरी पाश नहीं तोड़ा। वह व्याध के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। मार्जार घबरा रहा था। प्रात.काल व्याध आया तो शीघ्र ही आखिरी पाश को तोड़ कर चूहा भागा और बिल में घुस गया। व्याव के भय से मार्जार भी भाग गया। व्याव निराश होकर लौट गया। बाद में वह मार्जार चूहे के बिल के पास आकर उसे मित्रवत् व्यवहार करने के लिए बुलाने लगा। तब उस ज्ञानवान् चूहे ने उसे करारा जबाब दिया कि अब कार्य सम्पन्न हो गया है। हम दोनो स्वभावत: शत्रु हैं। अत: मित्र नही हो सकते।

उपरोक्त कहानी में एक चूहे की नीति-निपुणता व्यक्त हो रही है। उसने शत्रुओं से अपनी मुक्ति कर ली है। संकट आने पर युक्ति से काम लेना चाहिए यही नीतिसार इस कथा में निहित है।

हम देख चुके है कि मार्जार-विषयक कथा लोगों में प्रचलित थी और जातक में बिड़ाल-व्रत का स्पष्ट उल्लेख आ चुका है। भक्ष्य-भक्षक प्राणियों की

---

१. देखिए मच्छ जातक (३४)

२ म० भा० १२ १३८.

ये कथाएँ बड़ी रोचक और नीति-प्रतिपादक सिद्ध हुई हैं। इस प्रकार की कथाएँ पंचतंत्र एवं हितोपदेश में अधिक मिलती हैं।

महाभारत में यह कथा विस्तार से बहुत बड़ी हो गई है। वास्तव में कहानी का अंश लघु है, किन्तु उपदेश का अंश इतना अधिक हो गया है कि उसे पढ़कर प्राणियों के संवाद में रुचि नहीं रहने पाती। कथानक की अखण्डता भी नही रहने पाई है। स्पष्ट है कि राजधर्म के उपदेश पर ही अधिक बल दिये जाने के कारण इस कथा में कहानी कला की उपेक्षा कर दी गई हैं। किन्तु वास्तव में उस उपदेश को ही प्रधानता देना महाभारतकार को सम्मत है

(७) ब्रह्मदत्त-पूजनी संवाद [1]

यह एक अर्ध-नीतिकथा है। इसमें राजा ब्रह्मदत्त एवं पूजनी नामक पक्षिणी का संवाद प्रस्तुत हुआ है। राजा को एक पुत्र हुआ, उसी समय उस पक्षिणी को भी बच्चा हुआ था। पक्षिणी राजमंदिर में ही रहा करती थी। वह रोज मीठे फल लाया करती थी। एक अपने बच्चे के लिए और दूसरा उस राजपुत्र के लिए। अमृत के समान मीठे फलों से राजपुत्र पुष्ट होता गया। एक दिन उस राजपुत्र ने बाल स्वभाव से पक्षिणी के बच्चे को मार डाला। पक्षिणी को ज्ञात होने पर उसने अपने पैरों से राजपुत्र की आँखें फोड़ दीं। फिर भी राजा ने उसे राजमंदिर में ही रहने का आग्रह किया, किन्तु अब उसने वहां रहन से इन्कार किया। इस विषय में बड़ा ही नीतिपूर्ण संवाद उन दोनों में हुआ है और अन्त में पूजनो अन्यत्र चली गई।

पक्षिणी के उपदेश में प्रौढ़ विचार व्यक्त हुए हैं। राजा ब्रह्मदत्त मनुष्य पात्र होने के कारण यह पूर्णतया प्राणिकथा नहीं है। इस प्रकार के संवाद महाभारतकार द्वारा कल्पित भी किये गये हों तो आश्चर्य नहीं। राजा ब्रह्मदत्त का उल्लेख जातक में सर्वत्र मिलता है।

(८) कपोत व्याध संवाद [2]

अतिथि का गौरव दिखाने के लिए कबूतर एवं व्याध में हुआ संवाद भीष्म ने युधिष्ठिर को कह सुनाया है।

एक व्याध अरण्य मे पक्षियों का शिकार किया करता था। उस अरण्य में एक दिन बहुत बड़ी आंधी आई। उससे अरण्य के सभी प्राणी भयाकुल एवं पीड़ित हो उठे थे। उनमे ठंड से सिकुड़कर भूमि पर पड़ी हुई एक कपोती

---

१. म० भा० १२, १३९.

२. म० भा० १२, १४३-१४९.

व्याध को दिखाई दी। उसने उसे पींजड़े में बन्द कर दिया और वह वृक्ष के नीचे बैठ गया। आंधी समाप्त हो गई, व्याघ वहीं सो गया (१४३)।

उसी वृक्ष पर एक पक्षी रहता था। उसकी प्रिया अभी लौट कर नहीं आई और अब तो रात हो गई थी। वह विलाप करने लगा। गृहिणी के बिना घर को घर नहीं कहा जा सकता (१४४)।

कपोती ने पिंजड़े से पति का विलाप सुन लिया। उसने पति से कहा, 'यह व्याघ हमारा अतिथि है, भूख और ठंड से पीड़ित है। इसका सत्कार करना हमारा कर्तव्य है। अपना पुत्र भी है, अतः देह का लोभ नहीं करना चाहिए।' (१४५)

कपोती का भाषण सुनते ही कपोत को आनंद हुआ। उसकी आंखों से आंसू छलक आये। कपोत ने अतिथि व्याघ का सत्कार किया और कहा, 'मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ? आप संकोच छोड़ मुझे आज्ञा दोजिए। आप जो कहेंगे वह मैं करूँगा।' व्याघ ने कहा कि, 'मैं शीत-बाधा से पीड़ित हूँ। इससे मुझे बचाओ।' कपोत ने शीघ्र ही वृक्ष के पत्तों पर अग्नि लाकर रखा और ज्वाला उत्पन्न की। व्याध ने प्रसन्न होकर कहा, 'अब मुझे खाने के लिए दीजिए, मुझे बहुत भूख लगी है।'

कपोत ने कहा कि, मनुष्य के समान हम अरण्यवासी पक्षी अनाज का संग्रह नहीं करते। हमारे पास आपके योग्य खाने जैसी वस्तु ही क्या है ! वह पक्षी खिन्नवदन हो गया : किन्तु शीघ्र ही उसने व्याध से कुछ क्षण ठहरने को कहा और उसकी क्षुधा-शान्ति के लिए अग्नि को प्रज्वलित कर अपने आपको उसमें समर्पण कर दिया। यह दृश्य देखकर व्याघ के मन पर गहरा असर हुआ (१४६)।

व्याध ने विलाप किया और अपने आपको बहुत कोसा। वह कहने लगा कि महात्मा कपोत ने आत्म समर्पण से मुझ पापी को उपदेश दिया है। उसने वैराग्य से सभी वस्तुएँ फेंक दीं। कपोत-स्त्री को बन्धनमुक्त कर वह चला गया (१४७)।

कपोत-स्त्री मुक्त होने पर विलाप करने लगी और अन्त में पति का ही अनुसरण कर उसने अग्नि में देहत्याग किया। व्याघ ने देखा कि वह कपोत अपनी स्त्री के साथ स्वर्ग में पहुँच गया (१४८)। वैराग्य से प्रेरित होकर वह व्याध भी हिमालय की ओर गया और उसने देहत्याग कर अच्छी गति प्राप्त की (१४६)।

यह बड़ी सुन्दर नीतिकथा है। प्रारम्भ में कपोत ने कपोती के लिए जो

विलाप किया है उसे विश्व-साहित्य में बड़ा ऊँचा स्थान मिल सकता है। पत्नी के बिना घर जीर्ण अरण्य है इस अर्थ में प्रयुक्त वाक्य सार्वभौम भावों की ही अभिव्यक्ति करते हैं।

कपोत एवं कपोती के चरित्र उदात्त हैं। जातक में खरगोश जैसा साधारण प्राणी अतिथि-सत्कार के लिए अपने प्राण तक त्याग देता है।[1] महाभारत काल में अतिथि-पूजा का महत्व बढ़ चुका था। इसी का यह प्रभाव था कि, प्राचीन कथा-साहित्य में क्षुद्र दिखाई देने वाले प्राणी भी अतिथि के लिए आत्म-समर्पण कर उदात्त भाव का परिचय देते हैं।[2]

कपोत के आत्म-समर्पण के बाद कपोती ने भी देह त्याग किया है। क्रूर कर्म करने वाले व्याध को भी वैराग्य हो गया है।

भीष्म का कहना है कि यह कथा मुनि भार्गव ने मुचकुंद को कही थी। स्वयं भीष्म ने भी इस वृत्तान्त को सुना था। इससे स्पष्ट है कि यह कहानी भी अति प्राचीन है।

(९) गृध्र-गोमायु-विवाद[3]

गिद्ध और सियार का यह विवाद भी बड़ा रोचक है। किसी ब्राह्मण के इकलौते पुत्र की मृत्यु हो गई। तब सब लोग उसे स्मशान ले आये। उसे वहां छोड़कर जाने में उनको बड़ा दुःख हो रहा था। उनके रुदन को सुनकर एक गिद्ध वहां आकर कहने लगा, 'अब इसे शीघ्र छोड़कर चले जाओ। इस बालक की इतनी ही आयु थी। यह अरण्य गिद्ध-सियारों से भरा हुआ है। इत-स्ततः हड्डियों के ढ़ेर पड़े हैं। सब प्रकार के प्राणियों से भयंकर इस अरण्य में न ठहरो। प्रिय व्यक्ति हो या शत्रु हो, प्राणियों की यही गति है।'

गिद्ध का वचन सुनकर लोग बालक को दुःख से छोड जाने लगे तो एक सियार वहाँ आकर कहने लगा, 'मनुष्य दयाहीन होते हैं। मूर्ख लोगो, अभी सूर्य ढल नहीं गया। इस बालक पर प्रेम करो, संभव है वह जीवित भी हो जावेगा। इसकी कान्ति सुवर्ण जैसी है और यह अभी बालक ही तो है। एक गिद्ध के कहने पर इसे अकेला यहां क्यों छोड़ जाते हो ?'

यह सुनकर वे लोग ठहर गये। इस प्रकार दोनों प्राणी अपने स्वार्थ के लिए उन लोगों को उपदेश देने लगे। गिद्ध रात को अंधा होता है अतः वह संध्या समय के पहले ही उन लोगों को जाने के लिए कहता है, ताकि उसे बालक का शव

---

१. सस जातक (३१६)

२. त्याग एवं अतिथि-सत्कार के लिए 'कापोति व्रत' संज्ञा रूढ़ हो गई।

३. म० भा० १२. १५३

प्राप्त हो सके। किन्तु रात पड़ने पर सियार का प्रभाव बढ़ेगा। अतः उसने लोगों को ठहर जाने के लिए कहा है। कथा के अन्त में श्री शंकर प्रसन्न होकर उस बालक को जीवित करते हैं।

इस विवाद के कुछ पद्यो को प्रबंधगत ध्वनि के उदाहरण के रूप में श्री मम्मट ने काव्यप्रकाश में उद्धृत किया है।[1]

गिद्ध और सियार के वचनों से उनके स्वार्थ की ध्वनि व्यंजित हो रही है। इससे स्पष्ट है कि, ध्वनि के व्यंजित होने से इस नीतिकथा को साहित्यशास्त्र की दृष्टि से उत्तम काव्य' का स्तर प्राप्त हो गया है। किन्तु आश्चर्य यह है कि, 'गद्य काव्य' को परिभाषा करते समय कथा की दृष्टि से साहित्यशास्त्र के आचार्यों ने इस 'उत्तम काव्य' की उपेक्षा की है। पशुकथा है इस लिए नहीं, अपि तु ध्वनिसत्ता के कारण ही मम्मट ने उसे उद्धृत किया है।

पंचतंत्र में यह विवाद नहीं मिलता। किन्तु पंचतंत्र में एक पद्य उद्धृत हुआ है। उसका एक अंश उपरोक्त विवाद के पद्यांश से मिलाने योग्य है।
पंततंत्र में पद्य है :—

प्रियो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्खो वा यदि पण्डितः।
वैश्वदेवान्तमापन्नः सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥[2]

उपरोक्त विवाद में गृध्र ने कहा है :

प्रियोवा यदि वा द्वेष्यः प्राणिनां गतिरीदृशी।[3]

पद्य के अर्थ में भिन्नता होते हुए भी श्लोक के प्रारम्भ में पदों का चयन एक ही है। यह एक संयोग की बात नही कि दोनों का प्रारंभ एक जैसा हो। संभव है, यह पाठ लोकप्रिय रहा हो।

(१०) शाल्मलि वृक्ष-कथा[4]

इस कहानी को वास्तव में ध्वनिकथा ही कहा जा सकता है। क्योंकि इसके पात्र एक वृक्ष एवं वायु हैं, किन्तु नीतिशास्त्र के उपदेश के साथ दृष्टान्त के रूप में यह कहानी प्रस्तुत है। इस कहानी में शाल्मलि वृक्ष को नारद ने कहा कि केवल मित्रता के कारण हो वायु उसे नहीं उखाड़ता। शाल्मलि ने कहा कि, वह अपने बल पर खड़ा है। वायु की दया पर उसका अस्तित्व नहीं है। नारद ने वायु के पास जाकर तुरन्त उसे शाल्मलि के गर्व से अवगत करा दिया,

---

१. का० प्र०, उ० ४. का० ६० 'प्रबंधेऽप्यर्थशक्तिभूः'।

२. पं० तं० ४. २.

३. म० भा० १२. १५३.

४. म० भा० १२. १५४–१५७:

तब वायु उस पर हमला करने आया। उसके पहले ही वृक्ष ने स्वयं अपनी शाखाएँ एवं पुष्प छेद डाले थे। वायु ने उसको कुबुद्धि की उसे जानकारी दी तो वृक्ष लज्जित हुआ। इससे यही नीति-सार स्पष्ट हुआ कि बलवान से दुर्बल का लड़ना व्यर्थ है।

ध्वनिकथा का यह महाभारतीय रूप है जो दृष्टान्त के रूप मे यहां उपस्थित हुआ है।

११. बैल और ऊँट की कथा.[1]

हम मंकिगीता में उल्लिखित जम्बुकोपमा की चर्चा कर चुके हैं। दो बैल और ऊँट की कहानी में ही यह उपमा दी गई है। मंकि ने दो बैल खरीदे थे। किन्तु मंकी का दुर्भाग्य यह था कि वे बैल शिक्षित होने पर भी एक ऊँट पर जा पड़े। उसी समय ऊँट उठकर तेजी से भागने लगा, तब उस ऊँट के पीठ पर बैलों की जोड़ी लटक रही थी। इस प्रकार घसीटे जाने वाले थे दोनों बैल मुमूर्षु हो गये थे। मंकी का कथन है कि सर्वत्र अनुकूल होने पर भी यदि भाग्य उलटा हो तो सब काम बिगड़ जाते हैं।

बैल और ऊँट की इस कथा में हलका-सा हास्य विनोद भी है। कहानी छोटी सी है। यह मंकिगीता भीष्म ने युधिष्ठिर को कही है।

(१२) काश्यप-शृगाल संवाद[2]

मुनि काश्यप को किसी वैश्य के रथ का धक्का लग गया था। वह गिर पड़ा। तब क्रोध में आकर उसने कहा, 'अब मैं प्राण छोड़ दूंगा। कारण मुझ जैसे निर्धन को इस संसार में कोई स्थान नही है। 'उस समय इन्द्र ने सियार का रूप धारण किया और उसके पास जाकर सियार ने कहा, 'बड़े सौभाग्य से तुम्हें मनुष्य की देह मिली है। हम प्राणी भी दुखी हैं। तुम्हें तो धर्माचरण करना चाहिए, न कि आत्मत्याग।' यह सुन कर मुनि को आश्चर्य हुआ और उसने आत्महत्या का विचार त्याग दिया।

इस पर दैवत कथा का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है। सियार का रूप इन्द्र ने धारण कर लिया है। दूसरा पात्र काश्यप है जो उपदेश का श्रोता है। अतः इस कथा को विशुद्ध नीतिकथा नहीं कहा जा सकता। इन्द्र द्वारा सियार का रूप धारण किये जाने की घटना प्राचीन लोक-साहित्य में निहित थी उसी का यहां साहित्य रूप प्रकट हुआ है।

शान्ति पर्व में राजधर्म का उपदेश देने वाली कथाओं में नीतिकथा का सच्चा

---

१. वही १२. १७७

२. म० भा० १२. १८०.

रूप हमें दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त आपद्धर्म तथा मोक्षधर्म का उपदेश देनेवाली नीतकथाओं में प्राणियों में चतुरता एवं राजनैतिक प्रज्ञा का अभाव ही परिलक्षित होता है। इससे स्पष्ट है कि, नीतिशास्त्र के साथ ग्रहण की गई नीतिकथाओं में मार्मिक विनोद तथा रोचकता अधिक है। यह अवश्य है कि, यहाँ भी देवतारोप तथा आदर्शवाद का प्रभाव इन कथाओं पर न्यूनाधिक रूप में पड़ा है।

इस कथा से महाभारत-काल में आर्थिक विषमता का रूप प्रकट हुआ है। उन्मत्त धनी लोगों की कार से आज भी देश के गुणवान् किन्तु पदचारी नागरिक को चोट लग जाती है तो उस की आत्मा तिलमिला उठती हैं।

(५) अनुशासन-पर्व

अनुशासन पर्व में निम्न लिखित चार स्थल विचारणीय है :

(१) गौतमी, लुब्धक, सर्प, मृत्यु, और काल का सम्वाद,

(२) सियार और वन्दर का सम्वाद.

(३) श्येनकपोताख्यान,

(४) कीटोपाख्यान.

१. गौतमी आदि का सम्वाद[1]

इस कथा के पात्र गौतमी लुब्धक, सर्प, मृत्यु एवं काल हैं। ब्राह्मणी गौतमी के पुत्र को सर्प ने दंश किया अतः उसकी मृत्यु हुई। एक बहेलिये ने यह देखा और उस सर्प को पकड़ लिया। ब्राह्मणी के पास लाकर सर्प को वह मारने लगा। गौतमी ने कहा, उसे मारना व्यर्थ है। पुत्र की मृत्यु का कारण सर्प नहीं है। सर्प ने भी मनुष्य-वाणी में कहा कि, मैं इसकी मृत्यु का कारण नहीं हूँ। कर्म के अनुसार उसके फल होते हैं। मृत्यु ने भी प्रकट होकर कहा, मैं भी इसकी मृत्यु का कारण नहीं हूँ। कालनियंत्रित कर्म का ही हमने पालन किया है। काल भी वहां प्रकट हुआ। उसने कहा, 'स्वयं बालक ही उसकी मृत्यु का कारण है। उसके कर्मानुसार ही उसकी मृत्यु हुई है।' तब बहेलिये को संतोष हुआ और उसने सर्प को नहीं मारा।

इसे विशुद्ध नीतिकथा नहीं कहा जा सकता। गौतमी और बहेलिया मनुष्य पात्र है और सर्प ही एकमात्र प्राणी है। मृत्यु और काल तो इनसे भिन्न ही हैं। किन्तु इस कहानी से उपदेश दिया गया है। अतः दृष्टांत कथा का ही रूप इसे प्राप्त हो गया है। सर्प-सम्भाषण से भी नीतिकथा एवं काल-मृत्यु-सम्भाषण से दैवतकथा (myth) का सम्मिश्र रूप यहाँ प्रकट हुआ है।

---

१. म० भा० १३.१

२. सियार और बंदर का सम्वाद[1]

युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा है कि, ब्राह्मणों को वचन देकर भी जो मनुष्य दान नहीं देता उसे क्या फल मिलता है ? भीष्म ने कहा कि, उसकी आशाएं निष्फल हो जाती हैं। उन्होंने एक 'प्राचीन इतिहास' के रूप में एक कथा भी सुनाई :—

पूर्वजन्म के दो मित्र इस जन्म में सियार और बन्दर की योनि में उत्पन्न हुए। सियार स्मशान में शव-भक्षण कर रहा था। बन्दर ने उसे पूछा, पूर्वजन्म में तुमने कौनसा पाप किया था जिससे तुम्हें ये सड़े शव का भक्षण करना पड़ रहा है ?' इस पर सियार ने उत्तर में कहा, "मैंने ब्राह्मणों को वचन दिया, किन्तु तदनुसार उन्हें कुछ भी नहीं दिया। अतः इस पाप-योनि में अमंगल भक्ष्य का सेवन मैं कर रहा हूँ।' सियार ने भी बंदर से पूछा कि तुम्हारी बंदर की योनि किस पाप का फल है। बंदर ने कहा, 'पूर्व जन्म में मैं नित्य ब्राह्मणों के फल खाया करता था। इसलिए मुझे बंदर का जन्म मिला।'

यह एक लघु नीतिकथा है। इस पर ब्राह्मण धर्म का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। सम्भव है, बौद्ध धर्म की प्रतिक्रिया में ही ऐसी नीतिकथाएँ जनता में ब्राह्मणों द्वारा कही जाती हों। इतना अवश्य है कि, यह कहानी ब्राह्मण-सम्प्रदाय में प्रचलित थी। भीष्म ने स्वयं कहा है कि, यह इतिहास उन्होंने उनके ब्राह्मण अध्यापक के मुख से सुना है। प्राचीन समय में वासुदेव ने यही इतिहास ब्राह्मणों को सुनाया था। इस प्रकार के सम्वाद स्वयं ब्राह्मणों ने ही रचे होंगे। लोककथा की सार्वभौम विशेषता इसमें व्यक्त नहीं होती। यह कहानी ब्राह्मण-धर्म का ही पृष्ठपोषण कर रही है। अतः स्पष्ट है कि, लोककथा इसका मूलाधार नहीं है।

इसमें सियार या बन्दर दोनों पूर्वजन्म का स्मरण रखते है। उनकी चतुरता या नीतिज्ञता का कोई परिचय भी हमें इस कथा में नहीं मिलता। प्रत्युत दोनों अपने जन्म का कारण पाप मान रहे है। उनके वचनों में ऐहिक तथा लौकिक अर्थ की प्रधानता नहीं दिखाई देती। अतः यह नीतिकथा होते हुए भी मान लेना होगा कि, इस पर सम्प्रदाय विशेष का प्रभाव अधिक है। संभवतः भार्गवों ने ही इस प्रकार के सम्वाद महाभारत में जोड़ दिये हैं।

(३) श्येन कपोताख्यान[2]

भीष्म ने युधिष्ठिर को उपदेश दिया कि, शरणागत व्यक्ति की रक्षा करनी चाहिए। तब उन्होंने एक उपाख्यान सुनाया वह संक्षेप में इस प्रकार है :—

---

१. म० भा० १३. ९०.

२. म० भा० १३. ३२.

एक सुन्दर कबूतर था। उस पर किसी श्येन ने हमला किया तब नीचे गिरते हुए उस कबूतर ने महाराज वृषदर्भ की शरण ली। उस सुन्दर कपोत को उस हालत में देख वह राजा दुखी हुआ। उसने उसे अभय-वचन दिया। तब श्येन ने वहाँ आकर राजा से युक्तिपूर्ण भाषण किया और कहा, 'यह मेरा भक्ष्य है, इसे छोड़ दीजिये।' श्येन के युक्तिपूर्ण भाषण पर आश्चर्य करते हुए राजा ने उसे कहा गाय, बैल, वराह, मृग या महिष में से जो कुछ चाहोगे वह तुम्हें मिल सकेगा। किन्तु यह शरणागत है, इसकी रक्षा करना मेरा धर्म है। श्येन ने गाय बैल आदि को लेने से इन्कार करते हुए कहा, 'कपोत पर यदि तुम्हारा इतना प्रेम है तो अपना ही मांस निकाल कर दीजिए।'

इस पर राजा तुरन्त अपना मांस निकाल कर देने लगा। अन्तःपुर में यह वार्ता गई तब सबको बहुत आक्रोश हुआ। अन्त में अपना वचन पूरा करने के लिए राजा स्वयं तराजू के पलड़े में बैठ गया। देवता उस पर प्रसन्न हो गये और दिव्य विमान से वह राजा स्वर्ग को पहुंच गया।

उपरोक्त कथा में कपोत और श्येन की अपेक्षा राजा की ही प्रधानता है। क्योंकि, शरणागत की रक्षा के लिए अपने प्राण तक त्यागने का महान् कार्य उसी ने सम्पन्न किया है जिसका कि उपदेश यहां प्रमुख है। इसीलिए यह नीतिकथा राजा की गौरव-कथा से मिश्रित हो गई है।

शरणागत व्यक्ति की रक्षा के लिए प्राण-त्याग करने के प्रसंग साहित्य में प्राचीन समय से वर्णित होते रहे हैं। बौद्ध प्रभाव से नागानंद नाटक में जीमूतवाहन सर्प की रक्षा के लिए गरुड़ के सामने अपना मांस देता है।[1] इस प्रकार का कल्पना-बंध रघुवंश के दिलीप-सिंह-सम्वाद में भी व्यक्त हो रहा है।[2] राजा और श्येन का यह युक्तिपूर्ण लघु सम्वाद दिलीप-सिंह-सम्वाद का स्मरण करा देता है। इसका कारण इस कथा में उपरोक्त कल्पना-बंध प्राचीन समय से अपने रूप रूपान्तर धारण कर प्रकट हुआ है। कपोत-व्याध-सम्वाद में हम देख चुके हैं कि, किस प्रकार कपोत ने अपने अतिथि व्याध के लिए प्राण त्याग दिये।[3]

(४) कीटकोपाख्यान[4]

इस कहानी में एक कीड़े को जन्म-कथा प्रस्तुत हुई है। कृष्णद्वैपायन व्यास ने एक कीट को भागते हुए देखा तो उन्होंने उसका कारण पूछा। कीड़े ने कहा कि बैल गाड़ी तेजी से पीछे आ रही है। कहीं उससे मेरी मृत्यु न हो इस लिए

---

१. हर्षदेव कृत नागानन्द नाटक, अंक ४; २. रघुवंश २.

३. म० भा० ११. १४३-१४६ (कापोति व्रत)

४. म० भा० ११७-११९.

भाग रहा हूँ। महर्षि व्यास ने उसे कहा, 'तुम्हारा कीड़े का जन्म कोई अच्छा नहीं है। इसमें रहने से तुम्हें क्या सुख प्राप्त होता होगा। तुम्हारे लिए तो मृत्यु ही श्रेयस्कर है।' कीड़े ने उत्तर में कहा कि, चाहे जो योनि हो, जीव को उसी योनि में अच्छा लगता है। उसने कहा, पूर्व जन्म में केवल एक ही बार ब्राह्मण का सत्कार मैंने किया था इसीलिए पूर्वजन्म का स्मरण मुझे हो सका है (११७)।

वास्तव में महर्षि व्यास ही वे ब्राह्मण थे। उन्होंने उस कीड़े को अपनी देह त्याग कर ब्राह्मण का जन्म लेने को कहा। कीड़ा तैयार हुआ। कीड़े को मगर, वराह, मृग, पक्षी, चांडाल, शूद्र और वैश्य के जन्म प्राप्त हुए। अन्त में वह क्षत्रिय राजा हुआ। व्यास मुनि ने उसे यज्ञ सम्पन्न कराकर देह त्यागने को कहा (११८)। महर्षि व्यास के उपदेश से कीड़े को ब्राह्मणत्व की प्राप्ति हुई और अज्ञान से वह मुक्त हुआ। कृष्ण द्वैपायन व्यास स्वयं महाभारतकार हैं और वे ही इस कथा में पात्र के रूप में उपस्थित हुए हैं। महर्षि व्यास प्राचीन काल की लोककथा के प्रिय पात्र बन चुके थे। इसीलिए उनके विषय में लोगों में अन्यान्य प्रकार के वृत्तान्त प्रचलित रहे होंगे। यह वृत्तान्त भी उन्हीं में से एक हो सकता है।

प्रारम्भ में भीष्म से महाराज युधिष्ठिर ने पूछा है कि, इच्छा से या अनिच्छा से रणभूमि पर जो वीर मारे जाते हैं उन्हे कौन सी गति प्राप्त होती है ! प्राणी को प्राण क्यों प्रिय होते हैं ?

कहानी के अन्त मे भीष्म ने कहा, 'कीड़े ने व्यास मुनि की आज्ञा के अनुसार कर्म किये, अतः उसे ब्राह्मणत्व मिला। वे वीर पराक्रम से लड़े अतः उन्हें अच्छी ही गति प्राप्त हुई है।'

वास्तव में प्रारंभ में पूछा है कि, प्राण क्यों प्यारे होते हैं। उसका निदर्शन वह कीडा है जो अपनी ही योनि में रहना पसंद करता था। किन्तु व्यास मुनि ने उसका उद्धार किया है। यह कथा प्राणियों को प्राण क्यों प्रिय होते हैं इस प्रश्न का उत्तर प्रस्तुत नहीं करती।

अतः उपरोक्त कथा का नीतिसार मुख्य रूप से कौन सा है यह स्पष्ट नहीं होता। महात्मा के उपदेश के अनुसार कर्म करने पर साधारण व्यक्ति की उन्नति हो सकती है यही उपदेश का सार हो सकता है। संभवतः कीड़े के विषय में लोककथा रही होगी जिसमें वह कीड़ा ऋषि के वरदान का महत्व न समझ कर अपनी ही योनि में रहना पसन्द करता हो। उसी का ग्रहण कर महाभारत में उसकी उन्नति-कथा बनाई गई है।

ब्राह्मण धर्म का प्रभाव इस कहानी पर भी पड़ा हुआ है। भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को कही हुई बातें ब्राह्मणों द्वारा क्षत्रियों को कही जाती थी। महाभारत में इन का सार संग्रहीत है।

६ आश्वमेधिक पर्व

नकुलाख्यान[१]

जनमेजय ने वैशम्पायन से पूछा, 'मेरे पितामह श्रीमान् धर्मराज के पक्ष में कोई अद्‌भुत घटना यदि घटी हो तो उसे बताइये'। वैशम्पायन ने उस प्रसंग में घटी हुई एक घटना कह सुनाई :—

धर्मराज ने यज्ञ में ब्राह्मणों, ज्ञाति-बांधवों तथा अनाथ, दीन, अंधे आदि लोगों को महादान दिये। उसकी सर्वत्र प्रशंसा चल ही रही थी कि एक अर्ध-सुवर्ण शरीर धारण करनेवाला एवं नील नेत्रों वाला नेवला वहां उपस्थित हुआ और कहने लगा, 'राजाओ, कुरुक्षेत्र में उंछ वृत्ति से रहने वाले एक दानी ब्राह्मण ने एक प्रस्थ यव-पिष्ठ दिया है उसकी बराबरी यह यज्ञ नहीं कर सकता।'

उसकी वाणी सुनकर सब विस्मयविमूढ हो गये। उन्होंने उससे पूछा, 'तुम इस यज्ञ में कहां से आए हो? तुम्हें हमारे यज्ञ की निंदा करने का क्या अधिकार है! तुम्हारी पात्रता का परिचय! यहां तो कई महादान दिये गये हैं। फिर भी इस यज्ञ की निंदा क्यों कर रहे हो? कहो।'

इस पर नेवले ने कापोति ब्राह्मण की कथा सुनाई। 'इस गरीब ब्राह्मण के कुटुम्ब के सब व्यक्ति क्षुधाकुल थे और उनके पास स्वल्प यवपिष्ठ था। किन्तु एक अतिथि ब्राह्मण के संतोष के लिए उस पूरे कुटुंब ने अपना सर्व अन्न उसे समर्पित कर दिया। अतिथि स्वयं यमधर्म ही था। वह उदार था। ब्राह्मण पर प्रसन्न हो गया। उसके आशीष से वह ब्राह्मण अपने कुटुम्बियों के साथ स्वर्ग को चला गया। नेवले ने कहा, 'उसी समय मैं अपने बिल से बाहर आया था। उतने में यवपिष्ठ की सुगंध से, जल के कणों से तथा दिव्य पुष्पों के स्पर्श से मेरा यह अर्ध शरीर सुवर्ण का हो गया। इसे पूर्णतया सुवर्ण का करने के लिए में तपोवन एवं यज्ञों में घूमा, किन्तु कहीं पर भी मेरा यह शरीर संपूर्ण स्वर्ण का नहीं हो पाया। यहां भी तुम्हारे इस बड़े यज्ञ में मेरा शरीर पूरे सुवर्ण का नहीं हुआ। इसीलिए मैंने कहा कि, उस महादानी ब्राह्मण के दान की बराबरी तुम्हारा यह यज्ञ नहीं कर सकता।'

एक साधारण नेवले ने बड़े बड़े राजाओं एवं ब्राह्मणों के समक्ष उपस्थित होकर उनके यज्ञ-विषयक दम्भ को चूर चूर कर दिया है। इस कहानी का

---

१. म० भा० १४. ९०.

सारतत्व यही लिया जा सकता है कि, सच्चे भाव से दिया हुआ स्वल्प दान भी बड़े दान से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। यह विचार-धारा महाभारत काल में बढ़ चुकी थी कि, यज्ञ के आडम्बर में धर्म निहित नहीं है, अपितु सच्ची तपस्या और लगन, शान्ति एवं सदाचरण ही धर्म के मूल तत्व हैं।

वैशम्पायन ने अंत में ही कहा है कि, तपस्या के बल पर ही अनेक ऋषि स्वर्ग को पहुँच चुके हैं। प्राणिमात्र का अद्रोह, शान्ति, सदाचरण, सीधा स्वभाव, तपस्या, दया, सत्य और उत्तम दान इसमें से एक एक भाव महायज्ञ की बराबरी का होता है।

इससे लगता है कि, बौद्ध-धर्म के प्रभाव के कारण महाभारतकालीन ब्राह्मणों में भी धर्म के मूल भावों की ओर ध्यान दिया जाने लगा था। कर्मकाण्ड का महत्व सर्वोपरि नहीं रहने पाया था। साथ साथ वैदिक दर्शन-परम्परा में जो दार्शनिक ऋषि एकान्त-साधना एव चिन्तन में रह कर आत्म-विद्या में ही विश्वास करते थे उनका भीं प्रभाव ब्राह्मण समाज पर हुआ है और महाभारत में यह विचारधारा प्रकट हो गई है।

इसलिए जहां ब्राह्मणों का गौरव बढ़ाने की बात महाभारतीय कथा में कही जाती है वहीं यज्ञ की अपेक्षा तपस्या, भूतदया आदि तत्व अधिक श्रेष्ठ माने गये हैं। उपरोक्त कथा में गरीब ब्राह्मण को 'कापोति' ब्राह्मण कहा है यह अर्थपूर्ण है। हम देख चुके हैं कि, कपोत-व्याध-सम्वाद में कपोत ने अतिथि के सत्कार के लिए अपने प्राण तक त्याग दिये। इससे वह कपोत-व्रत ही कहलाने लगा हो तो आश्चर्य नहीं। उस कपोत के उदात्त चरित्र का ही प्रभाव जनमानस तथा महाभारतकार पर इतना तीव्र हो गया था कि, अतिथि के लिए अपना बचा खुचा समर्पित करने वाले गरीब ब्राह्मण को कापोति संज्ञा दे डाली है। कपोतव्रत का आचरण ही उस ब्राह्मण ने किया है। इससे स्पष्ट है कपोत कथा सर्वत्र पाई जाती थी और उसका प्रभाव जनसाधारण पर काफी था।

नेवले की दृष्टान्तकथा से उस समय की यही विचार-धारा व्यक्त हो रही है।

वैशम्पायन ने जनमेजय को नेवले की यह कथा सुनाई है किन्तु स्वयं नेवले ने भी कापोति बाह्मण की कथा सुनाई है। कहानी में कहानी कहने की प्राचीन प्रणाली को भारतीय कथासाहित्य की विशेषता के रूप में हम देख चुके हैं। उसी का यहां भी अस्तित्व है। पूरे राजधर्म की शिक्षा देने के लिए कई कथाएँ एवं नीतिकथाएं शान्ति पर्व में प्रस्तुत की गई है। महाभारत में यह कथा-चक्र बड़ी रोचक शैली में प्रस्तुत किया गया है। उपरोक्त कहानी में मुख्य सम्वाद

जनमेजय एवं वैशम्पायन के बीच हुआ है । नेवले की कथा चल रही थी कि उस नेवले ने ही एक और उपकथा सुना दी है। कथा में कथा को रखने की यह प्रणाली भारतीय रही है। इसे ही कथाओं का मञ्जूषीकरण (embox-ment) कहा जावे तो असंगत न होगा। महाभारत के आख्यान-उपाख्यान इस प्रणाली से ही कहे गये हैं एवं उसका निर्वाह करने से वह प्रणाली समूचे प्रबन्धकाव्य के लिए सहायक सिद्ध हुई है। जातक ग्रन्थ में हम इस प्रणाली का प्रारम्भिक रूप देख चुके हैं एवं पञ्चतंत्र में तो इस प्रणाली का प्रभाव सर्वत्र दिखाई देता है।

उपसंहार

भारतीय नीतिकथाओं को देखते हुए ज्ञात होता है कि, भारतवर्ष शिक्षाप्रद साहित्य का भाण्डार रहा है। यह इतना विशाल साहित्य भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की देन के रूप में स्थित है। भारतीय संस्कृति इस कथा-साहित्य के रूप में प्रवाहमान रही है। नीतिकथा में तो आर्य-अनार्य संस्कृति के सजीव अवशेष विद्यमान हैं। इस दृष्टि से नीतिकथा सच्चे अर्थ में भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है। हमारे देश में यह कथासाहित्य जनप्रिय रहा है। भारत की सांस्कृतिक एकता का श्रेय इन कहानियों को है। लोककथा को नीतिकथा का रूप मिल जाने पर भी उसकी लोकप्रियता को आंच नहीं आने पाई। यदि भारत के सांस्कृतिक इतिहास को ज्ञात कर लेना है तो इन भारतीय कथाओं का अध्ययन आवश्यक है। समाज-शास्त्र, लोकसाहित्य-शास्त्र, मानव-वंश-विज्ञान, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, लोकनीति, सुभाषित, प्राचीन इतिहास, भारतीय धर्म आदि अन्यान्य विषयों का भलीभांति परिचय हमें इन कहानियों में मिलता है।

हम देख चुके हैं कि शिक्षाप्रद होने पर भी भारतीय नीतिकथा कभी अरोचक नहीं हुई। 'पंचतंत्र' की लोकप्रियता देश-विदेशों में किस प्रकार रही है उसे हम भारतीय नीतिकथाओं के विदेश-भ्रमण-संबंधी विवेचन के प्रसंग में समझ चुके हैं। भारतीय नीतिकथा की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि, धार्मिक, सामाजिक या राजनैतिक नेताओं और आचार्यों ने अपने अपने सिद्धान्त की पुष्टि के लिए नीतिकथा को अपनाया, फिर भी वह अक्षुण्ण रूप से लौकिक कथा रही आई है। इसी कारण वह विदेश में गई एवं अन्य धर्म के लोगों द्वारा भी अपनाई गई। वास्तव में इसका धर्म यदि कोई है, तो वह है विश्वधर्म। इसीलिए उसे विश्व-साहित्य में स्थान है। आज विश्व में इनी गिनी प्रमुख आदर्श नीतिकथाओं में भारतीय नीतिकथाएं अग्रसर हैं। जो अन्य देश की कथाएं हैं उन पर, अप्रत्यक्ष रूप से ही क्यों न हो, भारतीय नीतिकथा का प्रभाव पड़ा हुआ है।

जब हम देखते हैं कि, इतने बड़े आचार्यों एवं धार्मिक नेताओं ने हाथी, सिंह, सियार आदि जानवरों की कहानियां अपना ली थीं, तो हमें यही मानना पड़ेगा कि, भारत ही एक ऐसा देश है जिसमें प्राचीन काल से ही नीतिकथा के गौरव को मान्यता मिल चुकी थी। अवैदिक प्राणि-कथा को लेकर वैदिक नीति-तत्व की शिक्षा देने का महान कार्य भारतवर्ष में हुआ है। ऊपर से प्राणिकथा साधारण रूप लेकर सम्मुख आती है किन्तु उसके भीतर असाधारण नीति-विचारों की सम्पदा भरी पड़ी है। अन्य देशों में भी शिक्षाप्रद साहित्य अवश्य रहा है। किन्तु भारतीय नीतिकथा अन्य देशों की नीतिकथाओं के उत्थान के कई वर्ष पूर्व ही अपना अवतार ग्रहण कर चुकी थी। हमारा प्राचीन साहित्य इसका साक्षी है।

बड़े हर्ष का विषय है कि, विश्व में भारतीय नीतिकथा को गौरव प्रदान किया जा रहा है। विदेशी साहित्य में भी जहां कहीं नीतिकथा के स्वरूप एवं इतिहास की चर्चा की जाती है, वहां पंचतंत्र आदि में सुरक्षित भारतीय नीतिकथाओं का उल्लेख अनिवार्य हो उठता है।

कुछ लोग समझते हैं वैसा नीतिकथा का लेखन सरल कार्य नहीं है। विदेश में आधुनिक साहित्यकारों ने भी इस तथ्य का अनुभव किया है।[1] हमारे यहां पंचतंत्रकार विष्णुशर्मा सबसे अधिक सफल नीतिकथाकार हुए हैं। जातक,

---

१. Pope's Works, Elwin & Courthope, VII. pp. 268, 274 :

अंग्रेजी नीतिकथाकार जौन गे (Jhon Gay) ने विख्यात साहित्यकार स्विफ्ट (Swift) को एक पत्र में लिखा था—

'यद्यपि इस प्रकार का लेखन बहुत सरल कार्य दिखाई देता है, फिर भी अभी तक मैंने जो लिखा है, उसमें नीतिकथा के लेखन में ही मैंने सर्वाधिक कठिनाई का अनुभव किया।'

उत्तर में स्विफ्ट ने लिखा था—

'नीतिकथा से बढ़ कर मैं कोई अन्य लेखन महत्वपूर्ण नहीं समझता और सफलतापूर्वक लिखने में इतनी कठिनाई अन्य में नहीं है। जिस कार्य में वारंवार प्रयत्न करने पर भी असफल रहा हूँ उसे सम्पन्न करने का सुख आपको मिला है और उसकी मैंने हमेशा प्रशंसा की है।'

पंचतंत्र एवं महाभारत के अतिरिक्त हितोपदेश[१], तंत्राख्यान[२] आदि नीतिकथाओं के ग्रंथ लिखे गये। कथासरित्सागर तथा बृहत्कथामंजरी में भी पंचतंत्र की कथाएं संक्षेप में प्रस्तुत की गई हैं।[3]

विश्व में नीतिकथा काफी लोकप्रिय रही है। प्राचीन युरोप में हेसिअड (Hesiod), ईसप (Aesop) आदि लेखकों की नीतिकथाएं प्रसिद्ध हैं। फ्रांस में ग्रीक एवं लेटिन साहित्य के प्रभाव से नीतिकथा ने प्रवेश किया। 'दि मिस्टरी आफ दि रेनॉल्ड फॉक्स' की प्राचीन दीर्घ नीतिकथा के रूप रूपान्तर लेटिन, फ्रेंच एवं जर्मन भाषाओं में प्रकट हुए हैं।

बारहवीं शताब्दि में 'आड्स आफ चेरिटन' ने फ्रांस में पहली बार इस प्रकार की कहानियाँ लिखीं। तेरहवीं शताब्दि में 'मेरी डी फ्रांस' द्वारा भी नीतिकथाएं लिखी गई। उनके बाद कार्वेझ (Corvezet) हदन्त (Hadent) और गिर्लस (Gyelrsutt) आदि लेखकों ने भी नीतिकथा को अपनाया। ला फॉन्टेन् (La Fontaine) पर इनका प्रभाव पड़ा था। फॉन्टेन ने १७ वीं शताब्दि में कई नीतिकथाएं लिखकर फ्रांसीसी साहित्य में अपना स्वतंत्र स्थान प्राप्त कर लिया। फ्रांसीसी साहित्य में अन्य नीतिकथा के लेखकों को Fablistes कहा जाता था, किन्तु ला फॉन्टेन को ली फेब्लिअर (Le Fablier) कहा जाने लगा। रूसो का यह अजीब मत था कि, नीतिकथाएं बच्चों को बिगाड़ती है। किन्तु ला फॉन्टेन की नीतिकथाएं फ्रांस की शालाओं में पढ़ाई जाती हैं। लेसिंग (Lessing) की नीतिकथाएं भी काफी लोकप्रिय हुई। लेसिंग की नीतिकथाओं में फॉन्टेन् की प्रतिक्रिया हुई है। उसने अपना ग्रन्थ फेब्लन (Fabelen) ईसप को आदर्श कहानीकार मानकर लिखा है।

अंग्रेजी में पहली नीतिकथा महाकवि चॉसर (Chaucer) की है। उनकी 'नन् प्रिस्ट हिज् टेल' नामक कुक्कुट-कथा काफी लोकप्रिय हुई। लिड्गेट एवं जॉनगेट ने भी नीतिकथाएं लिखी हैं। आधुनिक साहित्य में खलील जिब्रान,

---

१. Hitopadesh, Trans. by F. Jonson, Intro. by L. D Barnett, London. MCMXXVII.

२. Tantrākhyāna, ed. by Cecil Bendall, vide JRAS. (Great Britain & Ireland), Vol. XX, pt. 4.

३. L. Von Man' kaowski. Der Auszug aus dem Panchan tan tra in Ksemendra's Brha tkathāmantari.

सालोगोव आदि कहानीकार नीतिकथा लिखने में सफल हुए हैं। भारतवर्ष में भी इस प्रकार की नीतिकथाएं हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में लिखी जाने लगी हैं। प्राचीन समय में भारतीय नीतिकथा को यूरोप में अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई थी। आधुनिक भारत में ईसप बहुत लोकप्रिय हो बैठे है। भारत ने यूरोप का ऋण चुका दिया है।

इससे स्पष्ट है कि, नीतिकथा विश्व-साहित्य में अग्रसर है। विशेष रूप से भारतीय नीतिकथा का प्रभाव यूरोपिय प्राचीन-अर्वाचीन नीतिकथाओं पर पड़ा हुआ है। ईसप, ला फॉन्टेन, लेसिंग आदि साहित्यकारों का कथा-साहित्य भारतीय नीतिकथाओं से उपकृत हुआ है। इसीलिए आज तक देश-विदेश के सभी विद्वानों ने भारतीय नीतिकथा का गौरव किया है। हमारी मान्यता है कि, नीतिकथा का गौरव भारतवर्ष का गौरव है।

परिशिष्ट १

भरहुत (ख्रि. पू. ३ शती) की पाषाण-वेष्टनियों पर जो जातक अभिलिखित है, उनमें कुछ प्राचीन नीतिकथाएं (Fables) हैं। उनका विवरण यहां प्रस्तुत किया है:—

क्रमांक	जनरल कनिंगहम के 'भरहुत के स्तूप' नामक ग्रंथ में चित्र का क्रमांक (No. of plate)	चित्रों पर दिये हुए शीर्षक	पालि 'जातक' में कथा का क्रमांक	पालि 'जातक' में दिया हुआ कथा का शीर्षक	विशेष
१	XXV (1) XLIII (2)	मिग जातक	१२	निग्रोध मिग जातक	श्री कनिंगहम इस अभिलेख (Inscription) का मेल जातक कथा से लगा नहीं सके। मलिन्द पण्हो (Rhys Davids trans. p. 289.) Huen Tsang, II, 361; Cowell's Jataka, (Note) I, 12.
२	XXV (2)	नाग जातक	२६७	कक्कटा जातक	श्री कनिंगहम के अनुसार मूल शीर्षक नाग जातक ही रहा होगा फिर भी र्‍हीस डेविड्स ने कहा है कि, जातक के सभी शीर्षक बोधिसत्व के नाम से नहीं दिये गये। हमारा मत है कि, 'नागजातक' नाम प्राचीन रहा होगा और 'कक्कट जातक' बाद का नाम है।; देखिए Cowell's Jātaka II, 23

३	XXVI	लटुव जातक	३५७	लटुकिक जातक	Rhys Davids, Buddhist Birth Stories, Table VIII, p. c. ii, 5; This Jātaka was not identified by Cowell; vide Benfey, Introduction to Pañcha-tantra, देखिए, परिशिष्ट २ में क्र. ८
४	XXVI	च-दन्तीय जातक	५१४	छद्दन्त जातक	Vide : M. L. Feer, J. A., 1895 for five different variants (Sanskrit, Pali, 2 Chinese); It is not identified by Cowell.
५	XXVII, 9		२०६	कुरुंगमिग जातक	पाषाण का भाग खण्डित होने से नाम नहीं मिलता। Rhys Davids' Notes, Cowell's Notes ii, p. 106. (ed. 1957.)
६	XXVII (II)	हंस जातक	३२	नच्च-जातक	Vide, Benfay's Panchatantra I p. 280; Hahn's Sagewiss, Studien, p. 69, cf. also Herodotus VI, Cowell's Note I p. 84. –देखिये, परिशिष्ट २, क्रमांक ५.
७	XL, iii	इसि-मिगो जातक (Isi-migo Jataka)			र्हीस डेविड्स को इसका रूप जातक में नहीं मिला।

क्रमांक	जनरल कनिंगहम के 'भरहुत के स्तूप' नामक ग्रंथ में चित्र का क्रमांक (No. of plate)	चित्रोंपर दिये हुए शीर्षक	पालि 'जातक' में कथा का क्रमांक	पालि 'जातक' में दिया हुआ कथा का शीर्षक	विशेष
८	XL, vi	उद-जातक			जातक में इसका रूप नहीं मिला।
९	XL, vi	सेच जातक	१७४	दुब्बमिय मक्कट-जातक (दूभिय मक्कट)	Rhys Davids, Buddhist Birth Stories, Table VIII, p. cii.
१०	XL, vii	बिडाल जातक	३८३	कुक्कुट जातक	Identified by Rhys Davids.
		कुक्कुट जातक	४४८	कुक्कुट जातक	
११	XXXIII, fig. 4	?	४०७	महाकपि जातक	Identified by Cowell, see, Jataka No, 407
१२	XLII (I)	?	२५३	मणिकण्ठ जातक	A man Sitting before a hut, apparently conversing with a great five-headed cobra–Cowell (253).
१३	XL, V, (5)	?	४६	आरामदूसक जातक	See Cowell's Jātaka, (Note) I, p. 119 (Jātaka No. 46).
	४५ (५)		२६८	आरामदूस जातक	
१४	XL, V (7)	?	२७४	लोल जातक	'The two birds and the nest basket seem to be figured on the Bharhut Stup'– Cowell's note, Jat. 274.
			४२	कपोत-जातक	

परिशिष्ट २

प्राचीन भारतीय नीतिकथाओं के अन्यान्य समान रूप (Parallels)

क्रमांक	बौद्ध नीतिकथा	संस्कृत नीतिकथा	विदेशी नीतिकथाएं, ईसप तथा अन्य विदेशीय लेखक या ग्रन्थ	विशेष
१	संधिभेद जातक (३४९)	पं. तं. १ (करटक-दमनक की मुख्य कथा) क. स. सा. तरंग ६०. ११–२५४	Kalila and Dimna (Arabian) Literature; Tibetan Tales XXXIII, p. 325; The Jackal as the culminator.	Vide Benfey's Panch. I, pp. 102–103; vol. II p. 9. Benfey has given other variants.
२	बक-जातक (३८); धम्मपद, (पृ. १०५)	पं. तं. बक–कर्कटक-कथा, १. ७; हितो ४. ७; क. स. सा. x. 79–90 (Tawney's Translation, II. 31.)	Kalia and Dimnag, pp. 12, 13 Lokman-Contes et Fables Indiennes de Bidpai et de Lokman, I. P. 357. La Fontain X. 4; Arabian Nights (weil, iv. 915): A Gypsy Version ZDMG. 42., 22.	See Benfey's Intro. to the Panchatantra, I. 174, 60, (I. 175); Rhys Davids, Buddhist Birth Stories, Vol. I, p. 321 (footnote 1) प्लान्युडस् एवं ईसप की कथाओं में यह प्रसिद्ध कथा नहीं मिलती यह आश्चर्य है—र्हीस डेविड्स (वही)।
३	मुणिक जातक (३०) सलूक जातक २८६		Aesop's Calf and Ox; Bidpai et Lokman, ii. 50; La Fontaine VIII. 21.	Jame's Aesop, No. 150; some other paralles; see Rhys Davids : Anwar Suhaili, p.

				144, etc; vide also Benfey's Intro. to the Panchtantra, Pref. pp. 228, 229 for the-migration of this well-told story; Cowell's Jātaka (30) I (1957) p. 76 & II (286) p, 285.
४	कच्छप-जातक (२१५) धम्मपद, पृ. ४१८	पं. तं. काष्ठ भ्रष्ट कच्छप कथा, १-१३ हितोपदेश ४. २; क. स. सा. ६०. १६८-१७७.	The Story by Babrius (ed. Lewis. I, 122); by Phaedrus (ed. Oselli, 55. 128); Kalila Dimna Literature Bidpai et de Lokman, II, 112; La Fontaine, X, 3.	Vide for other parallels : Benfey's Panch. I. 239-241; Rhys Davids, B. B. Stories, p. xi (Notes 1-2); Cowell's Jataka, II, p. 123 (Note I) Jacob's Indian Fairy Tales, pp. 100, 245.
५	नच्च जातक (३२) नच्च जातक (२१६) काम-विलाप-जातक (२७९)		Herodotus, VI. 130[1]	See 'The Stup of Bharhut' by Cunninghum plate XXVII (II) देखिये परिशिष्ट १ में क्रमांक ६

1 Vide Dr. Winternitz : Hist. of Ind. Lit. II, 327 (footnote 5.)

४	जम्बुखादक जातक (२९४) अन्त जातक (२९५)		Aesop's The Fox and The Crow. Anvar 1. Svahill, 170. [1]	1. See Benfey's Panch. I. pp. 269, 270; Tawney's Trans. of KSS. X. p. 39.
७	कुटिदूसक जातक (३२१)	पं. तं. १. १८. वानर-चटक दम्पत्ति कथा पं. तं. १. १७ क. स. सा. ६०. २०५–२०९		देखिये परिशिष्ट १ में क्र. ३
८	लटुकिक जातक (३५७)	पं. तं. १-१५ चटक दम्पति कुंजर-कथा।		
९	सम्मोदमान जातक (३३)	पं. तं. २ मित्र सम्प्राप्ति (मुख्य कथा)[1]		१, सर्व पक्षियों ने मिलकर जाल को उठा लिया। परिशिष्ट १. क्र. १
१०	निग्रोधमिग जातक (१२)	आंशिक समानता, Bonfoy's Panch. I. 349; क. स. सा. (Vol. II. p. 66)		
११	सीहचम्म जातक (१८९)	पं. तं. ४. ७. वाचाल-रासभ कथा; क. स. सा. ६२. १९–२३	Aesop's Ass in the Lion's Skin.	जातक के अनुसार गधे को सिंह चर्म पहना दिया है। ईसप की कथा में भी सिंहचर्म ही है। किन्तु पं. तं. में व्याघ्रचर्म की बात कही गई है। क. स. सा (६२) में 'द्वीपि' (चीते) का चर्म पहना दिया है।

क्रमांक	बौद्ध नीतिकथा २	संस्कृत नीतिकथा १	विदेश की नीतिकथाएं, ईसप तथा अन्य विदेशीय–लेखक या ग्रन्थ	विशेष
१२	सुवर्ण-हंस-जातक (१३६) विनय, (Vol. IV. pp. 258–59.)		Aesop's Goose with the Golden Egg; La Fontaine (La Poule Anx Aeufs d'or) V. 13.	
१३	दब्भ पुप्फ जातक (४००)		Aesop's Monkey and Cats.	
१४	जवसकुण जातक (३०८); जातक माला (३४)		Aesop's The Wolf and the Cravne; Tibetan Tales, XXVII p. 311 (Ungrateful Lion)	
१५	दीपि-जातक (४२६)		Aesop's Wolf and Lamb; Tibetan Tales, No. 29 (Folklore Journal, Vol. IV. p. 45.,	
१६	तक्कारिय जातक (४८१)		Zenobius, Zeitscha der-deutich. Morg. Gesellschaft, X, VII, 86.	

१७	खरपुत्त जातक (३८६)		Arabian Nights, Story (2)	Vide, Benfey, Orient and Occident, Vol. II. p. 133.
१८	महिस जातक[1]; जातक माला (३३) चरियापिटक ४. ५			1. Vide John Griffith : The Paintings in the Buddhist Cave-Temples of Ajantā, London, 1896, I. 12 f. ; Dr. Winternitz, Hist. of Ind. Lit. II. p. 125 (footnote 1).
१९	कुसजातक (५३१)		The beauty and the Beast (Cupid & Scyche).	
२०	कुक्कुट जातक (३८३)		Chaucer's Nonne Prest His Tale.	
२१	उच्छंग जातक (६७)[1]		Herodotus, III, 119.	1. Vide Dr. Winternitz, Hist. of Ind. Lit. II, pp. 135–136; Indian Antiquary, Dec. 1881.

क्रमांक	बौद्ध नीतिकथा २	संस्कृत नीतिकथा ३	विदेश की नीतिकथाएं, ईसप तथा अन्य विदेशीय—लेखक या ग्रन्थ	विशेष
२२	संसुमार जातक २०८ वानरिंद जातक ५७ कुम्भील जातक २२४ महावस्तु, मकट जातक, II २०८; चरिया पिटक, III ७	तंत्राख्यायिक, ६, मुख्य कथा[1]; क. स. सा. ६३, ९७–१२४.	Griffis, Japanese Fairy World, p. 153.	1. Vide Benefey's Panch, I, 420. Dr. Winternitz, Hist. of Ind. Lit. II, p. 126; A Russian variant given by Cowell, II, p. 110; Macculloch, The Childhood of Fiction.
२३	करूंग मिग जातक (२०६)[1]	तंत्राख्यायिक, II, मुख्य-कथा; क. स. सा. ६१. ५८–१३९.		1. Vide 'The Stupe of Bharhut' by Cunningham, pl. 27, fig. 9. देखिये परिशिष्ट १. क्र. ५.
२४	मितचिन्ति जातक (११४)	पं. तं. १. १४; म. भा. मत्स्योपाख्यान १२. १३७; क. स. सा. ६०. १७८–१८६; हितो. ४.		
२५	उलूक-जातक (२७०)	पं. तं. ३ काकोलूकीयम् (मुख्य कथा); क. स. सा. ६२.		

विशेष :—इस परिशिष्ट में केवल नीतिकथाओं (fables) के ही समान रूप दिखाये गये हैं। वैसे तो अन्य जातकों के भी समान रूप दिखाये जा सकते हैं। उदाहरण—

(२) चुल्लु-पुदुम-जातक (१९३), पं. तं. ४. ५. ब्राह्मण-ब्राह्मणी पंगुकथा, Fibetan tales, xxi;

(२) रुहक-जातक (१९१) पं. तं. ४. ६: नन्दवररुचि कथा;

(३) दधि-वाहन-जातक (१८६); ग्रिम की कथाएँ क्र. (३६); म. भा. १२.१७९६.

(४) महोसध-जातक; सालोमन का न्याय; आदि।

उपरोक्त तालिका में निर्दिष्ट कथाओं के अतिरिक्त पं. पं. की नीति-कथाओं के देशीय एवं विदेशीय समान रूप भी देखे जा सकते हैं।

उदाहरण—

(१) पं. तं. १. २. गोमायु-दुन्दुभि कथा; Anvar-i-Suhaili, 99 (the Story of the fox), Cambell's Best Highland Tales (p. 268) की कथा; क. स. सा. ६०.

(२) पं. तं. १. ८ सिंह-शशक-कथा; क. स. सा. ६०. ९२–१०६; शुक-सप्तति (३१) Anvar Suhaili, 124.; Baldo 4th Fable, A Malayan Tale (The Fables and Folktales by W. Skeat) No. 12; The Tiger and the Shadow.

(३) पं. तं. २. ३. पुलिन्द-शूकर-सर्प-शृगाल-कथा; क. स. सा. ६१. १०१-१०४; गीदड़ की जैन कथा (आवश्यक चूर्णि, पृ० १६८-९); Aesop's Fable 388; La Fontaine, VIII, 27.

(४) पं. तं. ३. १. शश-गज यूथनाथ कथा; क. स. सा. ६२. २९-४४ & Anvar-i-Suhaili. 315 etc. ('The fable is evidently of Indian Origin—' Tawney 62. p. 66. cf. Banfey, Panch. I, pp. 348, 349) इत्यादि।

बृहत्कथा-मंजरी में पंचतंत्र की कथाएं, देखिए : पं० शिवदत्त द्वारा सम्पादित बृ. क. म., नि. सा. प्रे. बम्बई, १९०१, पृ० ५६१-५८७। इससे स्पष्ट है कि, भारतीय नीतिकथाओं का विश्व-भ्रमण बहुत प्राचीन काल में ही हुआ है।

संदर्भ ग्रन्थ

(संस्कृत, पालि एवं प्राकृत)

संहिता :—

ऋग्वेद संहिता — पं० सातवलेकर द्वारा सम्पादित

ऋग्वेद संहिता — सायण भाष्य सहित

वाजसनेयी संहिता — उवट-महीधर भाष्य सहित

मैत्रायणी संहिता

तैत्तिरीय संहिता — आ. सं. ग्रं.

सूत-संहिता — आ. सं. ग्रं.

ऋग्वेद-सर्वानुक्रमणी, कात्यायन-विरचित

ब्राह्मण :—

ऐतरेय ब्राह्मण — आ. सं. ग्रं.

शतपथ ब्राह्मण

शाट्यायन ब्राह्मण

सांखायन ब्राह्मण

जैमिनी ब्राह्मण — डा. रघुवीर

तैत्तिरीय ब्राह्मण — आ. सं. ग्रं.

कौषीतकि ब्राह्मण. — बी. लींदर

आरण्यक एवं उपनिषद् :—

ऐतरेय आरण्यक — आ. सं. ग्रं.

तैत्तिरीय आरण्यक — (१) आ. सं. ग्रं (२) सायण भाष्य सहित

बृहदारण्यकोपनिषद्. — आ. सं. ग्रं.

छान्दोग्योपनिषद् — सायण भाष्य सहित.

मुण्डकोपनिषद्. — आ. सं. ग्रं.

अन्य संस्कृत ग्रंथ :—

निरुक्तम् — दुर्गाचार्य टीका, आ. सं. ग्रं.

महाभारतम् — १. भंडारकर ओरिएन्टल रिसर्च इंस्टिट्यूट पूना
२. सी. व्ही, वैद्य द्वारा सम्पादित
३. नीलकंठ टीका समेत
४. महाभारत विशेषांक, कल्याण अंक

आपस्तम्ब-धर्म-सूत्रम्

मनुस्मृतिः

विष्णु-स्मृतिः

गौतम-स्मृतिः

याज्ञवल्क्य-स्मृतिः आ. सं. ग्रं.

विष्णु-धर्म-सूत्रम्

अग्नि-पुराणम् आ. सं. ग्रं.

वराह-पुराणम्

वायु-पुराणम् आ. सं. ग्रं.

पद्म-पुराणम् आ. सं. ग्रं,

पंचतंत्रम्

पंचतंत्र (हिन्दी अनुवाद) डा. मोतीचंद्र

हितोपदेशः

बृहतकथामंजरी क्षेमेन्द्र-रचिता

कथासरित्सागरः सोमदेव—कृत सं. पं. दुर्गाप्रसाद

भारत-मंजरी ।

तंत्रोपाख्यानम् के. साम्ब सदाशिव शास्त्री, अनंतशयन

अन्योक्तिस्तवक वंशीधर मिश्र

लौकिक-न्याय-संग्रह रघुनाथ वर्मा

प्रबोधचंद्रोदयनाटकम् कृष्णमिश्र

लौकिक न्यायाञ्जलि जी. ए. जेकब, बम्बई

रघुवंशम्

काव्यप्रकाशः मम्मटाचार्य [वामनाचार्य झलकीकर-टीका]

साहित्यदर्पणः विश्वनाथ [हरिदास सिद्धान्त वागीशटीका]

सांख्यतत्वकौमुदी ईश्वर कृष्ण [बालाराम उदासीन-टीका]

महाभाष्यम् पतञ्जलिः

महाभाष्य. श्री वासुदेव शास्त्री अभ्यंकर द्वारा अनूदित

प्रसन्नराघवं नाटकम्

तंत्रवार्तिकम् कुमारिलभट्ट

कामन्दकीयं नीतिशास्त्रम्

बौद्ध एवं जैन ग्रन्थ (संस्कृत, पालि एवं प्राकृत) :—

जातक :—

(१) भदन्त आनन्द कौसल्यायनकृत हिन्दी अनुवाद

(२) ईशानचन्द्र घोष द्वारा बंगला में अनुवाद

चरिया-पिटक

जातकमाला आर्यशूरकृत जातक २०, सं. सूर्यनारायण चौधरी

हेमचन्द्रः परिशिष्ट पर्वम् (जेकोबी द्वारा संपादित)

जातकट्ठकथा भिक्खु धर्मरक्षित

यशस्तिलकम् सोमदेव-कृत

दिव्यावदान

धम्मपदट्ठकथा

मिलिन्दपह्न

विनयपिटक

सुत्त-पिटक

धम्मपिटक

मज्झिम-निकाय

दीघ-निकाय

अंगुत्तर-निकाय

धम्मपद (१) राहुल सांकृत्यायन कृत हिन्दी अनुवाद

(२) भदंत आनंद कौसल्यायन कृत हिन्दी अनुवाद

सुमंगल-विलासिनी, भाग १ पालि टेक्स्ट सोसाइटी

सद्धर्मपुण्डरीक

आत्म-तत्व-विवेक उदयनकृत

उपमितिभव-प्रपञ्च-कथा सिद्धर्षि-विरचित

बौद्धधर्मदर्शन आचार्य नरेन्द्रदेव

आवश्यक चूर्णि

विनय वस्तु

बृहत्कल्प भाष्य वृत्ति

दशवैकालिक चूर्णि

धूर्ताख्यानम् हरिभद्रसूरिकृत

भट्टपरिन्ना

उत्तराध्ययनटीका

नायाधम्मकहा

कथा रत्नाकर हेमविजयगणि-कृत

कथासंग्रह राजशेखर मलधारी-कृत

अन्य ग्रन्थ :—

पालि साहित्य का इतिहास भरतसिंह उपाध्याय

वैदिक कहानियाँ पं. बलदेव उपाध्याय

दो हजार वर्ष पुरानी कहानियां डा. जगदीशचन्द्र जैन

वैदिक संस्कृति का विकास पं० लक्ष्मणशास्त्री जोशी

ध्वनिकथा प्र. ना. कवठेकर

कोषग्रन्थ :—

वाचस्पत्यम्　　सं० तारानाथ तर्कवाचस्पति

अमरकोश

लघु-गीर्वाण-कोश

अभिधान राजेन्द्रः　　सर्व भाग

जिनरत्नकोश　　H. D. Belwalkar

प्राचीन चरित्रकोश सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव

महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश डा. श्री. व्यं. केतकर

हिंदी विश्वकोश

अन्य ग्रन्थ :—

काठक-संहिता

काण्व-संहिता

माध्यंदिन सं.

सांख्यायन-ब्राह्मण

शांखायन श्रौत-सूत्रम्

गोपथ-ब्राह्मण

आपस्तम्ब-धर्मसूत्रम्

बृहत्कल्प-सूत्रम्

काव्यालंकार　　भामह

काव्यादर्श　　दंडी

काव्यालंकारसूत्रम्　　वामन

शाट्यायन-ब्राह्मण

अलंकार-संङ्ग्रह अमृतानन्दयोगिन्

दशरूपकम् धनंजय

BIBLIOGRAPHY

1. Encyclopaedias and Dictionaries :—

Apte, V. S. : Sanskrit English Dictionary.
Chamber's Encyclopaedia, (New ed.)
Childers : Pali Dictionary.

Encyclopaedia of Britannica.

Fallen, S. W. : A. Dictionary of Hindustani Proverbs.

Funk and Wagnell's Standard Dictionary of Folklore.
Giager : Pali Literature and Language.
Hastings James : Encyclopaedia of Religion and Ethics.
Leach, Maria : The Standard Dictionary of Folklore, Mythology and Religion, Vols. 2.

Oxford Junior Encyclopaedia, Oxford Vols. 2.

Rhys Davids : Pali Dictionary.
Seligman : The Encyclopaedia of Social Sciences.
Skeat, Walter W. : Etymological Dictionary of the English Languages Oxford, (2nd Ed.)

Smythe-palmer : A Dictionary of Folk-Etymology.
Steanburg, S. H. : Casell's Encyclopaedia of Literature, Vol. I. pt. I.

The New Popular Encyclopaedia.

The Oxford Dictionary of English Proverbs.

Visvabandhu : A Complete Etymologicai Dictionary of the Vedic Language.

William Little : Shorter English Dictionary.
Williams Monier : (i) Sanskrit English Dictionary.
(ii) English Sanskrit Dictionary.

2. Texts and Translations (English) :—

Rgveda : (Transl.) by Wilson.
Rgveda Samhita : (Transl.) by Max Müller F.
Atharvaveda : S. P. Pandit.
Hymns of the Atharvaveda, 2 Vols. (Transl.) by Griffith.
Muir's Original Sanskrit Texts, 5.

Śatapatha Brāhmana, by Eggling Julius.
Chhāndogya Upanishad : Edited by Sris Chandra Vasu.

Sacred books of the East : by Bloomfield.

Jātaka :

(i) Rhys Davids : Buddhist Birth Stories (30 Jatakas).
(ii) E. B. Cowell's Edition, Vols. 6 PTS.
(iii) Fausboll's ed., (Roman Script.)
(iv) Translation by Chammers and others.

Jolly : Kautiliyam Arthashastram.

Macdonell, A. A. : (i) Bṛahaddevatā, 2 Vols. HOS,
(ii) Sarvānukramaṇi with Ṣaḍguruṣiśya's Commentary.

The Panchatantra :

(1) Johannes Hertel's 4 editions : HOS.
(i) Southern Panchatantra,
(ii) Tantrākhyāyika;
(iii) Purṇabhadra's Panchatantra;
(iv) Panchatantra.
(2) Theodor, Benfey : Das Pañtschatantra. (Introduction and Translation) 2 Vols.
(3) Bühler and Kielhorn's ed. BSS.
(4) Kosegarten's Pañtschatantrum.
(5) Franklin Edgerton's ed. : The Pañchatantra Reconstructed 2 Vols. AOS.
(6) Ayyar : Pañchatantra and Hitopadesha.
(7) Ryder's translation in English.

Hitopadeśa : ed. by Max Müller.

The Mahābhārata : (Mbh. Cr. ed. BORI Poona) :

(i) Ādiparvan, edited by V. S. Sukthankar.
(ii) Karnaparvan, By Dr. P. L. Vaidya.
(iii) Śāntiparvan, By S. K. Belwalkar.
(iv) and other Parvas of BORI.
(v) Dahlman, Joseph : Das Mahābhārata as epos und reschtsbuch.

Sarup. L. : Nighantu and Nirukta.
Dr. Suryakant : Flood Legends in Sanskrit Literature.
Burlingame, E. W. : Buddhist Legends (Dhammpada Comm). Parts 2., HOS.

Speyer's : English Translation, Sacred Books of the Buddhists.

Jain, Banarasi Das : Jain Jātakas.
Kern, H. : The Jātaka Mālā by Ārya-Śura.
Jacobi, H. : Hemachandra's Parishista Parvan, Cal., Bib. Ind.

Kielhorn : Mahabhashyam. (Patañjali).
Tawney, C. H. : Kathā-Sarita-Sāgara.
Upadhye, Dr. A. N. : Bṛhat Kathā Kośa (with Intro.) BVB.
Budhaswāmin's Bṛhatkathāślokasaṅgraha. (Tex Sanskrit).

Aesop's Fables :—

(1) Jame's edition, London, Murrey.
(2) C. Halm's ed. Aesopi Fabulae.
(3) E. Chanbry's ed. E'sope Fables.

(4) A. Housrath, Corpus Fabularum Aesopicarum.

(5) B. E. Perry's ed. Aesopica.

Aristotle : Arist. de part, anim. III.
Aristophenes : Vespal.
Hesiod's Works and Days : ed. by Van Hannep.

Plato : Phaedo.

Rhys Davids : (i) The Buddhist Birth Stories.
(ii) Dīgha Nikāya.

Skeat, W. : Fables and Folk tales.
Hall : Vasavadatta of Subundhu (Preface).
Peterson, P. : Kadambari (3rd ed.)
Batterson, R. F. : Noune Prest His Tale by Chaucer.

3. Other Books :—

Alington : Fables and Fancies.
Ayyangar, Narayan : Essays on Indo-Āryan Mythology, pt. I.
Ayyear, S. P. : Pañchatantra and Hitopadeśa Stories.
Bannerjee, J. W. : Ancient India as known to the Ancient world.

Battantyne : Aphorisivs of the Nyāya.
Benedict Ruth : Patterns of Culture.
Bargainge : La Religion Vedique, I.
Bentley : The Dissertation on the Fables of Aesop.
Benfey : Orient add Occident, Vol. I
Bhargava, P. L. : India in the Vedic Age.
Boas Franz : The Mind of Printive Man.
Bompas, C. H. : Folklore of the Santal Parganas.
Bulfinch Thomas : The Age of the Fable.
Bussey, G. Moir : Fables.
Charles Eliat : Harvard Classics (All the vols.)
Christian, J. : Behar Proverbs.

Clark Ella E. : Indian Legends of the Pacific North-West, California.

Clauston, W. A. : Popular Tales and Fiction, Vols. 2.

Cox, G. W. : (i) Mythology of the Aryan Nations, Vols. 2.
(ii) A Manual of Mythology.

Cosquin, Emmanuel : Coutes Populaires de Lorraine, Vols. 2.
Crooke, W : The Popular Religion and Folklore of Northern India, Vol. II.

Cunningham, General : The Stupa of Bharhut.
Dasgupta, S. N, De : The Histnry of Sanskrit Liətrature, Vol. I·
De Golish Vitold : Primitive India (Transl. by Nusdine Peppord).

De Gubernatis :	Zoological Mythology.
Deshmukh, P. S. :	The Religion in the Vedic Literature.
Dixit :	Relation of the Epics to the Brāhmaṇa Literature.
De, S. K. :	The History of Sanskrit Poetics.
Dikshitar, Ramchandra V. R. :	Purāṇa Index.
Dodd, C. H. :	Parable of Kingdom.
Dr. Gaster :	Ilechester Lectures on Graco-Slavonic Literature.
Elwin Verrier :	(i) Folk-tales of Mahakoshal. (ii) The Baija.
Farrer :	(i) Primitive Manners and Customs. (ii) On the Origin of the Language.
Félix Lacote :	Essay on Guṇāḍhya and Bṛhatkathā, (English Trans. by A. M. Tabard, 1923).
Frazer, J. G. :	(i) The Golden Bough, (abridged ed.) (ii) Folk lore in the Old Testament,
Ghate, V. S. :	Lectures on the Rgveda.
Gomme, G. L. :	Ethnology in Folklore.
Gordon, E. M. :	Indian Folk-Tales.
Gray, J. :	Burmese Proverbs and Maxims.
Griffiths, John :	The Paintings in the Buddhist Cave-Temples of Ajantā.
Griffis :	Japanese Fairy World.
Grimm :	Grimm's Popular Stories.
Grim, Jacob :	Reinhart Fuchs.
Hardy, S. :	Legends and Theories of the Buddhists.
Hariyappa, H. L. :	Rgvedic Legendas Through the Ages.
Hartland :	The Science of Fairy-Tales and Legends of Perseus.
Hazra, R. C. :	Studies in Primitive Records on Hindu Rites and Customs.
Hertel, J. :	(i) Indische Marchen. (ii) On the Literature of the Śwetāmbaras of Gujarāt.
Hervienx, L. :	Les Fabulistes Latins.
Hopkins :	(i) Religions of India. (ii) The Great Epic of India. (iii) Epic Mythology.
Howard, J. :	Savage Survivals.
Itayemi Phebean & P. Gurrey :	Folk-tales and Fables.
Jain, C. L. :	Jain Bibliography.

Johnson, Dr. Samuel : Lives of the English Poets, Vol. II.
Keller : Untersuchungen uber die Geschichte der Grieschrischen Fabel.
Knowles. J. H. : Folk Tales of Kashmir.
Kana P. V. : The History of Sanskrit Poetics.
Krappe, Alexander : The Science of Folk-lore.
Keith, A. B. : (i) Classical Sanskrit Literature.
(ii) History of Sanskrit Literature.
(iii) Religion and Philosophy of the Veda.
(iv) The Brāhmaṇas of the Ṛgveda. Vols. 2.
(v) Ṛgveda Brāhmaṇas HOS.
Land, Andrew : (i) Myth, Ritual and Religion, Vols. 2.
(ii) Customs and Myths.
(iii) The Sacrets of Totemism.
Long-J. : Eastern proverbs and Emblems.
Long-L. : Oriental Proverbs and their Uses.
Law, Dr. B. C. : The History of Pali Literature.
Mac Crinadle, J. W. : Ancient India as described by Megesthenes and Arrian.
Mackenzi, Donald A. : 1. Indian Myth and Legend, London.
2. Myths of Babylonia and Assyria.
Maitra : 1. The Social Organization in North-East India in Buddha Time. (Transl. in English)
Majumdar, R. C. & Pusalkar, A. D. : The Classical Age, VBB.
Maccullock, : The Childhood of Fiction.
Macdonell, A. A. and Kieth, A. B. : Vedic Index of Names and Subjects, Vols. 2.
Macdonell, A. A. : 1. The History of Sanskrit Literature.
2. Vedic Mythology.
Malcolm, John : History of Persia.
Malinowski, B. : Myth in Primitive Psychology.
Mankowski : Der Auszug and dem Pañchatantra in Kshemendra's Bṛihatkathā-Mañjari.
Max Müller F. : (i) Contributions to the Science of Mythology, Vols. 2.
(ii) Comparative Mythology.
(iii) Language, Mythology and Religion.
(iv) Anthropological Religion,
(v) Chips From a German Workshop,.
(vi) The Science of Thought.

Max Stege : Die Geschichte der deutschen fable- theoric.

Mehta, Ratilal : Pre-Buddhist India.

Moor, Howard J. : Savage Survivals.

Morus : Animals, Men and Myths.

Mrs. Max Müller, Life and Letters.

Mursey, A. S. : Introduction to the Science of Mythology.

Netesar : Upākhyānas in Mahābhārata.

Nehru, Pt. Jawaharlal : Discovery of India.

North Thomas, : Fables of Bidpaie.

Oldenburg : Die Religion Des Veda.

Pargitar, F. E. : Ancient Indian Historical Tradition.

Patil, D. R. : Cultural History from the Vāyu Pūrāṇa.

Penzer, N. M. : The Ocean of Stories.

Pater Peterson : Hitopadesha of Narayana.

Pusalkar, A. D. : Studies in the Epics and Puranas, BVB.

Rehone, L. : Bibliographie Vedique.

Rhys Davids : I. Dialogues of the Buddha. Parts. 3.
II. Buddhist India.

Mrs. Rhys Davids : Stories of the Buddha.

Rice, S. : Ancient Indian Fables.

Roger and Max Müller : Buddhaghosha's Parables.

Roychowdhari, Hemachandra : Ancient Political History.

Rutherford, W. G. : Babrius : The History of Greek Fables.

Sengupta, Padmini : Everyday Life in Ancient India.

Seroder : (i) Realexicon der Indo-germanische Alter lumskunde.

Sharma, D. S. : Tales of Ancient India.

Shende, N. G. : The Foundations of the Atharvanic Religion.

Sieg Emil : Die Sagenstaffe des Ṛgveda.

Smith, Vencent A. : The Early History of India.

Speyer, J. S. : Studies about Kathāsarit-sāgara.

Stead, W. T. : The Adventure of Reynard the Fox.

Suniti Devi : Indian Fairy Tales.

St. Mare Girdin : La Fontaine etles fabulistes.

Sukathankar, V. S. : Epic Studies, (All Vols.)

Tales from the Pañchatantra (Transl. by Alfared and Williams) Intro. by Macdonell.

Taine : Essai sur les Fables de la Fontaine.

Thomas, E. J. : History of Buddhist Thought.

Trench, R. C. : Proverbs and Their Lessons.

Thomas, P. : Epics, Myths and Legends of India.
Thompson, Smith : Motif-Index of Folk Literature, Vol. I.
Tylor : Primitive Culture.
Vedic Bibliography by R. N. Dandekar, BORI.

Weber : (i) History of Sanskrit Literature.
(ii) Indische Studien.

Winternitz, Dr. : (i) The History of Indian Literature (Vols. 2) Translated by Mrs. Ketkar.
(ii) Geschichte der indischen Literature, 3rd Vol.

Weakatasmani, M. N. : Folk-Stories of the Land of Ind.

JOURNAL. S :

Proceedings, Journal of the American Oriental Society, New Haven.
Asia.

Contemporary Review.
Nineteenth Century; Z. D. M. G.
University of Ceylone Review.

नामानुक्रमणिका

(ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार)

श

स

INDEX

K

L

M

N

W